## ( अभिमन्यु वध-पर्व )

## (प्रतिज्ञापर्व)



## (जयद्रथ-वधपर्व)

—०—

अथ चतुरधिकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच — स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ १ ॥
प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥ २ ॥
अर्धचन्द्रं च सन्धाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम् ।
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः ॥ ३ ॥
तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः ।
प्रसन्दधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ ४ ॥
तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत् ।
स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणीपरिसंलिहन् ॥ ५ ॥
समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।
तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ॥ ६ ॥
क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः ।
अभिमन्युमुखाश्चाऽपि पाण्डवानां महारथाः ॥ ७ ॥
समभ्यधावन्क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः ।
सम्प्रेक्ष्यैतान्सम्पततः संक्रुद्धाञ्जातसम्भ्रमान् ॥ ८ ॥
भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् ।
क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ ९ ॥
संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।
एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १० ॥

चौरानवेवाँ अध्याय ॥ ९४ ॥

सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! इसके पश्चात् राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को विमुख देखकर क्रोध करके भीमसेन की ओर रथ दौड़ाया। वे भीमसेन के ऊपर बाण बरसाने लगे। लोमयुक्त, सान पर तीक्ष्ण किये गये, एक अर्धचन्द्र बाण से उन्होंने भीमसेन का धनुष काट डाला और एक पर्वतभेदी तीक्ष्ण बाण उनके वक्ष:स्थल में मारा ॥१।४॥ दुर्योधन का बाण इस वेग से लगा कि भीमसेन को होंठ दबाकर ध्वजा का आश्रय लेना पड़ा। उनको व्यथित और शिथिल देखकर राक्षस घटोत्कच प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से उत्तेजित हो उठा। अभिमन्यु आदि श्रेष्ठ वीर भी गरजते और ललकारते हुए दुर्योधन के पास पहुँचे ॥४।८॥ उन्हें क्रोध करके दुर्योधन की ओर बढ़ते देखकर द्रोणाचार्य ने अपने महारथियों से कहा — तुम लोग शीघ्र राजा दुर्योधन के पास जाकर उनकी सहायता और रक्षा करो। वे इस समय विपत्ति के सागर में पड़ गये हैं। देखो पाण्डवसेना के महारथी लोग भीमसेन के अनुगामी होकर, जय

भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन् ।
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः ॥ ११ ॥
नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा सौमदत्तिपुरोगमाः ॥ १२ ॥
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ॥ १३ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ १६ ॥
भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ १७ ॥
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।
त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥ १८ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत ।
प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १९ ॥
गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ ॥ २० ॥
तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ २१ ॥

की इच्छा से, अस्त्र शस्त्र बरसाकर, सिंहनाद से राजाओं को उद्विग्न करते हुए, दुर्योधन के समीप आ रहे हैं ॥९।१२॥ द्रोण के ये वचन सुनकर महावीर कृप, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ बृहद्बल और अवन्तिदेश के विन्द अनुविन्द आदि योद्धा बड़ी स्फूर्ति के साथ महाराज दुर्योधन को अपने मध्य में करके उनकी रक्षा करने लगे। पाण्डव पक्ष और कौरवपक्ष के वे वीर बीस पग आगे बढ़कर परस्पर प्रहार करने लगे ॥१२।१५॥ महात्मा द्रोणाचार्य ने धनुष चढ़ाकर भीमसेन को छब्बीस बाण मारे। जल की धारा जैसे पर्वत को ढक लेती है वैसे ही द्रोणाचार्य ने बाणों से भीमसेन को ढक दिया। भीमसेन ने बड़ी स्फूर्ति से द्रोणाचार्य के वाम पार्श्व में दस बाण मारे। उन बाणों से द्रोणाचार्य बहुत व्यथित और अचेत होकर रथ के ऊपर बैठ गये ॥१६।२०॥ यह देखकर महाराज दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों भीमसेन की ओर चले। काल की तरह उन दोनों वीरों को आते देखकर वीर भीमसेन रथ से

अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥ २२ ॥
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥ २३ ॥
तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ ।
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः ॥ २४ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥ २५ ॥
भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।
नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन् ॥ २६ ॥
सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः ।
तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीड्यमानं महारथम् ॥ २७ ॥
अभिमन्युप्रभृतयः पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यधावन्परीप्सन्तः प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् २८ ॥
अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा ।
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् ॥ २९ ॥
स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः ।
स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ॥ ३० ॥
यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ।
विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयङ्करम् ॥ ३१ ॥
येन लोकत्रयं क्रोधात्त्रासितं स्वेन तेजसा ।
तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुक्तेन पतत्रिणा ॥ ३२ ॥

उतर पड़े । वे एक भारी गदा लेकर पर्वत की तरह अचल भाव से खड़े हो गये ॥२०।२२॥ गदा हाथ में लिये भीमसेन ऊँचे शिखरवाले कैलास पर्वत के समान शोभायमान थे । दुर्योधन और अश्वत्थामा भीमसेन की ओर झपटे, और उधर से भीमसेन भी उनकी ओर झपटे । उस समय द्रोणाचार्य आदि कौरवपक्ष के वीर, श्रेष्ठ रथी भीमसेन को मार डालने के लिए, उनके पास पहुँचकर हृदय में विविध शस्त्र मारकर उन्हें पीडा पहुँचाने लगे ॥२३।२७॥ महाबली भीमसेन जब कौरवपक्ष के वीरों के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर प्राणसङ्कट की अवस्था में पड़ गये तब पाण्डवपक्ष के अभिमन्यु आदि महारथी, प्राणों की ममता छोड़कर, उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़े। भीमसेन के प्रिय मित्र अनूपेश्वर राजा नील क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा के सन्मुख आये । महाराज नील सदा ही अश्वत्थामा से स्पर्धा रखते थे ॥२७।३०॥ इन्द्र ने जैसे दुर्धर्ष, तेजस्वी, त्रिभुवन को त्रास पहुँचानेवाले विप्रचित्ति को मारा था वैसे ही महावीर नील धनुष

सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः ।
स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ३३ ॥
दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः ।
ततः सन्धाय विमलान्भल्लान्कर्मारमार्जितान् ॥ ३४ ॥
जघान चतुरो वाहान्पातयामास च ध्वजम् ।
सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ॥ ३६ ॥
घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो ज्ञातिभिः परिवारितः ।
अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३७ ॥
तथेतरे चाऽभ्यधावन्राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ३८ ॥
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन् ।
निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ ३९ ॥
येऽभवन्नग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः ।
विमुखांश्चैव तान्दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः ॥ ४० ॥
अक्रुध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः ।
प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥ ४१ ॥
मोहयन्समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः ।
ततस्ते तावकाः सर्वे मायया विमुखीकृताः ॥ ४२ ॥
अन्योन्यं समपश्यन्त निकृत्ता मेदिनीतले ।
विचेष्टमानाः कृपणाः शोणितेन परिप्लुताः ॥ ४३ ॥

चढ़ाकर बाण बरसाकर अश्वत्थामा को पीड़ा पहुँचाने लगे। नील के बाणों से अश्वत्थामा का शरीर रुधिर से युक्त हो गया। वे क्रुद्ध होकर नील को मार डालने का यत्न करने लगे। अश्वत्थामा ने वज्रसदृश शब्द से पूर्ण धनुष पर विचित्र सात भल्ल बाण चढ़ाये। उन्होंने छः भल्ल बाणों से नील के चारों घोड़े मार डाले और ध्वजा काट डाली। सातवाँ बाण नील की छाती में मारा। उस प्रहार से अचेत-से होकर नील रथ पर बैठ गये ॥३१।३५॥ राजा नील को अचेत देख क्रोध से विह्वल राक्षस घटोत्कच, अपने साथी राक्षसों को लेकर, बड़े वेग से अश्वत्थामा का सामना करने आया। और राक्षस भी आक्रमण करने चले। महाबली अश्वत्थामा ने घटोत्कच को देखते मात्र ही झपटकर बाणों से भयानक राक्षसों को मारना और गिराना आरम्भ किया। घटोत्कच ने अपने आगे के राक्षसों को अश्वत्थामा के बाणों से भागते हुए देखकर क्रुद्ध हो, अश्वत्थामा को मोहित करने के लिए, अपनी भयङ्कर माया प्रकट की। ॥३६।४१॥ राक्षस की माया से मोहित

द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।
प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाः स्म कौरवाः ॥ ४४ ॥
विध्वस्ता रथिनः सर्वे राजानश्च निपातिताः ।
हयाश्चैव हयारोहाः सन्निकृत्ताः सहस्रशः ॥ ४५ ॥
तद्‌ दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिबिरं प्रति ।
मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ॥ ४६ ॥
युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे ।
घटोत्कचप्रयुक्तेति नाऽतिष्ठन्त विमोहिताः ॥ ४७ ॥
नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः ।
तांश्च प्रद्रवतो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः समन्तान्नेदिरे भृशम् ॥ ४९ ॥
एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमयुद्धदिवसे चतुरधिकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

होकर कौरवपक्ष के वीर पुरुष युद्ध से हट गये। राक्षस के बाणों ने उनके अङ्ग छिन्न भिन्न कर दिये। असंख्य सैनिक लोग रुधिर से युक्त होकर, पृथ्वी पर गिरकर, कातर दृष्टि से एक दूसरे को देख रहे थे। द्रोण, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा आदि कौरव-पक्ष के वीर युद्ध छोड़-छोड़कर हट गये। रथीगण मरने और राजा लोग मर-मरकर गिरने लगे। सैकड़ों-हजारों घोड़ों और सवारों के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। मरे और अधमरे लोगों से वहाँ की पृथ्वी भर गई ॥४१।४६॥ आपकी सेना को शिबिर की ओर भागते देखकर मैं और भीष्म दोनों पुकार-पुकारकर उनसे कहने लगे—"हे सैनिक लोगो! तुम भागो नहीं, युद्ध करो। यह सब मायावी घटोत्कच की माया है। इससे तुम मत भयभीत होओ।" परन्तु राक्षस की माया के प्रभाव से अत्यन्त मोहित होने के कारण वे लोग नहीं ठहरे। हमारी बातों पर निश्चय न करके वे लोग फिर भागने लगे। हे महाराज! इस प्रकार जय प्राप्त करके घटोत्कच और पाण्डवगण सिंहनाद करने लगे। पाण्डव-सेना में शङ्ख और निगाड़े बजने लगे। उनका शब्द सब ओर छा गया। सूर्यास्त का समय हो आया। घटोत्कच के बाणों से छिन्न-भिन्न होकर आपकी सेना इधर-उधर भागने लगी ॥४६।५०॥

भीष्मपर्व का चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच — तस्मिन्महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा ।
गाङ्गेयमुपसङ्गम्य विनयेनाऽभिवाद्य च ॥ १ ॥
तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।
घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥ २ ॥

कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
अब्रवीच्च तदा राजन्भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ३ ॥
भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।
पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥ ४ ॥
एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।
निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परन्तप ॥ ५ ॥
सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।
घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥ ६ ॥
तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवाऽनलः ।
तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात्परन्तप ॥ ७ ॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह ।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ८ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥
शृणु राजन्मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परन्तप ॥ १० ॥
आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिन्दम ।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदाऽनघ ॥ ११ ॥
अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्छति ॥ १२ ॥

पञ्चानवेवाँ अध्याय ॥ ९५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महाराज दुर्योधन ने पितामह भीष्म के पास जाकर विनीत भाव से प्रणाम किया। फिर लम्बी-लम्बी साँसें ले-लेकर अपनी पराजय और घटोत्कच की विजय का वर्णन विस्तार के साथ कहा कि हे पितामह! पाण्डवगण जैसे कृष्ण का आश्रय पाकर उन्हीं के विश्वास से युद्ध कर रहे हैं वैसे ही मैंने आपके और गुरु के विश्वास पर पाण्डवों से युद्ध ठाना है। हे शत्रुदमन! मैं और मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना आपके अधीन है; फिर भी घटोत्कच की सहायता से भीमसेन आदि पाण्डवों ने युद्ध में मुझे जीत लिया! सूखा हुआ पेड़ जैसे अग्नि से जलता है वैसे ही मेरा शरीर भी क्रोध से जल रहा है। इसलिए अब वही उपाय कीजिए जिससे मैं आपका आश्रय लेकर दुष्ट राक्षस को मार सकूँ ॥१।८॥ राजा दुर्योधन के ये वचन सुनकर भीष्म ने कहा—हे राजेन्द्र! इस कार्य के लिए तुमको जो करना होगा सो मैं कहता हूँ, सुनो। तुम सदा, सब अवस्थाओं में, अपनी रक्षा करते रहो। और देखो, राजा या तो राजा से युद्ध करता है, [ या राजकुमार से ] इसलिए तुम धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल या सहदेव से ही युद्ध करना ॥९।१२॥ मैं, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, शल्य, सोमदत्ति, विकर्ण और दुःशासन

अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः ।
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथाः ॥ १३ ॥
तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः ।
त्वदर्थे प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥ १४ ॥
रौद्रे तस्मिन्राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान् ।
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि ।
एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥ १७ ॥
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १८ ॥
तव दिव्यानि चाऽस्त्राणि विक्रमश्च परन्तप ।
समागमश्च बहुभिः पुराऽभूदमरैः सह ॥ १९ ॥
त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेनोच्छ्रितो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥ २० ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २१ ॥
तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २२ ॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत ॥ २३ ॥

---

आदि तुम्हारे भाई, सब लोग तुम्हारे लिए महाबली राक्षस घटोत्कच से युद्ध करेंगे । अथवा यदि तुमको उस राक्षस से ऐसा ही सन्ताप पहुँचा है तो ये इन्द्र के समान प्रतापी महाराज भगदत्त उस राक्षस के साथ युद्ध करने जायँ ॥१३।१६॥ महावीर भीष्म ने दुर्योधन से यह कहकर सबके सामने भगदत्त से कहा—हे महाराज ! तुम शीघ्र जाकर सब योद्धाओं के सम्मुख यत्नपूर्वक युद्ध में प्रचण्ड अधम राक्षस को रोको । जैसे इन्द्र ने तारकासुर को मारा था वैसे ही इस राक्षस को जीतो । तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है और अस्त्र भी दिव्य हैं । तुम पहले असुरों के साथ युद्ध कर चुके हो । अतएव इस समय अपने से स्पर्धा रखनेवाले दुरात्मा घटोत्कच को शीघ्र ही मारो ॥१६।२०॥ पराक्रमी सेनापति भीष्म की आज्ञा पाकर राजा भगदत्त, सुप्रतीक नाम के हाथी पर चढ़कर, सिंहनाद करते हुए शत्रुओं की ओर चले । पाण्डवपक्ष के महारथी भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, सत्यधृति क्षत्रदेव, चेदिराज,

चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुप्रतीकेन तांश्चाऽपि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् ॥ २४ ॥
ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ २५ ॥
प्रयुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः ।
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २६ ॥
प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
परस्परं समासाद्य सन्निपेतुरभीतवत् ॥ २७ ॥
मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे ।
विभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २८ ॥
हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः ।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ २९ ॥
पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३० ॥
रथिनश्च रथै राजन्कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान्सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३१ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाऽद्रवत् ॥ ३२ ॥
कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम् ।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः ॥ ३३ ॥
किरञ्छरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः ।
ऐरावतस्थो मघवान्वारिधारा इवाऽनघ ॥ ३४ ॥

---

वसुदान और दशार्णदेश के राजा आदि वीर लोग भी प्रलयकाल के मेघ के समान गरजते हुए भगदत्त को आते देखकर क्रुद्ध होकर, उसकी ओर चले॥२१।२४॥ इसके अनन्तर भगदत्त के साथ पाण्डवों का घोर संग्राम होने लगा। रथी लोग हाथियों और रथों के ऊपर बड़े वेग से बाण बरसाने लगे। सवारों के द्वारा सुशिक्षित मस्त हाथी मद से अन्धे होकर भी दूसरे हाथियों से निर्भय भाव से भिड़ने लगे। मदान्ध और क्रोधान्ध गजराज परस्पर भिड़कर दांतों से प्रहार करने लगे। चामरभूषित घोड़े, प्रास हाथ में लिये हुए सवारों के द्वारा चलाये जाकर, वेग के साथ परस्पर आक्रमण और प्रहार करने लगे। सैकड़ों-हजारों पैदल सेना के दल परस्पर शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों के प्रहार करके पृथ्वी पर गिरने लगे। रथों पर बैठकर रथी लोग कर्णी, नालीक और तोमर आदि बाणों से वीरों को मारकर सिंहनाद करने लगे ॥२५।३१॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार रोंगटे उत्पन्न कर देनेवाला संग्राम मच जाने पर महाधनुर्धर भगदत्त,

स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः ।
पर्वतं वारिधाराभिस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ३५ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान्परःशतान् ।
निजघान महेष्वासः संरब्धः शरवृष्टिभिः ॥ ३६ ॥
तान्दृष्ट्वा निहतान्क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान् ।
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥ ३७ ॥
स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा ।
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ३८ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यवर्त्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
केकयाश्चाऽभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ ४० ॥
चेदिपश्चित्रकेतुश्च संरब्धाः सर्व एव ते ।
उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ॥ ४१ ॥
तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात्पर्यवारयन् ।
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः ॥ ४२ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाऽद्रिराट् ।
दशार्णाधिपतिश्चाऽपि गजं भूमिधरोपमम् ॥ ४३ ॥
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् ।
तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ॥ ४४ ॥

---

झरनों से शोभित पर्वत के समान बहते हुए मदजल से सुशोभित, हाथी पर चढ़कर चारों ओर बाण बरसाते हुए भीमसेन की ओर दौड़े ॥३२।३४॥ वर्षाकाल का मेघ जैसे जलधारा से पर्वत को ढक देता है वैसे ही उन्होंने भीमसेन को बाणों से छिपा दिया। महावीर भीम ने क्रोध से अधीर होकर सौ से अधिक हाथी के चरणरक्षकों को बाणों से मार डाला। महातेजस्वी राजा भगदत्त ने उनको मरा हुआ देख क्रुद्ध होकर अपने हाथी को भीमसेन के रथ की ओर बढ़ाया ॥३५।३७॥ भगदत्त के द्वारा सञ्चालित वह हाथी धनुष से छूटे हुए बाण के समान भीमसेन के ऊपर झपटा। इसी समय पाण्डवपक्ष के सब महारथी भीमसेन के पीछे-पीछे वेग से आगे बढ़े। अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, दशार्णराज, क्षत्रदेव, चेदिराज, चित्रकेतु और केकयगण क्रोध के मारे महाधनुष चढ़ाकर, चारों ओर से घेरकर, उस हाथी पर दिव्य अस्त्र छोड़ने लगे ॥३८।४२॥ वह गजराज बाणों के प्रहार से बहुत ही घायल हो गया। उनके शरीर से रक्त बहने लगा। वह गेरू से रँगे हुए गिरिराज की तरह शोभायमान हुआ। दशार्ण देश के राजा पर्वततुल्य ऊँचे हाथी पर चढ़कर भगदत्त के हाथी की ओर बढ़े। तटभूमि जैसे महासागर के जल को रोकती है वैसे ही सुवर्णाक ने उस हाथी के वेग को रोका और उस हाथी ने भगदत्त

दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम् ।
वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ॥ ४५ ॥
साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयान्यपूजयन् ।
ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ४६ ॥
प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम ।
वर्ममुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ॥ ४७ ॥
विदार्य प्राविशन्क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः ।
स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः ।
स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन्भैरवं रवम् ॥ ४९ ॥
सम्मर्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तस्मिन्पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ॥ ५० ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।
ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ॥ ५१ ॥
किरन्तो विविधान्बाणाञ्शस्त्राणि विविधानि च ।
तेषामापततां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ॥ ५२ ॥
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद्गतसाध्वसः ।
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥ ५३ ॥
अङ्कुशाङ्गुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
तस्मिन्क्षणे समभवत्सांवर्तक इवाऽनलः ॥ ५४ ॥
रथसङ्घांस्तथा नागान्हयांश्च हयसादिभिः ।
पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५ ॥

के सुप्रतीक हाथी का वेग रोका। यह देखकर पाण्डवगण और उनकी सेना "वाह वाह" करने लगी ॥४२।४६॥ तब राजा भगदत्त ने क्रुद्ध होकर शत्रु के हाथी को चौदह तोमर मारे। सर्प जैसे बिल में प्रवेश होता है वैसे ही वे तोमर, हाथी पर पड़े हुए सुवर्णमय कवच को तोड़कर, उसके शरीर में प्रवेश हो गये। दशार्णाधिप का हाथी इससे बहुत घायल होकर भयानक शब्द से चिल्लाने लगा और वेग से चलनेवाली आँधी जैसे पेड़ों को तोड़ती है वैसे अपने ही पक्ष की सेना को रौंदता हुआ बड़े वेग से भागा ॥४६।५०॥ इस प्रकार दशार्णराज का हाथी भाग जाने पर पाण्डवपक्ष के सब महारथी युद्ध के लिए उद्यत होकर, भीमसेन को आगे करके, सिंह की तरह गरजते और तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र बरसाते हुए राजा भगदत्त पर आक्रमण करने चले ॥५०।५१॥ महाधनुर्धर भगदत्त ने उन कुपित वीरों का सिंहनाद सुनकर, बहुत ही क्रुद्ध होकर, निर्भय भाव से अपने हाथी को उनकी ओर बढ़ाया। अंकुश का इशारा पाते ही गजराज

अमृद्नात्समरे नागः सम्प्रधावंस्ततस्ततः ।
तेन संलोड्यमानं तु पाण्डवानां बलं महत् ॥ ५६ ॥
सञ्चुकोच महाराज चर्मेवाऽग्नौ समाहितम् ।
भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥ ५७ ॥
घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् ।
विकटः परुषो राजन्दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ॥ ५८ ॥
रूपं विभीषणं कृत्वा रोषेण प्रज्वलन्निव ।
जग्राह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥ ५९ ॥
नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः ।
स विस्फुलिङ्गमालाभिः समन्तात्परिवेष्टितः ॥ ६० ॥
तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः ।
चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम् ॥ ६१ ॥
चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान् ।
उत्पपात द्विधा च्छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥ ६२ ॥
महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता ।
शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृत्तं च पार्थिवः ॥ ६३ ॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाऽग्निशिखोपमाम् ।
चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ६४ ॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव ।
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ॥ ६५ ॥
बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत ।
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६६ ॥

सुप्रतीक प्रलयकाल के संवर्तक अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित हो उठा। वह सामने पड़नेवाले हाथियों, घोड़ों, सवारों और सैकड़ों-सहस्रों पैदलों तथा रथों को रौंदता हुआ शीघ्रता से दौड़ा। पाण्डवों की सेना अग्नि में पड़े चमड़े की तरह भय से संकुचित हो उठी ॥५२।५७॥ उधर प्रदीप्त-मुख और प्रदीप्त-नयन महाबली घटोत्कच बड़ा भयानक रूप धारण करके, क्रोध से प्रज्वलित होकर, पर्वत को भी तोड़ सकनेवाला एक भयङ्कर शूल हाथ में लेकर राजा भगदत्त की ओर दौड़ा ॥५७।६०॥ उसने हाथी को, मारने के लिए, वह शूल मारा। यह देखकर कुपित महाराज भगदत्त ने एक तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाण मारकर उस शूल के दो टुकड़े कर डाले। इन्द्र के चलाये वज्र के समान वह शूल दो टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अब भगदत्त ने "ठहर जा, ठहर जा" कहकर एक अग्निशिखातुल्य घोर शक्ति राक्षस को मारी ॥६०।६४॥ उस सुवर्ण-दण्डभूषित शक्ति को आकाश में आते हुए वज्र की तरह देखकर घटोत्कच

तद्वेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा ।
दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चाऽपि विस्मिताः ॥ ६७ ॥
पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः ।
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन् ॥ ६८ ॥
तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् ।
नाऽमृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ६९ ॥
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ।
तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ॥ ७० ॥
विसृजन्विमलांस्तीक्ष्णान्नाराचाञ्ज्वलनप्रभान् ।
भीममेकेन विव्याध राक्षसं नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥
अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान्पञ्चभिस्तथा ।
पूर्णायतविसृष्टेन शरेणाऽनतपर्वणा ॥ ७२ ॥
बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाऽऽहवे ।
पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७३ ॥
द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत् ।
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥ ७४ ॥
ध्वजं केसरिणं चाऽस्य चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
निर्बिभेद त्रिभिश्चाऽन्यैःसारथिं चाऽस्य पत्रिभिः ॥ ७५ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७६ ॥

ने उछलकर पकड़ लिया और सिंहनाद करके भगदत्त के सामने ही घुटनों से उसके दो टुकड़े कर डाले। उसका यह कार्य अत्यन्त अद्भुत जान पड़ा। देवलोक में देवता, गन्धर्व और मुनिगण उस राक्षस के इस अद्भुत कर्म को देखकर बहुत ही विस्मित हुए ॥६६। ६७॥ भीमसेन और उनके साथी वीरगण "वाह वाह" के शब्द से पृथ्वीमण्डल को प्रतिध्वनित करने लगे। प्रसन्नमना पाण्डवों का सिंहनाद सुनकर महाधनुर्धर भगदत्त अत्यन्त अधीर हुए। वे धनुष चढ़ाकर वे पाण्डवों के महारथियों की भर्त्सना करने लगे। वे राक्षस के पैरों पर अचानक अग्नितुल्य बाण बरसाने लगे ॥६८।७१॥ उन्होंने भीमसेन को एक बाण, घटोत्कच को नौ बाण, अभिमन्यु को तीन बाण और केकयकुमारों को पाँच बाण मारे। इसके पश्चात् धनुष पर एक बाण चढ़ाकर क्षत्रदेव के दाहने हाथ में मारा। इससे क्षत्रदेव के हाथ से धनुष और बाण गिर पड़ा ॥७२।७३॥ भगदत्त ने फिर पाँच तीक्ष्ण बाण द्रौपदी के पुत्रों को मारे। फिर महावीर भीमसेन के घोड़ों को मारकर तीन बाणों से ध्वजा काट डाली और अन्य तीन बाणों से सारथी को घायल कर दिया। उसका सारथी विशोक उस प्रहार से अत्यन्त पीड़ित होकर रथ पर गिर पड़ा। अब श्रेष्ठ रथी भीमसेन गदा लेकर रथ से उतर पड़े, और बड़े वेग से शत्रु की ओर दौड़े। उन्हें शस्त्रयुक्त देख

ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः ।
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ७७ ॥
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ।
तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
आजगाम महाराज निघ्नञ्शत्रून्समन्ततः ॥ ७९ ॥
यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ ।
प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥ ८० ॥
दृष्ट्वा च पाण्डवो भ्रातॄन्युध्यमानान्महारथान् ।
त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्राऽयुध्यत्किरञ्छरान् ॥ ८१ ॥
ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः ।
सेनामचोदयत्क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥ ८२ ॥
तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः ॥ ८३ ॥
भगदत्तश्च समरे तेन नागेन भारत ।
विमृद्नन्पाण्डवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ८४ ॥
तदाऽऽसीत्सुमहद्युद्धं भगदत्तस्य मारिष ।
पञ्चालैः पाण्डवैश्चैव केकयैश्चोद्यतायुधैः ॥ ८५ ॥
भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ ।
अश्रावयद्यथावृत्तमिरावद्वधमुत्तमम् ॥ ८६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

---

की तरह आते देखकर कौरवपक्ष के वीर भय से विह्वल हो उठे ॥७७।७८॥ उधर अर्जुन चारों ओर शत्रुओं की सेना को मारते हुए उस स्थान पर आये जहाँ भीम और घटोत्कच के साथ भगदत्त का युद्ध हो रहा था। महारथी भाइयों को युद्ध करते देखकर वे भी शत्रुसेना के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥७९।८१॥ राजा दुर्योधन ने हाथी, घोड़े, रथ आदि से परिपूर्ण और भी बहुत सी सेना युद्ध के लिए भेजी। अर्जुन उस आती हुई कौरवसेना को मारने के लिए उसकी ओर चले। राजा भगदत्त अपने हाथी से पाण्डवसेना को रौंदवाते हुए बड़े वेग से युधिष्ठिर की ओर चले। उस समय शस्त्र उठाये हुए पाञ्चाल, सृञ्जय, केकय आदि के साथ भगदत्त का घोर संग्राम होने लगा। उसी समय भीमसेन ने श्रीकृष्ण और अर्जुन से इरावान् की मृत्यु का सब वृत्तान्त कहा ॥८२।८६॥

भीष्मपर्व का पचानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९५ ॥

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच— पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनञ्जयः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्पन्नगो यथा ॥ १ ॥
अब्रवीत्समरे राजन्वासुदेवमिदं वचः ।
इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ॥ २ ॥
कुरूणां पाण्डवानां च क्षयं घोरं महामतिः ।
स ततो निवारितवान्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ३ ॥
अन्ये च बहवो वीराः संग्रामे मधुसूदन ।
निहताः कौरवैः संख्ये तथाऽस्माभिश्च कौरवाः ॥ ४ ॥
अर्थहेतोर्नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म कुत्सितम् ।
धिगर्थान्यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसङ्क्षयः ॥ ५ ॥
अधनस्य मृतं श्रेयो न च ज्ञातिवधाद्धनम् ।
किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातीन्समागतान् ॥ ६ ॥
दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ॥ ७ ॥
इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन ।
कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम् ॥ ८ ॥
राज्यार्धं पञ्च वा ग्रामान्नाऽकार्षीत्स च दुर्मतिः ।
दृष्ट्वा हि क्षत्रियाञ्शूराञ्शयानान्धरणीतले ॥ ९ ॥
निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ।
अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे ॥ १० ॥

---

छियानवेवाँ अध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अपने पुत्र इरावान् की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ । क्रोध से विह्वल होकर नाग की तरह साँसें लेते हुए वे श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे केशव ! पहले ही महामति विदुर ने कौरवों और पाण्डवों के प्रियजन-वियोगरूप अति घोर भय का वृत्तान्त जानकर हमको और दुर्योधन आदि को युद्ध न करने का उपदेश दिया था ॥१।३॥ देखो ! हमने कौरवपक्ष के बहुत से वीरों को और कौरवों ने हमारे बहुत से वीरों को मार डाला है । हे मित्र ! लोग धन के लिए ही बुरे और निन्दित कर्म करते हैं । हम भी उसी धन के लिए ही जातिवधरूप पाप कर रहे हैं । ऐसे धन को धिक्कार है ! जाति-भाइयों को मारकर धनी बनने की अपेक्षा मर जाना ही निर्धन मनुष्य के लिए श्रेष्ठ है । हे वासुदेव ! इन भाइयों और जातिवालों को मारकर हमें क्या लाभ प्राप्त होगा ? ॥४।६॥ दुष्ट दुर्योधन और शकुनि के अपराध से तथा कर्ण की कुमन्त्रणा से ये सब वीर क्षत्रिय मारे जा रहे हैं । अब मेरी समझ में आया है कि पहले राजा युधिष्ठिर दुर्योधन से आधा राज्य या केवल पाँच गाँव माँगकर अच्छा

युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ।
सञ्चोदय हयाञ्शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ॥ ११ ॥
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।
नाऽयं यापयितुं कालो विद्यते माधव क्वचित् ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
चोदयामास तानश्वान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥ १३ ॥
अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १४ ॥
अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥ १५ ॥
ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा ॥ १६ ॥
ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १७ ॥
हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ ।
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवास्थितः ॥ १८ ॥
शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १९ ॥
भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव ॥ २० ॥

ही कार्य कर रहे थे, किन्तु दुष्ट दुर्योधन उस समझौते पर भी प्रसन्न नहीं हुआ ॥७।९॥ हे केशव ! इस समय इन वीर क्षत्रियों की मृत्यु देखकर मैं आप अपनी निन्दा कर रहा हूँ ! क्षत्रियवृत्ति को धिक्कार है ! जाति भाइयों से युद्ध करने की इच्छा मुझे कदापि नहीं है; किन्तु मैं युद्ध न करूँगा तो वीर क्षत्रियगण मुझे कायर समझेंगे। इसी से मैं युद्ध कर रहा हूँ। हे मधु-सूदन ! दुर्योधन की सेना के मध्य शीघ्र मेरा रथ ले चलो। मैं अपने बाहुबल से इस अपार समर-सागर के पार जाऊँगा। नपुंसक की तरह वृथा पश्चात्ताप में पड़ना और समय गँवाना उचित नहीं है ॥९।१२॥ शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेवाले अर्जुन के ये वचन सुनकर कृष्णचन्द्र, पवन के वेग से चलनेवाले घोड़ों को हाँककर, उधर ही रथ ले चले। पर्वकाल में उमड़ते हुए समुद्र में जैसा शब्द होता है वैसा ही कोलाहल उस समय कौरवों की सेना में होने लगा। तीसरे पहर भीष्म के साथ पाण्डवों का घोर युद्ध होने लगा ॥१३।१५॥ जिस प्रकार वसुगण इन्द्र को चारों ओर से घेरे रहते हैं उसी प्रकार धृतराष्ट्र के पुत्र द्रोणाचार्य को अपने मध्य में करके भीमसेन की ओर बढ़े। अब महारथी भीष्म, कृपाचार्य, भगदत्त और सुशर्मा अर्जुन से युद्ध करने चले। कृतवर्मा और बाह्लीक सात्यकि से युद्ध करने चले। राजा अम्बष्ठक अभिमन्यु से युद्ध करने चले ॥१६।१८॥ अन्य महारथी लोग

पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः ।
प्रावृषीव महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ २१ ॥
स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशाम्पते ।
सृक्किणी संलिहन्वीरः शार्दूल इव दर्पितः ॥ २२ ॥
व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्गतजीवितः ॥ २३ ॥
अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु ।
अपातयत्कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ २४ ॥
ततः सुनिशितान्पीतान्समादत्त शिलीमुखान् ।
ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥ २५ ॥
प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥ २६ ॥
अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् ॥ २७ ॥
प्रपतन्त स्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ ।
वसन्ते पुष्पशबलाश्च्युताः प्रपतिता इव ॥ २८ ॥
ततः प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे ।
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥ २९ ॥
द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
यथाऽद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः ॥ ३० ॥

---

अपने समान महारथियों से युद्ध करने लगे । इसके अनन्तर दोनों पक्षों में महाभयानक युद्ध होने लगा। आपके पुत्रों को देखकर महावीर भीमसेन आहुति पड़ने से प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। आपके पुत्र वैसे ही भीमसेन पर बाण बरसाने लगे जैसे मेघ पर्वत पर जल बरसाते हैं ॥१९।२१॥ पराक्रमी भीमसेन क्रोध से होंठ चाटते हुए आपके पुत्रों पर बाण बरसा रहे थे । उन्होंने तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से व्यूढोरस्क नाम के राजकुमार का सिर काट डाला । फिर एक तीक्ष्ण भल्ल बाण मारकर कुण्डली नाम के राजकुमार को वैसे ही मार डाला जैसे सिंह मृग को मार डालता है ॥२२।२४॥ अब वे स्फूर्ति से आपके अन्य पुत्रों पर बाण बरसाने लगे। हे राजेन्द्र! भीमसेन के अव्यर्थ बाणों के प्रहार से अनाधृष्य, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज नामक आपके पुत्र मरकर रथ पर से गिर पड़े । पृथ्वी पर पड़े हुए वे वीर राजकुमार उखड़कर गिरे हुए पुष्प पूर्ण आम के वृक्षों की तरह देख पड़े ॥२५।२८॥ महाबाहु भीमसेन को साक्षात् काल के समान सन्मुख देखकर आपके अन्य पुत्र भय के मारे इधर उधर भागने लगे। हे महाराज! महावीर द्रोणाचार्य भीमसेन के हाथों आपके पुत्रों की मृत्यु देखकर उन पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे । द्रोण के बाणों से पीड़ित होकर भी भीमसेन ने आपके पुत्रों को मारकर अपने

तत्राऽऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥ ३१ ॥
यथा गोवृषभो वर्षं सन्धारयति खात्पतत् ।
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत् ॥ ३२ ॥
अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
यत्पुत्रांस्तेऽवधीत्संख्ये द्रोणं चैव न्यवारयत् ॥ ३३ ॥
पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडाऽर्जुनपूर्वजः ।
मृगेष्विव महाराज चरन्व्याघ्रो महाबलः ॥ ३४ ॥
यथा हि पशुमध्यस्थो दारयेत पशून्वृकः ।
वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥ ३५ ॥
गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथाः ।
पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम् ॥ ३६ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे ।
प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३७ ॥
अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम् ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं वारयामास सायकैः ॥ ३८ ॥
विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णमम्बष्ठो वसुधाधिपः ॥ ३९ ॥
असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः ।
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः ॥ ४० ॥
आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवाद्व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा ॥ ४१ ॥

अद्भुत पौरुष का परिचय दिया। बली साँड जैसे आकाश से गिरती हुई बूँदों के वेग को सहज ही सह लेता है, वैसे ही भीमसेन भी द्रोणाचार्य के बाणों को सहने लगे ॥२८।३२॥ भीमसेन ने एक साथ द्रोणाचार्य का सामना किया और आपके पुत्रों को भी मारा, यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। हे महाराज! व्याघ्र जैसे मृगों के झुण्ड में घूमता और क्रीड़ा करता है वैसे ही महाबली भीमसेन भी आपके पुत्रों के मध्य में विचरते हुए युद्ध की क्रीड़ा करने लगे। एक भेड़िया जैसे सहस्रों पशुओं को मार डालता है वैसे ही भीमसेन आपके पुत्रों के मध्य में जाकर उन्हें भगाने लगे ॥३२।३५॥ इधर महारथी भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्य [illegible] अर्जुन को बड़े वेग से आते देखकर स्फूर्ति के साथ उन्हें रोकने लगे। अतिरथी योद्धा अर्जुन ने अपने दिव्य अस्त्रों से उनके अस्त्रों को निष्फल कर दिया। वे कौरवसेना के मुख्य-मुख्य वीरों को मारने लगे। अभिमन्यु ने अगणित बाण मार-कर राजा अम्बष्ठ के रथ के टुकड़े-टुकड़े कर डा

व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा ।
साधु साध्विति सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशाम्पते ॥ ४२ ॥
धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन् ।
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥ ४३ ॥
तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
निघ्नतां दृढमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥ ४४ ॥
अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वाक्षिप्य मानिनः ।
नखदन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
तलैश्चैवाऽथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः ।
विवरं प्राप्य चाऽन्योन्यमनयन्यमसादनम् ॥ ४६ ॥
न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥ ४७ ॥
रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष ।
हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ॥ ४८ ॥
जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशिताः शराः ।
तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ॥ ४९ ॥
हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
चर्माणि चाऽपविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम् ॥ ५० ॥
सुवर्णविकृतप्रासान्पट्टिशान्हेमभूषितान् ।
जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ५१ ॥

॥३६।३८॥ अभिमन्यु के बाणों से रथ टूटते देखकर राजा अम्बष्ठ रथ से उतर पड़े और अभिमन्यु पर खड्ग का वार करके हार्दिक्य के रथ पर चढ़ गये। युद्धनिपुण शत्रुदमन अभिमन्यु ने अम्बष्ठ के उस खड्ग को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। यह देखकर सब सैनिक "वाह वाह" करने लगे ॥३९।४२॥ हे महाराज ! धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्ष के योद्धा आपकी सेना से और आपके योद्धा उनकी सेना मे भिड़कर घोर युद्ध करने लगे। दोनों पक्ष के सैनिक लोग परस्पर भिड़कर एक दूसरे के केश पकड़कर खींचने और नख, दाँत घूँसे, घुटने, थप्पड़, खड्ग, कुहनी आदि के प्रहारों से मरते और मारते थे ॥४३।४६॥ युद्ध के आवेश मे आकर पिता पुत्रों को और पुत्र पिता आदि को मार रहे थे। शत्रुपक्ष के बाणों से योद्धाओं के अङ्ग कट-फट जाते थे। मरे हुए लोगों के सुवर्णमण्डित पीठ और मूठवाले मनोहर धनुष और बहुमूल्य अलङ्कार युद्धभूमि में इधर-उधर दिखाई दे रहे थे। सोने-चाँदी से शोभित, तीक्ष्ण बाण केंचुल से निकले हुए नागों की तरह रणभूमि में गिरते थे ॥४७।४९॥ हाथीदाँत की मूठों से शोभित सुवर्णमण्डित खड्ग, ढालें, प्रास, पट्टिश, सुवर्णमण्डित ऋष्टि, शक्ति, बढ़िया कवच, भारी मूसल, भिन्दिपाल, विचित्र स्वर्णभूषित धनुष, अनेक प्रकार के परिघ, चामर, व्यजन और अन्य कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में लिये

सुसन्नाहाश्च पतिता मुसलानि गुरूणि च ।
परिघान्पट्टिशांश्चैव भिन्दिपालांश्च मारिष ॥ ५२ ॥
पतितान्विविधांश्चापांश्चित्रान्हेमपरिष्कृतान् ।
कुथा बहुविधाकाराश्चामरा व्यजनानि च ॥ ५३ ॥
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्वा महारथाः ॥ ५४ ॥
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।
गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ॥ ५५ ॥
तथैवाऽश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा ।
सञ्छन्ना वसुधा राजन्पर्वतैरिव सर्वशः ॥ ५६ ॥
समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥ ५७ ॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिश्च मारिष ।
शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ५८ ॥
विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही ॥ ५९ ॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ६० ॥
*बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः* ।
पातितैर्ऋषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ॥ ६१ ॥
कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः ।
रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवाऽनलैः ॥ ६२ ॥

महारथी वीर मर जाने पर भी दूर से जीवित से जान पड़ते थे ॥५०।५४॥ बहुतों के शरीर गदा के प्रहार से चिथड़ा हो गये थे, बहुतों के सिर मूसल की चोट से फट गये थे और बहुत से योद्धा हाथी, घोड़े, रथ आदि के नीचे कुचल गये थे। ऐसे असंख्य मनुष्य जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे। हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के शरीरों के ढेरों से यह पृथ्वी पर्वतमयी सी जान पड़ती थी। शस्त्रों से छिन्न-भिन्न नर-शरीरों से और शक्ति, ऋष्टि, तोमर, बाण, खड्ग, पट्टिश, प्रास, बर्छी, परशु, परिघ, भिन्दिपाल और शतघ्नी आदि से पृथ्वी भरी पड़ी थी ॥५५।५८॥ हे महाराज! उनमें से कोई चुपचाप पड़ा था, कोई धीरे-धीरे कराह रहा था, कोई जोर से चिल्ला रहा था और कोई बिल्कुल मरा पड़ा था। केयूरभूषित चन्दनचर्चित बाहु, हाथी की सूँड़ के समान जाँघ, चूड़ामणि और कुण्डलों से भूषित सिर सर्वत्र कटे पड़े थे। उनसे रणभूमि की अपूर्व बीभत्स शोभा हो रही थी। रक्त से सने हुए स्वर्णमय कवच चारों ओर पड़े हुए थे, जिनसे वह युद्धभूमि अग्नि-

विप्रविद्धैः कलापैश्च पतितैश्च शरासनैः ।
विप्रकीर्णैः शरैश्चैव रुक्मपुङ्खैः समन्ततः ॥ ६३ ॥
रथैश्च सर्वतोभग्नैः किङ्किणीजालभूषितैः ।
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्त्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥ ६४ ॥
अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि ।
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥ ६५ ॥
स्त्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही ।
नानारूपैरलङ्कारैः प्रमदेवाऽभ्यलंकृता ॥ ६६ ॥
दन्तिभिश्चाऽपरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥
विबभौ तद्रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाऽचलैः ।
नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ॥ ६८ ॥
वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ।
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ॥ ६९ ॥
विपाटितविचित्राभिः कुथाभिरङ्कुशैस्तथा ।
ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ॥ ७० ॥
यन्त्रैश्च बहुधा च्छिन्नैस्तोमरैश्चाऽपि काञ्चनैः ।
अश्वानां रेणुकपिलै रुक्मच्छन्नैरुरश्छदैः ॥ ७१ ॥
सादिनां भुजगैश्छिन्नैः पतितैः साङ्गदैस्तथा ।
प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिस्तथर्ष्टिभिः ॥ ७२ ॥
उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः ।
विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥ ७३ ॥

शिखामयी सी प्रतीत होती थी ॥५९।६२॥ सुवर्णपुङ्ख बाण, धनुष, तर्कस, किङ्किणीजालभूषित टूटे हुए रथ, रक्त से युक्त निकली हुई जीभ, घोडे, रथ, अनुकर्ष, पताका, मटमैली ध्वजा, महाशङ्ख आदि सर्वत्र पडे थे। उनसे वह पृथ्वी अलङ्कारों से भूषित स्त्री के समान शोभायमान हो रही थी। हाथियों की सूँडे कट गई थीं और वे पृथ्वी पर पडे थे। प्रास के प्रहार से घायल और गहरी यन्त्रणा से पीडित हाथी चीत्कार करते हुए सूँड पटक रहे थे। उनसे वह पृथ्वी झरनों से शोभित पर्वतों से व्याप्त सी जान पड़ती थी ॥६३।६८॥ तरह-तरह के कम्बल, हाथियो की विचित्र झूले, वडूर्यमणिमण्डित दण्ड, अँकुश, घण्टा, फटे हुए विचित्र आसन, विचित्र कण्ठभूषण, सोने की जञ्जीरें, छिन्न भिन्न यन्त्र, काञ्चनमण्डित्त तोमर, धूल से सने हुए छत्र, कवच, सवारो की अङ्गदभूषित कटी हुई भुजाएँ, विमल तीक्ष्ण प्रास, यष्टि, पगडी, सुवर्णमय विचित्र बाण, घोड़ो के परिमर्दित विचित्र कम्बल, राङ्कव कम्बल, राजाओं के मस्तक की विचित्र चूड़ामणि,

अश्वास्तरपरिस्तोमैराङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥ ७४ ॥
छत्रैस्तथाऽपविद्धैश्च चामरैर्व्यजनैरपि ।
पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ७५ ॥
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ।
अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ॥ ७६ ॥
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवाऽऽसीद्वसुन्धरा ।
एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत ॥ ७७ ॥
परस्परं समासाद्य तत्र तेषां च संयुगे ।
तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥ ७८ ॥
रात्रिः समभवत्तत्र नाऽपश्याम ततोऽनुगान् ।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ ७९ ॥
रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये ।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिविरं तदा ॥ ८० ॥

*इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥*

---

छत्र, चामर, व्यजन और वीरों के मनोहर कुण्डलों से शोभित श्मश्रुयुक्त प्रकाशपूर्ण सिर इधर-उधर पड़े थे। उनसे यह पृथ्वी ग्रह-नक्षत्र-भूषित आकाश के समान शोभा पा रही थी ॥६८।७७॥ हे नरनाथ! दोनों पक्ष के वीर जब अधिकता से मारे जा चुके तब मरने से बचे हुए योद्धा थककर भागने और कुचले जाने लगे। इतने में महाभयङ्कर रात्रि आ गई। उस समय समरभूमि में कुछ भी नहीं सूझता था। तब कौरवों और पाण्डवों ने युद्ध समाप्त कर दिया। सब लोग अपने-अपने डेरोंमें जाकर विश्राम करने लगे॥७७।८०॥

भीष्मपर्व का छियानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९६ ॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

सञ्जय उवाच — ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चाऽपि सौबलः ।
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः ॥ १ ॥
समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम् ।
कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति ॥ २ ॥

---

सत्तानवेवाँ अध्याय ॥ ९७ ॥

सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्ण तीनों मिलकर सम्मति करने लगे कि किस प्रकार सेना सहित पाण्डवों को पराजित किया जा सकता है। अब दुर्योधन ने कर्ण और शकुनि को सम्बोधन करके कहा — हे वीरो! मेरी समझ में नहीं आता कि द्रोणाचार्य

ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः ।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम् ॥ ३ ॥
द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे ।
न पार्थान्प्रतिबाधन्ते न जाने तच्च कारणम् ॥ ४ ॥
अवध्यमानास्ते चाऽपि क्षपयन्ति बलं मम ।
सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे ॥ ५ ॥
निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्दैवतैरपि ।
सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे ॥ ६ ॥
तमब्रवीन्महाराज सूतपुत्रो नराधिपम् ।
कर्ण उवाच—मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव ॥ ७ ॥
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात् ।
निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत ॥ ८ ॥
अहं पार्थान्हनिष्यामि सहितान्सर्वसोमकैः ।
पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप ॥ ९ ॥
पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै ।
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान्महारथान् ॥ १० ॥
अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः ।
स कथं पाण्डवान्युद्धे जेष्यते तात सङ्गतान् ॥ ११ ॥
स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति ।
अनुमान्य गुरुं वृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत ॥ १२ ॥

भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा, ये लोग पाण्डवों को क्यों नहीं परास्त करते या मारते । पाण्डव लोग जीवित रहकर बिना किसी बाधा के हमारे पक्ष की सेना को नष्ट कर रहे हैं । हे कर्ण ! मेरी सेना और अस्त्र-शस्त्र दिन-दिन घटते जा रहे हैं । सुनता हूँ, पाण्डवों को देवता भी नहीं मार सकते । वे ऐसे ही शूर हैं । मैं उन्हें किस प्रकार मारूँगा या परास्त करूँगा ! मुझे बड़ा सन्देह और चिन्ता हो रही है ॥१।६॥ कर्ण ने कहा —हे राजेन्द्र ! आप वृथा शोक न करें । मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा । केवल पितामह भीष्म को शीघ्र इस युद्ध से पृथक् हो जाने दो । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि भीष्म अस्त्र-शस्त्र त्याग कर युद्ध से हट जायँ तो मैं, उनके सम्मुख ही, सोमकों सहित पाण्डवों को मार डालूँगा ॥७।९॥ भीष्म पितामह पाण्डवों पर बहुत दया रखते हैं । इस कारण वे कभी पाण्डवों को परास्त नहीं कर सकेंगे । भीष्म अत्यन्त समर-प्रिय हैं । वे अभिमानी भीष्म कैसे पाण्डवों को जीतकर युद्ध को समाप्त कर देंगे ! हे राजेन्द्र ! आप शीघ्र भीष्म के शिविर में जाइए । वे आपके गुरुजन, वृद्ध और मान्य हैं । आप उनसे प्रार्थनापूर्वक अनुरोध कीजिए जिससे शस्त्र रखकर वे युद्ध से अलग हो जायें । वे शस्त्रत्याग कर देंगे तो आप निश्चय जानिए कि मैं अकेला ही बन्धु-बान्धव-सुहृद्गण-सहित पाण्डवों को मार डालूँगा ॥१०।१२॥

न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान्पश्य पाण्डवान् ।
मयैकेन रणे राजन्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ १३ ॥
एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीद्भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥ १४ ॥
अनुयात्रं यथा सर्वं सज्जीभवति सर्वशः ।
दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा ततो राजन्कर्णमाह जनेश्वरः ।
अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदां वरम् ॥ १६ ॥
आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिन्दम ।
अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे ॥ १७ ॥
निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशाम्पते ।
सहितो भ्रातृभिस्तैस्तु देवैरिव शतक्रतुः ॥ १८ ॥
ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा ॥ १९ ॥
अङ्गदी बद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्नृप ।
धार्तराष्ट्रो महाराज विबभौ स पथि व्रजन् ॥ २० ॥
भण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च ।
अनुलिप्तः परार्ध्येन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २१ ॥
अरजोम्बरसंवीतः सिंहखेलगतिर्नृप ।
शुशुभे विमलार्चिष्मान्नभसीव दिवाकरः ॥ २२ ॥
तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिविरं प्रति ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥ २३ ॥

हे राजेन्द्र ! कर्ण के ऐसे वचन सुनकर दुर्योधन ने दुःशासन से कहा—हे भाई ! शीघ्र मेरे साथियों को प्रस्तुत होने की आज्ञा दो। अब दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि हे शत्रुदमन ! मैं भीष्म को अस्त्र-शस्त्र त्यागकर युद्ध से पृथक् होने के लिए प्रसन्न करके अभी तुम्हारे निकट आता हूँ। भीष्म युद्ध करना छोड़ देंगे तो तुम शीघ्र युद्ध करके पाण्डवों को मारना। हे महाराज ! कर्ण से यों कहकर देवताओं के मध्य में इन्द्र के समान अपने भाइयों के साथ राजा दुर्योधन भीष्म के पास जाने को प्रस्तुत हुए ॥१४।१८॥ दुःशासन ने पराक्रमी दुर्योधन को घोड़े पर सवार कराया। सिंह के समान रोंगटे वीर दुर्योधन ने अङ्गद, मुकुट और हाथों के अन्य आभूषण पहने। वे मजीठ के पुष्प के समान कान्तिवाले, सुनहरे रङ्ग के, शरीर में सुगन्धित चन्दन और अङ्गराग लगाये हुए थे। स्वच्छ वस्त्र और भूषण पहने सूर्य के समान तेजस्वी राजा दुर्योधन स्फूर्ति से भीष्म के शिविर को चले ॥१९।२२॥ जैसे देवगण देवलोक में इन्द्र की

अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने ।
काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पर्द्धयास्तरणसंवृते ॥ ३५ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं वाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।
त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ॥ ३६ ॥
उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ।
किमु पाण्डुसुतान्वीरान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ३७ ॥
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो ।
जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान् ॥ ३८ ॥
अहं सर्वान्महाराज निहनिष्यामि सोमकान् ।
पञ्चालान्केकयैः सार्धं करूषांश्चेति भारत ॥ ३९ ॥
त्वद्वचः सत्यमेवाऽस्तु जहि पार्थान्समागतान् ।
सोमकांश्च महेष्वासान्सत्यवाग्भव भारत ॥ ४० ॥
दयया यदि वा राजन्द्वेष्यभावान्मम प्रभो ।
मन्दभाग्यतया चापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥ ४१ ॥
अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
स जेष्यति रणे पार्थान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ४२ ॥
स एवमुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं सत्यपराक्रमम् ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मं प्रति दुर्योधनवाक्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

---

भीष्म के शिविर में पहुँचकर सवारी से उतरे और पितामह के पास गये । उन्हें प्रणाम करके, सर्वतोभद्र महामूल्य गलीचे के ऊपर सोने के सिंहासन पर बैठकर, हाथ जोड़कर नेत्रों में आँसू भरे हुए वे गद्गद् स्वर से कहने लगे—हे शत्रुनाशन ! हम आपका आश्रय लेकर पाण्डवों की कौन कहे, देवताओं और दानवों को भी युद्ध में परास्त करने का साहस कर सकते हैं ॥३४।३७॥ इसलिए हे पितामह ! इन्द्र जैसे दानवों को परास्त करते हैं वैसे ही आप पाण्डवों को परास्त कीजिए । हे महामते ! आप सब सोमकों, पाञ्चालों, केकयों और करूषों को परास्त करने का प्रण कर चुके हैं । इस समय वह अपना वचन सत्य कीजिए । अथवा जो आप पाण्डवों पर दया या हम पर विद्वेष की दृष्टि रखने के या हमारे अभाग्य के कारण पाण्डवों को मार डालना न चाहते हों तो फिर युद्धप्रिय कर्ण को युद्ध करने की आज्ञा दे दीजिए । *वे समर में बन्धु-बान्धवों-सहित पाण्डवों को परास्त* करके मार डालने के लिए प्रस्तुत हैं । कौरवश्रेष्ठ दुर्योधन भीष्म से यह कहकर चुप हो रहे ॥३८।४३॥

---

भीष्मपर्व का सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९७ ॥

अथ अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

सञ्जय उवाच — वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो नोवाचाऽप्रियमण्वपि ॥ १ ॥
स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः ।
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया ॥ २ ॥
उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ।
सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः ॥ ३ ॥
अब्रवीत्तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः ।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि ॥ ४ ॥
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम् ।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥
यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६ ॥
यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा ।
अमोचयत्पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७ ॥
द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो ।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥
यच्च नः सहितान्सर्वान्विराटनगरे तदा ।
एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ९ ॥
द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे ।
वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥

अट्ठानवेवाँ अध्याय ॥ ९८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! वाक्य-बाण द्वारा दुर्योधन ने भीष्म पितामह के मर्मस्थल में चोट पहुँचाई। वे दुःख से अत्यन्त कातर और व्यथित होकर महानाग की तरह श्वास लेते हुए शान्त हो रहे। दूसरे काल के समान भीष्म की आँखें क्रोध से लाल होकर ऊपर चढ़ गईं। वे इस प्रकार देखने लगे मानो देवता-दैत्य-गन्धर्व-मनुष्य आदि सहित तीनों लोकों को भस्म कर डालेंगे; किन्तु उन्होंने कोई अप्रिय या कड़ी बात नहीं कही। क्षण भर के पश्चात् शान्त भाव से समझाते हुए पितामह बोले—सुनो, दुर्योधन ! मैं प्राणों की अपेक्षा न करके यथाशक्ति यत्नपूर्वक तुम्हारा प्रिय करने की चेष्टा कर रहा हूँ। तब भी तुम ऐसे वचन-बाणों से क्यों मेरे मर्मस्थल को चोट पहुँचाते हो ? अर्जुन ने खाण्डव-दाह के समय इन्द्र आदि देवताओं को जीतकर अग्नि को तृप्त किया था, वही उनके पराक्रम का यथेष्ट प्रमाण है ॥१।६॥ गन्धर्वगण जब तुमको पकड़कर ले चले थे, तुम्हारे शूर भाई और कर्ण तुमको छोड़कर भाग गये थे तब अर्जुन, तुमको छुड़ाकर, अपने पराक्रम का यथेष्ट परिचय दे चुके हैं। विराट नगर में गायें हरने के

तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथाऽपि च ।
गोग्रहे जितवान्पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ११ ॥
विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम् ।
उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १२ ॥
निवातकवचान्युद्धे वासवेनाऽपि दुर्जयान् ।
जितवान्समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥
को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा ।
यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥
वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः ।
सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥ १५ ॥
उक्तोऽसि बहुशो राजन्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ।
त्वं तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥ १६ ॥
मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान्वृक्षान्पश्यति काञ्चनान् ।
तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यसि ॥ १७ ॥
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ।
युद्ध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ १८ ॥
अहं तु सोमकान्सर्वान्पञ्चालांश्च समागतान् ।
निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥ १९ ॥
तैर्वाऽहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् ।
तान्वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥ २० ॥

समय हम सब योद्धा मिलकर भी अकेले अर्जुन का कुछ नहीं कर सके, परन्तु उन्होंने हम सबको जीत लिया। यही उनके बल का यथेष्ट परिचय है। उस समय अर्जुन कुपित द्रोणाचार्य को, मुझको, महारथी अश्वत्थामा को और कृपाचार्य को जीतकर हम सबके वस्त्र उतार ले गये थे, यही उनके बल का श्रेष्ठ निदर्शन है ॥७।१०॥ अपने को शूर और मर्द मानकर सदा अभिमान करने वाले कर्ण को भी उस समय जीतकर अर्जुन उसके वस्त्र ले गये थे और उसके वे वस्त्र बालिका उत्तरा को दिये थे, वही उनके पराक्रम का अच्छा परिचय है। इन्द्र भी जिन्हें हरा नहीं सके उन निवात कवच दानवों को अर्जुन ने सहज में मार डाला, यही उनके बल का श्रेष्ठ प्रमाण है ॥११।१३॥ हे राजेन्द्र! नारद आदि महर्षि जिन्हें महाशक्तिसम्पन्न, सृष्टि स्थिति प्रलयकारी, सब के ईश्वर, देवदेव, परमात्मा और सनातन पुरुष कहते हैं, वह शङ्ख-चक्र-गदा पद्मधारी, विश्व रक्षक, वासुदेव अर्जुन के सहायक और रक्षक हैं। उन महाप्रतापी यशस्वी अर्जुन को युद्ध में कौन परास्त कर सकता है? हे दुर्योधन! मोह के वश होने से तुम्हें कार्य अकार्य का ज्ञान नहीं है ॥१४।१६॥ मृत्यु के वश मनुष्य जैसे साधारण वृक्षों को सुवर्णमय देखता है वैसे ही तुम सब बातों को विपरीत देख रहे हो। तुमने आप ही पहले अन्याय करके सृञ्जयों और पाण्डवों के साथ वैरभाव

पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि ।
वरदानात्पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २१ ॥
तमहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत ।
याऽसौ प्राङ्निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी २२ ॥
सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्ता महारणम् ।
यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥ २३ ॥
एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥ २४ ॥
आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम् ।
प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयङ्करः ॥ २५ ॥
प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव ।
प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्नृपः ॥ २६ ॥
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥ २७ ॥
दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु ।
मन्यमानः स तं राजन्प्रत्यादेशमिवाऽऽत्मनः ॥ २८ ॥
निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम् ।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ २९ ॥
इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम् ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥ ३० ॥

उत्पन्न किया है। इस समय हम लोगों के सामने उनको युद्ध में हराकर अपना पौरुष दिखाओ। । या तो मैं शिखण्डी के अतिरिक्त सब सृञ्जयों और पाञ्चालों को मारकर तुम्हारा प्रिय करूँगा या मैं स्वय उनके हाथ से मारा जाऊँगा ॥१७।२०॥ शिखण्डी अपने पिता के यहाँ पहले स्त्री-रूप में उत्पन्न होकर पीछे यक्ष के वरदान से पुरुष हुआ है। वास्तव में वह स्त्री ही है। हे भारत! मैं प्राण भले दे दूँगा, परन्तु उस पर वार नहीं करूँगा। क्योंकि पहले विधाता ने उसे स्त्री-रूप से उत्पन्न किया है। हे दुर्योधन! अब तुम जाकर विश्राम करो। मैं कल महाघोर युद्ध करूँगा। जब तक पृथ्वी रहेगी, तब तक मेरे उस युद्ध की चर्चा रहेगी॥२१।२३॥सञ्जय कहते हैं—हे राजा धृतराष्ट्र! भीष्म ने जब आपके पुत्र दुर्योधन से यह कहा, तब उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर वे अपने शिविर में आकर सुख से लेटकर विश्राम करने लगे। रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातःकाल होने पर उठकर दुर्योधन ने सब राजाओं को आज्ञा दी कि हे वीरो! तुम लोग सेना तैयार करो। आज भीष्म कुपित होकर सोमकों को मारेंगे॥२४।२७॥ हे राजेन्द्र! रात्रि को भीष्म ने दुर्योधन के उन वचनों को अपने लिए तिरस्कार समझा। वे पराधीनता की बहुत निन्दा करके खिन्न होकर अर्जुन से युद्ध करने के बारे में सोचते रहे। उनके इस भाव को समझकर दुर्योधन ने

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाऽभिचोदय ॥ ३१ ॥
इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चाऽऽगमः ॥ ३२ ॥
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।
स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात्पार्थांश्च संयुगे ॥ ३३ ॥
अब्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्रीपूर्वको ह्यसौ राजंस्तस्माद्वर्ज्यो मया रणे ॥ ३४ ॥
लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान्पुरा ॥ ३५ ॥
नैव चाऽहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन ।
हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३६ ॥
अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः ।
उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखण्डिनी ॥ ३७ ॥
कन्या भूत्वा पुमाञ्जातः स च मां योधयिष्यति ।
तस्याऽहं प्रमुखे बाणान्न मुञ्चेयं कथञ्चन ॥ ३८ ॥
युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः ।
सर्वानन्यान्हनिष्यामि सम्प्राप्तान्रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥
एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् ।
तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम् ॥ ४० ॥

दुःशासन से कहा-- हे दुःशासन ! तुम भीष्म की रक्षा के लिए असंख्य रथी और सेना के बाईस बड़े बड़े दल भेजो ॥२८।३१॥ मैं बहुत दिनों से सोचता आ रहा हूँ कि सेना सहित पाण्डवों को मारकर राज्य प्राप्त करूँगा। इस घड़ी वही समय उपस्थित है। इस समय युद्ध में सब प्रकार भीष्म की रक्षा करना ही मुझे श्रेयस्कर जान पड़ता है क्योंकि वे हमारे प्रधान सहायक हैं। वे सुरक्षित रहेंगे तो पाण्डव अवश्य मारे जायँगे। महात्मा भीष्म ने कहा है कि "मैं शिखण्डी पर कभी प्रहार नहीं करूँगा, क्योंकि वह पहले स्त्री था। इसी कारण वह इस युद्ध में मेरे लिए त्याज्य है ॥३२।३४॥ मैं पहले, पिता के हित की इच्छा से, विवाह और राज्य का अधिकार छोड़ चुका हूँ। हे राजेन्द्र ! तुमसे सत्य कहता हूँ कि मैं स्त्री पर या स्त्रीपूर्व पुरुष पर कभी प्रहार नहीं करूँगा। युद्धारम्भ के पहले ही मैं तुमसे कह चुका हूँ कि शिखण्डी पहले स्त्री था, पीछे पुरुष हुआ है। वह शिखण्डी मुझसे युद्ध करेगा, तो मैं उस पर बाण नहीं चलाऊँगा। शिखण्डी के अतिरिक्त और जो कोई पाण्डवों की जय चाहनेवाले क्षत्रिय मेरे सामने आ जायँगे, उनको मैं मारूँगा।" ॥३५।३९॥ हे भाई ! शास्त्रविद्या में निपुण पितामह मुझसे यह कह चुके हैं। इस कारण सब प्रकार उनकी रक्षा करना हमारा मुख्य कर्तव्य है। वन में अरक्षित सिंह को भी भेड़िये

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाहवे ।
मा वृकेणेव गाङ्गेयं घातयेम शिखण्डिना ॥ ४१ ॥
मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः ।
यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन्गुप्ते ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा ।
सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन् ॥ ४३ ॥
पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा । ।
कम्पयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥ ४४ ॥
ते रथैः सुप्रसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः ।
परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः ॥ ४५ ॥
यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् ।
सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥ ४६ ॥
ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् ।
सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ॥ ४७ ॥
गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ।
रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथाऽस्माभिर्विवर्जितः ॥ ४८ ॥
यथा भीष्मं न नो हन्याद्दुःशासन तथा कुरु ।
भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ ४९ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ।
भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम् ॥ ५० ॥

मार डालते हैं। इसलिए ऐसा यत्न करो जिससे भीष्म-रूप सिंह शिखण्डीरूप भेड़िये के हाथ से न मारे जा सकें। मामा शकुनि, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और विविंशति आदि सब मुख्य योद्धा यत्न के साथ भीष्म की ही रक्षा करें। उनके सुरक्षित होने से हमारी विजय निश्चित है ॥४०।४२॥ तब शकुनि आदि वीरगण दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, चारों ओर असंख्य रथों से घेरकर, भीष्म की रक्षा करने लगे। हे राजेन्द्र! आपके पुत्रगण आनन्द और उत्साह के साथ सिंहनाद से आकाशमण्डल और पृथ्वीमण्डल को कँपाते हुए, पाण्डवों के हृदय में क्षोभ उत्पन्न करके, भीष्म के आसपास स्थित हुए। जैसे देवासुर-संग्राम में देवताओं ने इन्द्र की रक्षा की थी, वैसे वे महारथी लोग भीष्म पितामह की रक्षा करने लगे ॥४३।४६॥ अब दुर्योधन ने फिर दुःशासन से कहा—हे भाई दुःशासन! युधामन्यु और उत्तमौजा नाम के दोनों वीर अर्जुन के रथ के बायें और दाहने पहिये की रक्षा करते हैं। उनके द्वारा सुरक्षित होकर अर्जुन अवश्य शिखण्डी की रक्षा करेंगे। इसलिए जो हम भीष्म की रक्षा नहीं करेंगे तो अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी अवश्य उनको मारेगा। अतएव इस समय वही उपाय करना है, जिससे भीष्म को शिखण्डी न मार सके। दुर्योधन के ये वचन सुनकर, बहुत सी सेना साथ लेकर, दुःशासन भीष्म के पीछे उनकी रक्षा करते हुए युद्ध करने

अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह ।
शिखण्डिनं नरव्याघ्रं भीष्मस्य प्रमुखे नृप ।
स्थापयस्वाऽद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताऽहमित्युत ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

चले। इधर महारथी अर्जुन ने भीष्म को महारथियों के मध्य सुरक्षित देखकर सेनापति धृष्टद्युम्न से कहा—हे पाञ्चाल-राजकुमार ! शिखण्डी को भीष्म के आगे खड़ा कर दो। आज मैं स्वयं समर में शिखण्डी की रक्षा करूँगा ॥४७।५१॥

भीष्मपर्व का अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९८ ॥

अथ ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सञ्जय उवाच—ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया ।
व्यूहं चाऽव्यूहत महत्सर्वतोभद्रमात्मनः ॥ १ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः ।
शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २ ॥
भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ॥ ३ ॥
द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ४ ॥
अश्वत्थामा सोमदत्तश्चाऽऽवन्त्यौ च महारथौ ।
महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन् ॥ ५ ॥
दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः ।
व्यूहमध्ये स्थितो राजन्पाण्डवान्प्रति भारत ॥ ६ ॥
अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः ।
पृष्ठतः सर्व सैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ ॥ ७ ॥
एवं च तं तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाऽग्नयः ॥ ८ ॥

निन्नानवेवाँ अध्याय ॥ ९९ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इसके अनन्तर सेना साथ लेकर महात्मा भीष्म युद्ध के लिए शिविर से बाहर निकले और सर्वतोभद्र नाम के व्यूह की रचना करने लगे। महावीर कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैब्य, शकुनि, सिन्धुपति जयद्रथ, काम्बोजराज सुदक्षिण और आपके सब पुत्रों को साथ लेकर, सब सेना के आगे, व्यूह के मुख में महारथी प्रतापी भीष्म पितामह खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त कवच पहनकर व्यूह के दक्षिणभाग की रक्षा करने लगे ॥१।४॥ महारथी अश्वत्थामा, सोमदत्त और विन्द, अनुविन्द अपनी सेना

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि ॥ ९ ॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ १० ॥
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः ।
शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ११ ॥
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥ १२ ॥
अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः ।
युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
केकया भ्रातरश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥
पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः ॥ १५ ॥
अभ्युद्ययू रणे पार्थान्भीष्मं कृत्वाऽग्रतो नृप ।
तथैव पाण्डवा राजन्भीमसेनपुरोगमाः ॥ १६ ॥
भीष्मं योद्धुमभीप्सन्तः संग्रामे विजयैषिणः ।
क्ष्वेडाः किलकिलाः शङ्खान्क्रकचान्गोविषाणिकाः॥ १७ ॥
भेरीमृदङ्गपणवान्नादयन्तश्च पुष्करान् ।
पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १८ ॥

साथ लेकर वामभाग की रक्षा करने लगे। त्रिगर्त-देश के राजा सुशर्मा के साथ महाराज दुर्योधन व्यूह के मध्यस्थल में स्थित हुए। श्रेष्ठ रथी राक्षस अलम्बुष और महारथी श्रुतायुष् कवच पहनकर व्यूह के पृष्ठभाग की रक्षा में तत्पर हुए। कौरवपक्ष के कवचधारी वीर इस प्रकार व्यूहरचना करके प्रज्वलित अग्नि के समान देख पड़ने लगे ॥५।८॥ इधर धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव अपने व्यूह के अग्रभाग में स्थित होकर उसकी रक्षा करने लगे। महावीर धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, राक्षस घटोत्कच, महाबाहु चेकितान, महाबली कुन्तिभोज, श्रेष्ठ धनुर्द्धर योद्धा अभिमन्यु, प्रतापी द्रुपद, युयुधान, युधामन्यु और केकय देश के पाँचो भाई राजकुमार बहुमूल्य दृढ कवच पहनकर उस व्यूह की रक्षा करते हुए समरभूमि में शोभायमान हुए। इस प्रकार दुर्भेद्य दारुण महाव्यूह की रचना करके पाण्डव भी युद्ध के लिए उद्यत हुए। कौरवपक्ष के वीर राजा लोग भीष्म को आगे करके युद्ध के लिए पाण्डवों की ओर बढ़े। युद्ध में उत्साह रखनेवाले भीमसेन आदि पाण्डव भी विजय की इच्छा से भीष्म की ओर बढ़े ॥९।१७॥ उस समय युद्ध के मैदान मे बारम्बार, सिंहनाद, किलकिल-रव, हाथियों की चिंघार, घोड़ों और रथों का शब्द तथा अस्त्रों की झनकार चारों ओर छा गई। पाण्डव भी वीरनाद, सिंहनाद तथा

भेरीमृदङ्गशङ्खानां दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
उत्कृष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः ॥ १९ ॥
वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः ।
सहसैवाऽभिसंक्रुद्धास्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ २० ॥
ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥ २१ ॥
पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः ।
सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥ २२ ॥
ववुश्च वातास्तुमुलाः शंसन्तः सुमहद्भयम् ।
घोराश्च घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे ॥ २३ ॥
वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् ।
दिशः प्रज्वलिता राजन्पांसुवर्षं पपात च ॥ २४ ॥
रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च ।
रुदतां वाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २५ ॥
सुस्रुवुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशाम्पते ।
अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २६ ॥
रक्षसां पुरुषादानां नदतां भैरवान्रवान् ।
सम्पतन्तश्च दृश्यन्ते गोमायुबलवायसाः ॥ २७ ॥
श्वानश्च विविधैर्नादैर्वाशन्तस्तत्र मारिष ।
ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहत्य दिवाकरम् ॥
निपेतुः सहसा भूमौ वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ २८ ॥

शङ्खनाद करके उत्साह के साथ कौरवों के सामने आ गये। क्रकच, गोविषाण, भेरी, मृदङ्ग, पणव, दुन्दुभि और शङ्ख आदि बाजों का घोर शब्द आकाशमण्डल तक गूँज उठा। कौरव लोग भी शत्रुपक्ष के प्रत्युत्तर में प्रतिनाद करते हुए पाण्डवों की सेना पर बड़े वेग से आक्रमण करने लगे। इस प्रकार दोनों ओर की सेना परस्पर भिड़कर घोर युद्ध करने लगी। हे राजेन्द्र! उस समय रणभूमि में इतना शब्द और कोलाहल होने लगा कि उससे पृथ्वी काँप उठी ॥१७।२१॥ मांसाहारी पक्षी भयानक शब्द करते हुए आकाश में मँडराने लगे। उज्ज्वल प्रभा के साथ उदय हुए सूर्य का मण्डल प्रभाशून्य हो गया। अमङ्गलसूचक सियार-सियारियों के झुण्ड चिल्लाते हुए इधर उधर फिरने लगे। वे होनेवाले घोर लोकक्षय की सूचना दे रहे थे। आनेवाले घोर भय की सूचना देती हुई विकट आँधी जोर से चलने लगी। दिशाओं में अग्नि लगने का सा लाल प्रकाश (दिग्दाह) दिखाई पड़ने लगा। आकाश से धूल और रुधिरयुक्त हड्डियाँ बरसने लगीं। वाहनों की आँखों से आँसू बहने लगे। वाहन चिन्तित से देख पड़ने लगे; वे बारम्बार मल-मूत्र-त्याग करने लगे ॥२२।२६॥ सहसा अदृश्य पुरुषभोजी राक्षसों के अनेक प्रकार के भयानक शब्द सुन पड़ने

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये ततस्तयोः पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः ।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ २९ ॥
नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलानामभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धतानामिव सागराणाम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि परस्परव्यूहरचनायां उत्पातदर्शने ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

लगे। गीदड़, गिद्ध, कौए और कुत्ते आदि मांसाहारी पशु-पक्षी आकाश से रणभूमि में टूट पड़ते और पृथ्वी पर दौड़ते देख पड़ने लगे। कुत्ते नाना प्रकार से विकट कर्णकटु शब्द करते और भूँकते हुए फिरने लगे। सूर्य के चारों ओर से प्रज्वलित उल्काएँ पृथ्वी पर गिरकर महाभय की सूचना देने लगीं। इस प्रकार आकाश और पृथ्वी में अनेक अनिष्टसूचक उत्पात देख पड़ने लगे। हे महाराज! उस घोर युद्ध के समय पाण्डवों और कौरवों की बड़ी-बड़ी सेनाएँ—जिनमें हाथी, घोड़े, राजा आदि थे—पवनवेग से कम्पित वनों की तरह शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजे बजाती हुई आगे बढ़ीं। कोलाहलपूर्ण सेनाओं के चलने का दृश्य देखकर ऐसा जान पड़ता था कि दो महासागर क्षोभ को प्राप्त हो रहे हैं ॥२७।३०॥

भीष्मपर्व का निन्नानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९९ ॥

अथ शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच—अभिमन्यु रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्योधनबलं महत् ॥ १ ॥
विकिरञ्शरवर्षाणि वारिधारा इवाऽम्बुदः ।
न शेकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदनम् ॥ २ ॥
शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम् ।
निवारयितुमप्याजौ त्वदीयाः कुरुनन्दन ॥ ३ ॥
तेन मुक्ता रणे राजञ्शराः शत्रुनिबर्हणाः ।
क्षत्रियाननयञ्शूरान्प्रेतराजनिवेशनम् ॥ ४ ॥
यमदण्डोपमान्घोराञ्ज्वलिताशीविषोपमान् ।
सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामास सायकान् ॥ ५ ॥
स रथान्रथिनस्तूर्णं हयांश्चैव ससादिनः ।
गजारोहांश्च सगजान्दारयामास फाल्गुनिः ॥ ६ ॥

एक सौ अध्याय ॥ १०० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! इसके अनन्तर महातेजस्वी वीर अभिमन्यु पिङ्गल रङ्ग के घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर, मेघ जैसे जल बरसाता है वैसे, बाण बरसाते हुए दुर्योधन की सेना की ओर दौड़े। अनन्त सेना के भीतर घुसते हुए अस्त्र-शस्त्रधारी वीर अभिमन्यु को कौरव लोग किसी प्रकार नहीं रोक सके ॥१।३॥ अभिमन्यु के धनुष से छूटे हुए शत्रु-नाशक तीक्ष्ण बाण कौरवपक्ष के क्षत्रियों को मार-मारकर गिराने लगे। युद्धचतुर अभिमन्यु क्रुद्ध होकर यमदण्ड-सदृश भीषण और काले नाग के समान

तस्य तत्कुर्वतः कर्म महत्संख्ये महीभृतः ।
पूजयाञ्चक्रिरे हृष्टाः प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥ ७ ॥
तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयामास भारत ।
तूलराशीनिवाऽऽकाशे मारुतः सर्वतोदिशम् ॥ ८ ॥
तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्के मग्ना इव द्विपाः ॥ ९ ॥
विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि नरोत्तम ।
अभिमन्युः स्थितो राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १० ॥
न चैनं तावका राजन्विषेहुररिघातिनम् ।
प्रदीप्तं पावकं यद्वत्पतङ्गाः कालचोदिताः ॥ ११ ॥
प्रहरन्सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः ।
अदृश्यत महेष्वासः सवज्र इव वासवः ॥ १२ ॥
हेमपृष्ठं धनुश्चाऽस्य ददृशे विचरद्दिशः ।
तोयदेषु यथा राजन्राजमाना शतह्रदा ॥ १३ ॥
शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे ।
वनात्फुल्लद्रुमाद्राजन्भ्रमराणामिव व्रजाः ॥ १४ ॥
तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन ददृशुर्नाऽन्तरं जनाः ॥ १५ ॥
मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च सबृहद्बलम् ।
सैन्धवं च महेष्वासो व्यचरल्लघु सुष्ठु च ॥ १६ ॥

---

जहरीले बाण बरसाकर रथ सहित रथी, घोड़े सहित घुड़सवार और हाथी सहित हाथी के सवार को मारकर गिराने लगे। राजा लोग उनके अद्भुत कार्य और पराक्रम को देखकर, प्रसन्न होकर, प्रशंसा करने लगे ॥४।७॥ वायु जैसे रूई के ढेर को उड़ा देता है वैसे ही वीर अभिमन्यु के बाण कौरवपक्ष की सेना को भगाकर तितर-बितर करने लगे। दलदल में फँसे हुए हाथी की सी दशा सब सैनिकों की हो गई। अभिमन्यु के प्रहार से पीड़ित होकर भागने हुए सैनिकों की रक्षा कर सकनेवाला कोई योद्धा नहीं देख पड़ता था। महापराक्रमी अभिमन्यु अनायास शत्रुसेना को भगाकर प्रज्वलित अग्नि के समान शोभायमान हुए ॥८।१०॥ काल-प्रेरित पतङ्ग जैसे अग्नि के प्रताप को नहीं सह सकते, वैसे ही कौरव-सेना अभिमन्यु के पराक्रम को नहीं सह सकी। शत्रुसेना का संहार करते हुए वीर अभिमन्यु वज्रपाणि इन्द्र के समान देख पड़ते थे। सुवर्ण से मढ़ी हुई पीठवाला उनका धनुष घनघटा में बिजली के समान शोभायमान हो रहा था ॥११।१३॥ फूले हुए वृक्षों के वन से उड़ते हुए भौंरों की तरह अभिमन्यु के धनुष से छूटे, चमकते हुए, तीक्ष्ण बाण समरभूमि में चारों ओर जा रहे थे। सुवर्णमय रथ पर सवार वीर अभिमन्यु ने महावीर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृपाचार्य और बृहद्बल को अचेत कर दिया। वे स्फूर्ति और

मण्डलीकृतमेवाऽस्य धनुः पश्याम भारत ।
सूर्यमण्डलसङ्काशं दहतस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥
तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपन्तं तरस्विनम् ।
द्विफाल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥ १८ ॥
तेनाऽर्दिता महाराज भारती सा महाचमूः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ १९ ॥
द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान् ।
नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥ २० ॥
तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २१ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ २२ ॥
दुर्योधनस्तदा राजन्नार्ष्यश्रृङ्गिमभाषत ।
एष कार्ष्णिर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ २३ ॥
चमूं द्रावयते क्रोधाद्वृत्रो देवचमूमिव ।
तस्य चाऽन्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥ २४ ॥
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठं सर्वविद्यासु पारगम् ।
स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे ॥ २५ ॥
वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
स एवमुक्तो बलवान्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २६ ॥

सुन्दरता के साथ बाण बरसाते हुए युद्धभूमि में विचरने लगे ॥१४।१६॥ कौरवसेना का संहार करता हुआ अभिमन्यु का धनुष सदैव खिंचा हुआ ही देख पड़ता था। वह सूर्य की तरह चमक रहा था। शूर क्षत्रियों ने शत्रुसेना का संहार करते हुए स्फूर्तिशाली अभिमन्यु के अद्भुत कर्म देखकर समझा कि इस लोक में दो अर्जुन हैं। हे राजेन्द्र! अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित कौरवसेना, मद पिये हुए स्त्री की तरह, भ्रान्त होकर तितर-बितर होने लगी ॥१७।१९॥ युद्धप्रिय अभिमन्यु ने शत्रुसेना के प्रधान वीरों को विचलित करके और सारी सेना को भगाकर अपने सुहृदों को उसी प्रकार प्रसन्न कर दिया, जिस प्रकार मयासुर को जीतकर इन्द्र ने देवताओं को प्रसन्न किया था। कौरवपक्ष की सब सेना अभिमन्यु के प्रहारों से पीड़ित होकर भागती हुई मेघगर्जन के समान ऊँचे स्वर से आर्तनाद करने लगी ॥२०।२१॥ महाराज दुर्योधन ने जब तूफान से उमड़े हुए समुद्र के शब्द के समान भयभीत कौरवसेना की चिल्लाहट सुनी तब राक्षसराज अलम्बुष को बुलाकर कहा—हे वीर राक्षसश्रेष्ठ! महावीर अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु दूसरे अर्जुन की तरह, देवसेना को भगानेवाले वृत्रासुर की तरह, अकेला ही अपने पराक्रम से कौरवसेना को पीड़ित करके भगा रहा है। तुम सब प्रकार की युद्धविद्या में निपुण हो। उसे रोकनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं देख

प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।
नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ २७ ॥
तस्य शब्देन महता पाण्डवानां बलं महत् ।
प्राचलत्सर्वतो राजन्वातोद्धूत इवाऽर्णवः ॥ २८ ॥
बहवश्च महाराज तस्य नादेन भीषिताः ।
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य निपेतुर्धरणीतले ॥ २९ ॥
कार्ष्णिश्चापि मुदा युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे तद्रक्षः समुपाद्रवत् ॥ ३० ॥
ततः स राक्षसः क्रुद्धः सम्प्राप्यैवाऽऽर्जुनिं रणे ।
नाऽतिदूरे स्थितां तस्य द्रावयामास वै चमूम् ॥ ३१ ॥
तां वध्यमानां च तथा पाण्डवानां महाचमूम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे रक्षो देवसेनां यथा बलः ॥ ३२ ॥
विमर्दः सुमहानासीत्तस्य सैन्यस्य मारिष ।
रक्षसा घोररूपेण वध्यमानस्य संयुगे ॥ ३३ ॥
ततः शरसहस्रैस्तां पाण्डवानां महाचमूम् ।
व्यद्रावयद्रणे रक्षो दर्शयन्स्वपराक्रमम् ॥ ३४ ॥
सा वध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी ।
रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥ ३५ ॥
प्रमृद्य च रणे सेनां पद्मिनीं वारणो यथा ।
ततोऽभिदुद्राव रणे द्रौपदेयान्महाबलान् ॥ ३६ ॥

पड़ता। इसलिए तुम शीघ्र ही जाकर युद्ध में उसे मार डालो। हम लोग भीष्म और द्रोण आदि के साथ जाकर अर्जुन को मारेंगे ॥२२।२६॥ दुर्योधन की आज्ञा पाते ही राक्षसश्रेष्ठ अलम्बुष वर्षाकाल के मेघ के समान गर्जना करता हुआ अभिमन्यु की ओर चला। उसके घोर शब्द को सुनकर पाण्डवों की भारी सेना वायु से उछलते हुए समुद्र के समान विचलित हो उठी। उसके शब्द से ही डरकर बहुत से सैनिक मर गये ॥२६।२९॥ हे महाराज! उस समय रथ पर स्थित महायशस्वी अभिमन्यु धनुष-बाण हाथ में लेकर उस राक्षस के सम्मुख आये। अलम्बुष ने अभिमन्यु को देखते ही युद्ध में उस पर आक्रमण किया। राक्षस को देखकर पाण्डवों की सेना भयभीत हो गई और भागने लगी। जैसे बल नाम का दैत्य जैसे देव-सेना के पीछे दौड़ा था, वैसे ही बाण बरसाता हुआ अलम्बुष पाण्डवसेना के पीछे दौड़ा ॥३०।३२॥ वह राक्षसराज अपना पराक्रम दिखाता और असंख्य बाण चलाता हुआ पाण्डवसेना को भगाने और नष्ट करने लगा। पाण्डवों की भारी सेना अत्यन्त व्यथित और भय से व्याकुल होकर चारों ओर भागने लगी। हे महाराज! जैसे हाथी कमलवन को रौंदता है वैसे ही राक्षसराज अलम्बुष पाण्डवसेना का संहार करता हुआ द्रौपदी के पुत्रों के सम्मुख दौड़ा। द्रौपदी के पाँचों पुत्र उस राक्षस को देखकर, क्रुद्ध हो युद्ध

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च रविं यथा ॥ ३७ ॥
वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥ ३८ ॥
प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो विभेद निशितैः शरैः ।
सर्वपारशवैस्तूर्णैरकुण्ठाग्रैर्महाबलः ॥ ३९ ॥
स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः ।
मरीचिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४० ॥
विषक्तैः स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
आर्ष्यशृङ्गिर्बभौ राजन्दीप्तशृङ्ग इवाऽचलः ॥ ४१ ॥
ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीयविभूषितैः ॥ ४२ ॥
स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव ।
अलम्बुषो भृशं राजन्नागेन्द्र इव चुक्रुधे ॥ ४३ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज मुहूर्तमथ मारिष ।
प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः ॥ ४४ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः ।
चिच्छेद सायकांस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूंषि च ॥ ४५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्मयन्निव ।
अलम्बुषो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः ॥ ४६ ॥
त्वरमाणः सुसंरब्धो हयांस्तेषां महात्मनाम् ।
जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथींश्च महाबलः ॥ ४७ ॥

---

होकर, सूर्य के सम्मुख पाँच ग्रहों की तरह, उसके सम्मुख दौड़े । प्रलयकाल में पाँच ग्रह जैसे चन्द्रमा को पीड़ा पहुँचाते, वैसे ही द्रौपदी के पुत्र उस राक्षस को पीड़ित करने लगे ॥३७।३८॥ महापराक्रमी प्रतिविन्ध्य ने उस राक्षसराज को तीक्ष्ण, कुण्ठित न होनेवाले, कई बाण मारे । उन बाणों से अलम्बुष का कवच कट गया और वह सूर्य-किरणरञ्जित काले मेघ के समान शोभायमान हुआ । प्रतिविन्ध्य के सुवर्ण-भूषित विशिख बाण राक्षस के शरीर में प्रविष्ट हो गये । उनसे वह प्रज्वलित शिखर-युक्त पर्वत के समान देख पड़ा ॥३९।४२॥ अब द्रौपदी के पाँचों पुत्र एक साथ सुवर्णभूषित बाण मारकर अलम्बुष को पीड़ा पहुँचाने लगे । महावीर्यशाली क्रुद्ध अलम्बुष नाग-तुल्य उन बाणों से घायल होने के कारण घोर व्यथा से अचेत हो गया । क्षण भर में सचेत होने पर वह दुगुने क्रोध से विह्वल हो उठा । उसने बड़ी स्फूर्ति के साथ बाणों से द्रौपदी के पुत्रों के धनुष, बाण और ध्वजाएँ काट डालीं । फिर उस महावीर राक्षस ने हर एक

विभेद च सुसंरब्धः पुनश्चैनान्सुसंशितैः ।
शरैर्बहुविधाकारैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८ ॥
विरथांश्च महेष्वासान्कृत्वा तत्र स राक्षसः ।
अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः ॥ ४९ ॥
तानर्दितान्रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना ।
दृष्ट्वाऽर्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत् ॥ ५० ॥
तयोः समभवद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥
तौ समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परम् ।
महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ ५२ ॥
परस्परमवेक्षेतां कालानलसमौ युधि ।
तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ॥ ५३ ॥
यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोः पुरा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषाभिमन्युसमागमे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

को पाँच-पाँच बाण मारे ॥४३।४६॥ उसने उनके घोड़ों और सारथियों को भी मार डाला। यह अद्भुत कर्म करके, अन्य अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर, उसने सबको घायल कर दिया। महारथी राक्षस इस प्रकार द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को, रथहीन करके, मारने के लिए शीघ्रता से आगे बढ़ा। महापराक्रमी अभिमन्यु ने जब देखा कि बली राक्षस द्रौपदी के पुत्रों को पीड़ित कर रहा है तब वे शीघ्रता के साथ अपना रथ बढ़ाकर उसके पास पहुँचे ॥४७।५०॥ हे राजेन्द्र! उस समय महाप्रतापी अभिमन्यु के साथ राक्षसराज अलम्बुष घोर युद्ध करने लगा। कौरवपक्ष और पाण्डवपक्ष के सब योद्धा, युद्ध छोड़कर, उन वृत्रासुर और इन्द्र के समान पराक्रमी दोनों वीरों का घोर अद्भुत संग्राम देखने लगे। कालानल-तुल्य वे दोनों वीर क्रोध से लाल आँखों से परस्पर इस प्रकार देखते थे मानों दृष्टि से ही भस्म कर डालेंगे। पहले देवासुर-युद्ध में शम्बरासुर और इन्द्र का जैसा भयङ्कर संग्राम हुआ था वैसा ही भयङ्कर समर इस समय होने लगा ॥५१।५४॥

भीष्मपर्व का एक सौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०० ॥

अथ एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—आर्जुनिं समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथान् ।
अलम्बुषः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥ १ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं कथं चैव सौभद्रः परवीरहा ।
तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन यथा वृत्तं स्म संयुगे ॥ २ ॥
धनञ्जयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संयुगे ।
भीमो वा रथिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः ॥ ३ ॥

नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः ।
एतदाचक्ष्व मे सत्यं कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम् ।
यथाऽभूद्राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष ॥ ५ ॥
अर्जुनश्च यथा संख्ये भीमसेनश्च पाण्डवः ।
नकुलः सहदेवश्च रणे चक्रुः पराक्रमम् ॥ ६ ॥
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरः सराः ।
अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ७ ॥
अलम्बुषस्तु समरे अभिमन्युं महारथम् ।
विनद्य सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ९ ॥
आर्ष्यश्रृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौ ॥ १० ॥
रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ ।
मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रश्चैव फाल्गुनिः ॥ ११ ॥
ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः ।
आर्ष्यश्रृङ्गिं रणे विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ १२ ॥
अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः ।
हृदि विव्याध वेगेन तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥

एक सौ एक अध्याय ॥ १०१ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा — हे सञ्जय ! महारथियों और शूरों को समर में मारते हुए अभिमन्यु से अलम्बुष ने किस प्रकार कैसा युद्ध किया ? शत्रुदमन अभिमन्यु ने ही उस राक्षसराज से कैसा युद्ध किया ? महाबली भीमसेन, राक्षस घटोत्कच, नकुल, सहदेव, सात्यकि और अर्जुन आदि ने मेरी सेना से कैसा युद्ध किया ? युद्ध का सब वृत्तान्त तुम जानते हो और वर्णन करने में भी निपुण हो। इसलिए यह सब वृत्तान्त कहो। ॥१।४॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महावीर अभिमन्यु और अलम्बुष ने जैसा युद्ध किया, अर्जुन-भीमसेन-नकुल और सहदेव ने समर में जैसा पराक्रम प्रकट किया और आपके पक्ष के भीष्म, द्रोण आदि महारथी वीरों ने निर्भय होकर जो-जो अद्भुत कर्म किये, सो सब मैं आपके आगे कहता हूँ ॥५।७॥ राक्षसराज अलम्बुष सिंहनाद के साथ बारम्बार तरज-गरजकर "ठहर जा, ठहर जा" कहता हुआ बड़े वेग से अभिमन्यु पर आक्रमण करने चला। अभिमन्यु भी सिंहनाद करते हुए पिता के शत्रु राक्षसराज अलम्बुष की ओर वेग से चले। दिव्य अस्त्र चलाने में निपुण महारथी अभिमन्यु और मायावी श्रेष्ठ रथी अलम्बुष दोनों, देव-दानव के समान, शीघ्र ही आमने-सामने पहुँच गये ॥८।११॥ महावीर अभिमन्यु ने राक्षस

ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः ।
अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत ॥ १४ ॥
अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ।
विभेद निशितैर्बाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि ॥ १५ ॥
ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्मसु ।
स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः ॥ १६ ॥
पुष्पितैः किंशुकै राजन्संस्तीर्ण इव पर्वतः ।
सन्धारयाणश्च शरान्हेमपुङ्खान्महाबलः ॥ १७ ॥
विबभौ राक्षसश्रेष्ठः सज्वाल इव पर्वतः ।
ततः क्रुद्धो महाराज आर्ष्यशृङ्गिरमर्षणः ॥ १८ ॥
महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिं छादयामास पत्रिभिः ।
तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः ॥ १९ ॥
अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।
तथैवाऽऽर्जुनिना मुक्ताः शराः कनकभूषणाः ॥ २० ॥
अलम्बुषं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।
सौभद्रस्तु रणे रक्षः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१ ॥
चक्रे विमुखमासाद्य मयं शक्र इवाऽऽहवे ।
विमुखं च रणे रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा ॥ २२ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनाम् ।
ततस्ते तमसा सर्वे वृताश्चाऽऽसन्महीपते ॥ २३ ॥

को पहले तीन और फिर पाँच बाण मारे। जैसे महावत गजराज को अङ्कुश मारे वैसे ही स्फूर्तिशाली अलम्बुष ने क्रुद्ध होकर अभिमन्यु की छाती में ताककर नव तीक्ष्ण बाण मारे। इसके पश्चात् स्फूर्ति के साथ और एक सहस्र बाण मारे ॥१२।१४॥ मर्मस्थल में उन बाणों के लगने से अभिमन्यु क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने भी महाभयङ्कर नव बाण राक्षस की छाती में मारे। वे बाण उसके शरीर को फोड़कर मर्मस्थल में पहुँच गये। बाणों से घायल और रक्त से रंगा हुआ वह राक्षस फूले हुए ढाक के पेड़ोंवाले पर्वत के समान शोभायमान हुआ। वे सुवर्णपुङ्ख बाण राक्षस के शरीर में प्रवेश हो गये थे, इस कारण वह शिखरों से शोभित पर्वत सा जान पड़ता था। क्रोधी अलम्बुष ने भी इन्द्र-सदृश अभिमन्यु को असंख्य बाणों से ढक दिया ॥१५।१९॥ राक्षस के धनुष से छूटे हुए यमदण्डतुल्य बाण अभिमन्यु के शरीर को फोड़कर पृथिवी में प्रवेश हो गये। इसी प्रकार ही अभिमन्यु के बाण भी अलम्बुष के शरीर को फोड़कर पृथ्वी में प्रवेश हो गये। इन्द्र ने जैसे मय दानव को समर से हटा दिया था, वैसे ही महावीर अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाण मारकर राक्षस को व्यथित और युद्ध से विमुख कर दिया ॥१९।२२॥ अब उस राक्षस ने शत्रुओं को नष्ट करनेवाली तामसी माया उत्पन्न की। उससे चारों ओर गहरा अँधेरा छा गया। कोई किसी को

नाऽभिमन्युमपश्यन्त नैव स्वान्न परान्रणे ।
अभिमन्युश्च तद् दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ॥ २४ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः ।
ततः प्रकाशमभवज्जगत्सर्वं महीपते ॥ २५ ॥
तां चाऽभिजघ्निवान्मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ।
संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तमः ॥ २६ ॥
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।
बह्वीस्तथाऽन्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ॥ २७ ॥
सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः ।
हतमायं ततो रक्षो वध्यमानं च सायकैः ॥ २८ ॥
रथं तत्रैव सन्त्यज्य प्राद्रवन्महतो भयात् ।
तस्मिन्विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ॥ २९ ॥
आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं सम्ममर्द ह ।
मदान्धो गन्धनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव ॥ ३० ॥
ततः शान्तनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाऽभिविद्रुतम् ।
महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥
कोष्ठीकृत्य च तं वीरं धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढम् ॥ ३२ ॥
स तेषां रथिनां वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥ ३३ ॥

नहीं देख सकता था अभिमन्यु को, अपने को या किसी अन्य को देख सकना असम्भव हो गया। महापराक्रमी अभिमन्यु ने वह घोर अन्धकार देखकर प्रकाशमय सौर अस्त्र का प्रयोग किया। सूर्यास्त्र के प्रभाव से राक्षस की माया का घोर अन्धकार दूर हो गया और सारे जगत् में प्रकाश फैल गया ॥२२।२५॥ राक्षस ने और भी बहुतेरी मायाएँ प्रकट कीं, किन्तु वीर अभिमन्यु ने दिव्य अस्त्रों से उन सब मायाओं को नष्ट कर दिया। इसके अनन्तर अभिमन्यु असंख्य तीक्ष्ण बाण मारकर उस राक्षस को पीड़ा पहुँचाने लगे ॥२६।२८॥ सब अस्त्रों के जाननेवाले अमित पराक्रमी अभिमन्यु के द्वारा सब माया नष्ट होने पर प्रहार-पीड़ित और भय से व्याकुल वह राक्षस रथ छोड़कर भाग खड़ा हुआ। कूटयुद्ध करनेवाला वह राक्षस जब इस प्रकार हारकर भाग गया तब महावीर अभिमन्यु फिर बाण-वर्षा करके कौरवसेना को पीड़ित करने लगे। उस समय ऐसा जान पड़ा कि मदान्ध जङ्गली हाथी कमलों के वन को रौंदकर उजाड़ रहा है ॥२८।३०॥ महारथी भीष्म ने सैनिकों को संग्राम से भागते देख तीक्ष्ण बाण बरसाकर अभिमन्यु का आगे बढ़ना रोका। महारथी दुर्योधन और उनके भाई भी अकेले अभिमन्यु को चारों ओर से घेरकर असंख्य बाण मारने लगे। तब अर्जुन के तुल्य पराक्रमी और बल-वीर्य में श्रीकृष्ण के समान महावीर अभिमन्यु,

उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च ।
रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥
ततो धनञ्जयो वीरो विनिघ्नंस्तव सैनिकान् ।
आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥ ३५ ॥
तथैव समरे राजन्पिता देवव्रतस्तव ।
आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ३६ ॥
ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव जनेश्वर ।
परिवव्रू रणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः ॥ ३७ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्परिवार्य धनञ्जयम् ।
रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
शारद्वतस्ततो राजन्भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ ३९ ॥
प्रत्युद्गम्याऽथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः ।
पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ४० ॥
गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः ।
हृदि विव्याध संक्रुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ४१ ॥
शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान् ।
गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम् ॥ ४२ ॥
तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम् ।
द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः ॥ ४३ ॥
समुत्सृज्याऽथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ॥ ४४ ॥

पिता और मामा के समान, युद्ध में अनेक अद्भुत कार्य और कौशल दिखाने लगे ॥३१।३४॥ महावीर्यशाली अर्जुन भी उस समय कौरव सेना को मारते हुए अभिमन्यु को ढूँढते-ढूँढते भीष्म के समीप पहुँच गये। राहु जैसे ग्रसने के लिए सूर्य के पास जाता है वैसे ही भीष्म भी अर्जुन के समीप आये। हे राजेन्द्र! आपके पुत्रगण असंख्य रथ, हाथी, घोड़े आदि साथ लेकर चारों ओर से भीष्म पितामह की रक्षा करने लगे। इधर पाण्डवपक्ष के योद्धा भी चारों ओर से अर्जुन की सहायता करते हुए घोर युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥३५।३८॥ इसी समय कृपाचार्य ने, भीष्म के सामने उपस्थित, अर्जुन को पचीस तीक्ष्ण बाण मारे। सिंह जैसे गजराज पर झपटता है वैसे ही सात्यकि भी पाण्डवों के हित के लिए कृपाचार्य के सन्मुख पहुँचे। वे अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर कृपाचार्य को पीड़ित करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर कृपाचार्य ने बड़ी स्फूर्ति के साथ कङ्कपत्रभूषित नव बाण सात्यकि की छाती में मारे ॥३९।४१॥ तब सात्यकि ने अत्यन्त

तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत ।
अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ॥ ४५ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् ।
द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ४६ ॥
स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः ।
निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ४७ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समार्पयत् ॥ ४८ ॥
शैनेयं स तु निर्भिद्य प्राविशद्धरणीतलम् ।
वसन्तकाले बलवान्बिलं सर्पशिशुर्यथा ॥ ४९ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम् ।
चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह ॥ ५० ॥
पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत ।
निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५१ ॥
सात्यकोऽपि महाराज शरजालं निहत्य तत् ।
द्रौणिमभ्याकिरत्तूर्णं शरजालैरनेकधा ॥ ५२ ॥
तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा ।
विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ॥ ५३ ॥
शराणां च सहस्रेण पुनरेव समुद्यतः ।
सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः ॥ ५४ ॥

क्रुद्ध होकर बड़े वेग से, धनुष चढ़ाकर, प्राण हर लेनेवाला एक बाण कृपाचार्य को मारा। अश्वत्थामा ने उस वज्रतुल्य बाण को वेग से आते देखकर एक बाण से उसे काटकर गिरा दिया। अब महारथी सात्यकि कृपाचार्य को छोड़कर, आकाशमण्डल में राहु जैसे चन्द्रमा की ओर दौड़ता है वैसे ही अश्वत्थामा की ओर दौड़े ॥४२।४४॥ महावीर अश्वत्थामा ने उनका धनुष काट डाला और उनपर असंख्य बाण बरसाये। सात्यकि ने उसी क्षण स्फूर्त्ति से दूसरा सुदृढ धनुष हाथ में लेकर साठ बाण अश्वत्थामा के हृदय में और दोनों हाथों में मारे। उन बाणों के प्रहार से अश्वत्थामा बहुत व्यथित होकर क्षण भर के लिए अचेत होगये, वे ध्वजा का डण्डा पकड़कर रथ पर बैठ गये॥४५।४७॥ सचेत होने पर उन्होंने क्रुद्ध होकर सात्यकि को एक घोर नाराच बाण मारा। वह बाण सात्यकि के शरीर को फोड़कर वैसे ही पृथ्वी में प्रवेश हो गया जैसे वसन्तऋतु में बलवान् सर्प का बच्चा बिल में प्रवेश हो जाता है। फिर एक भल्ल बाण से सात्यकि के रथ की ध्वजा काटकर वे सिंहनाद करने लगे। वर्षा-ऋतु में मेघ जैसे सूर्य को छिपा लेते हैं वैसे ही अश्वत्थामा ने बाणों से सात्यकि को अदृश्य कर दिया ॥४८।५१॥ हे राजेन्द्र ! सात्यकि भी उन बाणों को काटकर, अपने बाणों से अश्वत्थामा को अदृश्य करके, मेघों को चीरकर निकले हुए सूर्य की तरह अश्वत्थामा

दृष्ट्वा पुत्रं च तं ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम् ।
अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥
विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे ।
परीप्सन्स्वसुतं राजन्वार्ष्णेयेनाऽभिपीडितम् ॥ ५६ ॥
सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम् ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः ॥ ५७ ॥
तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः ।
अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः ॥ ५८ ॥
ततो द्रोणश्च पार्थश्च समेयेतां महामृधे ।
यथा बुधश्च शुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥ ५९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषाभिमन्युयुद्धे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

को सताने लगे। इसके अनन्तर फिर सहस्रों बाण बरसाकर उन्होंने अश्वत्थामा को जर्जर कर दिया ॥५२।५४॥ पुत्र अश्वत्थामा को राहुग्रस्त चन्द्रमा के समान पीड़ित देखकर द्रोणाचार्य सात्यकि की ओर दौड़े, और अश्वत्थामा के प्राण बचाने के लिए उन्होंने सात्यकि को तीक्ष्ण बाण मारा। तब सात्यकि ने भी गुरु-पुत्र अश्वत्थामा को छोड़कर द्रोणाचार्य को लोहमय बीस बाण मारे। उधर महापराक्रमी अर्जुन भी कुपित होकर द्रोणाचार्य की ओर दौड़े। इसके अनन्तर द्रोण और अर्जुन दोनों, आकाश में बृहस्पति और शुक्र की तरह, घोर युद्ध करने लगे ॥५५।५९॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ एक अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

---

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथं द्रोणो महेष्वासः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
समीयतू रणे यत्तौ तावुभौ पुरुषर्षभौ ॥ १ ॥
प्रियो हि पाण्डवो नित्यं भारद्वाजस्य धीमतः ।
आचार्यश्च रणे नित्यं प्रियः पार्थस्य सञ्जय ॥ २ ॥
तावुभौ रथिनौ संख्ये दृप्तौ सिंहाविवोत्कटौ ।
कथं समीयतुर्यत्तौ भारद्वाजधनञ्जयौ ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—न द्रोणः समरे पार्थं जानीत प्रियमात्मनः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥ ४ ॥

एक सौ दो अध्याय ॥ १०२ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और अर्जुन दोनों ने किस प्रकार युद्ध किया? बुद्धिमान् द्रोणाचार्य को अर्जुन बहुत ही प्रिय हैं, और अर्जुन भी द्रोणाचार्य का बहुत मान करते हैं। उन दोनों, सिंह के समान उत्साही, वीरों ने किस प्रकार युद्ध किया? ॥१।३॥ सञ्जय ने कहा—हे

न क्षत्रिया रणे राजन्वर्जयन्ति परस्परम् ।
निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥ ५ ॥
रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः ।
नाऽचिन्तयच्च तान्बाणान्पार्थचापच्युतान्युधि ॥ ६ ॥
शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे ।
स प्रजज्वाल रोषेण गहनेऽग्निरिवोर्जितः ॥ ७ ॥
ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास राजेन्द्र न चिरादेव भारत ॥ ८ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
द्रोणस्य समरे राजन्पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ९ ॥
त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
छादयामास समरे पार्थं बाणैरयोमुखैः ॥ १० ॥
ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे ।
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥
ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो ।
फलभारनतं यद्वत्स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः ॥ १२ ॥
अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः ।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
पार्थमेवाऽभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥ १४ ॥

महाराज ! क्षत्रियधर्म के अनुयायी द्रोणाचार्य युद्ध में अर्जुन को अपना प्रिय नहीं समझते, और अर्जुन भी गुरु पर कठोर प्रहार करने में कुछ कमी नहीं रखते। क्षत्रियों का धर्म ही यह है कि वे युद्ध में किसी का विचार नहीं करते। वे नाते का विचार छोड़कर पिता और भाई आदि से कठिन युद्ध करते हैं ॥४।५॥ हे महाराज ! अर्जुन ने द्रोणाचार्य को तीन तीक्ष्ण बाण मारे; किन्तु अर्जुन के धनुष से छूटे हुए उन बाणों से द्रोणाचार्य विचलित नहीं हुए। तब फिर अर्जुन उनके ऊपर बाणों की वर्षा-सी करने लगे। गहन वन में अग्नि के समान आचार्य द्रोण क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने स्फूर्ति के साथ अति तीक्ष्ण असंख्य बाणों से अर्जुन को ढक दिया ॥६।८॥ तब राजा दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पार्श्वभाग की रक्षा और सहायता के लिए त्रिगर्तदेश के राजा सुशर्मा को भेजा। राजा सुशर्मा कुपित होकर, धनुष चढ़ाकर, तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को पीड़ा पहुँचाने लगे। सुशर्मा का पुत्र भी लोहमय बाण अर्जुन को मारने लगा। उन पिता पुत्र के चलाये हुए बाण आकाश में, शरद् ऋतु में, उड़ते हुए हंसों के समान जान पड़ने लगे। जैसे पक्षी चारों ओर से आकर स्वादिष्ट फलों से पूर्ण झुके हुए वृक्ष के भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे बाण चारों ओर से आकर अर्जुन के शरीर में प्रवेश होने लगे ॥९।१२॥ महारथी अर्जुन ने सिंह-

मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति ।
शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षैः समन्ततः ॥ १५ ॥
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाऽचलः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम वीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥ १६ ॥
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ॥ १७ ॥
कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः ।
अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान्प्रति भारत ॥ १८ ॥
मुमोचाऽस्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ।
प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ॥ १९ ॥
पातयन्वै तरुगणान्विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् ।
ततो द्रोणोऽभिवीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ॥ २० ॥
शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह ।
द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप ॥ २१ ॥
प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश ।
ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ॥ २२ ॥
निरुत्साहान्रणे चक्रे विमुखान्विपराक्रमान् ।
ततो दुर्योधनश्चैव कृपश्च रथिनां वरः ॥ २३ ॥
अश्वत्थामा तथा शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वाह्लिकः सह वाह्लिकैः ॥ २४ ॥

नाद करके पिता और पुत्र दोनों को बहुत से बाण मारे। सुशर्मा और उनका पुत्र दोनों ही कालतुल्य अर्जुन के बाणों से घायल होकर भी, जीवन की ममता छोड़कर, अर्जुन से घोर युद्ध करने लगे। वे अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। पर्वत जैसे वर्षा को अपने ऊपर रोकता है वैसे ही वीर अर्जुन अपने बाणों से उनके बाणों को रोकने लगे। उस समय हम लोग अर्जुन के हाथों की स्फूर्ति देखने लगे। वायु जैसे मेघमाला को क्षणभर में छिन्न-भिन्न कर डालती है, वैसे ही अकेले अर्जुन बहुत से योद्धाओं के शस्त्रों की वर्षा को छिन्न-भिन्न करने और रोकने लगे। अर्जुन के उस अद्भुत कर्म और युद्ध-कौशल को देखकर देवता और दानव बहुत ही सन्तुष्ट हुए ॥१३।१८॥ महावीर अर्जुन ने कुपित होकर त्रिगर्तसेना के ऊपर वायव्य अस्त्र छोड़ा। उससे प्रबल आँधी उत्पन्न हुई, जिससे आकाशमण्डल क्षोभ को प्राप्त हुआ, वृक्ष उखड़-उखड़कर गिरने लगे, सैनिक लोग नष्ट होने लगे और सारी सेना अस्तव्यस्त तथा नष्टभ्रष्ट होने लगी। द्रोणाचार्य ने उस दारुण वायव्य-अस्त्र का उत्थान देखकर, उसे व्यर्थ करने के लिए, घोर पर्वतास्त्र का प्रयोग किया। उससे आँधी शान्त हो गई, दसों दिशाएँ निर्मल देख पड़ने लगीं। इसके पश्चात् महारथी अर्जुन ने अपने युद्धकौशल से त्रिगर्त-राज के असंख्य रथी योद्धाओं को उत्साहहीन और

महता रथवंशेन पार्थस्याऽवारयन्दिशः ।
तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ॥ २५ ॥
गजानीकेन भीमस्य तावावारयतां दिशः ।
भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते ॥ २६ ॥
शरौघैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् ।
भीष्मस्तु संहतः संख्ये धार्तराष्ट्रैः ससैनिकैः ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ।
आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ॥ २८ ॥
लेलिहन्सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने ।
भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे ॥ २९ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत् ।
तमुद्वीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः ॥ ३० ॥
परिवव्रू रणे यत्ता भीमसेनं समन्ततः ।
गजमध्यमनुप्राप्तः पाण्डवः स व्यराजत ॥ ३१ ॥
मेघजलस्य महतो यथा मध्यगतो रविः ।
व्यधमत्स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः ॥ ३२ ॥
महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव सन्ततम् ।
ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः ॥ ३३ ॥
आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव ।
बहुधा दारितश्चैव विषाणैस्तत्र दन्तिभिः ॥ ३४ ॥

पराक्रम-शून्य करके युद्ध से विमुख कर दिया ॥१८।२३॥ तब राजा दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, सुदक्षिण, विन्द, अनुविन्द और वाह्लीक देश की सेना सहित राजा वाह्लीक असंख्य रथों के द्वारा चारों ओर से अर्जुन को घेरकर उनपर प्रहार करने लगे। महाबली श्रुतायुध और राजा भगदत्त ने बड़े भारी हाथियों के दल से चारों ओर से भीमसेन को घेर लिया। भूरिश्रवा, शल और शकुनि, ये तीनों वीर बहुत सी सेना के द्वारा नकुल और सहदेव को घेरकर उनपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। सेना सहित आपके सब पुत्रों को साथ लिये भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥२३।२७॥ हे महाराज ! पराक्रमी भीमसेन ने हाथियों की बड़ी सेना को अपनी ओर आते देखा तो वे रथ से उतर पड़े और गदा हाथ में लेकर उसी ओर दौड़े। वन में विचरनेवाले सिंह की तरह क्रोध से होंठ चाटते हुए भीमसेन का भयानक रूप ही देखकर बहुत से सैनिक भय से व्याकुल हो उठे। हाथियों पर सवार योद्धाओं ने गदा हाथ में लिये भीमसेन को खड़े देखकर चारों ओर से घेर लिया। सूर्य जैसे मेघों के मध्य में शोभित होते हैं वैसे ही उस गजदल के मध्य भीमसेन की शोभा हुई ॥२७।३१॥ वायु जैसे मेघों को तितर-बितर कर देती है वैसे ही भीमसेन अपनी गदा के विकट प्रहार से उस गजदल को मारने

फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि ।
विषाणे दन्तिनं गृह्य निर्विषाणमथाऽकरोत् ॥ ३५ ॥
विषाणेन च तेनैव कुम्भेऽभ्याहत्य दन्तिनम् ।
पातयामास समरे दण्डहस्त इवाऽन्तकः ॥ ३६ ॥
शोणिताक्तां गदां बिभ्रन्मेदोमज्जाकृतच्छविः ।
कृताभ्यङ्गः शोणितेन रुद्रवत्प्रत्यदृश्यत ॥ ३७ ॥
एवं ते वध्यमानाश्च हतशेषा महागजाः ।
प्राद्रवन्त दिशो राजन्विमृद्नन्तः स्वकं बलम् ॥ ३८ ॥
द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमपराक्रमे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

ओर भगाने लगे। बड़े-बड़े हाथी भीमसेन की गदा का मार खाकर मेघ-गर्जन के समान चिल्लाने और आर्तनाद करने लगे। हाथियों ने भी भीमसेन के शरीर में दाँतों के प्रहार किये। उनके शरीर से रक्त बह चला, जिससे वे फूले हुए अशोकवृक्ष के समान शोभायमान हुए॥३२।३५॥ भीमसेन ने कुपित होकर किसी-किसी हाथी के दाँत उखाड़ लिये, और दण्डपाणि यमराज की तरह उन्हीं दाँतों के प्रहार से उनके मस्तक फाड़कर वे उन्हें पृथ्वी पर गिराने लगे। भीम के शरीर में मेदा और मज्जा लिपी हुई थी, रक्त से युक्त गदा उनके कन्धे पर थी; इस वेष में वे शूलपाणि रुद्र के समान देख पड़ते थे। जो बड़े-बड़े हाथी मरने से बचे थे वे अपनी ही सेना को रौंदते हुए चारों ओर भागने लगे। कौरवपक्ष की सेना फिर युद्ध से भागकर अस्तव्यस्त हो गई॥३६।३९॥

भीष्मपर्व का एक सौ दो अध्याय समाप्त हुआ॥ १०२ ॥

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच—मध्यन्दिने महाराज संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सोमकैः ॥ १ ॥
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २ ॥
संममर्द च तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥ ३ ॥

एक सौ तीन अध्याय॥ १०३ ॥

सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र! इसी दिन मध्याह्न के समय सोमकों के साथ भीष्म पितामह महाभयानक युद्ध करने लगे। महारथी भीष्म बाणों की अग्नि में सैंकड़ों-सहस्रों क्षत्रियों को भस्म करने लगे। जैसे बैल अन्न के ढेर को रौंदते हैं वैसे ही देवव्रत भीष्म पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे॥१।३॥ धृष्टद्युम्न

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा ।
भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम् ॥ ४ ॥
धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा विराटं च शरैस्त्रिभिः ।
द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥
तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा ।
चुक्रुधुः समरे राजन्पादस्पृष्टा इवोरगाः ॥ ६ ॥
शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम् ।
स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नाऽस्मै प्राहरदच्युतः ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधेनाऽग्निरिव ज्वलन् ।
पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ८ ॥
द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः ।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याधसायकैः ॥ ९ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज शोणितौघपरिप्लुतः ।
वसन्ते पुष्पशवलो रक्ताशोक इवाऽऽबभौ ॥ १० ॥
तान्प्रत्यविध्यद्गाङ्गेयास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ११ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः सुशितै रणमूर्धनि ॥ १२ ॥
तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः ॥ १३ ॥

शिखण्डी, विराट और महारथी द्रुपद भीष्म के पास जाकर उनपर असंख्य बाण बरसाने लगे। शत्रुनाशन भीष्म ने तीन-तीन बाण धृष्टद्युम्न और विराट को और एक नाराच बाण द्रुपद को मारा। धृष्टद्युम्न आदि महारथी भीष्म के बाणों से विद्ध होकर पाँव से पूँछ दबे हुए सर्प के समान क्रुद्ध हो गये ॥४।६॥ यद्यपि शिखण्डी निरन्तर भीष्म के मर्मस्थल में बाण मारने लगे, किन्तु महाव्रत भीष्म ने उन्हें पहले की स्त्री समझकर उन पर प्रहार नहीं किया। धृष्टद्युम्न ने क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित होकर भीष्म के हाथों में अग्निसदृश दो बाण मारे, और एक बाण वक्षःस्थल में मारा। महारथी द्रुपद ने भी भीष्म को पचीस बाण मारे। विराट ने पितामह को दस बाण और शिखण्डी ने पचीस बाण मारे ॥७।९॥ हे राजेन्द्र! उन बाणों से बहुत ही घायल होकर भीष्म रक्त से तर हो गये। वे उस समय वसन्त में लाल फूलों से शोभित अशोक-वृक्ष के समान देख पड़ने लगे। तब उन्होंने कुपित होकर [शिखण्डी को छोड़कर और] सबको तीन तीन बाण मारे। इसके पश्चात् एक भल्ल बाण से द्रुपद का धनुष काट डाला। राजा द्रुपद ने दूसरा धनुष लेकर पाँच बाण भीष्म को और तीन बाण उनके सारथी को मारे ॥१०।१२॥ तब भीमसेन, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, कैकेयगण, यादवश्रेष्ठ सात्यकि और धृष्टद्युम्न, ये लोग द्रुपद की रक्षा करने के लिए भीष्म

अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ १४ ॥
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः ।
प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप ॥ १५ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तव तेषां च संकुलम् ।
नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १६ ॥
रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद्यमसादनम् ।
तथेतरान्समासाद्य नरनागाश्वसादिनः ॥ १७ ॥
अनयन्परलोकाय शरैः सन्नतपर्वभिः ।
शरैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशाम्पते ॥ १८ ॥
रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा ।
विप्रद्रुताश्च समरे दिशो जग्मुः समन्ततः ॥ १९ ॥
मृद्नन्तस्ते नरान्राजन्हयांश्च सुबहून्रणे ।
वातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः ॥ २० ॥
रथिनश्च रथैर्हीना वर्मिणस्तेजसा युताः ।
कुण्डलोष्णीषिणः सर्वे निष्काङ्गदविभूषणाः ॥ २१ ॥
देवपुत्रसमाः सर्वे शौर्ये शक्रसमा युधि ।
ऋद्ध्या वैश्रवणं चाऽति नयेन च बृहस्पतिम् ॥ २२ ॥
सर्वलोकेश्वराः शूरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।
विप्रद्रुता व्यदृश्यन्त प्राकृता इव मानवाः ॥ २३ ॥
दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि निपेतुः सर्वशब्दगाः ॥ २४ ॥

---

की ओर चले। हे महाराज ! आपके पक्ष के सब वीर भी सेना साथ लेकर भीष्म की रक्षा करने के लिए पाण्डवों की ओर दौंडे ॥१३।१५॥ उस समय दोनों ओर के रथी, हाथी, घोड़े और पैदल परस्पर भिड़कर घोर युद्ध करने लगे। रथी रथी के साथ, हाथी हाथी के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, सवार सवारों के साथ और पैदल सैनिक पैदल सैनिकों के साथ भिड़कर यमपुरी को जाने लगे। हे राजेन्द्र ! स्थान-स्थान पर दारुण बाणों के प्रहार से टूट-फटकर, सारथी और रथी से शून्य होकर, बड़े-बड़े रथ समरभूमि में इधर-उधर फिरने लगे ॥१६।१८॥ मैंने देखा कि गन्धर्व नगरसदृश, वायुवेगगामी घोड़ों से युक्त, बड़े-बड़े रथ मनुष्यों और घोड़ों को रौंदते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। हे भूपाल ! बृहस्पति के समान नीति में निपुण, कुबेर के समान सम्पत्तिशाली, इन्द्र के समान शूर, कुण्डल पगड़ी-निष्क-अङ्गद-कवच आदि से अलंकृत, देवपुत्र के समान रथी राजा लोग बड़े-बड़े देशों के नरेश होकर भी, रथ नष्ट हो जाने

चर्मभिश्चामरैश्चित्रैः पताकाभिश्च मारिष ।
छत्रैः सितैर्हेमदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः ॥ २५ ॥
विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश ।
नवमेघप्रतीकाशा जलदोपमनिःस्वनाः ॥ २६ ॥
तथैव दन्तिभिर्हीना गजारोहा विशाम्पते ।
प्रधावन्तोऽन्वदृश्यन्त तव तेषां च संकुले ॥ २७ ॥
नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान्हेमभूषितान् ।
वातायमानानद्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥
अश्वारोहान्हतैरश्वैर्गृहीतासीन्समन्ततः ।
द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे ॥ २९ ॥
गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे ।
ययौ प्रमृद्य तरसा पादातान्वाजिनस्तथा ॥ ३० ॥
तथैव च रथान्राजन्प्रममर्द रणे गजः ।
रथाश्चैव समासाद्य पतितांस्तुरगान्भुवि ॥ ३१ ॥
व्यमृद्नन्समरे राजंस्तुरगांश्च नरान्रणे ।
एवं ते बहुधा राजन्प्रत्यमृद्नन्परस्परम् ॥ ३२ ॥
तस्मिन्रौद्रे तथा युद्धे वर्तमाने महाभये ।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्त्रतरङ्गिणी ॥ ३३ ॥
अस्थिसङ्घातसम्बाधा केशशैवलशाद्वला ।
रथह्रदा शरावर्ता हयमीना दुरासदा ॥ ३४ ॥

शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला ।
कवचोष्णीषफेनौघा धनुर्वेगासिकच्छपा ॥ ३५ ॥
पताकाध्वजवृक्षाढ्या मर्त्यकूलापहारिणी ।
क्रव्यादहंससङ्कीर्णा यमराष्ट्रविवर्धनी ॥ ३६ ॥
तां नदीं क्षत्रियाः शूरा रथनागहयप्लवैः ।
प्रतेरुर्बहवो राजन्भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥ ३७ ॥
अपोवाह रणे भीरून्कश्मलेनाभिसंवृतान् ।
यथा वैतरणी प्रेतान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ३८ ॥
प्राक्रोशन्क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद्वैशसं महत् ।
दुर्योधनापराधेन गच्छन्ति क्षत्रियाः क्षयम् ॥ ३९ ॥
गुणवत्सु कथं द्वेषं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
कृतवान्पाण्डुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥ ४० ॥
एवं बहुविधा वाचः श्रूयन्ते स्म परस्परम् ।
पाण्डव-स्तव-संयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः ॥ ४१ ॥
ता निशम्य ततो वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ४२ ॥
भीष्मं द्रोणं कृपं चैव शल्यं चोवाच भारत ।
युध्यध्वमनहङ्काराः किं चिरं कुरुथेति च ॥ ४३ ॥
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
अक्षद्यूतकृतं राजन्सुघोरं वैशसं तदा ॥ ४४ ॥

उसमें सेवार और घास की जगह थे। टूटे हुए रथ उसके भीतर के गहरे कुण्ड थे। बाण ही भँवर थे; घोड़ों की लाशें मछलियाँ थीं। कटे हुए सिर कमल के फूल थे। हाथियों के शरीर बड़े-बड़े ग्राह थे। कवच और पगड़ियाँ फेने की जगह बह रही थीं। धनुष ही उसका वेगशाली प्रवाह था। तलवारें कच्छप की जगह थीं। पताका और ध्वजाएँ किनारे पर के वृक्षों की जगह थीं। मनुष्यों की लाशें उसके कगारे थे। मांसाहारी पक्षी हंसों के समान उसके आस-पास उड़ रहे थे। वह नदी यम के राज्य को बढ़ा रही थी ॥३३।३६॥ बहुत से शूरवीर महारथी क्षत्रिय निर्भय भाव से नौका के समान घोड़े-हाथी-रथ आदि पर चढ़कर उस नदी के पार जा रहे थे। जैसे वैतरणी नदी मरे हुओं को यमपुर में पहुँचाती है वैसे ही वह रक्त की नदी कायर और मूर्च्छित-से पुरुषों को रणभूमि से दूर हटाने लगी। क्षत्रियगण उस महाघोर हत्याकाण्ड को देखकर चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे —"हे क्षत्रियो! दुर्योधन के अपराध से ही सब क्षत्रिय नष्ट हो रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र ने ही लोभ और मोह के वश तथा पापपरायण होकर गुणी पाण्डवों से द्वेष क्यों किया?" ॥३७।४०॥ हे महाराज! इस प्रकार सब क्षत्रिय पाण्डवों की प्रशंसा और आपके पुत्रों की निन्दा से भरी अनेक प्रकार की बातें कर रहे थे। सब योद्धा क्षत्रियों के मुख से ऐसी बातें सुन-

यत्पुरा न निगृह्णासि वार्यमाणो महात्मभिः ।
वैचित्रवीर्य तस्येदं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ४५ ॥
न हि पाण्डुसुता राजन्ससैन्याः सपदानुगाः ।
रक्षन्ति समरे प्राणान्कौरवा वापि संयुगे ॥ ४६ ॥
एतस्मात्कारणाद्धोरो वर्तते स्वजनक्षयः ।
दैवाद्वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्नृप ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

कर सबके अपराधी आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, कृप और राजा शल्य से कहा—"हे वीरो! तुम लोग अहङ्कार छोड़कर युद्ध करो। विलम्ब क्यों कर रहे हो!" ॥४१।४३॥ हे राजेन्द्र! तब उसी द्यूतक्रीड़ा के कारण फिर कौरवों और पाण्डवों का घोर युद्ध होने लगा। पहले व्यास, विदुर आदि महात्माओं ने बारम्बार आपको मना किया था परन्तु आपने उनकी बात नहीं मानी, उसी का यह दारुण परिणाम अब प्रत्यक्ष देखिए। हे राजेन्द्र! पाण्डव या कौरव और उनके सैनिक अनुगत बन्धु-बान्धव आदि सभी, प्राणों का मोह छोड़कर, घोर युद्ध कर रहे हैं। इस भयङ्कर स्वजन-विनाश का कारण चाहे दैव को मानिए, चाहे अपने अनुचित व्यवहार को मानिए और चाहे अपने हितचिन्तकों का कहा न मानने के अपराध को मानिए ॥४४।४७॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ तीन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०३ ॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तान्नरव्याघ्रः सुशर्मानुचरान्नृपान् ।
अनयत्प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः ॥ १ ॥
सुशर्माऽपि ततो बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे ।
वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः ॥ २ ॥
तं निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः ।
सुशर्मणो रणे योधान्प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
व्यद्रवन्त रणे राजन्भये जाते महारथाः ॥ ४ ॥
उत्सृज्य तुरगान्केचिद्रथान्केचिच्च मारिष ।
गजानन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५ ॥

एक सौ चार अध्याय ॥ १०४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! पुरुषसिंह अर्जुन तीक्ष्ण बाण बरसाकर त्रिगर्तराज सुशर्मा के साथियों को यमपुर भेजने लगे। सुशर्मा ने पहले सत्तर बाण श्रीकृष्ण को और फिर नव बाण अर्जुन को मारे। महारथी अर्जुन ने अनायास सुशर्मा के बाणों को व्यर्थ करके उसके सहायक कई योद्धाओं को मार डाला ॥१।३॥ सुशर्मा के बचे हुए साथी योद्धा, प्रलयकाल में काल के समान संहार करनेवाले, अर्जुन

अपरे तु तदाऽऽदाय वाजिनागरथान्रणे ।
त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशाम्पते ॥ ६ ॥
पादाताश्चाऽपि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे ।
निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥ ७ ॥
वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा ।
तथाऽन्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥ ८ ॥
तद्बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः ॥ ९ ॥
सर्वोद्योगेन महता धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते ॥ १० ॥
स एकः समरे तस्थौ किरन्बहुविधान्शरान् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः शेषा हि प्रद्रुता नराः ॥ ११ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्सर्वोद्योगेन दंशिताः ।
प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत ॥ १२ ॥
ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः ।
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥ १३ ॥
ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥
एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः ।
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ १५ ॥

के बाणों से पीड़ित होकर भय के मारे प्राण लेकर भाग खड़े हुए । कोई घोड़े को, कोई हाथी को और कोई रथ को छोड़कर जिधर मार्ग मिला उधर पैदल ही भाग खड़ा हुआ । पैदल सेना के लोग भी उस महारण में शस्त्र-अस्त्र फेंककर, किसी का मार्ग न देखकर, इधर-उधर भागने लगे। त्रिगर्तराज सुशर्मा और अन्य राजा लोग उन्हें बारम्बार उत्साहित करते और ठहरने के लिए कहते थे, परन्तु उनमें से कोई भी नहीं ठहरा ॥४।८॥ हे महाराज ! दुर्योधन ने सुशर्मा की सेना को जब भागते देखा तब वे आप सब सेना के आगे हुए, और भीष्म पितामह को अपने आगे करके सुशर्मा के प्राण बचाने के लिए उद्योग करते हुए अर्जुन की ओर बढ़ने लगे । अपने भाइयों के साथ केवल दुर्योधन ही बाणवर्षा करते हुए अर्जुन के सन्मुख ठहरे, और सब योद्धा भाग गये । उधर कवचधारी पाण्डव भी पूर्ण उद्योग के साथ अर्जुन की सहायता करने के लिए भीष्म पितामह के सन्मुख आये ॥९।१२॥ युद्ध में अर्जुन का अमित पराक्रम जानकर भी वे लोग उत्साह के साथ कोलाहल और सिंहनाद करते हुए चारों ओर से भीष्म पर आक्रमण करने चले । तालचिह्न युक्त पताका से शोभित रथ पर बैठे हुए शूर भीष्म पितामह ने तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवसेना को ढक दिया । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार मध्याह्न के समय कौरवों के साथ पाण्डवों का घमासान

सात्यकिः कृतवर्माणं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥ १६ ॥
तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चाऽस्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥
भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीकं प्रपितामहम् ।
विद्ध्वा नदन्महानादं शार्दूल इव कानने ॥ १८ ॥
आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः ।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥ १९ ॥
चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम् ।
समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ॥ २० ॥
यथा दिवि महाघोरौ राजन्बुधशनैश्चरौ ।
तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः ॥ २१ ॥
ननाद बलवान्नादं सौभद्रः परवीरहा ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः ॥ २२ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते ।
द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २३ ॥
सारथिं चाऽस्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी ।
पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे ॥ २४ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम् ॥ २५ ॥

---

युद्ध होने लगा ॥१३।१५॥ महारथी सात्यकि ने कृतवर्मा को पाँच बाण मारे। इसके अनन्तर उन्होंने और भी हजारों बाण बरसाये। राजा द्रुपद ने पहले तीक्ष्ण बाणों से द्रोणाचार्य को घायल करके फिर सत्तर बाण उनको और पाँच बाण उनके सारथी को मारे। भीमसेन ने प्रपितामह राजा बाह्लीक को बाणों से घायल करके घोर सिंहनाद किया ॥१६।१८॥ पहले चित्रसेन ने बहुत से तीक्ष्ण बाण अभिमन्यु को मारे। शूर अभिमन्यु शत्रुओं पर हजारों बाण बरसा रहे थे। चित्रसेन के प्रहार करने पर उन्होंने भी चित्रसेन को तीन बाण मारे। हे महाराज! जैसे आकाश में महाघोर ग्रह बुध और शनैश्चर शोभाय-मान हों वैसे ही वे दोनों वीर युद्ध करते समय शोभा को प्राप्त हुए। वीर शत्रुओं का संहार करनेवाले अभिमन्यु ने नव बाणों से चित्रसेन के सारथी और चारों घोड़ों को मारकर सिंहनाद किया। वीर चित्रसेन बिना घोड़ों के रथ से कूदकर स्फूर्ति के साथ अपने भाई दुर्मुख के रथ पर चले गये ॥१९।२३॥ पराक्रमी द्रोणाचार्य ने बहुत से तीक्ष्ण बाण द्रुपद को और उनके सारथी को मारे। राजा द्रुपद सब सेना के सामने द्रोण के बाणों से पीड़ित होकर, उनके साथ अपने पिछले वैर को स्मरण कर, घोड़ों को शीघ्रता से हँकवाकर उनके सामने से हट गये। भीमसेन ने क्षणभर में सब सेना के सम्मुख महाराज बाह्लीक के

व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ॥ २६ ॥
अवप्लुत्य ततो वाहाद्वाह्लीकः पुरुषोत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे ॥ २७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे ।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम् ॥ २८ ॥
स विद्ध्वा भारतं षष्ट्या निशितैर्लोमवाहिभिः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे विधुन्वानो महद्धनुः ॥ २९ ॥
तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाऽथ पितामहः ।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥ ३० ॥
तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम् ।
ध्वंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः ॥ ३१ ॥
अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा ।
न्यपतद्धरणीपृष्ठे महोल्केव महाप्रभा ॥ ३२ ॥
वार्ष्णेयस्तु ततो राजन्स्वां शक्तिं कनकप्रभाम् ।
वेगवद्गृह्य चिक्षेप पितामहरथं प्रति ॥ ३३ ॥
वार्ष्णेयभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ॥ ३४ ॥
तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारतः ।
क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां सा व्यशीर्यत मेदिनीम् ॥ ३५ ॥

घोड़ों को और रथ सहित सारथी को नष्ट कर दिया। हे राजेन्द्र ! पुरुषश्रेष्ठ बाह्लीक प्राणसङ्कट की अवस्था में पड़कर भय के मारे स्फूर्ति के साथ टूटे हुए रथ से कूदकर लक्ष्मण कुमार के रथ पर चढ़ गये ॥२३।२७॥ सात्यकि ने कई प्रकार के बाण मारकर कृतवर्मा को युद्ध से हटा दिया। इसके अनन्तर वे भीष्म के पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्फूर्ति के साथ भयानक लोम-वाही साठ बाण भीष्म को मारे। वे इतनी स्फूर्ति के साथ मण्डलाकार धनुष घुमाकर बाण बरसा रहे थे कि देखने से जान पड़ता था मानो रथ पर नृत्य कर रहे हैं ॥२८।२९॥ तब भीष्म पितामह ने हेम-चित्रित वेगवती नागिन-सी एक तीक्ष्ण शक्ति हाथ में ली, और वह शक्ति पूर्णबल से सात्यकि को मारी। महायशस्वी सात्यकि उस मृत्युतुल्य अमोघ शक्ति को सहसा आते देखकर बड़ी स्फूर्ति के साथ उसका प्रहार बचा गये। वह भयङ्कर शक्ति बड़ी उल्का के समान पृथ्वी में प्रवेश हो गई ॥३०।३२॥ अब वीर सात्यकि ने अपनी शक्ति उठाकर बड़े वेग से भीष्म के रथ पर फेंकी। सात्यकि के बाहुबल से चलाई गई बड़े वेग से आती हुई वह शक्ति मनुष्यों पर आक्रमण करनेवाली कालरात्रि के समान जान पड़ी। परन्तु भीष्म ने उस शक्ति को सहसा गिरते देख दो तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणों से काटकर गिरा दिया। वह शक्ति दो टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी

छित्वा शक्तिं तु गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्छत्रुकर्शनः ॥ ३६ ॥
ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजाः ।
परिवव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात् ॥ ३७ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि वार्ष्णेययुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

॥३३।३५॥ उस शक्ति को काटने के पश्चात् शत्रुदमन भीष्म ने क्रोध की हँसी हँसकर सात्यकि की छाती में नव बाण मारे। तब भीष्म के अतुल पराक्रम से सात्यकि की रक्षा करने के लिए पाण्डवों ने भीष्म को चारों ओर से घेर लिया। जय की इच्छा रखनेवाले कौरव और पाण्डव परस्पर प्रहार करते हुए घोर युद्ध करने लगे ॥३६।३८॥

— ० —

भीष्मपर्व का एक सौ चार अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०४ ॥

---

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

सञ्जय उवाच — दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम् ।
यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम् ॥ १ ॥
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत ।
एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शूरनिषूदनः ॥ २ ॥
छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः ॥ ३ ॥
रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः ।
निहन्यात्समरे यत्तान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ॥ ४ ॥
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः ॥ ५ ॥
स भवान्सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम् ।
समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु ॥ ६ ॥

एक सौ पाँच अध्याय ॥ १०५ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! पितामह भीष्म को वर्षाकाल के मेघों में घिरे हुए सूर्य की तरह पाण्डवों की सेना के घिराव में देखकर राजा दुर्योधन ने दुःशासन से कहा — हे भाई! यह देखो, शत्रुदमन भीष्म को पाण्डवों की सेना ने घेर लिया है। इस समय उन महावीर की रक्षा और सहायता करना हमारा परम कर्तव्य है। यदि हम पितामह की रक्षा कर सकेंगे तो वे अकेले ही पाञ्चालों और पाण्डवों को मार डालेंगे। भीष्म समर में अनेक अद्भुत दुष्कर कार्य करनेवाले और हमारे प्रधान रक्षक हैं। इसलिए तुम अपनी सारी

स एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ॥ ७ ॥
ततः शतसहस्राणां हयानां सुबलात्मजः ।
विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥ ८ ॥
दर्पितानां सुवेशानां बलस्थानां पताकिनाम् ।
शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥ ९ ॥
नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम् ।
न्यवारयन्नरश्रेष्ठान्परिवार्य समन्ततः ॥ १० ॥
ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम् ।
अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे ॥ ११ ॥
तैः प्रविष्टैर्महावेगैर्गरुत्मद्भिरिवाऽऽहवे ।
खुराहता धरा राजंश्चकम्पे च ननाद च ॥ १२ ॥
खुरशब्दश्च सुमहान्वाजिनां शुश्रुवे तदा ।
महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ १३ ॥
उत्पतद्भिश्च तैस्तत्र समुद्भूतं महद्रजः ।
दिवाकररथं प्राप्य च्छादयामास भास्करम् ॥ १४ ॥
वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभिता पाण्डवी चमूः ।
निपतद्भिर्महावेगैर्हंसैरिव महत्सरः ॥ १५ ॥
हेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ।
ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १६ ॥

सेना के साथ जाकर पितामह की रक्षा करो ॥१।६॥ दुर्योधन की आज्ञा पाकर वीर दुःशासन ने भीष्म को अपनी सेना के मध्य में कर लिया। सब लोग बड़ी सावधानी से पितामह की रक्षा करने लगे। नकुल, सहदेव और धर्मराज से प्रधान रथी शकुनि युद्ध करने लगे। निर्मल प्रास, ऋष्टि और तोमर आदि शस्त्र धारण करनेवाले, सुशिक्षित, युद्धनिपुण वीर शकुनि के साथ थे। वे महावेगशाली पताका-शोभित घोड़ों पर सवार थे। ऐसे सहस्रों घुड़सवारों ने शकुनि के साथ जाकर तीनों पाण्डवों को घेर लिया ॥७।१०॥ राजा दुर्योधन ने पाण्डवों की गति रोकने के लिए दस हज़ार घुड़सवार सेना और भेज दी। गरुड़ की तरह शीघ्र चलनेवाले घोड़ों के दल आने पर उनकी टापों से समरभूमि मानो काँप उठी और टापों की आवाज से गूँज उठी। अग्नि लगने पर जलते हुए बाँसों की पोरें फटने से जैसा घोर शब्द होता है वैसा ही शब्द घोड़ों की टापें पृथ्वी पर पड़ने से हो रहा था। उनकी टापों से उड़ी हुई धूल के मेघ आकाश में छा गये और उसमें सूर्यमण्डल छिप गया ॥११। १४॥ जैसे हंसों के प्रवेश होने से सरोवर का जल क्षोभ को प्राप्त होता है वैसे ही वेगसम्पन्न घुड़सवार सेना आने पर पाण्डवों की सेना में हलचल मच गई। उस समय वहाँ घोड़ों की हिनहिनाहट और अस्त्र-शस्त्रों की झनकार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं

प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम् ।
उद्‌वृत्तस्य महाराज प्रावृट्‌कालेऽतिपूर्यतः ॥ १७ ॥
पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः ।
ततस्ते रथिनो राजञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि शरेण हयसादिनाम् ।
ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥ १९ ॥
नागैरिव महानागा यथावद्गिरिगह्वरे ।
तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ।
अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥ २१ ॥
अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः ।
ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निषूदिताः ॥ २२ ॥
पतिताः पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।
वध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः ॥ २३ ॥
यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ।
पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महामृधे ॥ २४ ॥
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे ।
ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम् ॥ २५ ॥
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः ।
एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे ॥ २६ ॥
पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो ।
तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम् ॥ २७ ॥

सुन पड़ता था। तटभूमि जैसे वर्षाकाल की पूर्णिमा के दिन क्षोभ को प्राप्त महासागर के प्रचण्ड वेग को रोकती है वैसे ही राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव ने उन घुड़सवार वीरों के वेग को तत्काल ही रोक दिया ॥१५।१८॥ तीनों वीर भाई तीक्ष्ण बाणों और प्रासों से उनके सिर काटने लगे। घुड़सवार लोग पाण्डवों के बाणों से मरकर, पर्वत कन्दरा में स्थित नागों द्वारा निहत महानागों की तरह, गिरने लगे। उनके सिर पेड़ से टपकनेवाले पके हुए ताड़-फल के समान पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे ॥१८।२३॥ बहुत से घोड़े भी सवारों के साथ मरकर चारों ओर गिरने लगे। पाण्डवों के बाणों से अत्यन्त व्यथित घोड़े, सिंह के सताये हुए मृगों की तरह, प्राण ले-लेकर भागने लगे। तीनों पाण्डव इस प्रकार युद्ध में शत्रुपक्ष को हराकर भेरी, शङ्ख आदि बजाने लगे ॥२३।२५॥ राजा दुर्योधन ने अपने घुड़सवारों को हारकर भागते देख मद्रराज शल्य से कहा—हे राजेन्द्र! वह देखो, पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव हमारे सामने

त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः ।
पुत्रस्य तव तद्वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान् ॥ २८ ॥
स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
तदाऽऽपतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्बलम् ॥ २९ ॥
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ।
मद्रराजं च समरे धर्मराजो महारथः ॥ ३० ॥
दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे ।
नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्मगैः ॥ ३१ ॥
मद्रराजोऽपि तान्सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः ।
युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥
माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ।
ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ ३३ ॥
मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरममित्रजित् ॥ ३४ ॥
ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

ही हमारी सेना को मारकर भगा रहे हैं। हे महाभाग! आपका बल-विक्रम पृथ्वी में प्रसिद्ध है। इसलिए तट-भूमि जैसे समुद्र के वेग को रोकती है वैसे ही आप भी ज्येष्ठ पाण्डव को रोकिए ॥२५।२८॥ हे महाराज! प्रतापी राजा शल्य दुर्योधन के ये वचन सुनकर असंख्य रथों के साथ युधिष्ठिर के समीप चले। राजा युधिष्ठिर ने शल्य की भारी सेना के साथ बड़े वेग से अपनी ओर आते देखकर उन्हें अनायास रोक लिया। युधिष्ठिर ने शल्य की छाती में दस बाण मारे। नकुल और सहदेव ने भी सात बाण मारे ॥२८।३१॥ मद्रराज शल्य ने भी तीनों को तीन-तीन बाण मारे। इसके अनन्तर क्रुद्ध होकर फिर युधिष्ठिर को तीक्ष्ण साठ बाण और नकुल सहदेव को दो-दो बाण मारे। हे राजेन्द्र! शत्रुवीरनाशक महाबाहु भीमसेन ने जब राजा युधिष्ठिर को मृत्यु के पञ्जे में फँसे और शल्य के वशवर्ती देखा तब वे बड़े वेग से उनके पास दौड़े गये। सूर्य उस समय पश्चिम आकाश में पहुँच चुके थे। दोनों ओर के वीर प्राणों का मोह छोड़कर घमासान युद्ध करने लगे ॥३२।३५॥

भीष्मपर्व का एक सौ पाँच अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०५ ॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सञ्जय उवाच—ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः ।
आजघान रणे पार्थान्सहसेनान्समन्ततः ॥ १ ॥

भीमं द्वादशभिर्विध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः ।
नकुलं च त्रिभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २ ॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।
धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा ननाद सुमहाबलः ॥ ३ ॥
तं द्वादशार्ध्यैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः ।
धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत्पितामहम् ।
द्रोणस्तु सात्यकिं विध्वा भीमसेनमविध्यत ॥ ५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः ।
तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ६ ॥
तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् ।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः॥ ७ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
संग्रामे नाऽजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ८ ॥
तथैवाऽन्ये महीपाला नानादेशसमागताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ॥ ९ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्परिवव्रुः पितामहम् ।
स समन्तात्परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥ १० ॥
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन्परान् ।
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ॥ ११ ॥

एक सौ छः अध्याय ॥ १०६ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर पराक्रमी भीष्म क्रोध से उत्तेजित होकर तीक्ष्ण बाणों से सेना सहित पाण्डवों को पीड़ित करने लगे। उन्होंने भीमसेन को बारह, सात्यकि को नव, नकुल को तीन, सहदेव को सात और युधिष्ठिर के हृदय तथा हाथों में बारह बाण मारे। इसके पश्चात् कई बाणों से धृष्टद्युम्न को घायल करके वे सिंहनाद करने लगे ॥१।३॥ तब नकुल ने बारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर, भीमसेन ने सात और युधिष्ठिर ने बारह बाण भीष्म पितामह को मारे। महाबली द्रोणाचार्य ने सात्यकि और भीमसेन को यमदण्डतुल्य पाँच-पाँच उग्र बाण मारे ॥४।६॥ जैसे कोई गजराज को अङ्कुश मारे वैसे ही सात्यकि और भीमसेन ने भी ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को तीन-तीन तीक्ष्ण बाण मारे। सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देश के योद्धा लोग तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित होकर भी संग्राम में भीष्म को छोड़कर नहीं भागे। अन्य अनेक देशों के योद्धा और राजा भी विविध शस्त्र लेकर पाण्डवों से युद्ध करने लगे। ॥६।९॥ पाण्डवगण भी अपनी सेना के साथ चारों ओर से पितामह भीष्म को घेर-कर उन पर प्रहार करने लगे। उस समय रथों से

शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान् ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् ।
अपातयद् ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥ १३ ॥
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ।
निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे ॥ १४ ॥
अकरोत्स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥ १५ ॥
निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत ।
अमोघा ह्यपतन्बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ॥ १६ ॥
नाऽसज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः ।
हतवीरान्रथान्राजन्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ॥ १७ ॥
अपश्याम महाराज ह्रियमाणान्रणाजिरे ।
चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १८ ॥
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १९ ॥
संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २० ॥
भग्नाक्षोपस्करान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २१ ॥

घिरे हुए भीष्म वन में दावानल के समान प्रज्वलित होकर शत्रुसेना को बाणों से नष्ट करने लगे। रथ-समूह भीष्मरूप अग्नि के कुण्ड थे। धनुष उसकी ज्वाला था। तलवार, गदा, शक्ति आदि शस्त्र ईंधन थे। बाण चिनगारियाँ थे ॥१०।१२॥ वे गृध्रपक्ष-शोभित सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण इषु, कर्णी, नालीक, नाराच आदि बाणों से पाण्डवसेना को व्याप्त करके ध्वजाओं को काट-काटकर गिराने लगे। ध्वजाएँ कट जाने से सब रथ मुण्डित तालवृक्षों के समान देख पड़ने लगे। इसके पश्चात् वे हाथियों, रथों और घोड़ों पर सवार योद्धाओं को मार-मारकर पृथ्वी पर गिराने लगे ॥१२।१५॥ उनके धनुष की डोरी का विकट शब्द सुनकर सब प्राणी भय से काँपने लगे। हे महाराज! महावीर भीष्म के धनुष से निकले हुए अमोघ बाण शत्रुओं के कवच तोड़कर शरीर के भीतर प्रवेश होने लगे। इसके पश्चात् मैंने देखा कि वेग से चलनेवाले घोड़े—रथी और सारथी से शून्य—रथों को खींचते हुए युद्धभूमि में इधर-उधर फिर रहे हैं ॥१५।१८॥ उच्चकुल में उत्पन्न, युद्ध में कभी पीठ न दिखानेवाले, सुवर्ण-निर्मित ध्वजाओं से शोभित रथों पर बैठे हुए, देहत्याग का निश्चय किये हुए चौदह हजार चेदि, काशी और करूष देश के योद्धा महारथी ज्योंही मुख फैलाये हुए काल के समान भीष्म के सामने आये त्योंही हाथी, घोड़े आदि अपने वाहनों के साथ मर-मरकर

सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः ।
शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशाम्पते ॥ २२ ॥
गदाभिर्भिन्दिपालैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः ।
अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष ॥ २३ ॥
बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तलत्रैरंगुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २४ ॥
चापैश्च बहुधा च्छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ।
हतारोहा गजा राजन्हयाश्च हयसादिनः ॥ २५ ॥
न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
यतमानाश्च ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ॥ २६ ॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।
महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ २७ ॥
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।
आविद्धरथनागाश्वं पतितध्वजसंकुलम् ॥ २८ ॥
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।
जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ २९ ॥
प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ।
विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥ ३० ॥
प्रकीर्य केशान्धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।
तद्गोकुलऽमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकूबरम् ॥ ३१ ॥

---

यमपुर को सिधारने लगे। सैकड़ों-सहस्रों योद्धाओं में किसी के रथ का युगकाष्ठ और अन्य अंश और किसी के रथ के पहिये बाणों से छिन्न-भिन्न होते देख पड़ते थे ॥१८।२१॥ टूटे हुए रथ, वरूथ, कटे हुए बाण, कवच, पट्टिश, गदा, भिन्दिपाल, तरकस, चक्र, खड्ग, कटे हुए कुण्डल-शोभित सिर, तलत्राण, अंगुलित्राण और कटकर गिरी हुई ध्वजा-पताका आदि से यह युद्धभूमि परिपूर्ण थी। सैकड़ों-सहस्रों हाथी, घोड़े और उनके सवार मारे गये। सब महारथी भीष्म के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर युद्धभूमि से भागने लगे। पाण्डवगण किसी प्रकार उन्हें नहीं रोक सके। हे भारत! उस समय पाण्डवों की सेना महेन्द्रसदृश महावीर भीष्म के बाणों की चोट से ऐसी अस्तव्यस्त हो गई कि दो मनुष्य भी एक साथ नहीं भाग सकते थे॥२५।२८॥ सब अपनी-अपनी जान लेकर भाग रहे थे, दूसरे की ओर देखते भी नहीं थे। रथ, हाथी, घोड़े, पैदल और ध्वजाओं से पूर्ण पाण्डवसेना अचेत सी होकर हाहाकार और आर्तनाद करने लगी। दैवदुर्विपाक में पड़कर पिता पुत्र को, पुत्र पिता को और प्रिय बन्धु प्रिय बन्धु को मारने लगा। युधिष्ठिर की सब सेना कवच फेंककर, बाल खोलकर, 'त्राहि त्राहि" करती हुई चारों ओर भागी। रथों के अङ्ग-भङ्ग हो गये। अनेक रथ उलट पुलट गये। सिंह के आक्रमण से व्याकुल और डरी हुई

ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ३२ ॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।
अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः कांक्षितस्तव ॥ ३३ ॥
प्रहराऽस्मिन्नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।
यत्पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे ॥ ३४ ॥
विराटनगरे तात सञ्जयस्य समीपतः ।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ॥ ३५ ॥
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति सङ्गरे ।
इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ॥ ३६ ॥
क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ।
इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥ ३७ ॥
अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।
अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम् ॥ ३८ ॥
दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ।
चोदयाऽश्वान्यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥ ३९ ॥
पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
स चाऽश्वान्रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ॥ ४० ॥
यतो भीष्मस्ततो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ।
ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ॥ ४१ ॥

---

गउओं के झुण्ड की सी दशा पाण्डवसेना की देख पड़ा। सब लोग आर्तनाद कर रहे थे ॥२८।३२॥ युधिष्ठिर की सेना को यों भागते देखकर वासुदेव ने रथ रोककर अर्जुन से कहा—हे धनञ्जय! यह तुम्हारा अभीष्ट समय उपस्थित है। इस समय तुम मोह को छोड़कर युद्ध करो। हे पुरुषसिंह! वीर भीष्म पर प्रहार करो। तुमने एक समय विराटनगर में सञ्जय के आगे कहा था कि भीष्म, द्रोण आदि कौरवपक्ष के योद्धा मुझसे युद्ध करने आवेंगे तो मैं उनको मारूँगा; उनके साथी भी जीते नहीं बचेंगे। इस समय अपनी उन बातों को पूर्ण करो। सन्ताप और मोह छोड़कर क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध करो॥३२।३७॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने तिरछी दृष्टि से देखकर, मुख लटकाकर, अनिच्छापूर्वक कहा—हे हृषीकेश! अवध्य गुरुजन को मारकर नरक का कारणस्वरूप राज्य प्राप्त करने की अपेक्षा मुझे वनवास के दुःख भोगना ही श्रेष्ठ जान पड़ता है। तुम्हारी बात न मानना भी मेरी शक्ति के बाहर है। रथ चलाओ। मैं तुम्हारी आज्ञा से दुर्धर्ष कुरुपितामह वृद्ध भीष्म को आज युद्ध में मार गिराऊँगा ॥३७।४०॥ अब भगवान् वासुदेव सूर्य के समान तेजस्वी दुर्निरीक्ष्य भीष्म की ओर श्वेत रङ्ग के अर्जुन के घोड़ों को हाँककर ले चले। युधिष्ठिर की सब सेना अर्जुन को भीष्म से युद्ध करने के लिए उद्यत

दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ।
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ४२ ॥
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ।
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ॥ ४३ ॥
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ।
वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः ॥ ४४ ॥
चोदयामास तानश्वान्विनुन्नान्भीष्मसायकैः ।
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ॥ ४५ ॥
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा शितैः शरैः ।
स छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ॥ ४६ ॥
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ।
चकर्ष च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४७ ॥
अथाऽस्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ।
तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ॥ ४८ ॥
गाङ्गेयस्त्वब्रवीत्पार्थं धन्विश्रेष्ठमरिन्दम ।
साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥ ४९ ॥
समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
मुमोच समरे भीष्मः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ५० ॥
आदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन् ॥ ५१ ॥

देखकर आप से ही फिर लौट पड़ी ॥४०।४२॥ महावीर भीष्म बारम्बार सिंहनाद करके अर्जुन के रथ पर बाण बरसाने लगे। क्षण भर में ही भीष्म के बाणों से अर्जुन का रथ ऐसा छिप गया कि घोड़े, सारथी और रथ कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। निर्भय वासुदेव धैर्य के साथ उन भीष्म के बाणों से व्याकुल घोड़ों को चलाने लगे ॥४२।४५॥ तब महावीर अर्जुन ने मेघगर्जन का सा गम्भीर शब्द करनेवाले दिव्य गाण्डीव धनुष को लेकर तीक्ष्ण बाणों से भीष्म का धनुष काट डाला। महावीर भीष्म ने उसी क्षण और एक बड़ा धनुष उठाकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। तुरन्त ही फुर्तीले अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ वह धनुष भी काट डाला। भीष्म ने प्रसन्न होकर इस स्फूर्ति के लिए "शाबाश अर्जुन, शाबाश !" कहकर अर्जुन की प्रशंसा की ॥४५।४२॥ भीष्म ने फिर दूसरा धनुष हाथ में लिया। वे फिर अर्जुन के रथ पर बाण छोड़ने लगे। वासुदेव भी अनेक प्रकार की गतियों से घोड़े चलाकर भीष्म के बाणों को व्यर्थ करते हुए सारथी के काम में निपुणता की पराकाष्ठा दिखाने लगे। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण इस चतुराई से रथ को घुमाते थे कि भीष्म का लक्ष्य और बाण निष्फल जाते थे। वासुदेव और अर्जुन के शरीर फिर भी भीष्म के बाणों से घायल हो रहे थे और ये दोनों पुरुषसिंह परस्पर सींगों की मार से घायल श्रेष्ठ साँड़ की तरह

शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ५२ ॥
वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ।
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥ ५३ ॥
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ।
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥ ५४ ॥
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ।
नाऽमृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५५ ॥
उत्सृज्य रजतप्रख्यान्हयान्पार्थस्य मारिष ।
वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात् ॥ ५६ ॥
अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली ।
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ५७ ॥
दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः ।
क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥ ५८ ॥
ग्रसन्त इव चेतांसि तावकानां महाहवे ।
दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यतमन्तिके ॥ ५९ ॥
हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत् ।
अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा ॥ ६० ॥
पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः ।
शुशुभे विद्रवन्भीष्मं विद्युन्माली यथाऽम्बुदः ॥ ६१ ॥
स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम् ।
अभिदुद्राव वेगेन विनदन्यादवर्षभः ॥ ६२ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे ।
असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद्धनुः ॥ ६३ ॥
उवाच चैव गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ ६४ ॥
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्याऽपि ममाऽनघ ॥ ६५ ॥
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाऽद्य संयुगे ॥ ६६ ॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चाऽनघ ।
अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ॥ ६७ ॥
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ।
निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥ ६८ ॥
जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।
पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ॥ ६९ ॥
निजग्राह हृषीकेशं कथञ्चिद्दशमे पदे ।
तत एवमुवाचाऽऽर्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ॥ ७० ॥
निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः प्रणयात्सखा ।
निवर्तस्व महाबाहो नाऽनृतं कर्तुमर्हसि ॥ ७१ ॥
यत्त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव ।
मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यन्ति माधव ॥ ७२ ॥

की तरह गरजते हुए श्रीकृष्ण जब भीष्म के सम्मुख चले तब वे बिजली से शोभित मेघ के समान जान पड़े। क्योंकि उनका शरीर मरकतमणि के समान साँवला था, और उसपर रेशमी पीताम्बर बहार दिखा रहा था ॥५९।६२॥ पराक्रमी भीष्म महात्मा वासुदेव को अपनी ओर इस प्रकार झपटते देखकर तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने वैसे ही दिव्य धनुष खींचकर कहा—हे वासुदेव ! आपको प्रणाम है। आइए, आज इस महायुद्ध में मुझे मारकर वीरगति दीजिए। हे देव ! आप यदि मुझे युद्ध में मारेंगे तो उससे भी मैं अपने लिए श्रेय समझूँगा। हे गोविन्द ! आपके इस व्यवहार से आज त्रिभुवन के लोग मुझे और भी सम्मान देंगे। हे निष्पाप ! मैं आपका दास हूँ; मुझ पर जी भरकर प्रहार कीजिए ॥६३।६७॥ इधर अर्जुन भी श्रीकृष्ण के पीछे रथ से कूद पड़े। उन्होंने दौड़कर पीछे से श्रीकृष्ण के दोनों हाथ पकड़ लिये। अर्जुन के यों रोकने पर भी कुपित श्रीकृष्ण नहीं रुके, और उसी प्रकार उनको भी खींचते हुए वेग से आगे बढ़े। दस पग आगे जाने पर, किसी प्रकार पाँव जमाकर, अर्जुन उन्हें रोक सके ॥६७।७०॥ क्रोध से नेत्र लाल करके सर्प की तरह बारम्बार श्वास लेते हुए श्रीकृष्ण से सखा अर्जुन ने स्नेहपूर्ण नम्र स्वर में कहा—हे महाबाहो ! लौट चलिए। हे केशव ! आप पहले युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर

ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम् ।
शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च ॥ ७३ ॥
अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन ।
अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महारथम् ॥ ७४ ॥
तारापतिमिवाऽऽपूर्णमन्तकाले यदृच्छया ।
माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ ७५ ॥
न किञ्चिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः ।
तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः ॥ ७६ ॥
ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाऽचलौ ।
प्राणानादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तव ॥ ७७ ॥
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये ।
यथा कुरूणां सैन्यानि बभंजुर्युधि पाण्डवाः ॥ ७८ ॥
तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ।
हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ॥ ७९ ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
मध्यङ्गतमिवाऽऽदित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ॥ ८० ॥
ते वध्यमाना भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः ।
कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुषविक्रमम् ॥ ८१ ॥
वीक्षाञ्चक्रुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ।
तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत ॥ ८२ ॥

चुके हैं, उसे असत्य न कीजिए। आप शस्त्र लेकर पितामह से युद्ध करेंगे तो लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। यह सब भार तो मेरे ऊपर है। मैं पितामह को मारूँगा। मैं शस्त्र, सत्य और सुकृत की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि संग्राम में सब शत्रुओं को उनके भाई-बन्धुओं-सहित अवश्य मारूँगा ॥७३।७४॥ आप अभी देखेंगे कि मैं पूर्णचन्द्र तुल्य पितामह को रथ से गिरा दूँगा। महानुभाव श्रीकृष्ण अर्जुन के ये वचन सुन-कर वैसे ही क्रोधपूर्ण भाव से फिर रथ पर चले गये। अर्जुन और श्रीकृष्ण के रथ पर जाते ही महारथी भीष्म फिर मेघ जैसे पर्वत पर जल बरसावे वैसे ही उन पर बाण बरसाने लगे। सूर्य जैसे वसन्त ऋतु में अपनी किरणों से सब पदार्थों के तेज को ग्रहण करते हैं वैसे ही पितामह भीष्म बाणों से सबके प्राण हरने लगे ॥७५।७८॥ पाण्डवगण जैसे कौरवों की सेना को भगा रहे थे वैसे ही भीष्म पाण्डवों की सेना को भगाने लगे। इस प्रकार भागते हुए, निरुत्साह, व्याकुल सैकड़ों-सहस्रों पाण्डवपक्ष के वीर मर मरकर गिरने लगे। वे मध्याह्न काल के सूर्य के समान तेज से प्रज्वलित, अलौकिक पराक्रमी, दुष्कर कर्म करनेवाले भीष्म की ओर नेत्र उठाकर देख भी नहीं सकते थे। उनकी ओर देखते ही पाण्डवगण भयभीत होने लगे ॥७९।८१॥ हे भरत! पाण्डवपक्ष के सब सैनिक भीष्म के प्रहार से भागकर, कीचड़ में फँसी गउओं

त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः पङ्कगता इव ।
पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्बला बलिना रणे ॥ ८३ ॥
महारथं भारतदुष्प्रकम्पं शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।
भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते शरार्चिषं सूर्यमिवाऽऽतपन्तम् ॥ ८४ ॥
विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेनामस्तं जगामाऽथ सहस्ररश्मिः ।
ततो बलानां श्रमकर्शितानां मनोऽवहारं प्रति सम्बभूव ॥ ८५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

के झुण्ड के समान, उत्पीड़ित चींटियों के समान और बलवान् व्यक्ति से युद्ध करनेवाले दुर्बल पुरुषों के समान, शरणहीन होकर भीष्म की ओर फिरकर देख भी नहीं सकते थे। महापराक्रमी भीष्म बाणरूप किरणों के द्वारा, सूर्य के समान, सब राजाओं को सन्ताप पहुँचाने लगे। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार पाण्डवों की महासेना भीष्म के बाणों से नष्ट होने लगी। उस समय भगवान् सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँच गये। सैनिक लोग बहुत विश्रान्त हो गये थे। वे युद्ध के विश्राम के लिए व्याकुल हो उठे ॥८२।८५॥

भीष्मपर्व का एक सौ छः अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०६ ॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्याय ॥ १०७ ॥

सञ्जय उवाच—युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
सन्ध्या समभवद्घोरा नाऽपश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां सन्दृश्य भारत ।
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥ २ ॥
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥ ३ ॥
सोमकांश्च जितान्दृष्ट्वा निरुत्साहान्महारथान् ।
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ॥ ४ ॥
ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।
तथैव तव सैन्यानामपहारो ह्यभूत्तदा ॥ ५ ॥
ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः ।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ६ ॥

एक सौ सात अध्याय ॥ १०७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! दिन व्यतीत हो गया था। युद्धभूमि में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। सन्ध्या के समय राजा युधिष्ठिर ने अपने पक्ष की सेना को महारथी भीष्म के प्रहार से पीड़ित हो, अस्त्र-शस्त्र फेंककर, भागने और सोमकगण को पराजित कर निरुत्साह होते देखकर अत्यन्त चिन्तित हो सेनापति को युद्ध रोकने की आज्ञा दी ॥१।४॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार पाण्डवपक्ष की सेना को युद्ध से

भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः ।
नाऽलभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥ ७ ॥
भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान्सहसृञ्जयान् ।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८ ॥
न्यविशत्कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः ।
ततो रात्रिः समभवत्सर्वभूतप्रमोहिनी ॥ ९ ॥
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १० ॥
आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः ।
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ॥ ११ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे ॥ १२ ॥
कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३ ॥
न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥
यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः ।
तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥
गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ।
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट् ॥ १६ ॥

लौटते देखकर आपके पक्ष की सेना ने भी युद्ध बन्द कर दिया। शस्त्र-प्रहार से छिन्न-भिन्न महारथी योद्धा लोग अपने-अपने शिविर को लौट चले। भीष्म के बाणों से पीड़ित पाण्डवगण उनके अद्भुत युद्ध-कौशल का स्मरण करके किसी प्रकार शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते थे। वे बहुत ही व्याकुल हो उठे ॥५।७॥ उधर आपके पुत्र भीष्म की पूजा और प्रशंसा करते हुए उन्हें अपने मध्य में करके शिविर को गये। इसके पश्चात् सब प्राणियों को मोहित करनेवाली भयङ्कर रात्रि उपस्थित हुई। दुर्धर्ष पाण्डव और सृञ्जय रात्रि के समय श्रीकृष्ण आदि यादवों के साथ डेरे में बैठकर सम्मति करने लगे ॥८।१०॥ राजा युधिष्ठिर ने देर तक सोचकर श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा—हे वासुदेव! ये महाबली भीष्म मेरी सेना को वैसे ही नष्ट कर रहे हैं जैसे मत्त हाथी नरकुल के वन को रौंदता है। वे प्रज्वलित अग्नि की तरह मेरी सेना को भस्म कर रहे हैं ॥११।१४॥ तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र चलाने में चतुर महाप्रतापी पितामह क्रोधपूर्वक धनुष हाथ में लेकर, महानाग तक्षक के समान, अमोघ बाण बरसाते हैं। हम लोगों को उनकी ओर देखने तक का साहस भी नहीं होता। क्रुद्ध यमराज, वज्रपाणि इन्द्र, पाशपाणि वरुण और गदापाणि कुबेर को चाहे कोई जीत भी ले, किन्तु शस्त्रपाणि क्रुद्ध भीष्म को कोई युद्ध में नहीं पराजित कर सकता है

वरुणः पाशभृच्चाऽपि सगदो वा धनेश्वरः ।
न तु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥ १७ ॥
सोऽहमेवं गते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे ।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे ॥ १८ ॥
वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम् ।
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा ॥ १९ ॥
यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन् ।
एकतो मृत्युमभ्येति तथाऽहं भीष्ममीयिवान् ॥ २० ॥
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः ॥ २१ ॥
मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यभ्रष्टा वनङ्गताः ।
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन ॥ २२ ॥
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ।
जीवितस्याऽद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ २३ ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव ।
स्वधर्मस्याऽविरोधेन हितं व्याहर केशव ॥ २४ ॥
एवं श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद्बहुविस्तरम् ।
प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥ २५ ॥
धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर ।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः ॥ २६ ॥

॥१५।१७॥ इसलिए हे वासुदेव ! तुम बताओ, अब मैं क्या करूँ ? मैं भीष्म से बहुत भयभीत हो रहा हूँ। वे नित्य मेरी सेना नष्ट करते जा रहे हैं। मैं फिर वन में जाकर रहना ही अपने लिए श्रेष्ठ समझता हूँ। अब युद्ध करने को जी नहीं चाहता। जैसे पतङ्ग मरने के लिए ही जलती हुई अग्नि की ज्योति के ऊपर आक्रमण करते हैं, वैसे ही भीष्म से हमारा युद्ध करना है ॥१८।२०॥ हे यदुकुल-तिलक! राज्य के लोभ से युद्ध ठानकर मैं इस समय विनाश के मुख पर स्थित हूँ। मेरे ये शूर भाई भी भीष्म के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं। मेरे ही कारण, भ्रातृस्नेह के वश होकर, ये लोग भी राज्य से भ्रष्ट हुए और वन में रहे। हे मधुसूदन ! मेरे ही कारण द्रौपदी ने अब तक इतने क्लेश सहे। मैं इस समय जीवन को ही श्रेष्ठ और दुर्लभ समझता हूँ; अब इस शेष जीवन की अवस्था में कल्याण के निमित्त धर्माचरण करूँगा। हे माधव ! यदि मैं और मेरे भाई तुम्हारे अनुग्रह के पात्र हों तो तुम जिससे हम लोगों के धर्म में विरोध न हो, ऐसा हित का कार्य वर्णन करो, मैं उसका ही अनुष्ठान करूँगा ॥२१।२४॥ युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण को दया आ गई। वे उन्हें समझाते हुए बोले—हे सत्यवादी धर्मपुत्र ! आप व्याकुल न हों। आपके चारों भाई बल और पराक्रम में श्रेष्ठ हैं। ये शत्रुओं को नष्ट करनेवाले

अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ ।
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ ॥ २७ ॥
मां वा नियुंक्ष्व सौहार्दाद्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव ।
त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे ॥ २८ ॥
हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव ।
हन्ताऽस्म्येकरथेनाऽद्य कुरुवृद्धं पितामहम् ॥ ३० ॥
पश्य मे विक्रमं राजन्महेन्द्रस्येव संयुगे ।
विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात् ॥ ३१ ॥
यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः ।
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते ॥ ३२ ॥
तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते ॥ ३३ ॥
एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् ।
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम् ॥ ३४ ॥
स मां नियुंक्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहम् ।
प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः ॥ ३५ ॥
घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य सन्निधौ ।
परिरक्ष्यमिदं तावद्वचः पार्थस्य धीमतः ॥ ३६ ॥

और दुर्जय हैं। अर्जुन और भीमसेन अग्नि तथा वायु के समान तेजस्वी हैं। नकुल और सहदेव ऐसे बलवान् हैं कि इन्द्र के समान देवताओं पर भी प्रभुता कर सकते हैं ॥२५।२७॥ इन पर भी आपको विजय का विश्वास न हो तो मुझे अपना सुहृद् और हितचिन्तक समझकर भीष्म से युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। हे महाराज ! आपके कहने से ऐसा कौन कार्य है जिसे मैं महायुद्ध में नहीं कर सकता ? यदि अर्जुन स्वयं भीष्म को मारना नहीं चाहते तो मैं, दुर्योधन आदि के सामने ही, नरश्रेष्ठ भीष्म को मारूँगा। हे पाण्डव ! महावीर भीष्म के मरने से ही यदि विजय पा सकोगे तो मैं अकेला ही कुरुवृद्ध भीष्म को मार डालूँगा। हे राजेन्द्र ! युद्ध में मेरा इन्द्र के समान पराक्रम देखिएगा। महास्त्र छोड़ते हुए भीष्म को मैं रथ से गिरा दूँगा ॥२८।३१॥ जो व्यक्ति पाण्डवों का शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है। मुझे आप किसी बात में पृथक् न समझिए। आपके पक्ष के लोग मेरे हैं और मेरे पक्ष के लोग आपके अधीन हैं। विशेषकर अर्जुन के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध है। अर्जुन मेरे भाई, सखा, सम्बन्धी और शिष्य हैं। मैं उनके लिए अपने शरीर का मांस तक भी काटकर दे सकता हूँ। वीर अर्जुन भी मेरे लिए प्राण तक दे सकते हैं। हम दोनों मित्रों की परस्पर यह प्रतिज्ञा है कि एक दूसरे को सङ्कट से उबारेगा ॥३२।३४॥ इसलिए [illegible]

अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः ।
अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे ॥ ३७ ॥
स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम् ।
अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ॥ ३८ ॥
त्रिदशान्वा समुद्युक्तान्सहितान्दैत्यदानवैः ।
निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥ ३९ ॥
विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः ।
भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नाऽवबुध्यते ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर उवाच—एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
सर्वं ह्येतेन पर्याप्तास्तव वेगविधारणे ॥ ४१ ॥
नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद्यथेप्सितम् ।
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान्पक्षे व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥
सेन्द्रानपि रणे देवाञ्जयेयं जयतां वर ।
त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथम् ॥ ४३ ॥
न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् ।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥ ४४ ॥
समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे ।
मन्त्रयिष्ये तवाऽर्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥ ४५ ॥
दुर्योधनार्थं योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो ।
स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव ॥ ४६ ॥

राज ! मुझे आप आज्ञा दें, मैं समर के लिए प्रस्तुत हो जाऊँ। अर्जुन ने उपप्लव्य नगर में, उलूक दूत के आगे, प्रतिज्ञा की थी कि "मैं भीष्म को मारूँगा"। मुझे अर्जुन की यह प्रतिज्ञा सर्वथा पूर्ण करनी है। अर्जुन की अनुमति पाकर मैं अवश्य उसे पूर्ण कर सकता हूँ। अथवा युद्ध में यह कार्य करना अर्जुन के लिये कठिन नहीं है, इसलिए वही संग्राम में शत्रुदमन भीष्म को मारेंगे। अर्जुन उद्यत होकर रण में और के लिए असाध्य कर्म भी सहज ही कर सकते हैं ॥३५।३८॥ वे युद्ध में दैत्य-दानवों-सहित देवताओं को भी मार सकते हैं। फिर भीष्म को मार डालना कौन बड़ी बात है? भीष्म महावीर होने पर भी इस समय कर्तव्यज्ञान से शून्य हो रहे हैं। वे इस समय क्षुद्र सैनिकों पर अपना पराक्रम दिखाते हैं। उनकी बुद्धि भ्रष्ट-सी हो गई है, इसी से जान पड़ता है कि उनके जीवन की अवधि थोड़ी ही रह गई है ॥३९।४०॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे वासुदेव ! तुम जो कह रहे हो सो उचित है। सब कौरव मिलकर भी तुम्हारे वेग को नहीं सह सकते। तुम हमारे पक्ष में हो, इसलिए अवश्य ही हमारी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। हे गोविन्द ! तुमको हमने सहायक पाया है इसलिए भीष्म पितामह क्या हैं, हम इन्द्र सहित देवताओं को भी हरा सकते हैं। किन्तु हे माधव ! तुम युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर चुके हो इसलिए, आत्मगौरव की रक्षा का विचार करके

तस्माद्देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः ।
भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥ ४७ ॥
तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम् ।
न चिरात्सर्वे वार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम् ॥ ४८ ॥
स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्माञ्जनार्दन ।
यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्ताऽस्मि संयुगे ॥ ४९ ॥
स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः ।
बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम् ॥ ५० ॥
तं चेत्पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव ।
पितुः पितरमिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५१ ॥
सञ्जय उवाच— ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम् ।
रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम् ॥ ५२ ॥
देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ।
गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः ॥ ५३ ॥
वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः ।
ते वय तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम् ॥ ५४ ॥
गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत ।
स वो दास्यति मन्त्रं यं तेन योत्स्यामहे परान् ॥ ५५ ॥
एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम् ।
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ ५६ ॥

मैं तुम्हें युद्ध में लिप्त करना और मिथ्यावादी बनाना उचित नहीं समझता। तुम युद्ध न करके यों ही मुझको उचित सहायता दो ॥४१।४४॥ मुझसे युद्ध के पहले भीष्म प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि वे युद्ध तो दुर्योधन की ओर से करेंगे, परन्तु मुझे विजय की सम्मति देंगे। इसलिए हे माधव! वे अवश्य ही विजय की अच्छी सम्मति मुझे देंगे और उनकी कृपा से हमें राज्य प्राप्त होगा। हे वासुदेव! इस समय हम सब मिलकर उनके पास चलें। आओ, उन्हीं से चलकर उनके वध का उपाय पूछें। वे अवश्य हमको हमारे हित की बात बतावेंगे। जो तुमको यह सम्मति रुचे तो हम लोग उनके पास चलकर सम्मति लें। वे जैसा बतावेंगे वैसा ही हम लोग करेंगे ॥४५।४९॥ हे मधुसूदन! बाल्यावस्था में जब हमारे पिता का स्वर्गवास हो गया था तब उन्होंने हमारा लालन-पालन किया था। वे देवव्रत भीष्म इस समय अवश्य हमें अच्छी सम्मति देंगे। किन्तु हमारे इस क्षत्रिय-धर्म को धिक्कार है कि हम लोग उन्हीं वृद्ध पितामह, पिता के प्रिय पिता, को मारना चाहते हैं ॥५०।५१॥ सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! तब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मपुत्र! आपने जो कुछ कहा वह मुझे भी रुचिकर है। देवव्रत भीष्म समर में शत्रुओं को देखकर ही नष्ट कर सकते हैं। इस कारण उनके वध का उपाय जानने के लिए उन्हीं के पास जाना चाहिए। आप विशेष रूप से पूछेंगे

विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति ।
प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रणिपेदिरे ॥ ५७ ॥
पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभम् ।
प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥ ५८ ॥
तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनञ्जय ॥ ५९ ॥
स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ।
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम् ॥ ६० ॥
सर्वात्मनाऽपि कर्तास्मि यदपि स्यात्सुदुष्करम् ।
तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ॥ ६१ ॥
उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः ।
कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥ ६२ ॥
प्रजानां संशयो न स्यात्कथं तन्मे वद प्रभो ।
भवान्हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥ ६३ ॥
भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम् ।
न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥ ६४ ॥
मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा ।
आददानं सन्दधानं विकर्षन्तं धनुर्न च ॥ ६५ ॥
पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिवाऽपरम् ।
रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥ ६६ ॥

---

तो वे अपने वध का उपाय बता देंगे। इसलिए आइए, हम सब कुरुपितामह से पूछने चलें। हम लोग उनकी बताई हुई सम्मति के अनुसार शत्रुओं से युद्ध करेंगे और विजय प्राप्त करेंगे ॥५२।५५॥ हे राजेन्द्र! महावीर पाण्डवगण और श्रीकृष्ण यह सम्मति करके, धनुष आदि शस्त्र और कवच त्यागकर, सब मिलकर भीष्म के शिविर में पहुँचे। सबने सिर झुकाकर प्रणाम और पूजा की। सब उनके शरणागत हुए ॥५६।५८॥ तब कुरुपितामह भीष्म ने प्रत्येक से स्वागत और कुशल पूछकर कहा—हे वीरो! बताओ, तुम्हारी प्रीति के लिए मैं क्या करूँ? वह कार्य दुष्कर होने पर भी मैं उसे सब प्रकार यत्नपूर्वक करने को प्रस्तुत हूँ ॥५९। ६१॥ पितामह ने जब प्रसन्नतापूर्वक बारम्बार इस प्रकार पूछा तब दीन भाव से, स्नेहपूर्ण स्वर से, युधिष्ठिर ने कहा—हे धर्मज्ञ पितामह! हम लोग जय और राज्य किस प्रकार पावेंगे? किस प्रकार हम अपने अधीन वीर क्षत्रियों को इस नाश से बचा सकेंगे? आप कृपाकर अपनी मृत्यु का उपाय हमको बता दीजिए। हे वीर! समर में हम किस प्रकार आपके वेग को सह सकते हैं? युद्ध में आप पर प्रहार करने का, आपको मारने का, साधारण अवसर भी हमें नहीं देख पड़ता। आप सदा समर में मण्डलाकार धनुष धारण किये बाण बरसाते देख पड़ते हैं ॥६२।६५॥ आप किस समय धनुष हाथ में लेते हैं,

कोऽथवोत्सहते जेतुं त्वां पुमान्भरतर्षभ ।
वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥ ६७ ॥
क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम ।
यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम ॥ ६८ ॥
मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह ।
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान्पाण्डुपूर्वजः ॥ ६९ ॥
न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे ।
जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद्‌ब्रवीमि ते ॥ ७० ॥
निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः ।
क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ॥ ७१ ॥
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम् ।
एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥ ७२ ॥
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम् ।
युधिष्ठिर उवाच—ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥ ७३ ॥
भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ॥ ७४ ॥
न भवान्समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
भीष्म उवाच—सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ॥ ७५ ॥
नाऽहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ॥ ७६ ॥

कब डोरी खींचते हैं, कब बाण चढ़ाते और कब छोड़ते हैं, यह कुछ भी हम लोगों को नहीं देख पड़ता। रथ के ऊपर आप दूसरे सूर्य के समान देख पड़ते हैं। रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य आदि को आप निरन्तर अपने बाणों से गिराते ही रहते हैं। आपका भला कौन पुरुष समर में जीत सकता है? आपने निरन्तर बाण-वर्षा करके मेरी इतनी बड़ी सेना नष्ट कर दी है। इसलिए हे पितामह! इस समय आप वही उपाय बताइए जिससे हम युद्ध में आपको जीत सकें, राज्य प्राप्त कर सकें और मेरी सेना का विनाश भी न हो ॥६५।६९॥ हे राजेन्द्र! तब भीष्म ने पाण्डवों से कहा—हे कुन्तीनन्दन! मेरे जीवित रहते युद्ध में विजय प्राप्त करना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं। युद्ध में मुझे मारने पर ही तुम लोग जय प्राप्त कर सकोगे। इसलिए यदि समर में जय प्राप्त करना चाहते हो तो शीघ्र ही मुझ पर कठोर प्रहार करो। मैं तुम को आज्ञा देता हूँ, जी भरकर मुझ पर बाण चलाओ। इसे मैं तुम्हारा सौभाग्य समझता हूँ कि तुम लोग यह जान गये कि मुझे मारे बिना तुम्हें जय नहीं प्राप्त हो सकती। मेरे मरने से ही सब कौरवों का मरना समझकर मुझे मारने का यत्न शीघ्र करो ॥६९। ७२॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! आप संग्राम में दण्डपाणि यमराज की तरह देख पड़ते हैं। इसलिए वह उपाय बताइए जिससे हम युद्ध में आपको जीत

ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः ।
निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥ ७७ ॥
द्रवमाणे च भीते च तवाऽस्मीति च वादिनि ।
स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रिणि ॥ ७८ ॥
अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ।
इमं मे शृणु राजेन्द्र सङ्कल्पं पूर्वचिन्तितम् ॥ ७९ ॥
अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कदाचन ।
य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ॥ ८० ॥
शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समितिञ्जयः ।
यथाऽभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात्पुंस्त्वं समागतः ॥ ८१ ॥
जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम् ।
अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ८२ ॥
मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः ।
अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन्स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ॥ ८३ ॥
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथञ्चन ।
तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनञ्जयः ॥ ८४ ॥
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद्भरतर्षभ ।
न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद्यः समुद्यतम् ॥ ८५ ॥
ऋते कृष्णान्महाभागात्पाण्डवाद्वा धनञ्जयात् ।
एष तस्मात्पुरोधाय कश्चिदन्यं ममाऽग्रतः ॥ ८६ ॥

सकें । हम लोग समर में इन्द्र, वरुण और यमराज को भी जीत सकते हैं; किन्तु आपको तो इन्द्र सहित सब देवता और दैत्य भी नहीं जीत सकते, फिर हम हैं क्या वस्तु ! ॥७३।७५॥ भीष्म ने कहा—हे पाण्डव ! तुम उचित ही कह रहे हो । मैं संग्राम में यत्नपूर्वक धनुष-बाण लेकर खड़ा होऊँ तो इन्द्र सहित सब देवता और दैत्य भी मिलकर मुझे नहीं जीत सकते। मैं यदि अस्त्र-शस्त्र त्याग दूँ तभी वे मुझे मार सकते हैं । हे धर्मपुत्र ! शस्त्र का त्याग किये हुए, कवच-हीन, गिरे हुए, ध्वजाहीन, भागते हुए, भयभीत हुए, शरणागत, स्त्री-जाति, स्त्रियों का नाम रखनेवाले, विकलाङ्ग, अपने पिता के एकमात्र पुत्र, सन्तानहीन और नपुंसक आदि के साथ युद्ध करना मुझे रुचिकर नहीं है ॥७६।७९॥ हे राजेन्द्र ! मेरी पहले की प्रतिज्ञा स्मरण करो । मैं पुरुष-भाव को प्राप्त स्त्री जाति से या नपुंसक से कभी युद्ध नहीं कर सकता । जो महारथी युद्धनिपुण द्रुपद का पुत्र शिखण्डी तुम्हारी सेना में है वह पहले स्त्री था, पीछे यक्ष के वरदान से पुरुष हो गया है । यह वृत्तान्त तुम लोग भी अच्छी प्रकार जानते ही हो ॥७९।८२॥ इस समय महारथी अर्जुन उसी शिखण्डी को आगे करके मुझ-पर तीक्ष्ण बाण मारें । शिखण्डी अमाङ्गल्यध्वज और पहले का स्त्री है, इसलिए धनुष बाण हाथ में रहने पर भी मैं उस पर प्रहार नहीं करूँगा । अर्जुन उसी

आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।
मां पातयतु बीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम् ॥ ८७ ॥
एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत ।
संग्रामे धार्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान्समागतान् ॥ ८८ ॥

सञ्जय उवाच—ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिबिरं प्रति ।
अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ८९ ॥
तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते ।
अर्जुनो दुःखसन्तप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ ९० ॥
गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता ।
पितामहेन संग्रामे कथं योद्धाऽस्मि माधव ॥ ९१ ॥
क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः ।
पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥ ९२ ॥
यस्याऽहमधिरुह्याऽङ्कं बालः किल गदाग्रज ।
तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥ ९३ ॥
नाऽहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत ।
इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स वध्यः कथं मया ॥ ९४ ॥
कामं वध्यतु सैन्यं मे नाऽहं योत्स्ये महात्मना ।
जयो वाऽस्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥ ९५ ॥
( कथमस्मद्विधःकृष्ण जानन्धर्मं सनातनम् ।
न्यस्तशस्त्रे च वृद्धे च प्रहरेद्धि पितामहे ॥ )

वासुदेव उवाच—प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे ।
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥ ९६ ॥

---

शिखण्डी की आड़ में रहकर बारम्बार बाण मारें। युद्ध के लिए उद्यत मुझको महाभाग श्रीकृष्ण या महारथी अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता ॥८२।८६॥ इसलिए वीर अर्जुन यत्नपूर्वक गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर, शिखण्डी को आगे करके, मुझ पर प्रहार करें और मुझे गिरा दें। तब तुम अवश्य जय प्राप्त कर सकोगे। हे युधिष्ठिर! मेरी सम्मति के अनुसार कार्य करोगे तो कौरवों को जीत लोगे ॥८६।८८॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महात्मा श्रीकृष्ण और पाण्डवगण पितामह भीष्म से उनकी मृत्यु का यह उपाय जानकर, उन्हें प्रणाम करके, अपने शिविर को लौट गये। अब भीष्म को प्राणत्याग के लिए उद्यत देखकर, दुःख और सन्ताप से खिन्न होकर, लज्जितभाव से अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे वासुदेव! मैं बाल्यावस्था में धूल में खेलते-खेलते जिनकी गोद में बैठकर जिन्हें धूल से भर देता था, जिन्हें पिता कहता था तो "मैं तुम्हारा पिता नहीं, तुम्हारे पिता का पिता हूँ" कहकर जो मुझसे स्नेह

पातयैनं रथात्पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम् ।
नाऽहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति ॥ ९७ ॥
दृष्टमेतत्पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम् ।
यद् दृष्टं हि पुरा पार्थ तत्तथा न तदन्यथा ॥ ९८ ॥
न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
त्वदन्यः शक्नुयाद्योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम् ॥ ९९ ॥
जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम ।
यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः ॥ १०० ॥
ज्यायांसमपि चेद्वृद्धं गुणैरपि समन्वितम् ।
आततायिनमायान्तं हन्याद्घातकमात्मनः ॥ १०१ ॥
शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय ।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चाऽनसूयुभिः ॥ १०२ ॥

अर्जुन उवाच—शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम् ।
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते ॥ १०३ ॥
ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥ १०४ ॥
अहमन्यान्महेष्वासान्वारयिष्यामि सायकैः ।
शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं भीष्ममेवाऽभियोधयेत् ॥ १०५ ॥
श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
कन्याऽह्येषा पुरा भूत्वा पुरुषः समपद्यत ॥ १०६ ॥

---

करते थे, उन्हीं महात्मा वृद्ध पितामह से इस समय मैं कैसे युद्ध करूँगा ! किस प्रकार तीक्ष्ण बाण मारकर उनकी हत्या करूँगा ? हे वासुदेव ! महात्मा भीष्म मेरी समग्र सेना को भले ही नष्ट कर दें, किन्तु मैं उनसे कभी न युद्ध करूँगा। नाश हो और चाहे जय, मैं उन्हें नहीं मार सकता। हे श्रीकृष्ण ! आप ही कहिए, क्या मेरा यह कर्तव्य नहीं है? ॥८८।९५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—सुनो अर्जुन ! तुम पहले युद्ध में भीष्म को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हो। क्षत्रिय होकर अब उस प्रतिज्ञा को असत्य कैसे करोगे ! हे पार्थ ! युद्धदुर्मद क्षत्रिय भीष्म को क्षत्रियधर्म के अनुसार मार गिराओ। उन्हें मार बिना तुमको जय नहीं प्राप्त हो सकती। यह बात, अर्थात् तुम्हारे हाथ से भीष्म की मृत्यु, पहले ही देवता निश्चित कर चुके हैं। तुम्हें विवश होकर वही करना होगा। देवताओं का निश्चय कभी टल नहीं सकता ॥९६।९८॥ मुख फैलाये हुए काल के समान दुर्द्धर्ष भीष्म का सामना तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता। यहाँ तक कि इन्द्र भी युद्ध में भीष्म को नहीं मार सकते। इसलिए मेरी बात सुनो, चित्त को स्थिर करके भीष्म को मारो। महामति बृहस्पति ने एक समय इन्द्र से कहा था कि अपना बड़ा, वृद्ध और गुणी पुरुष—गुरुजन होकर भी—यदि आततायी की तरह अपने को मारने आवे तो उसे मार डालना चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं है। हे पार्थ ! क्षत्रियों का यही सनातन-

इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः ।
अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः ।
शयनानि यथास्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः ॥ १०७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसावहारोत्तरमन्त्रे सप्ताधिकशततमोऽध्याय ॥ १०७ ॥

धर्म है कि वे ईर्ष्या छोड़कर यज्ञ करें और शत्रुओं से युद्ध करें और प्रजा की रक्षा करें ॥९९।१०२॥ अर्जुन ने कहा —हे श्रीकृष्ण ! शिखण्डी के ही हाथ से भीष्म की मृत्यु होना निश्चित है, क्योंकि शिखण्डी को सन्मुख देखकर ही भीष्म युद्ध से विमुख हो जाते हैं । मैंने यही उपाय रचिकर समझा है कि मैं शिखण्डी को अपने आगे करके भीष्म को मारूँगा । केवल शिखण्डी भीष्म से युद्ध करेंगे, और मैं अन्य महारथियों को अपने बाणों से रोकूँगा । मैंने भीष्म के मुख से सुना है कि शिखण्डी पहले स्त्री थे । इसी कारण पितामह भीष्म उनसे युद्ध नहीं करेंगे । हे महाराज ! पाण्डवगण श्रीकृष्ण के साथ इस प्रकार भीष्म-वध का निश्चय करके प्रसन्नतापूर्वक अपने डेरों में आये और विश्राम करने लगे । ॥१०३।१०७॥

भीष्मपर्व का एक सौ सात अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०७ ॥

---

अथ अष्टाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यवर्तत संयुगे ।
पाण्डवांश्च कथं भीष्मस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच — ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥ २ ॥
ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥ ३ ॥
कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥
चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयौ ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान् ॥ ५ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः ।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात्पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ६ ॥

एक सौ आठ अध्याय ॥ १०८ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा — हे सञ्जय ! शिखण्डी ने भीष्म के साथ किस प्रकार संग्राम किया ? पितामह भीष्म ने पाण्डवों के साथ दसवें दिन कैसा युद्ध किया ? ॥१॥ सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र ! सूर्योदय होने पर नगाड़े और भेरी, मृदङ्ग, तूर्य, शङ्ख आदि बाजे बजने लगे। पाण्डवगण उस दिन शिखण्डी को आगे करके युद्ध के लिए चले । शत्रुओं के लिए दुर्भेद्य महाव्यूह की रचना करके शिखण्डी उसके अग्रभाग में स्थित हुए। महावीर भीमसेन और अर्जुन उसके रथ के दोनों पहियों की रक्षा में नियुक्त हुए । द्रौपदी के पाँचों पुत्र और अभिमन्यु शिखण्डी के पृष्ठरक्षक हुए। सात्यकि आदि दुर्जेय योद्धाओं की रक्षा का कार्य करने लगे,

ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
प्रययौ सिंहनादेन नादयन्भरतर्षभ ॥ ७ ॥
विराटस्तु ततः पश्चात्स्वेन सैन्येन संवृतः ।
द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८ ॥
केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत ॥ ९ ॥
एवं व्यूह्य महासैन्यं पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १० ॥
तथैव कुरवो राजन्भीष्मं कृत्वा महारथम् ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥ ११ ॥
पुत्रैस्तव दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चाऽस्य महाबलः ॥ १२ ॥
भगदत्तस्ततः पश्चाद्गजानीकेन संवृतः ।
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥ १३ ॥
काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात्सुदक्षिणः ।
मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्बलः ॥ १४ ॥
तथैवाऽन्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः ।
जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत ॥ १५ ॥
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि ।
आसुरानकरोद्व्यूहान्पैशाचानथ राक्षसान् ॥ १६ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
अन्योन्यं निघ्नतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १७ ॥

---

चेकितान और महारथी धृष्टद्युम्न करने लगे। धृष्टद्युम्न की रक्षा के लिए पाञ्चाल नियुक्त हुए ॥२।६॥ हे भारत ! उनके पीछे राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव एकत्र होकर सिंहनाद करते हुए चले । उनके पीछे अपनी सारी सेना लेकर राजा विराट चले । विराट के पीछे राजा द्रुपद चले । पाँचा भाई कैकेय-कुमारों और महाबली धृष्टकेतु को उस व्यूह के जघनस्थल की रक्षा का भार सौंपा गया । हे महाराज ! पाण्डव-गण इस प्रकार अपनी सेना का व्यूह बनाकर, प्राणों की ममता छोड़कर, कौरव सेना के सामने चले ॥७। १०॥ इधर कौरवगण भी महारथी भीष्म को सब सेना के आगे करके पाण्डवों की सेना की ओर अग्रसर हुए। आपके महाबली पराक्रमी पुत्रगण चारों ओर से दुर्द्धर्ष वीर भीष्म की रक्षा करने लगे। भीष्म के पीछे क्रमश महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य गुरुपुत्र अश्वत्थामा, हाथियों की सेना साथ लिये राजा भगदत्त, कृपाचार्य कृतवर्मा आदि महारथी चले । काम्बोजपति सुदक्षिण, मगधराज जयसेन, शकुनि, बृहद्बल और सुशर्मा आदि अन्य

अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्शरान् ॥ १८ ॥
तत्र भारत भीमेन ताडितास्तावकाः शरैः ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९ ॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा ॥ २० ॥
ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं पाण्डवानां महद्बलम् ॥ २१ ॥
ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः ।
सुसम्प्राप्तं दश दिशः काल्यमानं महारथैः ॥ २२ ॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ ।
वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ २३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—पीड्यमानं बलं दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी ।
यदकार्षीद्रणे क्रुद्धस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २४ ॥
कथं वा पाण्डवान्युद्धे प्रत्युद्यातः परन्तपः ।
विनिघ्नन्सोमकान्वीरस्तदाचक्ष्व ममाऽऽनघ ॥ २५ ॥
सञ्जय उवाच आचक्षे ते महाराज यदकार्षीत्पिता तव ।
पीडिते तव पुत्रस्य सैन्ये पाण्डव सृञ्जयैः ॥ २६ ॥
प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अभ्यवर्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २७ ॥

तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम् ।
नाऽमृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः ॥ २८ ॥
स पाण्डवान्महेष्वासः पञ्चालांश्चैव सृञ्जयान् ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २९ ॥
अभ्यवर्षत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
स पाण्डवानां प्रवरान्पञ्च राजन्महारथान् ॥ ३० ॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्नाद्वारयामास सायकैः ।
नानाशस्त्रास्त्रवर्षैस्तान्वीर्यामर्षप्रवेरितैः ॥ ३१ ॥
निजघ्ने समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वं चाऽमितं बहु ।
रथिनोऽपातयद्राजन्रथेभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ३२ ॥
सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यः पादातांश्च समागतान् ।
गजारोहान्गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः ॥ ३३ ॥
तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम् ।
पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवाऽसुराः ॥ ३४ ॥
शक्राशनिसमस्पर्शान्विमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ॥ ३५ ॥
दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं सन्धारयन्वपुः ।
मण्डलीभूतमेवाऽस्य नित्यं धनुरदृश्यत ॥ ३६ ॥
संग्रामे युद्ध्यमानस्य शक्रचापोपमं महत् ।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ ३७ ॥
विस्मयं परमं गत्वा पितामहमपूजयन् ।
पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ॥ ३८ ॥

महाबली पाण्डवगण प्रसन्नतापूर्वक कौरवपक्ष की सेना को मारते हुए भीष्म के सन्मुख जाने लगे। महाधनुर्द्धर भीष्म अपने पक्ष के घोड़े, हाथी, मनुष्य आदि को शत्रुओं के बाणों से मरते देखकर क्रोध से अधीर हो उठे ॥२६।२८॥ वे जीवन की आशा छोड़कर नाराच, वत्सदन्त और अञ्जलिक बाणों से पाञ्चाल, सृञ्जय, पाण्डव आदि पर प्रहार करने लगे। उन्होंने निरन्तर बाण-वर्षा करके पाँचों पाण्डवों का आगे बढ़ना रोक दिया। वे क्रोध के आवेश से विविध अस्त्र-शस्त्र बरसाकर, असंख्य हाथियों और घोड़ों को गिराकर, भयानक रूप से शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने लगे। उन्होंने घोड़े के सवार को घोड़े से, हाथी के सवार को हाथी से, रथ के सवार को रथ से और पैदल सैनिक को बाण मारकर भूमि पर गिरा दिया ॥२९।३३॥ असुरगण जैसे इन्द्र के सन्मुख युद्ध करने को उपस्थित हों, वैसे ही पाण्डवगण महारथी भीष्म को संग्राम-भूमि में आते देखकर उनके सन्मुख आये। महावीर भीष्म इन्द्र के वज्र ऐसे बाण छोड़ने लगे। उस समय उनका भयानक रूप और मण्डलाकार घूमता हुआ बड़ा धनुष ही चारों ओर सैनिकों को

युद्ध्यमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवाऽमराः ।
न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ३९ ॥
दशमेऽहनि सम्प्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः ।
अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ ४० ॥
तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवाऽन्तकम् ॥ ४१ ॥
स तेनाऽतिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनम् ।
अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥
काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथश्चन ।
यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव त्वं हि शिखण्डिनी ॥ ४३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्छितः ।
उवाचैनं तथा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४४ ॥
जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयङ्करम् ।
मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ॥ ४५ ॥
दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं मया च बहुशः श्रुतः ।
जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याऽहं त्वया सह ॥ ४६ ॥
पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम ।
अद्य त्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ॥ ४७ ॥
ध्रुवं च त्वां हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः ।
एतच्छ्रुत्वा च मद्वाक्यं यत्कृत्यं तत्समाचर ॥ ४८ ॥

देख पड़ने लगा ॥३४।३७॥ हे भारत ! आपके पुत्र-गण महावीर भीष्म का ऐसा अद्भुत विक्रम और पुरुषार्थ देखकर आश्चर्य के साथ उनकी प्रशंसा करने लगे। देवताओं ने जैसे अपने शत्रु विप्रचित्ति राक्षस को देखा था, वैसे ही पाण्डवगण व्याकुल दृष्टि से भीष्म की ओर देखने लगे। मुख फैलाये हुए यमराज के समान भयङ्कर भीष्म को देखकर सब भयभीत हो गये। कोई उन्हें रोक नहीं सका। हे राजेन्द्र ! दसवें दिन के युद्ध में महावीर भीष्म वन जलानेवाले दावानल के समान प्रज्वलित होकर शिखण्डी के साथ की रथ-सेना को भस्म करने लगे ॥३७।४०॥ कुपित सर्प और यमराज के समान भीष्म की छाती में शिखण्डी ने तीन तीक्ष्ण बाण मारे। महापराक्रमी भीष्म ने शिखण्डी की ओर देखकर, क्रोध की हँसी हँसकर, अनिच्छा के साथ कहा — हे शिखण्डी ! तुम मुझे बाण भले मारो, परन्तु मैं किसी प्रकार तुमसे युद्ध नहीं करूँगा, क्योंकि विधाता ने तुमको शिखण्डिनी के रूप में उत्पन्न किया है ॥४१।४३॥ भीष्म के ये वचन सुनकर, क्रोध से अत्यन्त अधीर होकर होंठ चाटते हुए शिखण्डी ने कहा — हे क्षत्रियकुल के काल भीष्म ! मैं तुमको अच्छी प्रकार जानता हूँ। तुमने परशुराम के साथ युद्ध किया था, यह भी मैं जानता हूँ। तुम्हारा दिव्य प्रभाव भी मुझे विदित है। तो भी मैं अपने और पाण्डवों के हित के लिए तुमसे

कामभ्यस वा मा वा न मे जीवन्प्रमोक्ष्यसे ।
सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोऽयं समितिञ्जयः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
अविध्यत रणे भीष्मं प्रणुन्नं वाक्यसायकैः ॥ ५० ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः ।
कालोऽयमिति सञ्चिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत् ॥ ५१ ॥
अहं त्वामनुयास्यामि परान्विद्रावयञ्शरैः ।
अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रम ॥ ५२ ॥
न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः ।
तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद्भीष्ममभिद्रव ॥ ५३ ॥
अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष ।
अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥ ५४ ॥
नाऽवहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे ।
तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥ ५५ ॥
अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल ।
वारयन्रथिनः सर्वान्साधयस्व पितामहम् ॥ ५६ ॥
द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाऽथ सुयोधनम् ।
चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ ५७ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
भगदत्तं तथा शूरं मागधं च महाबलम् ॥ ५८ ॥

संग्राम करूँगा ॥४४।४६॥ मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुमको अवश्य मारूँगा। हे भीष्म ! मेरी प्रतिज्ञा तुमने सुन ली। अब जो चाहे सो करो। यदि तुम मुझको बाण न मारोगे तो भी जब तक जीवित रहोगे तब तक किसी प्रकार छुटकारा न पाओगे। इसलिए इस संसार को एक बार अच्छी प्रकार देख लो ॥४७।४९॥ सञ्जय कहते हैं—अब शिखण्डी ने भीष्म को अत्यन्त कठोर पाँच बाण मारे। महारथी अर्जुन ने शिखण्डी के वचन सुनकर, यही ठीक अवसर समझकर, शिखण्डी से कहा—हे वीर शिखण्डी ! अब मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम बाण-वर्षा से शत्रुओं को मारकर क्रोधपूर्वक वेग से महावीर भीष्म पर आक्रमण करो। महारथी भीष्म तुमको पीड़ित नहीं करेंगे, मैं तुम्हारे साथ हूँ। आज तुम यत्नपूर्वक भीष्म से समर करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ ॥५०।५३॥ जो तुम भीष्म को मारे बिना समर से लौटोगे तो लोग झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला कहकर तुम्हारा उपहास करेंगे। इसलिए ऐसा उपाय करो जिससे समाज में हमारा उपहास न हो ॥५४।५६॥ तटभूमि जैसे समुद्र के वेग को रोकती है वैसे मैं द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ, विन्द, अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, शूर भगदत्त, महारथी मगधराज जयसेन, वीर्यशाली भूरिश्रवा, राक्षस अलम्बुष, त्रिगर्तराज सुशर्मा और अन्य महा-

सौमदत्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम् ।
त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥ ५९ ॥
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ।
कुरूंश्च सहितान्सर्वान्युध्यमानान्महाबलान् ।
निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ॥ ६० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मशिखण्डिसमागमे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

रथी कौरवों को रोककर उनसे तुम्हारी रक्षा करूँगा। | तुम पितामह भीष्म को मारने की चेष्टा करो ॥५७।६०॥

भीष्मपर्व का एक सौ आठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०८ ॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावत्पितामहम् ।
पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥ १ ॥
केऽरक्षन्पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधाः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महारथाः ॥ २ ॥
कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन्दशमेऽहनि ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ ३ ॥
न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिना ।
कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—नाऽशीर्यत धनुश्चाऽस्य रथभङ्गो न चाऽप्यभूत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ ५ ॥
निघ्नतः समरे शत्रूञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ॥ ६ ॥
तथा दन्तिगणा राजन्हयाश्चैव सुसज्जिताः ।
अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥ ७ ॥

एक सौ नौ अध्याय ॥ १०९ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पाञ्चालपुत्र शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर पितामह भीष्म के साथ कैसे युद्ध किया ? किस प्रकार उन पर आक्रमण किया ? पाण्डव-सेना के किस-किस महारथी ने जय प्राप्त करने की इच्छा से अस्त्र शस्त्र लेकर शिखण्डी की रक्षा की ! उस दसवें दिन महावीर भीष्म ने पाण्डवों और सृञ्जयों से किस प्रकार युद्ध किया ? हे सञ्जय ! मुझे यह समाचार असह्य हो रहा है कि शिखण्डी ने भीष्म पर आक्रमण किया। जिस समय युद्ध से विमुख भीष्म पर आक्रमण किया गया उस समय उनसे भीष्म का रथ तो नहीं टूटा ! उनका धनुष तो नहीं कट गया ! ॥१।४॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! संग्राम के समय महारथी भीष्म का न तो रथ ही टूटा और न धनुष ही कटा। वे सन्नतपर्व तीक्ष्ण

यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चाऽपि समितिञ्जयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समिति क्षयम् ॥ ८ ॥
युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं पराञ्शरैः ।
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं सर्वे ते नाऽभ्यवारयन् ॥ ९ ॥
दशमेऽहनि सम्प्राप्ते ततस्तां रिपुवाहिनीम् ।
कीर्यमाणां शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥
नहि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अशक्नुवन्रणे जेतुं पाशहस्तमिवाऽन्तकम् ॥ ११ ॥
अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनञ्जयः ।
त्रासयन्रथिनः सर्वान्बीभत्सुरपराजितः ॥ १२ ॥
सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन्मुहुः ।
शरौघान्विसृजन्पार्थो व्यचरत्कालवद्रणे ॥ १३ ॥
तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
सिंहस्येव मृगा राजन्व्यद्रवन्त महाभयात् ॥ १४ ॥
जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा स्वसैन्यं चाऽभिपीडितम् ।
दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद्भृशपीडितः ॥ १५ ॥
एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दहते मामकान्सर्वान्कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ १६ ॥
पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः ।
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥ १७ ॥

---

विचित्र बाणों से शत्रुसेना को नष्ट करने लगे। हे राजेन्द्र! आपके पक्ष के बहुत से महारथी योद्धा हाथियों और घुड़सवार सेना को साथ लेकर, भीष्म को आगे करके, युद्ध करने लगे। समरविजयी भीष्म, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, समर में निरन्तर शत्रुसेना का संहार करने लगे। वे महावीर दसवें दिन के युद्ध में जब शत्रुसेना का संहार करने लगे तब क्या पाञ्चालगण और क्या पाण्डवगण, कोई भी उनके प्रबल वेग और विक्रम को रोकने या सहने में समर्थ नहीं हुआ। वे सम्पूर्ण शत्रुदल पर सैकड़ों-सहस्रों तीक्ष्ण बाण बरसाने जाते थे। सारी शत्रुसेना एक साथ मिलकर भी पाशपाणि यमराज के समान भीष्म को समर में परास्त नहीं कर सकी—उनके वेग के आगे ठहर नहीं सकी ॥८।११॥ हे राजेन्द्र! उधर अजेय अर्जुन भी सब रथी लोगों के मन में भय उत्पन्न करके, युद्धभूमि में जाकर, जोर से सिंहनाद करने लगे। वे बारम्बार धनुष घुमाकर बाणों की वर्षा करते हुए साक्षात् काल की तरह विचरने लगे। उनके भयानक शब्द से आपके पक्ष के सैनिक लोग व्याकुल हो उठे। सिंह के खदेड़े हुए मृगों की तरह भयभीत होकर वे लोग अर्जुन के आगे से भागने लगे ॥१२।१४॥ तब राजा दुर्योधन ने विजयी अर्जुन को विजय प्राप्त करके सिंहनाद करते और अपनी सेना को व्याकुल होकर भागने देखकर, दुःखित हो,

यथा पशुगणान्पालः सङ्कालयति कानने ।
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १८ ॥
धनञ्जयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः ।
भीमोऽप्येवं दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥ १९ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम ॥ २० ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे ॥ २१ ॥
वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः ।
नाऽन्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥ २२ ॥
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम ।
पर्याप्तस्तु भवाञ्शीघ्रं पीडितानां गतिर्भव ॥ २३ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥ २४ ॥
तव सन्धारयन्पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः ।
दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते ॥ २५ ॥
पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल ।
हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥
संग्रामाद्व्यपयातव्यमेतत्कर्म ममाऽऽह्निकम् ।
इति तत्कृतवांश्चाऽहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २७ ॥

पितामह भीष्म के पास जाकर कहा—हे पितामह ! दावानल जैसे जङ्गल को भस्म कर देता है वैसे ही अर्जुन हमारी सेना को बाणों की वर्षा से भस्म कर रहे हैं। यह देखिए, मेरी सेना बारम्बार हर स्थान अर्जुन के प्रहार से पीड़ित होकर भाग रही है ॥१५।१७॥ हे शत्रुतापन ! पशुपाल जैसे वन में पशुओं को पीटता है वैसे ही अर्जुन मेरी सेना को पीड़ा पहुँचा रहे हैं। एक तो अर्जुन ही उनको मारकर भगा रहे हैं, उस पर भीमसेन, सात्यकि, चेकितान, नकुल, सहदेव, महारथी अभिमन्यु, महारथी धृष्टद्युम्न और राक्षस घटोत्कच भी उन्हें मार रहे हैं ॥१८।२१॥ हे महारथी ! आप देवतुल्य पराक्रमी हैं। आपके अतिरिक्त इस भागती हुई सेना को और कोई नहीं फेर सकता। न तो कोई इन्हें युद्ध में ठहरा सकता है, और न पाण्डवसेना के इन महारथियों से युद्ध ही कर सकता है। इसलिए आप शीघ्रता के साथ मेरी सेना की रक्षा कीजिए ॥२२।२३॥ हे राजेन्द्र ! देवव्रत भीष्म दुर्योधन के ये वचन सुनकर, क्षणभर विचारकर, उन्हें समझाते और धैर्य देते हुए बोले—हे दुर्योधन ! तुम ध्यान से मेरी बात सुनो। मैंने पहले तुम्हारे आगे प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रतिदिन दस सहस्र योद्धा मारकर युद्ध से लौटूँगा। हे पुत्र ! मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण करता रहा हूँ। मैं आज भी युद्ध में बहुत बड़ा कार्य करूँगा। आज

अद्य चाऽपि महत्कर्म प्रकरिष्ये महाबल ।
अहं वाऽद्य हतः शेष्ये हनिष्ये वाऽद्य पाण्डवान् ॥ २८ ॥
अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं तव ।
भर्तृपिण्डकृतं राजन्निहतः पृतनामुखे ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान्प्रवपञ्छरैः ।
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ३० ॥
अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
आशीविषमिव क्रुद्धं पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ३१ ॥
दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः ।
राजञ्शतसहस्राणि सोऽवधीत्कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥
पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः ।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांऽशुभिः ॥ ३३ ॥
हत्वा दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
सारोहाणां महाराज हयानां चाऽयुतं तथा ॥ ३४ ॥
पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३५ ॥
न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् ।
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३६ ॥
ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः ।
वधायाऽभ्यद्रवन्भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥ ३७ ॥

या तो मुझे पाण्डवगण मारेंगे और या मैं उनको मारूँगा। दो में एक बात तो अवश्य होगी। आज मैं युद्धभूमि की वीरशय्या पर सोकर, अथवा पाण्डवों को ही सुलाकर, प्रभु का ऋण चुकाऊँगा ॥२४।२९॥ महाबली भीष्म दुर्योधन से इतना कहकर क्षत्रियों पर बाण बरसाते हुए पाण्डवों की सेना पर वेग से आक्रमण करने चले। पाण्डवों की सेना उनके आक्रमण से तितर-बितर होने लगी। तब पाण्डवगण भी अपनी सेना के मध्य में प्रवेश होते हुए, क्रुद्ध नागराज के समान, भीष्म को घेरकर रोकने की चेष्टा करने लगे। हे कौरव! दसवें दिन भीष्म ने अपने पराक्रम के अनुसार देखते ही देखते शत सहस्र सेना का नाश कर डाला। जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का रस (जल) खींचते हैं वैसे ही भीष्म अपने बाणों से पाञ्चालों के तेज, उत्साह और प्राणों को हरने लगे ॥३०।३३॥ हे राजेन्द्र! वे सवारों सहित दस सहस्र घोड़ों, इतने ही वेगशाली हाथियों और दो लाख पैदलों को मारकर युद्धभूमि में जलती हुई अग्नि के समान देख पड़ने लगे। पाण्डवों में से कोई भी उन उत्तरायण में तप रहे सूर्य के समान तेजस्वी प्रतापी भीष्म की ओर अच्छी प्रकार नेत्र उठाकर देख तक भी नहीं सकता था। महाधनुर्द्धर भीष्म के द्वारा इस प्रकार पीडित होने पर सब पाञ्चाल और पाण्डव मिलकर उन्हें मारने के लिए उनपर आक्रमण

संयुद्ध्यमानो वहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवाऽऽवृतः ॥ ३८ ॥
पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं समन्तात्पर्यवारयन् ।
महत्या सेनया सार्द्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे नवाधिकशततमोऽध्याय. ॥ १०९ ॥

करने दौड़े। उस समय योद्धाओं से घिरे हुए भीष्म काले मेघों से घिरे हुए स्वर्ण गिरि सुमेरु के समान शोभायमान हुए। आपके पुत्रगण भी भारी सेना के साथ एकत्र होकर भीष्म के चारों ओर आकर उनकी रक्षा करने लगे। इसके अनन्तर फिर घोर संग्राम होने लगा ॥३४।३९॥

भीष्मपर्व का एक सौ नौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०९ ॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तु रणे राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥ १ ॥
न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथञ्चन ।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥ २ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्सौभद्रश्च महारथः ।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ४ ॥
विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५ ॥
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान् ।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते ॥ ६ ॥
समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
प्रत्युद्ययुस्तावकाश्च समेतांस्तान्महारथान् ॥ ७ ॥

एक सौ दस अध्याय ॥ ११० ॥

सञ्जय ने कहा कि हे महाराज ! अर्जुन ने संग्राम में भीष्म का पराक्रम देखकर शिखण्डी से कहा—हे शिखण्डी ! तुम भीष्म के साथ युद्ध करो। आज उनसे बिलकुल मत भयभीत होओ। मैं तीक्ष्ण बाण मारकर आज उन्हें श्रेष्ठ रथ पर से गिरा दूँगा ॥१।२॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! तब शिखण्डी अर्जुन के ये वचन सुनकर भीष्म की ओर रथ बढ़ाकर शीघ्रता के साथ चले। सेनापति धृष्टद्युम्न और अभिमन्यु भी आगे बढ़े। वृद्ध राजा विराट, द्रुपद और कुन्तिभोज कवच पहनकर आपके पुत्र के सन्मुख ही पितामह भीष्म पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े। नकुल, सहदेव, महावीर्यशाली धर्मराज और अन्य सब योद्धाओं

यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु ।
चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ॥ ८ ॥
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा ।
धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ॥ ९ ॥
त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् ।
भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् ॥ १० ॥
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् ।
तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान्बहून् ॥ ११ ॥
विकर्णो वारयामास इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।
सहदेवं तथा राजन्यांतं भीष्मरथं प्रति ॥ १२ ॥
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम् ॥ १३ ॥
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्बली ।
सात्यकिं समरे यान्तं तव पुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥
अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति ।
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥ १५ ॥
विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १६ ॥
तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकांक्षिणं ।
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १७ ॥
अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश ॥ १८ ॥

ने मिलकर भीष्म पर आक्रमण किया ॥३।७॥ हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के सब योद्धाओं ने शत्रुपक्ष के वीरों को जिस प्रकार रोका, जिस प्रकार उन पर यथाशक्ति उत्साह के साथ आक्रमण किया, सो सुनिए। भीष्म से युद्ध करने के लिए जानेवाले चेकितान को, बैल को व्याघ्र बालक के समान, चित्रसेन ने रोका। भीष्म के पास शीघ्रता से जानेवाले और उन पर प्रहार करने का यत्न कर रहे धृष्टद्युम्न को कृतवर्मा ने रोका। भीष्म के वध की इच्छा से आगे जानेवाले क्रुद्ध भीमसेन को भूरिश्रवा ने स्फूर्ति के साथ रोका। अनेक बाण बरसाते हुए शूर नकुल को भीष्म का जीवन चाहनेवाले विकर्ण ने रोका ॥७।१२॥ भीष्म के रथ के पास जाते हुए सहदेव को कुपित कृपाचार्य ने रोका। क्रूरकर्मा महाबली घटोत्कच को भीष्म के मारने के लिए उद्यत देखकर बली राजकुमार दुर्मुख ने आगे बढ़कर रोक लिया। क्रुद्ध सात्यकि को दुर्योधन ने रोका। भीष्म के रथ के पास जानेवाले अभिमन्यु को काम्बोजनरेश सुदक्षिण

दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे ।
अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान् ॥ १९ ॥
भीष्मस्याऽभिमुखान्यातान्वारयामासुराहवे ।
धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशंस्तु पुनः पुनः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवत संरब्धो भीष्ममेकं महारथः ।
एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दन ॥ २१ ॥
अभ्यद्रवत मा भैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः ।
अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ॥ २२ ॥
किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः ।
इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ २३ ॥
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ।
आगच्छमानान्समरे वार्योघान्प्रलयानिव ॥ २४ ॥
अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः ।
दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ॥ २५ ॥
भीष्मस्य जीविताकांक्षी धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ २६ ॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान्महारथाः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशाम्पते ॥ २७ ॥
दुःशासनरथं प्राप्य यत्पार्थो नाऽत्यवर्तत ।
यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् ॥ २८ ॥

ने रोका ॥१३।१५॥ शत्रुदमन राजा विराट और
वृद्ध द्रुपद को अश्वत्थामा ने रोका । भीष्म का वध
चाहनेवाले ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य ने
रोका । अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित
कर रहे और शिखण्डी को आगे करके वेग से भीष्म
के सन्मुख जाते हुए अर्जुन को महाधनुर्द्धर दु शासन
ने रोका । इसी प्रकार भीष्म के सन्मुख जानेवाले
पाण्डव पक्ष के अन्य महारथियों को भी आपके
पक्ष के अन्य योद्धाओं ने भी रोका ॥१६।२०॥
हे महाराज ! अब धृष्टद्युम्न भी सब सैनिकों से यह
पुकारकर कहते हुए अकेले महारथी भीष्म की ओर
दौड़े कि "हे वीरो ! देखो ये अर्जुन भीष्म से युद्ध
करने जा रहे हैं; तुम लोग निर्भय होकर चलो और
आक्रमण करो । भीष्म के बाण तुम्हारे अङ्ग को छू भी
न सकेंगे । समर में अर्जुन से युद्ध करने का साहस
इन्द्र भी नहीं कर सकते, फिर भ्रष्टबुद्धि, क्षीणबल,
अल्प जीवनवाले भीष्म क्या उनका सामना कर सकेंगे ?"
॥२०।२३॥ पाण्डव पक्ष के महारथी लोग धृष्टद्युम्न
के ये वचन सुनकर प्रसन्नतापूर्वक भीष्म के रथ की
ओर दौड़े । आपके पक्ष के पुरुषश्रेष्ठ वीर भी प्रसन्नता
के साथ प्रवाह की तरह आते हुए शत्रुओं के वेग
को रोकने लगे । हे राजेन्द्र ! भीष्म के जीवन की रक्षा
करने के लिए महारथी दु:शासन निर्भय होकर अर्जुन
के सन्मुख आये । शूर पाण्डव भी उधर से भीष्म के

तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् ।
उभौ तौ रथिनां श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयौ ॥ २९ ॥
उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत ।
तथा तौ जातसंरम्भावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ ३० ॥
समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा ।
दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ३१ ॥
वासुदेवं च विंशत्या ताडयामास संयुगे ।
ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ॥ ३२ ॥
दुःशासनं शतेनाऽऽजौ नाराचानां समार्पयत् ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ ३३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः ।
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे ।
यथा मेरुर्महाराज श‍ृङ्गैरत्यर्थमुच्छ्रितैः ॥ ३५ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना ।
व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ॥ ३६ ॥
दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः ।
पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुः पूर्णं निशाकरम् ॥ ३७ ॥
पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशाम्पते ।
विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ३८ ॥

रथ के पास पहुँचने के लिए आपके पुत्रों पर आक्रमण करने को बढ़े। ॥२३।२७॥ उस समय वहाँ पर हमने यह एक विचित्र बात देखी कि दुःशासन के रथ के पास पहुँचकर अर्जुन फिर आगे नहीं बढ़ सके। जैसे तटभूमि क्षोभ को प्राप्त समुद्र के वेग को रोक लेती है, वैसे ही वीर दुःशासन ने क्रुद्ध अर्जुन को रोक लिया। वे दोनों ही श्रेष्ठ रथी, दुर्जय, चन्द्र के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी थे। दोनों ही कुपित होकर परस्पर मार डालने की इच्छा से मयासुर और इन्द्र के समान आक्रमण करने लगे। ॥२७।३१॥ हे महाराज! दुःशासन ने अर्जुन को तीन और श्रीकृष्ण को बीस तीक्ष्ण बाण मारे। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को पीडित देखकर क्रोध करके दुःशासन को एक सौ नाराच बाण मारे। वे नाराच बाण दुःशासन के सुदृढ कवच को तोड़कर उनके शरीर का रक्त पीने लगे। तब दुःशासन ने अत्यन्त कुपित होकर तीक्ष्ण तीन बाण अर्जुन के मस्तक में मारे। ॥३२।३४॥ मस्तक में प्रवेश हुए हुए उन तीन बाणों से वीर अर्जुन उन्नत शिखरवाले सुमेरु पर्वत, अथवा फूले हुए ढाक के पेड़ के समान बहुत ही शोभायमान हुए। राहु जैसे पर्व के समय चन्द्रमा को सताता है, वैसे ही अर्जुन भी दुःशासन को बाणवर्षा में छिपाकर पीड़ा पहुँचाने लगे। ॥३५।३७॥ उन बाणों से पीडित होकर दुःशासन ने बहुत से कङ्कपत्रयुक्त, शिला पर रगड़-

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा रथं चाऽस्य त्रिभिः शरैः ।
आजघान ततः पश्चात्पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥ ३९ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ४० ॥
तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः ।
अप्रैषीद्विशिखान्घोरान्यमदण्डोपमान्बहून् ॥ ४१ ॥
अप्राप्तानेव तान्बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४२ ॥
पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत्तनयस्तव ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान्सन्धाय कार्मुके ॥ ४३ ॥
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः ॥ ४४ ॥
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत ।
पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥ ४५ ॥
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत् ।
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ॥ ४६ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते ।
अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४७ ॥
शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रं पुरन्दरः ।
निर्बिभेद महाकायो विव्यथे नैव चाऽर्जुनः ॥ ४८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासनसमागमे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

पर तीक्ष्ण किये गये बाणों से अर्जुन को घायल किया । अर्जुन ने तीन बाणों से दुःशासन का धनुष काटकर रथ भी काट डाला । तब दुःशासन ने दूसरा धनुष लेकर पचीस बाण अर्जुन के हाथों और वक्षःस्थल में मारे । ॥३८।४०॥ इसके अनन्तर अर्जुन क्रुद्ध होकर यमदण्डतुल्य असह्य असह्य बाण दुःशासन को मारने लगे । किन्तु वे बाण पास तक नहीं पहुँचने पाये और दुःशासन ने उन्हें काट डाला । इस प्रकार अर्जुन को विस्मित करके वे तीक्ष्ण बाणों से उनको पीड़ा पहुँचाने लगे । तब अर्जुन ने क्रोध से अधीर होकर असह्य सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाण बरसाना प्रारम्भ किया । ॥४१।४४॥ अर्जुन के छोड़े हुए वे बाण तालाब में प्रवेश हो रहे हंसों के समान दुःशासन के दृढ़ शरीर में प्रवेश हो गये । दुःशासन बहुत ही पीड़ित और अचेत से होकर शीघ्रता के साथ, अर्जुन को छोड़कर भीष्म के रथ के पास चले गये । उस अथाह विपत्ति में डूब रहे दुःशासन के लिए भीष्म पितामह आश्रयस्वरूप द्वीप हो गये । महापराक्रमी दुःशासन क्षणभर में सचेत होकर उसी प्रकार तीक्ष्ण बाण बरसाकर अर्जुन को रोकने लगे, जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर को रोका था । किन्तु इससे अर्जुन न तो तनिक भी व्यथित ही हुए और न संग्राम से विमुख हुए ॥४४।४८॥

भीष्मपर्व का एक सौ दस अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११० ॥

अथ एकादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ १११ ॥

सञ्जय उवाच—सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।
आर्ष्यश्रृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १ ॥
माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।
आजघान रणे राजन्प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥
तथैव राक्षसो राजन्माधवं नवभिः शरैः ।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥
शैनेयः शरसङ्घं तु प्रेषयामास संयुगे ।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४ ॥
ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥ ५ ॥
माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा ।
धार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च ॥ ६ ॥
भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः ।
ताडयामास समरे तोत्रैरिव महागजम् ॥ ७ ॥
विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः ।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान्सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥
तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः ।
चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्परवीरहा ।
भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

---

एक सौ ग्यारह अध्याय ॥ १११ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! कवचधारी वीर सात्यकि को भीष्म पर आक्रमण करने के लिए उद्यत देखकर महाधनुर्द्धर राक्षस अलम्बुष उन्हें रोकने लगा। सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नव बाण अलम्बुष को मारे। तब राक्षस ने भी अत्यन्त कुपित होकर सात्यकि को नव बाण मारे ॥१।३॥ सात्यकि ने क्रुद्ध होकर राक्षस के ऊपर असंख्य बाण छोड़े। हे महाराज ! अलम्बुष भी तीक्ष्ण बाणों से सात्यकि को पीडित करके सिंहनाद करने लगा। राक्षस के बाणों से अत्यन्त पीडित होकर भी तेजस्वी सात्यकि धैर्य धारण करके हँसते हुए सिंहनाद करने लगे। जैसे गजराज को कोई बारम्बार अङ्कुश का प्रहार करे वैसे ही क्रुद्ध भगदत्त आकर सात्यकि को अनेक तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥४।७॥ तब रथियों में श्रेष्ठ सात्यकि उस राक्षस को छोड़कर प्राग्ज्योतिषपति भगदत्त के ऊपर सुतीक्ष्ण शीघ्रगामी बाण बरसाने लगे। भगदत्त ने हाथ की स्फूर्त्ति दिखाकर तीक्ष्ण भल्ल बाण से सात्यकि का बड़ा भारी धनुष काट डाला। शत्रुनाशन सात्यकि उसी क्षण दूसरा धनुष लेकर भगदत्त को अति तीक्ष्ण बाणों से घायल करने

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम् ॥ ११ ॥
यमदण्डोपमां घोरां चिक्षेप परमाहवे ।
तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम् ॥ १२ ॥
सात्यकिः समरे राजन्द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
ततः पपात सहसा महोल्केव हतप्रभा ॥ १३ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ।
महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १४ ॥
तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम् ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातॄन्सर्वानुवाच ह ॥ १५ ॥
तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि ।
न जीवन्प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद्रथव्रजात् ॥ १६ ॥
तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्बलम् ।
तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ॥ १७ ॥
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।
काम्बोजराजो बलवान्वारयामास संयुगे ॥ १८ ॥
आर्जुनिं नृपतिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन्विव्याध तं नृप ॥ १९ ॥
सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चाऽस्य नवभिरिच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ २० ॥

लगे ॥८।१०॥ महाधनुर्धर भगदत्त का शरीर सात्यकि के बाणों से जर्जर हो गया । वे क्रोध के मारे होंठ चाटने लगे । सुवर्ण और वैदूर्यमणि से शोभित, यमदण्डसदृश भयङ्कर एक लोहमयी शक्ति उन्होंने तानकर सात्यकि को मारी । महावीर सात्यकि ने उसी क्षण एक तीक्ष्ण बाण से उसके दो टुकड़े कर डाले । यह कटी हुई शक्ति प्रभाहीन महाउल्का की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥११।१३॥ महाराज दुर्योधन ने भगदत्त की शक्ति को व्यर्थ होते देखकर असंख्य रथसेना से सात्यकि को घेरकर भाइयों से कहा—हे भाइयो ! ऐसा यत्न करो कि सात्यकि जीते-जी इस रथ-घेरे से बाहर न निकलने पावे । मैं समझता हूँ, सात्यकि के मरने पर पाण्डवों के बल का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जायगा ॥१४।१७॥ हे राजेन्द्र ! यह सुनकर आपके सब महारथी कुमार, बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार, भीष्म से युद्ध करने के लिए उद्यत सात्यकि के साथ युद्ध करने लगे । काम्बोजराज महावीर सुदक्षिण पितामह भीष्म के सम्मुख जाते हुए अभिमन्यु को रोकने लगे । अमित पराक्रमी अभिमन्यु ने पहले बहुत से बाण मारकर पीछे चौंसठ तीक्ष्ण बाण सुदक्षिण को मारे । सुदक्षिण ने भी, भीष्म के प्राणों की रक्षा के अभिप्राय से अभिमन्यु को रोकने के लिए पाँच बाण उनको और नव बाण सारथी को मारे ॥१७।२०॥ हे राजेन्द्र ! वे दोनों [illegible]

तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ।
यदाऽभ्यधावद्गाङ्गेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः ॥ २१ ॥
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥ २२ ॥
अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समियाद्रथसत्तमः ।
ततः प्रववृते युद्धं तयोस्तस्य च भारत ॥ २३ ॥
विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परन्तप ।
यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ २४ ॥
द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा ।
गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौ ॥ २५ ॥
अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध बहुभिः शरैः ।
विराटद्रुपदौ वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥ २६ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत् ।
यद् द्रौणिसायकान्घोरान्प्रत्यवारयतां युधि ॥ २७ ॥
सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् ॥ २८ ॥
कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम् ।
आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः ॥ २९ ॥
तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥ ३० ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् ।
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः ॥ ३१ ॥

प्रकार भयङ्कर संग्राम करने लगे। जब भीष्म पर आक्रमण करने को शिखण्डी आगे बढ़े तब महारथी विराट और द्रुपद क्रोध से अधीर होकर कौरवों की भारी सेना को छिन्न भिन्न करते हुए भीष्म की ओर चले। उधर से महावीर अश्वत्थामा कुपित होकर उनके सन्मुख आये। उक्त दोनों वीर राजाओं के साथ अश्वत्थामा घोर संग्राम करने लगे ॥२१।२३॥ विराट ने दस भल्ल बाण और द्रुपद ने तीन तीक्ष्ण बाण अश्वत्थामा को मारे। अश्वत्थामा भी दोनों वीर राजाओं को निरन्तर असंख्य बाणों से घायल कर रहे थे। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि दोनों वीर राजा, वृद्ध होने पर भी अनायास अश्वत्थामा के शीघ्रगामी दारुण बाणों को काटते ही चले जाते थे ॥२४।२७॥ मदोन्मत्त जङ्गली हाथी जैसे दूसरे जङ्गली हाथी पर आक्रमण करता है, वैसे ही वीर कृपाचार्य ने महारथी सहदेव के पास जाकर उनको सुवर्णभूषित सत्तर बाण मारे। सहदेव ने बाणों से कृपाचार्य का धनुष काट डाला और नव बाण मारे ॥२८।३०॥ महावीर कृपाचार्य ने भीष्म

आजघानोरसि क्रुद्ध इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।
तथैव पाण्डचो राजञ्छारद्वतममर्पणम् ॥ ३२ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकांक्षया ।
तयोर्युद्धं समभवद्धोररूपं भयावहम् ॥ ३३ ॥
नकुलं तु रणे क्रुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः ।
विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन्भीष्मं महाबलम् ॥ ३४ ॥
नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता ।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ॥ ३५ ॥
तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परन्तपौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ ३६ ॥
घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम् ।
दुर्मुखः समरे प्रायाद्भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३७ ॥
हैडिम्बस्तु रणे राजन्दुर्मुखं शत्रुतापनम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ३८ ॥
भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः ।
षष्ट्या वीरो नदन्हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥
धृष्टद्युम्नं तथा यान्तं भीष्मस्य वधकांक्षिणम् ।
हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः ॥ ४० ॥
हार्दिक्यः पार्षतं चापि विध्वा पञ्चभिरायसैः ।
पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥
आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम् ।
तं चैव पार्षतो राजन्हार्दिक्यं नवभिः शरैः ॥ ४२ ॥

का जीवन बचाने के लिए उसी क्षण दूसरा दृढ धनुष लेकर सहदेव की छाती में दस बाण मारे। सहदेव ने भी भीष्मवध की इच्छा से, आगे बढ़ने के लिए, कृपाचार्य की छाती में कई बाण मारे। हे भारत! इस प्रकार वे दोनों वीर परस्पर कठिन युद्ध करने लगे ॥३१।३३॥ शत्रुनाशन विकर्ण ने क्रोध से उन्मत्त होकर नकुल को साठ बाण मारे। महात्मा नकुल ने इस प्रकार से अत्यन्त व्यथित होकर विकर्ण को बड़े वेग से सतत्तर बाण मारे। इस प्रकार दोनों वीर भीष्म की रक्षा और वध के लिए, मैदान में युद्ध करते हुए दो सांडों के समान, परस्पर प्रहार करने लगे ॥३५।३६॥ घटोत्कच भी कौरवसेना को मारकर भीष्म की ओर बढ़ रहा था, इसी समय पराक्रमी दुर्मुख राजकुमार उसके सन्मुख पहुँचे। घटोत्कच ने क्रोधवश होकर दुर्मुख की छाती में एक तेज बाण मारा। उसके बदले में दुर्मुख ने साठ बाण घटोत्कच की छाती में मारे ॥३७।३९॥ महात्मा धृष्टद्युम्न भी बड़े वेग के साथ भीष्म की ओर बढ़ते जा रहे थे।

विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ।
तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महाहवे ॥ ४३ ॥
अन्योन्यातिशये युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः ।
भीमसेनं तथा यान्तं भीष्मं प्रति महारथम् ॥ ४४ ॥
भूरिश्रवाऽभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे ॥ ४५ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे ।
उरःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम ।
तौ शरान्सूर्यसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४७ ॥
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ ।
भीमो भीष्मवधाकांक्षी सौमदत्तिं महारथम् ॥ ४८ ॥
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम् ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे ॥ ४९ ॥
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम् ।
भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत् ॥ ५० ॥
द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।
श्रुत्वा प्रभद्रका राजन्समकम्पन्त मारिष ॥ ५१ ॥
सा सेना महती राजन्पाण्डुपुत्रस्य संयुगे ।
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात्पदम् ॥ ५२ ॥

---

महारथी कृतवर्मा ने सन्मुख आकर उनको रोका। धृष्टद्युम्न को कृतवर्मा ने पहले लोहमय पाँच बाण मारे, फिर पचास बाण उनकी छाती में मारे। अब धृष्टद्युम्न ने कृतवर्मा को कङ्कपत्रयुक्त नव बाण मारे ॥४०।४३॥ इस प्रकार भीष्म की रक्षा और वध के लिए वे दोनों वीर परस्पर घोर संग्राम करने लगे। महाबली भीमसेन भी शीघ्रता के साथ पितामह की ओर जा रहे थे। इसी समय "ठहरो, ठहरो" कहते हुए भूरिश्रवा स्फूर्त्ति के साथ उनके सन्मुख आये। उन्होंने आते ही तीक्ष्ण सुवर्णपुङ्ख नाराच बाण उनकी छाती में मारा। महाप्रतापी भीमसेन उस बाण से अत्यन्त पीड़ित होकर स्कन्द की शक्ति से विदीर्ण क्रौञ्च पर्वत के समान देख पड़े ॥४३।४७॥ इसके पश्चात् भीष्मवध के लिए उद्योग करनेवाले भीमसेन कुपित होकर सूर्य के समान चमकीले तीक्ष्ण बाण भूरिश्रवा को और भूरिश्रवा, भीष्म की रक्षा की इच्छा से, वैसे ही बाण भीमसेन को मारने लगे। इसी प्रकार यत्न के साथ दोनों वीर परस्पर युद्ध करने लगे ॥४७।४९॥ उधर राजा युधिष्ठिर भी सेना साथ लिये हुए भीष्म के सन्मुख जा रहे थे। उन्हें द्रोणाचार्य ने आकर रोका। प्रभद्रकगण द्रोणाचार्य के रथ का मेघगर्जन-सम शब्द सुनकर काँपने लगे। वह भारी सेना द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित होकर पग भर भी आगे न बढ़ सकी ॥५०।५२॥ हे

चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर ।
चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५३ ॥
भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनः पराक्रमी ।
चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ॥ ५४ ॥
तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत् ।
तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ॥ ५५ ॥
अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत ।
विमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्द ह ॥ ५६ ॥
दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत् ।
कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत ॥ ५७ ॥
सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव वाहिनी ।
लोड्यते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

राजेन्द्र ! आपके पुत्र चित्रसेन ने चेकितान का मार्ग रोका । दोनों वीर अपनी-अपनी शक्ति की पराकाष्ठा दिखाते हुए भयङ्कर संग्राम करने लगे ॥५३।५५॥ इधर दुःशासन भी यह चिन्ता करते हुए, कि किस प्रकार भीष्म के जीवन की रक्षा होगी, अर्जुन को रोकने की जी-जान से चेष्टा करने लगे। किन्तु बार-बार रोके जाने पर भी अन्त में दुःशासन को हटाकर अर्जुन आगे बढ़ ही गये और कौरवसेना को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे । दुर्योधन की सेना भी इसी प्रकार स्थान-स्थान पर पराक्रम दिखाकर भी पाण्डव पक्ष की सेना के हाथों सताई जाने लगी ॥५६।५८॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ ग्यारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ १११ ॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

सञ्जय उवाच
अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः ।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १ ॥
विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूथिनीम् ।
पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥ २ ॥
निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान् ।
प्रतपन्तमनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत ॥ ३ ॥

अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः ।
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥ ४ ॥
उत्पतन्ति हि मे बाणा धनुः प्रस्फुरतीव च ।
योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः ॥ ५ ॥
दिक्ष्वशान्तानि घोराणि व्याहरन्ति मृगद्विजाः ।
नीचैर्गृध्रा निलीयन्ते भारतानां चमूं प्रति ॥ ६ ॥
नष्टप्रभ इवाऽऽदित्यः सर्वतो लोहिता दिशः ।
रसते व्यथते भूमिः कम्पतीव च सर्वशः ॥ ७ ॥
कङ्कगृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः ।
शिवाश्चैवाऽशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ ८ ॥
पपात महती चोल्का मध्येनाऽऽदित्यमण्डलात् ।
सकबन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥
परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत् ।
वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १० ॥
देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः ।
कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च ॥ ११ ॥
अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम् ।
अवाक्शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः ॥ १२ ॥
वपूंषि च नरेन्द्राणां विगताभानि लक्षये ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः ॥ १३ ॥

प्रवृत्त अपने पुत्र अश्वत्थामा से कहा—हे बेटा ! यह वही दिन जान पड़ता है जिस दिन भीष्म को मारने के लिए महाबली अर्जुन परम यत्न करेंगे। क्योंकि आज मेरे बाण तरकस के भीतर से स्वयं बाहर निकले पड़ते हैं, धनुष फड़क रहा है। सब अस्त्र-शस्त्र प्रयोग करने पर भी प्रयुक्त नहीं होते और मेरी बुद्धि क्रूर कर्म में अनुरक्त हो रही है ॥३।५॥ सब दिशाओं में मृग और पक्षी अशान्त होकर घोर शब्द कर रहे हैं। गिद्ध नीचे होकर कौरवसेना के ऊपर मँडलाते हैं। सूर्य-मण्डल की प्रभा फीकी सी पड़ गई है। दिशाओं का रङ्ग लाल देख पड़ता है। पृथ्वी सब ओर शब्दायमान, व्यथित और कम्पित सी हो रही है। कङ्क, गिद्ध, बगले आदि पक्षी बारम्बार बोल रहे हैं। अशुभरूप गिदड़ियों और गीदड़ों के दल महाभय की सूचना देते हुए घोर शब्द कर रहे हैं ॥५।८॥ सूर्यमण्डल के मध्य से बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिर रही हैं। कबन्ध चिह्नयुक्त मण्डल सूर्यबिम्ब के चारों ओर देख पड़ता है। यह उत्पात घोर भय की सूचना देता हुआ यह जता रहा है कि आज असंख्य राजा मारे जायँगे। चन्द्र और सूर्य के बिम्ब में मण्डल पड़ा हुआ है। धृतराष्ट्र के देव-मन्दिरों की देवमूर्तियाँ काँपती, हँसती नाचती और रोती सी हैं। प्रचण्ड लक्षणयुक्त सूर्य के बायें सब ग्रह स्थित हैं। चन्द्रमा औंधे उदित हुए हैं ॥८।१२॥ सब राजाओं के शरीर तेज और कान्ति

सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान् ।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥ १४ ॥
ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे ।
अपास्याऽन्यान्रणे योधानभ्येष्यति पितामहम् ॥ १५ ॥
हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः ।
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥ १६ ॥
तं चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम् ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्याऽऽयोधनं गतः ॥ १७ ॥
अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥ १८ ॥
अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः ।
न चाऽमङ्गलिके तस्मिन्प्रहरेदापगासुतः ॥ १९ ॥
एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम् ।
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥
युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चाऽर्जुनसङ्गतः ।
मम चाऽस्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् ॥ २१ ॥
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दूरपाती दृढेपुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥
अजेयः समरे चाऽपि देवैरपि सवासवैः ।
बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥ २३ ॥

से हीन देख पड़ते हैं। दुर्योधन की सेना में कवच-
धारी वीर शोभा को नहीं प्राप्त होते। दोनों सेनाओं
में चारों ओर पाञ्चजन्य शङ्ख और गाण्डीव धनुष
का भारी शब्द सुन पड़ता है। यह निश्चय है कि
आज अर्जुन युद्ध में दिव्य अस्त्रों के बल से सब
राजाओं को हराकर भीष्म के ऊपर आक्रमण करेंगे।
॥१३।१५॥ हे वत्स! महावीर भीष्म और अर्जुन
के युद्ध का विचार करने से मेरे रोंगटे खड़े हो रहे
हैं और मन में खेद की गहरी छाया पड़ रही है।
इस पाप विचारवाले, कपट में प्रवीण शिखण्डी को
आगे करके अर्जुन भीष्म से युद्ध करने गये हैं।
भीष्म की प्रतिज्ञा है कि वे अमङ्गलध्वज शिखण्डी
पर प्रहार नहीं करेंगे। क्योंकि शिखण्डी को विधाता
ने स्त्री रूप में उत्पन्न किया था, पीछे दैवयोग से
वह पुरुष हो गया। इसी से भीष्म उस पर प्रहार
नहीं करेंगे। [किन्तु वही शिखण्डी आज क्रुद्ध
होकर भीष्म पर आक्रमण कर रहा है।] यही सोचने
में मैं मूढ़ सा हो रहा हूँ ॥१६।१९॥ अर्जुन भीष्म
से युद्ध करने को चढ़ दौड़े हैं। युधिष्ठिर का कुपित
होना, भीष्म और अर्जुन का युद्ध होना और अस्त्रों
के प्रयोग के लिए मेरा उद्यम मात्र करना, किन्तु
पहले की तरह अस्त्रों का उपस्थित न होना, सूचित
करता है कि प्रजा का अमङ्गल अवश्य होगा। वीर
अर्जुन उत्साही, बलवान्, शूर, अस्त्रविद्या में निपुण,

विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
तस्य मार्गं परिहरन्द्रुतं गच्छ यतव्रत ॥ २४ ॥
पश्याऽद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत् ।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥ २५ ॥
कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च ॥ २६ ॥
प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः।
वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ २७ ॥
नाऽयं संरक्षितुं कालः प्राणान्पुत्रोपजीविभिः ।
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥ २८ ॥
रथनागहयावर्तां महाघोरां सुदुर्गमाम् ।
रथेन संग्रामनदीं तरत्येष कपिध्वजः ॥ २९ ॥
ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
इहैव दृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३० ॥
भीमसेनश्च बलवान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥
तस्यैष मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतीम् ॥ ३२ ॥
एष सन्दृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
दारयन्सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥ ३३ ॥

महापराक्रमी, स्फूर्तिशाली, दूर तक लक्ष्यभेदने में प्रवीण और दृढ़ धनुष-बाण धारण करनेवाले हैं; वे बल-बुद्धि से युक्त, निमित्तज्ञ, इन्द्र सहित सब देवताओं के लिए भी अजेय, क्लेश को जीते हुए, श्रेष्ठ योद्धा, सदा रण में विजय पानेवाले और भयानक अस्त्रों के ज्ञाता हैं। तुम शीघ्र ही जाकर उन्हें रोकने का यत्न करो ॥२०।२४॥ देखो, आज के इस घोर संग्राम में भयानक हत्याकाण्ड होगा। अर्जुन क्रोध से विह्वल होकर सन्नतपर्व सुवर्णभूषित विचित्र बाणों से वीरों के सुवर्णचित्रित सुदृढ़ कवच, ध्वजाएँ, तोमर, धनुष, उज्ज्वल प्रास, तीक्ष्ण शक्तियाँ और हाथियों के ऊपर के झण्डे काट-काटकर गिरा रहे हैं। हे पुत्र ! हम लोग राजा दुर्योधन के अधीन हैं, वही हमें जीविका देते हैं ॥२५।२७॥ इस समय हमें अपने प्राणों की रक्षा का विचार छोड़कर युद्ध करना चाहिए। हे बेटा ! स्वर्गप्राप्ति की ओर लक्ष्य रखकर यश और विजय प्राप्त करने जाओ। वह देखो, वीर अर्जुन रथ की नौका पर बैठकर रथ हाथी-घोड़ों की चाल के आवर्त से पूर्ण, महाघोर, अत्यन्त दुर्गम युद्ध-नदी के पार जा रहे हैं। युधिष्ठिर के ब्राह्मणभक्ति, इन्द्रिय-दमन, दान (त्याग), तप और श्रेष्ठ उच्च चरित्र आदि सद्गुणों का फल इसी लोक में दिखाई दे रहा है। जिनके भाई बलवान् भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव हैं; जिनके सहायक और सुहृद् साक्षात्

एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना ।
महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव महाजलम् ॥ ३४ ॥
हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे ।
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥ ३५ ॥
दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्याऽमिततेजसः ।
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ ३६ ॥
सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥ ३७ ॥
उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्गतः ।
एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ ३८ ॥
उत्तमास्त्राणि चाऽऽधत्स्व गृहीत्वा च महद्धनुः ।
पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥ ३९ ॥
को हि नेच्छेत्प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः ।
क्षत्रधर्मं तु सम्प्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम् ॥ ४० ॥
एष चाति रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् ।
युद्धेषु सदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्रोणाश्वत्थामसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

---

वासदेव हैं उन्हीं तपस्वी युधिष्ठिर का कष्ट से रजनित क्रोध दुर्मति दुर्योधन की सेना को भस्म कर रहा है ॥२८।३२॥ श्रीकृष्ण की सहायता से सब ओर दुर्योधन की सेना को छिन्न भिन्न और नष्ट भ्रष्ट करते हुए अर्जुन देख पड़ रहे हैं। तिमि और घड़ियाल आदि जल जन्तुओं से भयानक और बड़ी बड़ी लहरों से पूर्ण महासागर के समान क्षोभ को प्राप्त कौरवसेना में अर्जुन ने हलचल डाल दी है। सर्वत्र हाहाकार और किलकिलारव सुन पड़ता है। हे बेटा! तुम पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न को रोकने के लिए जाओ और मैं राजा युधिष्ठिर पर, सम्मुख जाकर, आक्रमण करता हूँ ॥३३।३५॥ अमित तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर की सेना का भीतरी भाग, समुद्र के भीतरी भाग की तरह, सुरक्षित और सब ओर से दुर्गम है। चारों ओर से अतिरथी, श्रेष्ठ, योद्धा उसकी रक्षा कर रहे हैं। सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल और सहदेव राजा युधिष्ठिर की रक्षा कर रहे हैं। वह देखो, श्रीकृष्ण के समान लम्बे-चौड़े, महाशाल वृक्ष के तुल्य ऊँचे, श्यामवर्ण, महाबली अभिमन्यु दूसरे अर्जुन के समान सेना के आगे आ रहे हैं। तुम शीघ्र ही श्रेष्ठ धनुष और उत्तम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर धृष्टद्युम्न और भीमसेन से जाकर युद्ध करो। हे पुत्र! इस संसार में कौन नहीं चाहता कि मेरा प्रिय पुत्र बहुत दिनों तक जीवित रहे? किन्तु मैं क्षत्रिय-धर्म के अनुसार तुम्हें ऐसे भयानक युद्ध में मरने-मारने के लिए भेजने को विवश हूँ। वह देखो, यमराज और वरुण के समान पराक्रमी योद्धा भीष्म भारी सेना का संहार कर रहे हैं ॥३६।४१॥

भीष्मपर्व का एक सौ बारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११२ ॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

सञ्जय उवाच—भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः ।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २ ॥
महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
भीष्मस्य समरे राजन्प्रार्थयाना महद्यशः ॥ ३ ॥
शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥ ४ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैर्भीमसेनमताडन् ॥ ५ ॥
सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ६ ॥
दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ।
स तान्सर्वान्महाराज राजमानान्पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
प्रवीरान्सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान्महारथान् ।
जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥ ८ ॥
सप्तभिः शल्यमाविध्यत्कृतवर्माणमष्टभिः ।
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥ ९ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ १० ॥

एक सौ तेरह अध्याय ॥ ११३ ॥

सञ्जय ने कहा – हे महाराज ! भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण, ये आपके पक्ष के दस योद्धा अनेक देशों की भारी सेना साथ लेकर उस युद्ध में भीष्म के लिए यश की प्रत्याशा से भीमसेन के साथ युद्ध करने लगे ॥१।३॥ शल्य ने नव, कृतवर्मा ने तीन और कृपाचार्य ने नव बाण भीमसेन को मारे । चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्त ने दस दस बाण भीमसेन को मारे । जयद्रथ ने तीन, विन्द और अनुविन्द ने पाँच पाँच और दुर्मर्षण ने बीस बाण भीमसेन को मारे ॥४।७॥ हे राजेन्द्र ! तब महाबली भीमसेन ने भी सबके सन्मुख ही धृतराष्ट्रपक्ष के इन महारथियों में से हर एक को अलग-अलग बाण मारे । उन्होंने शल्य को सात और कृतवर्मा को आठ बाण मारकर कृपाचार्य का बाणयुक्त धनुष भी मध्य से काट डाला । इसके पश्चात् धनुष न रहने पर रिक्त हाथ खड़े हुए कृपाचार्य को सात बाणों से घायल किया ॥७।१०॥ फिर विन्द और अनुविंद

दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः ।
विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥ ११ ॥
विध्वा भीमो नदद्धृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ १२ ॥
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः ।
स विद्धो दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपः ॥ १३ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे ॥ १४ ॥
सैन्धवस्य तथाऽश्वांश्च सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥ १५ ॥
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
शरांश्चिक्षेप निशितान्भीमसेनस्य संयुगे ॥ १६ ॥
तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिष ।
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥ १७ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥ १८ ॥
अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः ।
महारथाञ्शरैर्विध्वा वारयित्वा च मारिष ॥ १९ ॥
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः ।
तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ॥ २० ॥

को तीन-तीन बाणों से पीडित करके दुर्मर्षण को बीस, चित्रसेन को पाँच, विकर्ण को दस और जयद्रथ को पहले पाँच और फिर तीन बाण मारे। महाबली भीमसेन इस प्रकार सबको घायल करके आनन्द के साथ सिंहनाद करने लगे। महारथी कृपाचार्य ने दूसरा धनुष लेकर भीमसेन को सुतीक्ष्ण दस बाणों से पीडित किया। अङ्कुश की चोट खाये हुए मस्त गजराज की तरह उन बाणों की चोट खाकर महाबाहु भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने कृपाचार्य को एक साथ बहुत से बाण मारे ॥१०।१४॥ इसके पश्चात् साक्षात् काल के समान भीमसेन ने जयद्रथ के चारों घोड़े मारकर तीन बाणों से सारथी को भी मार डाला। महारथी जयद्रथ बिना घोड़े और सारथी के रथ पर से नीचे कूदकर भीमसेन के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उन्होंने दो भल्ल बाणों से जयद्रथ का धनुष काट डाला। सारथी और घोड़ों को मरा और धनुष तथा रथ को कटा देखकर जयद्रथ शीघ्रता से चित्रसेन के रथ पर चढ़ गये। इस प्रकार महावीर भीमसेन अकेले ही अपने बाणों से सब महारथियों को पीडित और जयद्रथ को रथहीन करके सबके सन्मुख ही अद्भुत कार्य करने लगे ॥१५।१९॥ हे राजेन्द्र! भीमसेन के इस पराक्रम को शल्य न सह सके। वे "ठहरो, ठहरो" कहकर, तीक्ष्ण धार वाले चमकीले बाण धनुष पर चढ़ाकर, भीमसेन को

स सन्धाय शरांस्तीक्ष्णान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
भीमं विव्याध समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥ २२ ॥
दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् ।
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिन्दमाः ॥ २३ ॥
स च तान्प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः ॥ २४ ॥
तं शल्यो नवभिर्भित्त्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि ॥ २५ ॥
विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान् ।
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २६ ॥
तथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
ताडयामास समरे सिंहवद्विननाद च ॥ २७ ॥
ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम् ।
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥ २८ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे ।
पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाऽम्बुदैः ॥ २९ ॥
स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः ।
मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विध्वा महायशाः ॥ ३० ॥
कृपं च नवभिर्बाणैर्भृशं विध्वा समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषं शतैराजौ राजन्विव्याध सायकैः ॥ ३१ ॥

---

पीड़ित करने लगे । तब शल्य की सहायता के लिए कृपाचार्य, कृतवर्मा, महावीर भगदत्त, विन्द, अनुविन्द, चित्रसेन, दुर्मर्षण, विकर्ण, पराक्रमी जयद्रथ, ये सब मिलकर स्फूर्त्ति के साथ भीमसेन को बाण मारने लगे। भीमसेन ने उनमें से प्रत्येक को पाँच-पाँच बाण मारे । इसके पश्चात् शल्य को पहले सत्तर और फिर दस बाण मारे । शल्य ने भी भीमसेन को पहले नव और फिर पाँच बाण मारे । फिर एक भल्ल बाण उनके सारथी को मारा । महारथी प्रतापी भीमसेन अपने सारथी विशोक को बाण की चोट से विह्वल देखकर क्रोध से अधीर हो उठे । उन्होंने शल्य के दोनों हाथों में और छाती मे तीन बाण मारे । उसके पश्चात् अन्य धनुर्द्धरों को तीन-तीन बाणों से घायल करके वे सिंहनाद करने लगे ॥२०।२७॥ तब वे सब महारथी मिलकर यत्नपूर्वक महाबली भीमसेन से युद्ध करने लगे। सबने भीमसेन के मर्मस्थलों में एक साथ तीन-तीन बाण मारे । जैसे पर्वत मेघों की जलवर्षा से व्यथित नहीं होता, वैसे ही महारथी भीम उन वीरों के बाणों से अत्यन्त ही

ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥
तथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परन्तपः ॥ ३३ ॥
भीमस्तु समरे विध्वा शल्यं नवभिरायसैः ।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीन्रथान् ।
तेऽपि तं समरे राजन्विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः ।
मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान्विचचार गतव्यथः ॥ ३६ ॥
ते चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशिताञ्शरान् ।
प्रेषयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥
तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते ॥ ३८ ॥
तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे ॥ ३९ ॥
अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥ ४० ॥
तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणाऽनिलात्मजः ।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४१ ॥

घायल होकर रत्ती भर भी व्यथित नहीं हुए ॥२८। २९॥ उन्होंने क्रुद्ध होकर फिर शल्य को तीन, कृपाचार्य को नव और भगदत्त को सैकड़ों बाण मारकर एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से वीर कृतवर्मा का बाणयुक्त धनुष काट डाला ॥३०।३२॥ शत्रुओं को पीड़ा पहुंचानेवाले कृतवर्मा ने दूसरा धनुष लेकर एक नाराच बाण भीमसेन की भौंहों के मध्य में मारा। तब भीमसेन ने फिर शल्य को नव, भगदत्त को तीन, कृतवर्मा को आठ और कृपाचार्य आदि महारथियों को दो-दो बाण मारे। वे लोग भी सुतीक्ष्ण दृढ़ बाणों से भीमसेन को पीड़ा पहुंचाने लगे ॥३३। ३५॥ उन महारथियों के द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर भी भीमसेन विचलित नहीं हुए। वे उन लोगों को और उनके प्रहारों को तृण के समान तुच्छ समझकर युद्धभूमि में विचरने लगे। वे सब महारथी भी एकाग्र होकर भीमसेन के ऊपर सैकड़ों-हजारों बाण बरसाने लगे। हे राजेन्द्र ! महारथि भगदत्त ने सुवर्णदण्डयुक्त भयङ्कर महाशक्ति भीमसेन को मारी। महाबाहु जयद्रथ ने तोमर और पट्टिश, कृपाचार्य ने शतघ्नी, शल्य ने बाण और अन्य धनुर्धरों में से हर एक ने पाँच-पाँच शिलीमुख नाम के उग्र बाण भीमसेन को मारे ॥३६।४०॥ तब वायुपुत्र भीमसेन ने क्षुरप्र बाण से तोमर, तीन बाणों से पट्टिश और कङ्कपत्रयुक्त नव बाणों से शतघ्नी को तिल के [illegible]

स विभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महारथः ॥ ४२ ॥
शक्तिंचिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।
तथेतराञ्शरान्घोराञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत् ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ ४४ ॥
ततो धनञ्जयस्तत्र वर्त्तमाने महारणे ।
आजगाम रथेनाऽऽजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ॥ ४५ ॥
निघ्नन्तं समरे शत्रून्योधयानं च सायकैः ।
तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ ॥ ४६ ॥
न शशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः ।
अथाऽर्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान् ॥ ४७ ॥
भीष्मस्य निधनाकांक्षी पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
आससाद रणे वीरांस्तावकान्दश भारत ॥ ४८ ॥
ये स्म भीमं रणे राजन्योधयन्तो व्यवस्थिताः ।
बीभत्सुस्तानथाऽविध्यद्भीमस्य प्रियकाम्यया ॥ ४९ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ॥ ५० ॥
सुशर्मन्गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः ।
जहि पाण्डुसुतावेतौ धनञ्जयवृकोदरौ ॥ ५१ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य त्रैगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
अभिद्रुत्य रणे भीममर्जुनं चैव धन्विनौ ॥ ५२ ॥

की तरह काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया। राजा भगदत्त की चलाई हुई शक्ति को भी उन्होंने काट गिराया। उनकी ओर जो अन्य भयानक बाण आ रहे थे, उन्हें अपने शीघ्रगामी बाणों से काटकर उन्होंने व्यर्थ कर दिया। यह सब अद्भुत कर्म करके प्रत्येक महारथी को उन्होंने तीन-तीन बाण मारे ॥४१।४४॥ उधर महारथी अर्जुन भीमसेन को अकेले कई महारथियों से युद्ध करते और उनके प्रहारों को व्यर्थ करके उन्हें पीडित करते देखकर शीघ्रता के साथ अपना रथ उनके पास ले आये। उन दोनों महारथियों को एकत्र होते देखकर दुर्योधन आदि को जय प्राप्त करने की आशा छोड़ देनी पड़ी। भीष्म को मारने और भीमसेन को सहायता पहुँचाने के लिए महारथी अर्जुन उन दसों महारथियों को, जिनसे भीमसेन युद्ध कर रहे थे, विविध बाणों से पीडित करने लगे। इसके पश्चात् वे शिखण्डी को आगे करके भीष्म के पास जाने को प्रस्तुत हुए ॥४५।४९॥ तब राजा दुर्योधन ने अर्जुन और भीमसेन को मार डालने

रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयत् ।
ततः प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

के लिए राजा सुशर्मा से कहा—हे त्रिगर्तराज ! तुम शीघ्र ही अपनी सारी सेना साथ लेकर अर्जुन और भीमसेन के पास पहुँचो और उन्हें मार डालने की चेष्टा करो । राजा दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार त्रिगर्तराज सुशर्मा सहस्रों रथों की सेना साथ लेकर आगे बढ़े । उन्होंने भीमसेन और अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया । अब कौरवों के साथ अर्जुन का घोर संग्राम होने लगा ॥५०।५३॥

भीष्मपर्व का एक सौ तेरह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११३ ॥

---

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम् ।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १ ॥
सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ।
प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ २ ॥
चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च ।
दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ ॥ ३ ॥
एकैकं त्रिभिरानर्च्छत्कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
शरैरतिरथो युद्धे पीडयन्वाहिनीं तव ॥ ४ ॥
जयद्रथो रणे पार्थं विद्ध्वा भारत सायकैः ।
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥ ५ ॥
शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः ।
विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः ॥ ६ ॥
चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशाम्पते ।
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः ॥ ७ ॥
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष ।
तौ तत्र रथिनांश्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥ ८ ॥

एक सौ चौदह अध्याय ॥ ११४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अतिरथी अर्जुन आपके पक्ष की सेना को पीड़ा पहुँचाते हुए शल्य के पास पहुँचे । उन्होंने अगम्य सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाणों से अपना मार्ग रोकने की चेष्टा करने वाले शल्य का रथ ढक दिया । इसके अनन्तर सुशर्मा, कृपाचार्य, भगदत्त, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण, विन्द और अनुविन्द आदि महारथियों में से प्रत्येक को तीन-तीन कङ्कपत्रयुक्त बाण मारे ॥१।४॥ जयद्रथ चित्रसेन के रथ पर चढ़ गये । वहाँ से उन्होंने अर्जुन और भीमसेन को बहुत बाण मारे ।

अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्बलम् ।
सुशर्माऽपि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः ॥ ९ ॥
ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद्बलम् ।
अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ १० ॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणै रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।
तेषां च रथिनां मध्ये कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥ ११ ॥
क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम् ।
आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ १२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे ।
पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम् ॥ १३ ॥
रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः ।
गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १४ ॥
रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निषूदिताः ।
दृश्यन्ते बहवो राजन्वेपमानाः समन्ततः ॥ १५ ॥
हतैर्गजपदात्योघैर्वाजिभिश्च निषूदितैः ।
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १६ ॥
छत्रैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अंकुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत ॥ १७ ॥
केयूरैरङ्गदैर्हारैराङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
उष्णीषैर्ऋष्टिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि ॥ १८ ॥
तत्रतत्राऽपविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १९ ॥

---

शल्य और महारथी कृपाचार्य ने बहुत से मर्मभेदी बाण मारकर अर्जुन को पीड़ित किया। हे भारत! चित्रसेन आदि आपके पुत्रों में से प्रत्येक ने भीमसेन और अर्जुन को पाँच-पाँच तीक्ष्ण बाण मारे ॥५।८॥ उधर महारथी अर्जुन और भीमसेन त्रिगर्तदेश की भारी सेना को विकट बाणों से पीड़ित और उन्माथित करने लगे। त्रिगर्तराज सुशर्मा अर्जुन को नव बाण मारकर, शत्रुसेना को त्रास पहुँचाकर, ऊँचे स्वर से सिंहनाद करने लगे। रथों पर स्थित अन्य योद्धा भी बाण बरसाकर भीमसेन और अर्जुन को घायल करने लगे। श्रेष्ठ रथी और उदार-प्रकृति भीमसेन और अर्जुन, गायों के झुण्ड में मांसलोलुप दो सिंहों की तरह, कौरव पक्ष की रथसेना के मध्य उसका संहार करते हुए विचित्र रूप से विचरने लगे ॥८।१२॥ वे युद्ध-भूमि के मध्य सैकड़ों शूरों के बाण सहित धनुष काटकर उनके सिरों को धड़ से अलग करने लगे। उस युद्ध में सैकड़ों घोड़े मरे और घायल हुए; सहस्रों हाथी और उनके सवार मर-मरकर पृथ्वी पर गिर

तत्राऽद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
शरैः संवार्य तान्वीरान्यज्जघान महाबलः ॥ २० ॥
पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम् ।
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः ॥ २१ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाऽजहुः संयुगं तदा ॥ २२ ॥
ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः ।
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे ॥ २३ ॥
ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च ।
धनञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः ॥ २४ ॥
ततस्ताञ्शरजालेन सन्निवार्य महारथान् ।
पार्थः समन्तात्समरे प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५ ॥
शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा हस्तावापं च पञ्चभिः ।
अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि ॥ २७ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥ २८ ॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २९ ॥

---

पड़े। बहुत से रथ भी टूट गये। सैकड़ों रथी और घुड़सवार मारे गये। लाखों शूर भी भय के मारे काँपते हुए देख पड़े ॥१३।१५॥ रण में मारे गये हाथियों, घोड़ों, पैदलों और टूटे हुए रथों से सारी युद्ध-भूमि पूर्ण हो उठी ॥१६।१७॥ हे भारत ! इस युद्ध में मैंने अर्जुन का एक अद्भुत पराक्रम देखा। वे अपने बाणों से उन असंख्य वीरों को अनायास हटा और आहत कर रहे थे। कटे हुए छत्र, ध्वजा, अंकुश, परिस्तोम, केयूर, अङ्गद, हार, कम्बल, पगड़ी, ऋष्टि, पताका-व्यजन, राजाओं के कटे हुए चन्दनचर्चित हाथ और जंघा आदि अङ्ग भी गिरे हुए देख पड़ते थे। हे महाराज ! आपके पुत्र राजा दुर्योधन भीमसेन और अर्जुन का वेग। अर्जुन का बल और पराक्रम देखकर भीष्म पितामह के पास गये। कृपाचार्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, विन्द और अनुविन्द उस समय भी युद्ध में विमुख न होकर दोनों पाण्डवों का सामना करते रहे ॥२०।२२॥ महाधनुर्धर अर्जुन और महारथी भीमसेन उसी प्रकार कौरव-सेना को पीड़ित करने लगे। कौरव पक्ष के वीरगण भी महारथी के ... महारथी अर्जुन के रथ के ऊपर सहस्रों-लाखों-करोड़ों मयूरपंख-शोभित तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। महावीर अर्जुन अपने बाणों से उन बाणों को निवारण करके महारथी क्षत्रियों को मृत्यु के मुख में पहुँचाने लगे ॥२३।२५॥ इतने में महारथी शल्य ने कुपित

ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ ३० ॥
यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ॥ ३१ ॥
जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि ।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टाभिर्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
तं भीमो दशभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३३ ॥
उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः ।
मागधोऽपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥
द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।
विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिरायसैः ॥ ३५ ॥
तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे ।
विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत ॥ ३६ ॥
अर्जुनस्तु सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः ।
व्यधमत्तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथाऽनिलः ॥ ३७ ॥
ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः ।
समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३८ ॥
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ॥ ३९ ॥

---

होकर अर्जुन की छाती में कई भल्ल बाण मारे। अर्जुन ने उन बाणों से तनिक भी व्यथित न होकर पाँच बाणों से शल्य का धनुष और हस्तावाप काट डाला। फिर बहुत से बाण उनके मर्मस्थल में मारे। तब शल्य क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने और एक दृढ़ धनुष लेकर तीन बाण अर्जुन को, पाँच बाण वासुदेव को और नव बाण भीमसेन की दोनों भुजाओं और छाती में मारे ॥२६।२९॥ हे भारत ! इसी समय मगधराज जयत्सेन और द्रोणाचार्य, दुर्योधन की आज्ञा से, उसी स्थान पर आये जहाँ भीमसेन और अर्जुन कौरवों की बहुत बड़ी सेना को मार रहे थे। महारथी मगधराज ने भीमायुधधारी भीमसेन को आठ बाण मारे। पराक्रमी भीमसेन ने भी पहले दस और फिर पाँच बाण जयत्सेन को मारे। इसके पश्चात् एक भल्ल बाण मारकर उनके सारथी को रथ से नीचे गिरा दिया। सारथी के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर मगधराज के घोड़े इधर-उधर दौड़ते हुए सब सेना के सन्मुख ही उनका रथ युद्धस्थल से ले भागे ॥३०।३४॥ इसी अवसर में महावीर द्रोणाचार्य ने सन्मुख आकर पैंसठ बाणों से भीमसेन को घायल किया। महापराक्रमी भीमसेन ने भी पैंसठ तीक्ष्ण भल्ल बाण द्रोणाचार्य को मारे। प्रचण्ड आँधी जैसे मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है वैसे ही अर्जुन भी बाणों से सेना सहित सुशर्मा को क्षत-विक्षत करने लगे ॥३५।३७॥ महारथी भीष्म पितामह, राजा

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महारथात् ॥ ४० ॥
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
अयोधयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयैः ॥ ४१ ॥
तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ ४२ ॥
ततः प्रववृते युद्धं कौरवाणां भयावहम् ।
तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति ॥ ४३ ॥
तावकानां जये भीष्मो ग्लह आसीद्विशांपते ।
तत्र हि द्यूतमासक्तं विजयायेतराय वा ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु राजेन्द्र सर्वसैन्यान्यचोदयत् ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं मा भैष्ट रथसत्तमाः ॥ ४५ ॥
सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी ।
भीष्मं समभ्ययात्तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ४६ ॥
भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम् ।
आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

दुर्योधन और कोशलनरेश बृहद्बल, तीनों वीर क्रुद्ध होकर भीमसेन और अर्जुन के समीप गये। इधर पाण्डवगण भी धृष्टद्युम्न के साथ भीष्म के सम्मुख आये। भीष्म उस समय मुख फैलाये हुए यमराज के समान जान पड़ते थे। शिखण्डी ने महारथी भीष्म को सम्मुख पाते ही निर्भय भाव से उनपर आक्रमण किया। हे महाराज! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव और सृञ्जयगण शिखण्डी को और कौरवगण भीष्म को आगे करके युद्ध करने लगे ॥३८-४१॥ वे कौरव लोग भीष्म की जय चाहते हुए पाण्डवों के साथ घोरतर संग्राम करने लगे। वे लोग समररूपी द्यूतक्रीडा में प्रवृत्त होकर जयलाभ के लिए भीष्म के जीवन का दाँव लगाकर युद्ध करने लगे ॥४२-४४॥ हे राजेन्द्र! उस समय धृष्टद्युम्न ने अपने सैनिकों को आज्ञा देते हुए पुकारकर कहा — हे वीरश्रेष्ठ रथी योद्धाओ! तुम लोग निर्भय होकर भीष्म पर आक्रमण करो। सेनापति धृष्टद्युम्न के ये वचन सुनकर पाण्डवों की सेना, प्राणों का मोह छोड़कर, भीष्म पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ी। जैसे महासमुद्र तटभूमि का वारण करता है, वैसे ही श्रेष्ठ रथी भीष्म ने उस सेना का आक्रमण किया ॥४५-४७॥

भीष्मपर्व का एक सौ चौदह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११४ ॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — कथं शान्तनवो भीष्मो दशमेऽहनि सञ्जय ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ १ ॥

कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान्प्रत्यवारयन् ।
आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याऽऽहवशोभिनः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच — कुरवः पाण्डवैः सार्धं यदयुध्यन्त भारत ।
यथा च तदभूद्युद्धं तत्तु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥
गमिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिना ।
अहन्यहनि संक्रुद्धास्तावकानां महारथाः ॥ ४ ॥
यथाप्रतिज्ञं कौरव्यः स चापि समितिञ्जयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ५ ॥
कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं परन्तप ।
अर्जुनं च सपाञ्चाल्यं संशयो विजयेऽभवत् ॥ ६ ॥
दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे ।
अवर्तत महारौद्रः सततं समितिक्षयः ॥ ७ ॥
तस्मिन्नयुतशो राजन्भूयशश्च परन्तपः ।
भीष्मः शान्तनवो योधाञ्जघान परमास्त्रवित् ॥ ८ ॥
येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव ।
ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्तिनः ॥ ९ ॥
दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परन्तप ॥ १० ॥
स क्षिप्रं वधमन्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखो रणे ।
न हन्यां मानवश्रेष्ठान्संग्रामे सुबहूनिति ॥ ११ ॥

एक सौ पन्द्रह अध्याय ॥ ११५ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! महावीर्य-शाली शान्तनु-नन्दन पितामह भीष्म ने दसवें दिन पाण्डवों और सृञ्जयों से किस प्रकार से युद्ध किया? कौरवों ने किस प्रकार से पाण्डवों के आक्रमण को रोका? यह सब वृत्तान्त आप मुझसे कहो ॥१।२॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! मैं आपके आगे कौरवों और पाण्डवों के दारुण युद्ध का वृत्तान्त कहता हूँ, आप मन लगाकर सुनिए। महारथी अर्जुन के दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से जैसे आपके पक्ष के वीर नित्य मरते थे वैसे ही पाण्डवों की महासेना को भीष्म भी अपनी पूर्वोक्त प्रतिज्ञा के अनुसार, नित्य मारते थे ॥३।५॥ कौरवों सहित भीष्म को एक ओर, और पाञ्चालों सहित अर्जुन को दूसरी ओर, युद्ध करते देखकर लोग यह सन्देह करने लगे कि किस पक्ष की जय होगी। सब यही समझने लगे कि आज प्रलय हो जायगा। दसवें दिन अर्जुन और भीष्म के भयङ्कर युद्ध में घोर हत्याकाण्ड होते देख पड़ा। हे राजेन्द्र! उस भयानक संग्राम में महारथी, श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता, भीष्म पितामह नित्य दस हजार योद्धाओं को मारते थे। जिनके नाम और गोत्र भी नहीं मालूम थे, ऐसे अन्यान्य देशों के शूर और युद्ध में पीठ न दिखाने-वाले योद्धा भीष्म के हाथों मारे गये ॥६।९॥ इस

चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥
युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
शृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥ १३ ॥
निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनाऽनेन भारत ।
घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून्प्राणिनो रणे ॥ १४ ॥
तस्मात्पार्थं पुरोधाय पञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा ।
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥
तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
भीष्मं प्रति ययौ राजा संग्रामे सह सृञ्जयैः ॥ १६ ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो राजन्पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम् ॥ १७ ॥
अभिद्रवध्वं युद्ध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
रक्षिताः सत्यसन्धेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥ १८ ॥
अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः ।
भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥
मा वो भीष्माद्भयं किञ्चिदस्त्वद्य युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २० ॥
ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥

प्रकार दस दिन तक पाण्डव-सेना का संहार करने से अन्त को धर्मात्मा भीष्म अपने जीवन से ऊब गये । उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैंने बहुत लोगों की हत्या की है । अब मुझे मर ही जाना श्रेष्ठ है । अतएव अपनी मृत्यु की इच्छा करके, और "अब मनुष्य-हत्या नहीं करूंगा" ऐसा विचार करके भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा हे पाण्डव ! तुम सब शास्त्रों के जाननेवाले हो, इसलिए मैं जो धर्मवर्द्धक और स्वर्गदायक वचन कहता हूँ, उन्हें सुनो ॥१०।१३॥ हे पुत्र ! मैंने बहुत से प्राणियों को रण में मारा है । मेरे बहुत बड़े जीवन का अधिक अंश इसी क्रूर कर्म के करने में व्यतीत हुआ है । इस समय जीवन से मेरा जी ऊब गया है । मैं अब जीवित रहना नहीं चाहता । इसलिए जो तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो पाञ्चालों और सृञ्जयों सहित अर्जुन को आगे करके मुझे मारने का यत्न करो ॥१४।१५॥ प्रियदर्शन पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने देवव्रत भीष्म की यह इच्छा जानकर उसी समय सृञ्जयों के साथ उन पर आक्रमण किया । धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर यह कह कर अपनी सब सेना को आक्रमण के लिए उत्साहित करने लगे कि "हे सैनिक वीरो ! दौड़ो, आक्रमण करो, युद्ध करो और भीष्म को जीत लो । शत्रुदमन सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन और महाबाहु भीमसेन तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥१६।१७॥ हे सृञ्जयगण ! संग्राम में

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥ २२ ॥
ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सह पुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३ ॥
दुःशासनश्च बलवान्सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयाञ्चक्रिरे तदा ॥ २४ ॥
ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥
चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २६ ॥
द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।
अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥
विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद परन्तप ॥ २८ ॥
मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
द्रौणिं प्रतिययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥ ३० ॥
कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिन्दमः ।
प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३१ ॥

---

भीष्म से तुम्हें किञ्चित्मात्र भी भय नहीं है । हम लोग शिखण्डी को आगे करके आज भीष्म को अवश्य मार लेंगे ।" हे महाराज ! दसवें दिन इस प्रकार प्रतिज्ञा करके, ब्रह्मलोक अथवा विजय की प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए पाण्डवगण, कुपित शिखण्डी और अर्जुन को आगे करके भीष्म की ओर बढ़े ॥२०।२२॥ हे राजेन्द्र ! तब आपकी और दुर्योधन की आज्ञा से अनेक देशों के महाबली राजा लोग, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, सब भाइयों के साथ बलवान् दुःशासन और कौरव पक्ष की सेना, सब लोग मिलकर समरभूमि के मध्य भीष्म की रक्षा करने लगे । आपके पक्ष के शूर योद्धा लोग महाव्रत भीष्म के अनुगामी होकर शिखण्डी को आगे करके आते हुए पाण्डवों से घोर युद्ध करने लगे ॥२३।२५॥ उधर चेदि और पाञ्चाल-देश के श्रेष्ठ वीरों को साथ लेकर कपिध्वज महारथी अर्जुन, शिखण्डी को आगे रखकर, भीष्म से युद्ध करने लगे । सात्यकि अश्वत्थामा से, धृष्टकेतु पौरव से, युधामन्यु अनुचरों सहित दुर्योधन से, सेना सहित राजा विराट सेना सहित महारथी जयद्रथ से, महाराज युधिष्ठिर सेना सहित महाधनुर्धर शल्य से, सुरक्षित भीमसेन गजारोही सेना से और भाइयों सहित सेनापति धृष्टद्युम्न अधृष्य, अनिवार्य, सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे ॥२६।३०॥ कर्णिकारचिह्नयुक्त ध्वजावाले रथ पर स्थित वीर अभिमन्यु से युद्ध करने

शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२ ॥
तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३ ॥
तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥ ३४ ॥
ततस्तेषां प्रतप्तानामन्योन्यमभिधावताम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३५ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषश्च वारणानां च बृंहितैः ।
सिंहनादश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥ ३६ ॥
सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा ।
वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७ ॥
रजोमेघास्तु सञ्जज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः ।
धनुषां चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥
बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः ।
रथघोषश्च सञ्जज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥ ३९ ॥
प्रासशक्त्यृष्टिसङ्घैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् ।
निष्प्रकाशमिवाऽऽकाशं सेनयोः समपद्यत ॥ ४० ॥
अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे ।
कुञ्जरान्कुञ्जरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ॥ ४१ ॥

के लिए सिंहकेतुवाले रथ पर स्थित राजकुमार बृहद्बल आगे बढ़े। आपके अन्य पुत्र और अन्य राजा लोग शिखण्डी और अर्जुन को मार डालने की इच्छा से उन पर आक्रमण करने चले ॥३१।३२॥ इस प्रकार दोनों ओर की भारी सेनाएँ अपना पराक्रम दिखाती हुई इधर से उधर परस्पर आक्रमण करने के लिए दौड़ीं। उस समय उनके वेग से पृथ्वी काँपने लगी। संग्राम में भीष्म को युद्ध करते देखकर आपकी और पाण्डवों की सेना दोनों, प्राणों का मोह छोड़कर, घोर युद्ध करने लगीं। प्रहार के लिए चेष्टा करते हुए और परस्पर आक्रमण के लिए दौड़ते हुए वीरों का घोर कोलाहल दसों दिशाओं में व्याप्त हो गया। शङ्ख-नगाड़े आदि का शब्द, हाथियों का शब्द और सब सैनिकों का दारुण सिंहनाद चारों ओर सुन पड़ने लगा ॥३३।३६॥ वीरों के उत्कृष्ट हार, अङ्गद और किरीट आदि की प्रभा के आगे सब राजाओं की चन्द्र-सूर्य के समान प्रभा फीकी पड़ गई। उड़ी हुई धूल मेघ की घटा सी छा गई। उसके मध्य शस्त्रों की चमक बिजली सी जान पड़ती थी। दोनों दलों के योद्धा जो धनुष चढ़ाते थे उसका शब्द, बाणों का शब्द नगाड़े आदि का शब्द और चलते हुए रथों की घरघराहट का शब्द मेघगर्जन सा प्रतीत होता था। ॥३७।३९॥ प्रास, शक्ति, ऋष्टि और बाण आदि असंख्य शस्त्रों से परिपूर्ण आकाशमण्डल प्रकाश-हीन सा हो

तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥ ४२ ॥
तेषां समागमो घोरो बभूव युधि सङ्गतः ।
अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपदेशे पञ्चादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

गया। रथी लोग रथी वीरों को और घुड़सवार योद्धा घुड़सवार योद्धाओं को मार-मारकर गिराने लगे। हाथियों को हाथी और पैदलों को पैदल मारने लगे। हे महाराज! जैसे मास के लिए दो श्येन (बाज) युद्ध करते है वैसे ही भीष्म के जीवन के लिए कौरव और पाण्डव तुमुल युद्ध करने लगे। वे एक दूसरे को मारने और जीतने के लिए घोर युद्ध कर रहे थे ॥४०।४३॥

भीष्मपर्व का एक सौ पन्द्रह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११५ ॥

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच—अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।
महत्या सेनया युक्तं भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ १ ॥
दुर्योधनो रणे कार्ष्णि नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २ ॥
तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरां स्वसामिव ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३ ॥
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशाम्पते ।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४ ॥
तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ५ ॥
पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।
दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥ ६ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं चित्ररूपं च भारत ।
इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७ ॥

एक सौ सोलह अध्याय ॥ ११६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महापराक्रमी अभिमन्यु भीष्म को मारने के लिए असंख्य सेना-परिवृत राजा दुर्योधन से युद्ध करने लगे। राजा दुर्योधन ने अति तीक्ष्ण नव बाण अभिमन्यु को मारे। फिर कुपित होकर तीन बाण और भी उनकी छाती में मारे। ॥१।२॥ तब अभिमन्यु ने क्रोध करके मृत्यु की जिह्वा के समान भयङ्कर लोहमयी शक्ति दुर्योधन के रथ पर फेंकी। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र दुर्योधन ने उस भयानक शक्ति को आते देखकर तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उसके दो टुकड़े कर डाले ॥३।४॥ हे भारत! महा-

भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च ।
युयुधाते रणे वीरौ सौभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥ ८ ॥
सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परन्तपः ॥ ९ ॥
शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत ।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः ॥ १० ॥
अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः ।
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चाऽपर्यत् ॥ ११ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः ।
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः ॥ १२ ॥
पौरवो धृष्टकेतुं च शरैराच्छाद्य संयुगे ।
बहुधा दारयाञ्चक्रे महेष्वासं महारथः ॥ १३ ॥
तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः ।
त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाऽऽशु महाभुजः ॥ १४ ॥
पौरवस्तु धनुश्छित्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ १५ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः ।
आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ १६ ॥
तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ ।
महता शरवर्षेण परस्परमविध्यताम् ॥ १७ ॥
अन्योन्यस्य धनुश्छित्वा हयान्हत्वा च भारत ।
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ॥ १८ ॥

वीर अभिमन्यु ने दुर्योधन की छाती और भुजाओं में पहले तीन और फिर दस बाण मारे। उन दोनों वीरों का वह घोर और विचित्र युद्ध देखकर सब दर्शक बहुत प्रसन्न हुए और राजा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। भीष्म को मारने और अर्जुन की विजय के लिए वीर अभिमन्यु दुर्योधन से घोर युद्ध करने लगे ॥५।८॥ उधर शत्रुनाशन ब्राह्मणश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने कुपित होकर सात्यकि की छाती में एक नाराच बाण मारा। सात्यकि ने भी गुरुपुत्र अश्वत्थामा के मर्मस्थलों में कङ्कपत्र-भूषित नव बाण मारे। उन्होंने भी सात्यकि के दोनों हाथों और छाती में पहले नव और फिर तीस बाण मारे। महायशस्वी सात्यकि ने अश्वत्थामा के बाणों से बहुत घायल और व्यथित होकर उनको फिर तीन बाण मारे ॥९।१२॥ पौरव ने धृष्टकेतु के ऊपर असंख्य बाण बरसाये, तब धृष्टकेतु ने तीस बाणों से पौरव को घायल किया। महारथी पौरव ने धृष्टकेतु का धनुष काट डाला और अनेक तीक्ष्ण बाणों से शत्रु को पीड़ित करके घोर सिंहनाद किया ॥१३।१५॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते ।
तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ ॥ १९ ॥
प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ ।
वासितासङ्गमे यत्तौ सिंहाविव महावने ॥ २० ॥
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥ २१ ॥
पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना ।
ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २२ ॥
चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम् ।
आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना ॥ २३ ॥
तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे ।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिन्दमौ ॥ २४ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव ।
जयत्सेनो रथेनाऽऽजावपोवाह रणाजिरात् ॥ २५ ॥
धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
अपोवाह रणे क्रुद्धः सहदेवः पराक्रमी ॥ २६ ॥
चित्रसेनः सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः ।
पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशाम्पते ।
दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥ २८ ॥

धृष्टकेतु ने शीघ्रता से दूसरा धनुष लेकर पौरव को निहत्तर तीक्ष्ण बाण मारे। इसी प्रकार वे दोनों महा-वीर महारथी एक-दूसरे पर असह्य बाण बरसाते हुए घोर युद्ध करने लगे। दोनों ने दोनों के धनुष काट डाले और रथ तथा घोड़े भी नष्ट कर दिये॥१६।१८॥ इसके पश्चात् रथहीन दोनों योद्धा खड्ग-युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए। जैसे महावन में एक सिंहनी के लिए दो सिंह परस्पर झपटें, वैसे ही वे दोनों वीर शतचन्द्रयुक्त ढालें और शततारकाचित्रित उत्कृष्ट खड्ग लेकर एक दूसरे पर झपटे। वे आगे बढ़कर, पीछे हटकर, अनेक प्रकार के पैंतरे दिखाते हुए परस्पर आक्रमण और युद्ध करने लगे॥१९।२१॥ अत्यन्त कुपित पौरव ने "ठहर-ठहर" कहकर धृष्टकेतु के सिर पर खड्ग का प्रहार किया। चेदिराज धृष्टकेतु ने भी बढ़कर पुरुषश्रेष्ठ पौरव के कन्धे पर तीक्ष्ण खड्ग मारा। हे महाराज! वे दोनों वीर इस प्रकार वेग से परस्पर प्रहार करके अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब आपके पुत्र जयत्सेन पौरव को, अपने रथ पर बिठाकर, समर-भूमि से हटा ले गये। क्रुद्ध पराक्रमी सहदेव धृष्टकेतु को लेकर समर से हट गया॥२२।२६॥ हे राजेन्द्र! आपके पुत्र चित्रसेन ने पाण्डवपक्ष के सुशर्मा नामक राजा को लोहमय बाणों से घायल कर दिया। इसके अनन्तर साठ बाण, फिर नौ बाण और मारे। सुशर्मा ने भी क्रुद्ध होकर

चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिंशता नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥ २९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन्यशो मानं च वर्धयन् ।
सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत् ॥ ३० ॥
पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्याऽऽयोधनं प्रति ।
आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विध्वा पञ्चभिरायसैः ॥ ३१ ॥
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सौभद्रः कोसलेन्द्रं तु विव्याधाऽष्टभिरायसैः ॥ ३२ ॥
नाऽकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः ।
कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ ३३ ॥
आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३४ ॥
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः ।
तयोर्युद्धं समभवद्भीष्महेतोः परन्तप ॥ ३५ ॥
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः ।
यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत् ॥ ३६ ॥
भीमसेनो गजानीकं योधयन्बह्वशोभत ।
यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन्पर्वतोत्तमान् ॥ ३७ ॥
ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसन्निभाः ।
निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥

चित्रसेन को दश बाण मारे । फिर तीस बाण और मारे । हे महाराज ! उस भीष्म सम्बन्धी समर में अपने यश और कुल के मान को बढ़ाते हुए कुमार अभिमन्यु राजा बृहद्बल से घोर युद्ध करने लगे॥२७। ३०॥ अर्जुन जिसमें अनायास भीष्म को मार सकें, इसलिए पराक्रमी अभिमन्यु भी उनका सहायता कर रहे थे । कोशलेश वीर बृहद्बल ने अभिमन्यु को पहले लोहमय पाँच बाण मारे, उसके अनन्तर फिर बीस तीक्ष्ण बाण मारे । अभिमन्यु ने उस प्रहार से तनिक भी विचलित न होकर बृहद्बल को आठ लोहमय बाण मारे । उसके अनन्तर शत्रु का धनुष काटकर कङ्क पत्रयुक्त तीस विकट बाण और मारे॥३०।३४॥ राजपुत्र बृहद्बल भी दूसरा धनुष लेकर अभिमन्यु को अनेक प्रकार के बाणों से पीड़ित करने लगे । जैसे देवासुर युद्ध में बलि और इन्द्र युद्ध करते थे वैसे ही दोनों वीर क्षत्रिय कुपित होकर, भीष्म के वध और रक्षा के लिए, परस्पर घोर और विचित्र युद्ध कर रहे थे । हे महाराज ! उधर भीमसेन हाथियों के दल में प्रवेश होकर उनका सहार करने लगे । जैसे वज्र पाणि इन्द्र पर्वतों को तोड़ रहे हों वैसे ही गदा हाथ में लेकर हाथियों को मारते हुए भीमसेन शोभायमान हुए । उनके प्रहार से पर्वततुल्य हाथी घोर चीत्कार से पृथ्वी को कँपाते हुए गिरने लगे । अञ्जन के समान काले रङ्ग के, पर्वत जैसे ऊँचे,

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ॥ ३९ ॥
युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे ।
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास सङ्गतम् ॥ ४० ॥
मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।
पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ४१ ॥
विराटं सैन्धवो राजा विध्वा सन्नतपर्वभिः ।
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत् ॥ ४२ ॥
विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः ।
त्रिंशद्भिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४३ ॥
चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ ।
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥ ४४ ॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे ।
महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४५ ॥
ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः ।
छित्त्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ॥ ४६ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥ ४७ ॥
ताञ्छराञ्छरघातेन चिच्छेद स महारथः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत्पञ्च सायकान् ॥ ४८ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ॥ ४९ ॥

---

गजराज पृथ्वी पर गिरकर इधर उधर बिखरे हुए पर्वतों के समान जान पड़ते थे ॥२४।३९॥ महाधनुर्द्धर राजा युधिष्ठिर, अपनी सेना के द्वारा सुरक्षित होकर, समर के लिए उद्यत मद्रराज शल्य को पीड़ित करने लगे। शल्य भी भीष्म की रक्षा के लिए पराक्रम दिखाकर महारथी युधिष्ठिर को पीड़ा पहुँचाते हुए युद्ध करने लगे। उधर सिन्धुराज जयद्रथ ने राजा विराट को पहले तीक्ष्ण नव बाणों से पीड़ित करके फिर तीस तीक्ष्ण बाण उनकी छाती में मारे। राजा विराट ने क्रुद्ध होकर जयद्रथ की छाती में तीस तीक्ष्ण बाण मारे। विचित्र धनुष, खड्ग, कवच, शस्त्र, ध्वजा आदि से सुशोभित दोनों वीर राजा इस प्रकार घोर संग्राम करने लगे ॥४०।४४॥ हे राजेन्द्र! महात्मा द्रोणाचार्य राजकुमार धृष्टद्युम्न के सम्मुख जाकर घोर और अद्भुत युद्ध करने लगे। उन्होंने धृष्टद्युम्न का धनुष काटकर स्फूर्ति के साथ पचास बाण मारे। शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष लेकर द्रोणाचार्य के ऊपर अनेक बाण छोड़े। महारथी द्रोणाचार्य ने

तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् ।
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ॥ ५० ॥
सा छिन्ना बहुधा राजन्द्रोणचापच्युतैः शरैः ।
चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥ ५१ ॥
गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुतापनः ।
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारसवीं शुभाम् ॥ ५२ ॥
तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५३ ॥
एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्षतयोरभूत् ।
भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥ ५४ ॥
अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन्निशितैः शरैः ।
अभ्यद्रवत संयत्तो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ५५ ॥
प्रत्युद्ययौ च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ॥ ५६ ॥
तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसन्निभम् ।
परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥
ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५८ ॥
अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः ।
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५९ ॥

उन बाणों को अपने बाणों से निष्फल कर दिया। इसके पश्चात् अत्यन्त तीक्ष्ण पाँच बाण द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को मारे ॥४५।४८॥ तब उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर यमदण्डतुल्य भारी गदा द्रोणाचार्य के ऊपर फेंकी। द्रोणाचार्य ने सोने की पट्टियों से मढ़ी उस गदा को आते देखकर पचास बाणों से उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। द्रोण के बाणों से कटकर चूर्ण सी हो गई वह गदा पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥४९।५१॥ शत्रुतापन धृष्टद्युम्न ने गदा का प्रहार व्यर्थ होते देखकर एक लोहे की बनी शक्ति द्रोणाचार्य के ऊपर फेंकी। द्रोण ने नव बाणों से वह शक्ति काटकर गिरा दी, और अनेक तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्न को पीड़ित किया। भीष्म के कारण द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न ने इस प्रकार महाघोर युद्ध किया ॥५२।५४॥ महावीर अर्जुन भीष्म को देखकर, जङ्गली हाथी जैसे दूसरे जङ्गली हाथी पर आक्रमण करने के लिए दौड़ता है वैसे ही, तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उनकी ओर चले। महाप्रतापी राजा भगदत्त मदान्ध हाथी पर सवार थे ॥५५।५७॥ अर्जुन को आते देखकर, उन्हें रोकने के लिए वे आगे बढ़े। भगदत्त को हाथी पर से बाण बरसाते देख महारथी अर्जुन यत्नपूर्वक उन पर बाण छोड़ने लगे। उस महारण में वीर अर्जुन चाँदी के समान चमकीले लोहे के बाण उस गजराज को मारने लगे। अर्जुन बारम्बार शिखण्डी से कहने लगे—"भीष्म

शिखण्डिनं च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत् ।
भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाऽब्रवीत् ॥ ६० ॥
प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज ।
प्रययौ त्वरितो राजन्द्रुपदस्य रथं प्रति ॥ ६१ ॥
ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद् द्रुतम् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥ ६२ ॥
ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि ।
समभ्यधावन्क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६३ ॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाऽभ्राणि मारुतः ॥ ६४ ॥
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥ ६५ ॥
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
शरसङ्घमहाज्वालः क्षत्रियान्समरेऽदहत् ॥ ६६ ॥
यथाऽग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः ।
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन्॥ ६७ ॥
सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् ।
न्यवारयत तत्सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ॥ ६८ ॥
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः सन्नतपर्वभिः ।
नादयन्स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे ॥ ६९ ॥

के पास जाओ, बढ़ो, उन्हें मारो"॥५८।६०॥तब राजा भगदत्त अर्जुन को छोड़कर शीघ्रता के साथ राजा द्रुपद के रथ के पास चले। इधर शिखण्डी को आगे करके अर्जुन स्फूर्ति के साथ भीष्म की ओर चले। उस समय घमासान युद्ध होने लगा। उधर से कौरव पक्ष के वीर भी कुपित होकर चिल्लाते और सिंहनाद करते हुए वेग के साथ अर्जुन की ओर दौड़े। उस समय अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देख पड़ा ॥६१।६३॥ वायु जैसे आकाश में मेघों को छिन्न-भिन्न कर डालती है, वैसे ही वीर अर्जुन आपके पुत्रों की सेनाओं को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। पितामह भीष्म को देखकर शिखण्डी स्फूर्ति के साथ अव्यग्रभाव से उन पर बाण बरसाने लगे। रथरूप कुण्ड में प्रज्वलित, धनुषरूप ज्वाला से शोभित, खड्ग, गदा, शक्ति आदि शस्त्ररूप ईंधन से प्रज्वलित, बाणरूप चिनगारियों से परिपूर्ण भीष्म-रूप अग्नि युद्ध में उस समय क्षत्रिय वीरों को भस्म करने लगा॥६४।६६॥अग्नि जैसे वायु की सहायता से बढ़कर वन को भस्म करती है वैसे ही भीष्म भी दिव्य अस्त्र छोड़ते हुए शत्रुसेना में प्रज्वलित हो उठे। अर्जुन के अनुगामी सब सोमकों को नष्ट करके भीष्म ने सारी पाण्डवसेना को हरा दिया। उस महायुद्ध में महावीर भीष्म ने सब दिशाओं को अपने सिंहनाद और मरते हुए वीरों के आर्तनाद से प्रतिध्वनित कर दिया। वे सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण

पातयन्रथिनो राजन्हयांश्च सह सादिभिः ।
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥ ७० ॥
निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे ।
चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ७१ ॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
निशम्य सर्वतो राजन्समकम्पन्त सैनिकाः ॥ ७२ ॥
अमोघा न्यपतन्बाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर ।
नाऽसजन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ ७३ ॥
निर्मनुष्यान्रथान्राजन्सुयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
वातायमानानद्राक्षं ह्रियमाणान्विशाम्पते ॥ ७४ ॥
चेदिकाशिकरूपाणां सहस्राणि चतुर्दश ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ७५ ॥
अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥ ७६ ॥
जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
न तत्राऽऽसीद्रणे राजन्सोमकानां महारथः ॥ ७७ ॥
यः सम्प्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे ।
तांश्च सर्वान्रणे योधान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ७८ ॥
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ॥ ७९ ॥
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ८० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वाणि भीष्मवधपर्वाणि सकुलयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

बाणों से रथियों, घुड़सवारों और घोड़ों को मार-मारकर गिराने लगे। उनके बाणों से सहस्रों रथों के झुण्ड मुण्डहीन धड़ों से परिपूर्ण होकर छटे हुए ताड़ के वन से जान पड़ने लगे॥६७।७०॥रथों, हाथियों और घोड़ों की पीठें मनुष्यों से रहित हो गईं। बिजली की कड़क से भी भयङ्कर उनके धनुष की प्रत्यञ्चा का शब्द सब ओर सुनकर सैनिक लोग काँप उठे। भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाण लक्ष्य से कभी नहीं चूकते थे। वे अमोघ बाण वीरों के शरीरों को फोड़कर उस पार निकल जाते थे॥७१।७४॥मैंने देखा कि रथी और सारथी से रहित रथों को वायुवेगगामी घोड़े इधर-उधर लिये फिर रहे हैं। हे महाराज! चेदि, काशी, करूष आदि देशों के उच्च कुल में उत्पन्न महारथी, संग्राम से कभी विमुख न होनेवाले, शूर, सुवर्णमण्डित ध्वजाओं से शोभित रथों पर स्थित चौदह सहस्र क्षत्रिय अपनी चतुरङ्गिणी सेना सहित भीष्म के हाथ

से मारे गये॥७५।७७॥मुख फैलाये हुए महाकाल के समान भीष्म के सन्मुख जो आया उसी को लोगो ने समझ लिया कि अब यह बच नहीं सकता। सोमक-वंश के सभी महारथी योद्धाओं को भीष्म ने मार डाला। उस समय वीर अर्जुन और पराक्रमी शिखण्डी के अतिरिक्त और कोई भीष्म के सन्मुख जाने का साहस नहीं कर सका॥७७।८०॥

— ० —

भीष्मपर्व का एक सौ सोल्ह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११६ ॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११७ ॥

सञ्जय उवाच—शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम् ।
दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे ॥ १ ॥
शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ।
सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ २ ॥
स्त्रीत्वं तस्य स्मरन्राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।
नाऽऽजघान रणे भीष्मः स च तन्नाऽवबुद्धवान् ॥ ३ ॥
अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत ।
अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम् ॥ ४ ॥
किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम् ।
न ह्यन्यमनुपश्यामि कञ्चिद्यौधिष्ठिरे बले ॥ ५ ॥
यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोद्धुमिहाऽऽहवे ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत् ॥ ७ ॥
अचिन्तयित्वा तान्बाणान्पिता देवव्रतस्तव ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः ॥ ८ ॥
तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः ।
अप्रैषीत्स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ॥ ९ ॥

एक सौ सत्रह अध्याय ॥ ११७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! भीष्म के पास पहुँचकर शिखण्डी ने उनकी छाती में दस तीक्ष्ण भल्ल बाण मारे। भीष्म ने क्रोध से प्रज्वलित तीव्र तिरछी दृष्टि से देखा; ऐसा जान पड़ा मानो वे उन्हें भस्म कर देंगे। किन्तु शिखण्डी को जन्म की स्त्री जानकर सब लोगों के सन्मुख भीष्म ने उनपर प्रहार नहीं किया। परन्तु शिखण्डी ने यह भीष्म का भाव नहीं जाना॥१।३॥महारथी भीष्म के पास खड़े हुए शिखण्डी से अर्जुन ने कहा—"हे वीर शिखण्डी ! अब विचार और संशय की आवश्यकता नहीं। वीर, भीष्म को मारने में शीघ्रता करो। युधिष्ठिर की सेना में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मुझे ऐसा नहीं देख

तथैव पाण्डवा राजन्सैन्येन महता वृताः ।
भीष्मं सञ्छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १० ॥
स समन्तात्परिवृतो भारतो भरतर्षभ ।
निर्ददाह रणे शूरान्वने वह्निरिव ज्वलन् ॥ ११ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
अयोधयच्च यत्पार्थं जुगोप च पितामहम् ॥ १२ ॥
कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः ।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः ॥ १३ ॥
यदेकः समरे पार्थान्सार्जुनान्समयोधयत् ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्वणम् ॥ १४ ॥
दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः ।
सादिनश्च महेष्वासा हस्तिनश्च महाबलाः ॥ १५ ॥
विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्वसुधातले ।
शरातुरास्तथैवाऽन्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥ १६ ॥
यथाऽग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुल्वणम् ।
तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन् ॥ १७ ॥
तं भारतमहामात्रे पाण्डवानां महारथः ।
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाऽभ्युद्यातुं कथञ्चन ॥ १८ ॥
ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात्कृष्णसारथेः ।
स हि तं समरे राजन्निर्जित्य विजयोऽर्जुनः ॥ १९ ॥

पड़ता, जो पितामह भीष्म के सम्मुख खड़ा होकर इनसे युद्ध कर सके। हे पुरुषसिंह! यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ"॥४।६॥अर्जुन के यों कहने पर शिखण्डी अनेक प्रकार के बाण बरसाते हुए भीष्म की ओर दौड़े। हे महाराज! आपके पिता देवव्रत भीष्म शिखण्डी के प्रहारों का कुछ विचार न करके क्रुद्ध अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे। वे तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की महासेना को मारने लगे॥७।९॥हे राजेन्द्र! सेना सहित सब पाण्डव वैसे ही भीष्म को घेरने और बाणों से ढकने लगे, जैसे मेघमण्डली सूर्य को ढक लेती है। हे भरतश्रेष्ठ! चारों ओर से घिरे हुए भीष्म पितामह वन में अग्नि के समान प्रज्वलित होकर युद्ध-भूमि में शूरों को भस्म करने लगे। उस भयङ्कर संग्राम में आपके पुत्र दुःशासन का अद्भुत पौरुष देख पड़ा। वे अकेले ही अर्जुन आदि पाण्डवों से युद्ध करते थे और उन्हें रोक कर भीष्म की रक्षा कर रहे थे ॥१०।१२॥दुःशासन के इस कर्म को देखकर सब लोग बहुत ही सन्तुष्ट हुए। सब पाण्डव मिलकर भी दुःशासन को नहीं रोक सकते थे। दुःशासन रण-भूमि में रथी शूरों को रथ-हीन करके हाथियों और घोड़ों को नष्ट करने लगे॥१३।१५॥उनके बाणों से विदीर्ण हाथी और धनुर्द्धर घुड़सवार पृथ्वी पर गिरने लगे। सैकड़ों हाथी उनके बाणों से पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगे। जैसे ईंधन पाकर अग्नि प्रज्व-

भीष्ममेवाऽभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः ॥ २० ॥
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः ।
अर्जुनस्तु रणे राजन्योधयन्संव्यराजत ॥ २१ ॥
शिखण्डी तु रणे राजन्विव्याधैव पितामहम् ।
शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥ २२ ॥
न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।
स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान्बाणाञ्जगृहे तदा ॥ २३ ॥
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति ।
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ २४ ॥
तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २५ ॥
ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे ॥ २६ ॥
भीष्मो वः समरे सर्वान्पालयिष्यति धर्मवित् ।
ते भयं सुमहत्त्यक्त्वा पाण्डवान्प्रतियुध्यत ॥ २७ ॥
हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन् ।
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च ॥ २८ ॥
त्रिदशोऽपि समुद्युक्ता नाऽलं भीष्मं समासितुम् ।
किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूता महाबलाः ॥ २९ ॥

लित हो उठती है, वैसे ही दुःशासन प्रज्वलित होकर पाण्डवों की सेना को भस्म करने लगे। पाण्डवों में से महारथी अर्जुन के अतिरिक्त और कोई उन्हें जीतने के लिए उनके पास जाने का साहस नहीं कर सकता था॥१६।१९॥महावीर अर्जुन ही सबके सम्मुख उन्हें जीतकर भीष्म की ओर अग्रसर हुए। भीष्म के बाहुबल का आश्रय पाये हुए वीर दुःशासन, अर्जुन से हारकर भी, धीरज धरकर बारम्बार उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। उस युद्ध में अर्जुन की बड़ी शोभा हुई॥२०।२१॥उधर शिखण्डी और किसी से न रुककर वज्रतुल्य कठोर और सर्प के समान विषैले बाणों से भीष्म को ही घायल करने लगे। किन्तु वे बाण भीष्म को तनिक भी पीड़ा नहीं पहुँचा सके। मुसकराते हुए भीष्म उन बाणों को वैसे ही रोक लेते थे जैसे गर्मी का सताया हुआ मनुष्य जल की धारा अपने ऊपर गिरने देता है॥२२।२४॥क्षत्रियों ने घोर-रूप भीष्म को देखा कि वे पाण्डवों की सेना को बाणवर्षा से नष्ट कर रहे हैं। इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने अपने सब सैनिकों से कहा—हे वीरो ! तुम लोग शीघ्र ही चारों ओर से अर्जुन पर आक्रमण करो। धर्मज्ञ भीष्म तुम सबकी रक्षा करेंगे। हे नरपतियो ! सुवर्णभूषित तालचिह्नयुक्त ध्वजावाले रथ पर विराजमान भीष्म ही हम लोगों के मालिक और रक्षक हैं। भीष्म तुम्हारे पास ही हैं, इसलिए तुम

तस्माद् द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे ।
अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम् ॥ ३० ॥
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः ।
तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ॥ ३१ ॥
सर्वे योधाः सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः ।
ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दासेरकगणाश्च ह ॥ ३२ ॥
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीरश्च महारणे ।
बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ३३ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ३४ ॥
अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम् ।
शलभा इव राजेन्द्र पार्थमप्रतिमं रणे ।
एतान्सर्वान्सहानीकान्महाराज महारथान् ॥ ३५ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसन्धाय धनञ्जयः ।
स तैरस्त्रैर्महावेगैर्ददाह सुमहाबलः ॥ ३६ ॥
शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः ।
तस्य बाणसहस्राणि सृजतो दृढधन्विनः ॥ ३७ ॥
दीप्यमानमिवाऽऽकाशे गाण्डीवं समदृश्यत ।
ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः ॥ ३८ ॥
नाऽभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम् ।
सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ॥ ३९ ॥

---

लोग निर्भय होकर पाण्डवों से युद्ध करो ॥२५।२७॥ सब देवता भी मिलकर भीष्म का सामना नहीं कर सकते, फिर पाण्डव हैं ही क्या वस्तु ? इसलिए पाण्डवों से डटकर युद्ध करो । मैं स्वयम् तुम लोगों के साथ यत्नपूर्वक अर्जुन से युद्ध करूंगा॥२८।३०॥ हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के सब महाबली योद्धा दुर्योधन के ये वचन सुनकर, निर्भय होकर, अर्जुन से युद्ध करने लगे । पतङ्गे जैसे अग्नि पर आक्रमण करते हैं वैसे ही वे विदेह, कलिङ्ग, दासेरक, निषाद, सौवीर, बाह्लीक, दरद, प्रतीच्य, औदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, शक, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, कैकेय आदि देशों और जातियों के वीर कुपित होकर अर्जुन से युद्ध करने चले॥३१।३५॥ महावीर अर्जुन ने सब दिव्य अस्त्रों का ध्यान किया और फिर उन्हीं अस्त्रों से सयुक्त बाण छोड़कर वे उन शत्रुओं को, अग्नि जैसे पतङ्गों को जलाती है वैसे, भस्म करने लगे । उन महावेगवाले अस्त्रों के प्रभाव से युक्त सहस्रों बाण गाण्डीव धनुष से एक साथ निकलने लगे । गाण्डीव धनुष आकाश में बिजली की तरह चमकने लगा॥३५।३८॥उन बाणों से राजाओं के

सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः ।
ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृताऽऽसीद्वसुन्धरा ॥ ४० ॥
विद्रवद्भिश्च बहुधा बलै राज्ञां समन्ततः ।
अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम् ॥ ४१ ॥
दुःशासनाय सुबहून्प्रेषयामास सायकान् ।
ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ॥ ४२ ॥
धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः ।
हयांश्चाऽस्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत् ॥ ४३ ॥
विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान्प्रभुः ।
आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥
कृपं विकर्णं शल्यं च विध्वा बहुभिरायसैः ।
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ४५ ॥
एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष ।
दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥ ४६ ॥
सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥ ४७ ॥
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ।
तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव ॥ ४८ ॥
अन्यानपि महाराज तापयामास पार्थिवान् ।
पराङ्मुखीकृत्य तथा शरवर्षैर्महारथान् ॥ ४९ ॥
प्रावर्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।
मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥ ५० ॥

---

रथों की ध्वजाएँ कट-कटकर गिरने लगीं। बाणों से पीड़ित राजा लोग अर्जुन के सन्मुख ठहर नहीं सके। ध्वजा, रथ, रथी, घोड़े, घुड़सवार, हाथी और उनके सवार अर्जुन के बाणों से पीड़ित और छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी पर गिरने लगे। अर्जुन की भुजाओं से छूटे हुए बाण सर्वत्र व्याप्त हो गये। लाशों से पृथ्वी भर गई। दुर्योधन की सब सेना चारों ओर भागने लगी॥३८।४१॥महारथी अर्जुन ने इस प्रकार कौरव-सेना को भगाकर दुःशासन के ऊपर बहुत से बाण छोड़े। वे लोहमय बाण दुःशासन के शरीर को चीर-कर सर्प जैसे बिल में प्रवेश होता है वैसे ही धरती में प्रवेश हो गये। अब अर्जुन ने दुःशासन के सारथी और घोड़ों को भी मार डाला। फिर बीस बाणों से विविंशति का रथ तोड़कर उनको पाँच बाण मारे ॥४१।४४॥अर्जुन ने कृपाचार्य, शल्य और विकर्ण के रथ नष्ट करके उन्हें बहुत से लोहमय बाण मारे। इस प्रकार महारथी कृप, शल्य, दुःशासन, विकर्ण और विविंशति, सब रथ-हीन होकर अर्जुन से हार-

गजाश्च रथसङ्घाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
रथाश्च निहता नागैर्हयाश्चैव पदातिभिः ॥ ५१ ॥
अन्तरा च्छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च ।
निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्वरथयोधिनाम् ॥ ५२ ॥
छन्नमायोधनं राजन्कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥ ५३ ॥
रथनेमिनिकृत्तैश्च गजैश्चैवाऽवपोथितैः ।
पादाताश्चाऽप्यधावन्त साश्वाश्च हययोधिनः ॥ ५४ ॥
गजाश्च रथयोधाश्च परिपेतुः समन्ततः ।
विकीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ॥ ५५ ॥
तद्गजाश्वरथौघानां रुधिरेण समुक्षितम् ।
छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव शारदम् ॥ ५६ ॥
श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृका गोमायुभिः सह ।
प्रणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ॥ ५७ ॥
ववुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥ ५८ ॥
काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः ।
धूयमाना व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ॥ ५९ ॥

कर युद्धभूमि से भाग खड़े हुए। हे भरतश्रेष्ठ! मध्याह्न के पहले इन महारथियों को जीतकर अर्जुन धूम-रहित अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। बाणों से किरण-मण्डित सूर्य के समान शोभा को प्राप्त अर्जुन अन्य राजाओं को भी पीड़ित करने लगे॥४५।४९॥ बाण-वर्षा और दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से सब महारथियों को विमुख करके अर्जुन ने कौरवों और पाण्डवों की सेना के मध्य रक्त की महानदी बहा दी। [पाण्डव और सृञ्जय-गण भीष्म के ऊपर पूर्णबल लगाकर आक्रमण करने लगे। भीष्म को भी प्रबल पराक्रम के साथ उनका सामना करते देखकर, समर में मृत्यु होने से स्वर्गलोक प्राप्त होगा — यह सोचकर, आपके पुत्र और उनके अधीन राजा लोग पाण्डवों का सामना करने लगे। कोई भी रण से नहीं भागा। उधर पाण्डवगण भी आपके पुत्रों से प्राप्त अपने पहले के क्लेशों को स्मरण करके निर्भय भाव से युद्ध करने लगे। उन शूरों ने निश्चय कर लिया कि जीवेंगे तो राज्य प्राप्त करेंगे, और मर जायेंगे तो स्वर्गलोक प्राप्त होगा। यह सोचकर प्रसन्नतापूर्वक शत्रुओं से प्राणपण पराक्रम के साथ सब युद्ध कर रहे थे।] रथी लोगों के बाणों से नष्ट-भ्रष्ट रथों और हाथियों के समूह सर्वत्र पड़े हुए थे। हाथियों के तोड़े हुए रथ और पैदलों के मारे हुए घोड़े गिरे पड़े थे। हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथों, घोड़ों और हाथियों के सवार मरे पड़े थे। उनके सिर और शरीर कट-कटकर सर्वत्र बिखरे पड़े थे ॥५०।५२॥ कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषणों से भूषित महारथी राजपुत्र गिर रहे थे और कुछ गिरे पड़े थे। उनकी लाशों से सारा मैदान भरा पड़ा था। कुछ लोग रथों

श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः ।
विकीर्णाः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६० ॥
सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः ।
क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ॥ ६१ ॥
समन्ततश्च दृश्यन्ते पतिता धरणीतले ।
ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ॥ ६२ ॥
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
तं शिखण्डी रणे यान्तमभ्यद्रवत दंशितः ॥ ६३ ॥
ततः समाहरद्भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम् ।
त्वरितः पाण्डवो राजन्मध्यमः श्वेतवाहनः ॥ ६४ ॥
निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम् ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

के पहियों के नीचे पड़कर कट गये थे और कुछ के शरीर हाथियों के पाओं से कुचल गये थे। पैदल और घुड़सवार इधर-उधर दौड़ रहे थे। हाथी और रथों के योद्धा चारों ओर मर-मरकर गिर रहे थे। जिनके पहिये, युग और ध्वजा आदि अङ्ग टूट गये हैं ऐसे रथ पृथ्वी पर पड़े हुए थे॥५३।५६॥हाथी, घोड़े और रथ आदि के सवारों के रक्त से सनी हुई वह पृथ्वी शरद् ऋतु के सन्ध्या काल के लाल मेघ के समान देख पड़ती थी। कुत्ते, कौए, गिद्ध, भेड़िये, सियार आदि भयङ्कर मांसाहारी पशु-पक्षी भोजन पाकर बड़े आनन्द से बोल रहे थे। उस समय सब दिशाओं में नाना प्रकार की कठोर गर्म और रूक्ष वायु चलने लगी। चीत्कार करते और गरजते हुए राक्षस, भूत, प्रेत आदि साक्षात् देख पड़ने लगे। सुवर्णभूषित हार और पताकाएँ सहसा वायु से उड़ने लगीं ॥५७।५९॥ सहस्रों श्वेत छत्र और ध्वजा सहित महारथी इधर-उधर बिखरे हुए देख पड़ने लगे। बाणों से पीड़ित होकर पताकाओं से शोभित बड़े-बड़े हाथी इधर-उधर भागने लगे। गदा, शक्ति, धनुष आदि शस्त्र हाथों में लिये सहस्रों क्षत्रिय पृथ्वी पर इधर-उधर पड़े देख पड़ते थे ॥६०।६२॥ हे महाराज! तब भीष्म पितामह दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके सब योद्धाओं के सन्मुख अर्जुन की ओर चले; किन्तु कवचधारी शिखण्डी ने सन्मुख आकर उन्हे रोक लिया। तब भीष्म ने उस अग्नि-तुल्य अस्त्र का उपसंहार कर लिया। इसी अवसर में अर्जुन ने पितामह को मोहित करके आपकी सेना को मारना आरम्भ किया॥६३।६५॥

— o —

भीष्मपर्व का एक सौ सत्रह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११७ ॥

अथ अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच—समं व्यूढेष्वनीकेषु भूयिष्ठेष्वनिवर्तिनः ।
ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥ १ ॥
नह्यनीकमनीकेन समसज्जत संकुले ।
रथा न रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः ॥ २ ॥

अश्वा नाऽश्वैरयुध्यन्त गजा न गजयोधिभिः ।
उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते तत्र भारत ॥ ३ ॥
महान्व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ।
नरनागगणेष्वेवं विकीर्णेषु च सर्वशः ॥ ४ ॥
क्षये तस्मिन्महारौद्रे निर्विशेषमजायत ।
ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥ ५ ॥
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान् ।
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥ ६ ॥
सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः ।
भ्राम्यते बहुधा राजन्मारुतेनेव नौर्जले ॥ ७ ॥
यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति ।
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति ॥ ८ ॥
तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना ।
नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ॥ ९ ॥
मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः ।
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
पेतुरार्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः ।
आनद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥
छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये ॥ १२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय सेनाओं के व्यूह टूट गये । सब लोग जीवन की आशा छोड़कर स्वर्ग प्राप्त करने की अभिलाषा से महा घोर युद्ध करने लगे । उस समय युद्ध के नियमों का विचार किसी को नहीं रहा । साधारणतः रथी रथी से, घुड़सवार घुड़सवार से, हाथी का सवार हाथी के सवार से और पैदल पैदल से युद्ध करता था, परन्तु उस समय यह नियम जाता रहा । जो जिसे पाता था वह उसी पर प्रहार कर देता था । सब उन्मत्त से हो रहे थे ॥१।३॥ दोनों सेनाओं में हलचल मच गई । मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि इस प्रकार बिखरकर महाघोर संग्राम करने लगे । कोई किसी को नहीं पहचानता था, यहाँ तक कि लोग अपने ही पक्ष वालों पर प्रहार कर रहे थे ॥४।५॥ तब शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, दुःशासन और विकर्ण, पाँचों वीर रथों पर बैठकर पाण्डव पक्ष की सेना को मारने और मथने लगे । जल में डूबती हुई नाव के समान उस मारी जाती हुई पाण्डवसेना ने अपनी रक्षा करनेवाला किसी को न देखा । जैसे जाड़े की ऋतु गाय आदि पशु-पक्षियों को कष्ट पहुँचाती है, वैसे ही पितामह भीष्म पाण्डवों को मर्मस्थल में पीड़ा पहुँचाने लगे॥५।८॥ तुरन्त ही महावीर अर्जुन अपने बाणों से मेघवर्ण बड़े-बड़े हाथियों को मार-मारकर गिराने लगे । प्रधान-प्रधान योद्धा अर्जुन के बाणों से उन्मथित होकर

भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये ।
ते पराक्रान्तमालोक्य राजन्युधि पितामहम् ॥ १३ ॥
अभ्यवर्तन्त ते पुत्राः सर्वे सैन्यपुरस्कृताः ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ १४ ॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त तस्मिन्वीरवरक्षये ।
पाण्डवाऽपि महाराज स्मरन्तो विविधान्बहून् ॥ १५ ॥
क्लेशान्कृतान्सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप ।
भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः ॥ १६ ॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च योधयन्ति प्रहृष्टवत् ।
सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ॥ १७ ॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह ।
सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते ॥ १८ ॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः ।
वध्यमानस्ततो राजन्पिता शान्तनवस्तव ॥ १९ ॥
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् ।
तस्य कीर्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता ॥ २० ॥
सम्प्रदत्तास्त्रशिक्षा वै परानीकविनाशनी ।
स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन्परबलक्षयम् ॥ २१ ॥
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भीष्मो दशसहस्राणि जघान परवीरहा ॥ २२ ॥

गिरने लगे। आर्तनाद करते हुए बड़े-बड़े गज पृथ्वी पर गिरने लगे। आभूषणों से भूषित वीरों के शरीरों और कुण्डल-मण्डित मुण्डों से यह पृथ्वी व्याप्त हो गई॥९।१२॥ महापराक्रमी भीष्म और महारथी अर्जुन ने इस प्रकार पराक्रम दिखाकर घोर संहार कर डाला। युद्ध में पितामह को इस प्रकार पराक्रम के साथ युद्ध करते देखकर आपके सब पुत्र अपनी-अपनी सेना लेकर लौट पड़े। युद्ध में मरकर स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से वे लोग उस समय पाण्डवों से युद्ध करने लगे॥१२।१५॥ हे महाभाग! पाण्डव भी आपके पुत्रों से प्राप्त अनेक क्लेशों को स्मरण करके निर्भय होकर प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोक अथवा विजय की इच्छा से कौरवों के साथ युद्ध करने लगे। उस समय पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपने सेना-वालों से कहा – "हे सोमकगण! हे सृञ्जयगण! तुम लोग शीघ्र भीष्म के ऊपर आक्रमण करो।" अब सोमक और सृञ्जयगण भीष्म के बाणों से अत्यन्त घायल और पीड़ित होने पर भी, सेनापति की आज्ञा से उत्साहित होकर, शीघ्रता के साथ बाण बरसाते हुए भीष्म के ऊपर चारों ओर से आक्रमण करने-लगे॥१५।१९॥ उनके बाणों के प्रहार से कुपित होकर आपके पिता देवव्रत भीष्म सृञ्जयों से युद्ध करने लगे। पहले महात्मा परशुराम से भीष्म ने जो शत्रुदलनाश करनेवाली अस्त्रविद्या प्राप्त की थी, उसी अस्त्रशिक्षा के बल

तस्मिंस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ ।
भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पञ्चालेषु च संयुगे ॥ २३ ॥
गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः ।
हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः ॥ २४ ॥
नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ।
दन्तिनां च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः ॥ २५ ॥
शिक्षाबलेन निहतं पित्रा तव विशाम्पते ।
ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् ॥ २६ ॥
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ।
शतानीकं च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैरपातयत् ।
उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनञ्जयम् ॥ २८ ॥
ये च केचन पार्थानामभियाता धनञ्जयम् ।
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥ २९ ॥
एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः ।
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ ३० ॥
स कृत्वा सुमहत्कर्म तस्मिन्वै दशमेऽहनि ।
सेनयोरन्तरे तिष्ठन्प्रगृहीतशरासनः ॥ ३१ ॥
न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन्निरीक्षितुम् ।
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥ ३२ ॥

से वे नित्य शत्रुसेना का संहार करते थे। उसी अस्त्र-विद्या के प्रभाव से नव दिन तक नित्य उन्होंने पाण्डव-सेना के दस-दस सहस्र वीरों को मारा। हे भारत-श्रेष्ठ! दसवें दिन अकेले भीष्म ने मत्स्य और पाञ्चाल देश की सेना के साथ युद्ध करके एक सहस्र हाथी के सवार, दस हजार घुड़सवार, पाँच हजार रथी, चौदह हजार पैदल और सात महारथी योद्धा मारे। इनके अतिरिक्त हाथी और घोड़े तो असंख्य मारे ॥१९।२६॥ इस प्रकार शिक्षा के प्रभाव से सब राजाओं की सेना का नाश करके उन्होंने विराट के प्रिय भाई शतानीक को मारा। शतानीक के साथी एक सहस्र वीर राजा भी भीष्म के भल्ल बाणों से मारे गये। समर में योद्धा लोग व्याकुल होकर अर्जुन को पुकारने और चिल्लाने लगे। पाण्डव-सेना के जो वीर अर्जुन के साथ-साथ भीष्म के सम्मुख आये, वे ही मारे गये ॥२६।२९॥ दसों दिशाओं में बाण बरसाते हुए भीष्म पाण्डव-सेना भर को उन्मथित करके सेना के अग्रभाग में खड़े हुए। हे महाराज! दसवें दिन ऐसा अद्भुत संग्राम करने के अनन्तर धनुष हाथ में लिये हुए भीष्म पितामह दोनों सेनाओं के मध्य में बहुत ही शोभायमान हुए। मध्याह्न के सूर्य के समान तपनेवाले भीष्म की ओर कोई राजा नेत्र उठाकर देख भी नहीं सकता था। इन्द्र ने जैसे दानवों को पीड़ित किया था वैसे ही भीष्म भी पाण्डवों को और उनकी सेना को पीड़ित करने लगे ॥३०।३३॥

यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे ।
तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत ॥ ३३ ॥
तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः ।
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥ ३४ ॥
एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः ।
सन्निहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥ ३५ ॥
बलात्संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः ।
नहि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥ ३६ ॥
ततस्तस्मिन्क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः ।
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ३७ ॥
स चाऽपि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान् ।
शरव्रातैः शरव्रातान्बहुधा विदुधाव तान् ॥ ३८ ॥
ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३९ ॥
यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह ।
सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥ ४० ॥
द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः ॥ ४१ ॥
एते चाऽन्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः ।
समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥ ४२ ॥
ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् ।
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ ४३ ॥

हे महाराज! इस प्रकार पराक्रम करके सेना के अग्रभाग में स्थित भीष्म को देखकर श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन से कहा—"हे धनञ्जय! ये पितामह भीष्म दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े हैं। इस समय इन्हें बलपूर्वक मारने से ही तुम्हें जय-प्राप्ति होगी। इसलिए जहाँ पर भीष्म तुम्हारी सेना को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं वहीं पर इन्हें बलपूर्वक रोक रक्खो। भीष्म के बाणों की चोट को तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं सह सकता" ॥३५।३६॥ श्रीकृष्ण के यों कहने पर अर्जुन उस समय भीष्म पर असंख्य बाण बरसाने लगे। ध्वजा, रथ, घोड़े आदि सहित भीष्म को अर्जुन ने अपने बाणों से अदृश्य कर दिया। कुरुश्रेष्ठ भीष्म भी अर्जुन के बाणों को अपने बाणों से काट-कूट करके नष्ट करने लगे॥३७।३८॥इसी मध्य में अर्जुन ने भीष्म के बाणों से पीड़ित और शोकसागर में निमग्न पाञ्चालराज द्रुपद, पराक्रमी धृष्टकेतु, महाबली भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, चेकितान, पाँचों भाई केकयकुमार, महाबाहु सात्यकि,

ततोऽस्याऽनुचरान्हत्वा सर्वान्रणविभागवित् ।
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः ॥ ४४ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४५ ॥
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाऽऽजौ रक्षिता दृढधन्वना ।
अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ॥ ४६ ॥
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ।
ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः ॥ ४७ ॥
बहुधा भीष्ममानर्छुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः ।
विधूय तान्बाणगणान्ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ॥ ४८ ॥
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् ।
चक्रे शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ॥ ४९ ॥
नाऽभिसन्धत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
स्त्रीत्वं तस्याऽनुसंस्मृत्य भीष्मो बाणाञ्शिखण्डिने॥ ५० ॥
जघान द्रुपदानीके रथान्सप्त महारथः ।
ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत्तदा ॥ ५१ ॥
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ।
ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परन्तप ॥ ५२ ॥
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ॥ ५३ ॥

---

अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, शिखण्डी, वीर्यशाली कुन्तिभोज विराट और युधिष्ठिर आदि सब पाण्डवपक्ष के वीरों की रक्षा की ॥३९।४३॥ तब शिखण्डी बढ़िया धनुष और बाण लेकर वेग से भीष्म पर आक्रमण करने दौड़े । रणनिपुण अर्जुन भी भीष्म के रक्षक अनुचरों को मारकर शिखण्डी की रक्षा करने के लिए भीष्म की ओर चले । महारथी सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, राजा विराट, राजा द्रुपद, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रोपदी के पाँचों पुत्र और अन्य सब वीर, अर्जुन के द्वारा सुरक्षित होकर, भीष्म को सन्मुख देखकर ताक ताककर तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥४३।४७॥संग्राम से न भागनेवाले, दृढ धनुष धारण किये हुए वे वीर भीष्म के ऊपर, कठोर प्रहार करने लगे । महात्मा भीष्म ने क्रीड़ा के समान उन सब वीरों के बाणों को खण्ड-खण्ड करके पाण्डव सेना को मथना आरम्भ किया । शिखण्डी बारम्बार भीष्म के ऊपर बाण बरसा रहे थे ; किन्तु उन्हें पहले की स्त्री समझकर भीष्म ने कोई बाण नहीं मारा॥४७।५०॥ पितामह ने द्रुपद की सेना के सात रथी योद्धा मार डाले । उस समय मत्स्य, पाञ्चाल और चेदि देश के सैनिक किलकिला शब्द करके एक भीष्म के ही ऊपर आक्रमण करने दौड़े । सूर्य को जैसे मेघ ढक लेते हैं वैसे ही मनुष्य, रथ, घोड़े, हाथी आदि की चतुरङ्गिणी सेना ने चारों ओर से भीष्म को घेर

ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।
किरीटी भीष्ममानर्च्छत्पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ५४ ॥

लिया। उस देवासुर-संग्राम के समान घोर युद्ध में शिखण्डी को आगे करके अर्जुन भीष्म के ऊपर बाण बरसाने लगे॥५१-५४॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ अठारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपराक्रमे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

अथ ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

सञ्जय उवाच—एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥
शतघ्नीभिः सुघोराभिः परिघैश्च परश्वधैः ।
मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीयैश्च सर्वशः ॥ २ ॥
शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः ॥ ३ ॥
अताडयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः ।
स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ॥ ४ ॥
न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।
सन्दीप्तशरचापाग्निरस्त्रप्रसृतमारुतः ॥ ५ ॥
नेमिनिर्ह्रादसन्तापो महास्त्रोदयपावकः ।
चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥ ६ ॥
युगान्ताग्निसमप्रख्यः परेषां समपद्यत ।
विवृत्य रथसङ्घानामन्तरेण विनिःसृतः ॥ ७ ॥
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ।
ततः पञ्चालराजं च धृष्टकेतुमचिन्त्य च ॥ ८ ॥
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशाम्पते ।

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! पाण्डवगण और सृञ्जयगण इस प्रकार मिलकर, शिखण्डी को आगे करके, चारों ओर से पितामह भीष्म को घेरकर उन पर शतघ्नी, परिघ, परशु, मुद्गर, मूसल, प्रास, क्षेपणीय, बाण, शक्ति, तोमर, कम्पन, नाराच, वत्सदन्त, भुशुण्डी आदि शस्त्रों के प्रहार करने लगे ॥१-४॥ बाणों के प्रहारों से मर्मस्थलों में पीड़ा पहुँचने पर भी भीष्म विचलित नहीं हुए। उनका कवच छिन्न भिन्न हो गया। भीष्म के श्रेष्ठ अस्त्रों का उदयरूप अग्नि शत्रुओं को भस्म कर रहा था। धनुष-बाण उस प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला से जान पड़ते थे। रथनेमि का शब्द उस अग्नि का ताप था। भीष्म पितामह शत्रुओं के लिए प्रलयकाल के अग्नि के समान हो रहे थे। विचित्र धनुष ज्वाला के समान था। बड़े-बड़े वीर ईंधन के समान उसमें गिरकर जल रहे थे। पितामह भीष्म रथों के भीतर से निकलकर फिर

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥ ९ ॥
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरणभेदिभिः ॥ १० ॥
षडेतान्निशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः ।
तस्य ते निशितान्बाणान्सन्निवार्य महारथाः ॥ ११ ॥
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा ।
शिखण्डी तु महाबाणान्यान्मुमोच महारथः ॥ १२ ॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाऽभ्यधावत ॥ १३ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।
भीष्मस्य धनुषश्छेदं नाऽमृष्यन्त महारथाः ॥ १४ ॥
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च ॥ १५ ॥
सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः ।
तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥ १६ ॥
अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्तश्च पाण्डवम् ।
तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति ॥ १७ ॥
उद्धृतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये ।
घ्नताऽऽनयत गृह्णीत विध्यध्वमवकर्तत ॥ १८ ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १९ ॥

शत्रुपक्ष के राजाओं के मध्य विचरकर सबको मारने लगे॥४।८॥द्रुपद और धृष्टकेतु को लाँघकर पितामह भीष्म पाण्डवों की सेना में जा प्रविष्ट हुए। सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, विराट और द्रुपद, इन छः महारथियों के कवच काटकर भीष्म पितामह अकेले ही भयानक शब्द और वेग से युक्त, मर्मस्थल को फाड़नेवाले, तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥८।११॥ सात्यकि आदि छहो महारथियों ने भीष्म के उन तीक्ष्ण बाणों को विफल करके उन्हें दस-दस बाण मारे। महारथी शिखण्डी जो सुवर्णपुङ्ख, तीक्ष्णधार, बाण भीष्म को मारते थे उन बाणों से भीष्म को तनिक भी चोट नहीं पहुँचती थी। तब कुपित अर्जुन शिखण्डी को आगे करके भीष्म के सम्मुख पहुँचे। उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से भीष्म का धनुष काट डाला ॥११।१४॥ उनके धनुष को कटते देखकर, उत्तेजित होकर कृतवर्मा, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य और भगदत्त ये वीर श्रेष्ठ और तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए अर्जुन की ओर दौड़े। ये सातो महारथी अपने दिव्य अस्त्रों का प्रभाव दिखाते हुए अर्जुन के पास पहुँचे। प्रलयकाल में उमड़ रहे सागर के गरजने का सा शब्द करते हुए ये लोग "मारो, शीघ्रता करो, पकड़ लो, छेद डालो, काट डालो" इत्यादि बातें कहने लगे। अर्जुन के रथ के पास उन लोगों का कोलाहल सुनकर पाण्डव पक्ष के सात महारथी

अभ्यधावन्परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २० ॥
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः ।
अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः ।
तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥
संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव ।
शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ २३ ॥
अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे ।
सारथिं दशभिश्चाऽस्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे ॥ २४ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम् ।
तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः ॥ २५ ॥
एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः ।
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परन्तपः ॥ २६ ॥
स च्छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारुणीम् ॥ २७ ॥
तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ २८ ॥
समादत्त शितान्भल्लान्पञ्च पाण्डवनन्दनः ।
तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम् ।
सा पपात तथा च्छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ ३० ॥

---

सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न,॥१४।२०॥विराट, द्रुपद, घटोत्कच और अभिमन्यु उधर ही चले। ये लोग कुपित होकर धनुष चढ़ाते हुए स्फूर्ति के साथ अर्जुन के समीप पहुँचे। देवासुर-संग्राम में देवताओं के साथ दानवों का जैसे घोर संग्राम हुआ था, वैसे ही कौरव पक्ष के सात वीरों के साथ पाण्डव पक्ष के सात वीरों का घोर युद्ध होने लगा ॥२१।२३॥ भीष्म का धनुष कट जाने पर शिखण्डी ने दस बाण उनको और दस बाण सारथी को मारे। फिर एक बाण से उनके रथ की ध्वजा काट डाली। भीष्म ने दूसरा धनुष हाथ में लिया। अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ तीन बाणों से उसे भी काट डाला। इस प्रकार भीष्म ने जो धनुष लिया वही अर्जुन ने काट डाला ॥२३।२६॥ तब कुपित होकर होंठ चाट रहे भीष्म ने अर्जुन के रथ पर एक प्रज्वलित वज्रतुल्य और पर्वत को भी तोड़ डालनेवाली शक्ति फेंकी। अर्जुन ने पाँच भल्ल बाणों से उस शक्ति के पाँच टुकड़े करके पृथ्वी पर गिरा दिये ॥२७।३०॥ क्रुद्ध अर्जुन के बाणों से कटी हुई

मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा ।
छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः॥ ३१ ॥
अचिन्तयद्रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः ।
शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ॥ ३२ ॥
यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः ।
कारणद्वयमास्थाय नाऽहं योत्स्यामि पाण्डवान् ॥ ३३ ॥
अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः ।
पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहम् ॥ ३४ ॥
स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा ।
तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवाऽऽत्मनः ॥ ३५ ॥
एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन् ॥ ३६ ॥
यत्ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम् ।
तत्कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्तय ॥ ३७ ॥
अस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः ।
अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः ॥ ३८ ॥
देवदुन्दुभयश्चैव सम्प्रणेदुर्महास्वनाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष ॥ ३९ ॥
न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां संवदतां नृप ।
ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥ ४० ॥

वह शक्ति बादल के मध्य से गिरते हुए बिजली के टुकड़ों के समान जान पड़ने लगी। उस शक्ति को इस प्रकार निष्फल देखकर भीष्म बहुत ही कुपित हुए। वे सोचने लगे कि यदि महाप्रतापी योगेश्वर वासुदेव इनके रक्षक न होते तो मैं पाँचों पाण्डवों को एक ही धनुष से मार सकता था। किन्तु पाण्डव मारे नहीं जा सकते, और स्त्री-जाति होने के कारण शिखण्डी भी अवध्य है। इन दोनों कारणों से अब मैं पाण्डवों के साथ युद्ध न करूँगा॥३१।३४॥ पिता ने दूसरे विवाह के समय—निषाद-कन्या काली से विवाह करने के समय—मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये थे। एक तो यह कि मैं जब चाहूँ तब मरूँ और दूसरा यह कि युद्ध में कोई मुझे जीत न सके। मैं समझता हूँ कि मेरी मृत्यु का यही उपयुक्त समय है। क्योंकि जीवन से मैं ऊब चुका हूँ॥३४। ३५॥ पितामह भीष्म यों सोच रहे थे कि इसी समय आकाश में स्थित ऋषियों और वसुओं ने भीष्म के इस विचार को जानकर कहा—"हे तात भीष्म! तुम जो सोच रहे हो वही हमें रुचिकर है। इसलिए अपना और हमारा प्रिय करने को तुम युद्ध बन्द करके अपना कर्तव्य करो।" हे महाराज! ऋषियों के यों कहने पर अनुकूल, सुगन्धित, जलकणयुक्त और मन्द वायु चलने लगी। देवलोक में नगाड़े बजने लगे और भीष्म के ऊपर आकाश से फूलों की वर्षा होने

सम्भ्रमश्च महानासीत्त्रिदशानां विशाम्पते ।
पतिष्यति रथाद्भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा ॥ ४१ ॥
इति देवगणानां च वाक्यं श्रुत्वा महातपाः ।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाऽभ्यवर्तत ॥ ४२ ॥
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः ।
शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम् ॥ ४३ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः ।
स तेनाऽभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४४ ॥
नाऽकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ॥ ४५ ॥
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ।
एवमन्यैरपि भृशं विद्ध्यमानः सहस्रशः ॥ ४७ ॥
तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः ।
तैश्च मुक्ताञ्छरान्भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः ॥ ४८ ॥
निवारयामास शरैः समं सन्नतपर्वभिः ।
शिखण्डी तु रणे बाणान्यान्मुमोच महारथः ॥ ४९ ॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाऽभ्यवर्तत ॥ ५० ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।
अथैनं नवभिर्विध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ ५१ ॥

लगी ॥३६।३९॥ ऋषियों के पूर्वोक्त वचन भीष्म के अतिरिक्त और किसी ने नहीं सुने। बेदव्यास की कृपा के प्रभाव से मुझे भी वे वचन सुन पड़े। हे नरनाथ! सब लोगों के प्रिय भीष्म के रथ से गिरने की बात जानकर सब देवता भी व्याकुल हो गये ॥४०।४१॥ महातपस्वी भीष्म ने देवताओं और ऋषियों के उक्त वचन सुनकर, सब आवरणों को तोड़कर शरीर में प्रवेश होनेवाले तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित होकर भी, अर्जुन पर प्रहार करना छोड दिया। उस समय शिखण्डी ने कुपित होकर और भी वेग से भीष्म की छाती में नव बाण मारे। किन्तु जैसे भूकम्प के समय भी पर्वत नहीं विचलित होते वैसे ही शिखण्डी के उन बाणों से भीष्म विचलित नहीं हुए ॥४२।४५॥ तब महाधनुर्द्धर अर्जुन ने हँसकर क्रोध के साथ गाण्डीव धनुष खींचकर पचीस क्षुद्रक बाण भीष्म को मारे। अर्जुन स्फूर्त्ति के साथ और भी सैंकड़ों-सहस्रों बाण भीष्म के मर्मस्थलों और सब अङ्गों में मारने लगे। इसी प्रकार और योद्धा भी

सारथिं विशिखैश्चाऽस्य दशभिः समकम्पयत् ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम् ॥ ५२ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरघातयत् ।
निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे ॥ ५३ ॥
एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ ।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाऽभ्यवर्तत ॥ ५४ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत ॥ ५५ ॥
एष पार्थो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाऽभ्यहनद्रणे ॥ ५६ ॥
न चैष समरे शक्यो जेतुं वज्रभृता अपि ।
न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ॥ ५७ ॥
मां चापि शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्या महारथाः ।
एवं तयोः संवदतोः फाल्गुनो निशितैः शरैः ॥ ५८ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संयुगे ।
ततो दुःशासनं भूयः स्मयमान इवाऽब्रवीत् ॥ ५९ ॥
अतिविद्धः शितैर्बाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना ।
वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि ॥ ६० ॥
मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः ॥ ६१ ॥

भीष्म को सहस्रों बाण मारने लगे। सत्यपराक्रमी भीष्म ने अपने बाणों से उन सब बाणों को नष्ट कर दिया ॥४५।४०॥ महारथी शिखण्डी ने सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण बाण भीष्म को मारे। परन्तु उन बाणों के लगने से भीष्म को तनिक भी व्यथा नहीं हुई। अब महारथी अर्जुन ने कुपित होकर, शिखण्डी को आगे करके, भीष्म पितामह का धनुष काट डाला। दस तीक्ष्ण बाण उनके सारथी को मारे, एक बाण से ध्वजा काट डाली और नव बाण उनके शरीर में मारे ॥४९।५२॥ इस पर भीष्म ने दूसरा धनुष लिया। अर्जुन ने तीन भल्ल बाणों से उसे भी काट डाला। इसके अनन्तर भीष्म ने जितने धनुष हाथ में लिये उन सबको अर्जुन ने स्फूर्त्ति के साथ अपने बाणों से काट डाला। तब भीष्म ने अर्जुन के ऊपर प्रहार करने का उद्योग छोड़ दिया ॥५२।५४॥ किन्तु अर्जुन ने फिर भी उनके मर्मस्थल में पच्चीस क्षुद्रक बाण मारे। महारथी भीष्म का शरीर अर्जुन के बाणों से बहुत ही घायल हो गया। तब भीष्म ने कहा—वीर दुःशासन! ये पाण्डव पक्ष के महारथी अर्जुन कुपित होकर निरन्तर सहस्रों बाण मुझको मार रहे हैं। वज्रपाणि इन्द्र समेत सब देवता, दानव और राक्षस आदि भी मिल कर न तो मुझे जीत सकते हैं और न अर्जुन को; फिर मनुष्य जाति के महारथी वीर मेरा क्या कर सकते हैं? महावीर भीष्म दुःशासन से यों कह रहे

मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥ ६२ ॥
मम प्राणानारुजन्ति नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
नाशयन्तीव मे प्राणान्यमदूता इवाऽऽहिताः ॥ ६३ ॥
गदापरिघसंस्पर्शा नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्वणाः ॥ ६४ ॥
समाविशन्ति मर्माणि नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
अर्जुनस्य इमे वाणा नेमे वाणाः शिखण्डिनः ॥ ६५ ॥
कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवा इव ।
सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ॥ ६६ ॥
वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् ।
इतिब्रुवञ्छान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ६७ ॥
शक्तिं भीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत ।
तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् ॥ ६८ ॥
पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तत्र भारत ।
चर्माऽथाऽऽदत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥
खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा ।
तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत्सायकैस्तथा ॥ ७० ॥
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वान्यनीकान्यचोदयत् ॥ ७१ ॥

थे, इसी समय शिखण्डी के पीछे स्थित अर्जुन तीक्ष्ण बाण मारकर भीष्म को घायल करने लगे ॥५५।५९॥ गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बहुत ही तीक्ष्ण भयानक बाणों से अत्यन्त बेधे जाते हुए भीष्म ने हँसकर फिर दुःशासन से कहा — हे दुःशासन ! ये जो वज्रतुल्य बाण निरन्तर आकर मेरे शरीर में लग रहे हैं, वे शिखण्डी के बाण नहीं हैं। ये जो मूसल के समान बाण आकर दृढ कवच को तोडकर मेरे मर्मस्थलों को छेद रहे हैं, ये शिखण्डी के बाण नहीं हो सकते। ये जो वज्र के समान वेग से आकर ब्रह्मदण्ड के समान मेरे शरीर में लगते हैं और मेरे जीवन को क्षीण कर रहे हैं, वे बाण शिखण्डी के नहीं हैं ॥५९।६३॥ ये जो गदा और परिघ के समान बाण यमदूत की तरह आकर मेरे प्राणों को नष्ट कर रहे हैं, ये बाण शिखण्डी के नहीं हैं। ये जो क्रुद्ध उत्तेजित नाग के समान बाण तेजी से आकर मेरे मर्मस्थल में प्रवेश कर रहे हैं, ये शिखण्डी के नहीं हैं। ये बाण जो मेरे शरीर को छेद रहे हैं, कभी शिखण्डी के नहीं है। ये बाण तो अर्जुन के ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं॥६३।६६॥गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले महावीर महाबली अर्जुन के अतिरिक्त और किसी क्षत्रिय का प्रहार मुझे क्लेश नहीं पहुँचा सकता। इतना कहकर मानों अर्जुन को भस्म कर डालने की इच्छा से भीष्म ने उन पर एक शक्ति फेकी। अर्जुन ने

अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि ।
अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः ॥ ७२ ॥
पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैश्च तथा शितैः ।
वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ॥ ७३ ॥
सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत्तदा ।
तथैव तव पुत्राश्च नेदुर्भीष्मजयैषिणः ॥ ७४ ॥
तमेकमभ्यरक्षन्त सिंहनादांश्च चक्रिरे ।
तत्राऽऽसीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ७५ ॥
दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे ।
आसीद्राजन्निवाऽऽवर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ॥ ७६ ॥
सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
असौम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ताऽभवत्तदा ॥ ७७ ॥
समं च विषमं चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।
योधानामयुतं हत्वा तस्मिन्स दशमेऽहनि ॥ ७८ ॥
अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।
ततः सेनामुखे तस्मिन्स्थितः पार्थो धनुर्धरः ॥ ७९ ॥
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम् ।
वयं श्वेतहयाद्भीताः कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ ८० ॥

सब कौरवों के सम्मुख ही तीन बाणों से उस शक्ति के तीन टुकड़े कर डाले॥६६।६७॥मृत्यु अथवा विजय, दो में से एक के लिए भीष्म ने सुवर्णभूषित ढाल और तलवार हाथ में ली। भीष्म रथ पर से उतरने भी नहीं पाये कि अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण बाणों से उस ढाल और तलवार के सौ टुकड़े कर डाले। अर्जुन का यह कर्म अत्यन्त अद्भुत जान पड़ा। हे राजेन्द्र! इसी समय राजा युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों से कहा—"हे वीरो! तुम लोग शीघ्र भीष्म के ऊपर आक्रमण करो। तुम्हें भीष्म से भयभीत न होना चाहिए"॥६९।७२॥तब सब लोग मिलकर अकेले भीष्म के ऊपर आक्रमण करने के लिए तोमर, प्रास, बाण, पट्टिश, खड्ग, नाराच, वत्सदन्त और भल्ल आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े। उस समय पाण्डव लोग और उनके पक्ष के वीर लोग घोर सिंहनाद करने लगे। उधर भीष्म की जय चाहनेवाले आपके पुत्र भी अकेले भीष्म की रक्षा करते हुए घोर सिंहनाद करने लगे। उस समय भीष्म और अर्जुन के युद्ध में कौरव और पाण्डव परस्पर भिड़कर बड़ा विकट युद्ध करने लगे॥७२।७६॥जैसे समुद्र में भारी हलचल मचे, वैसे ही दोनों सेनाएँ थोड़ी देर तक बड़े वेग से दौड़ दौड़कर परस्पर प्रहार और प्राणनाश करती रहीं। पृथ्वी में रक्त की कीचड़ मच गई। ऊँचा और नीचा कुछ नहीं जान पड़ता था। पृथ्वी का रूप बड़ा भयङ्कर हो उठा। महात्मा भीष्म ने दसवें दिन भी दस सहस्र योद्धाओं को मारकर मर्मस्थलों में अत्यन्त घायल और पीड़ित होने पर युद्ध रोक दिया॥७६।७९॥उधर महारथी अर्जुन सेना के अग्रभाग में खड़े

पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः प्राद्रवाम रणे तदा ।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः॥ ८१ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ८२ ॥
सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः ।
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥ ८३ ॥
ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः ।
परिकाल्य कुरून्सर्वाञ्शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ८४ ॥
निपातयत गृह्णीत युध्यध्वमवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो राजन्भीष्मरथं प्रति ॥ ८५ ॥
निहत्य समरे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
न तस्याऽऽसीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ ८६ ॥
एवम्भूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः ।
शिताग्रैः फाल्गुनेनाऽऽजौ प्राक्शिराः प्रापतद्रथात्॥ ८७ ॥
किञ्चिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम् ।
हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानां च भारत ॥ ८८ ॥
पतमाने रथाद्भीष्मे बभूव सुमहास्वनः ।
सम्पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम् ॥ ८९ ॥
सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन्हृदयानि नः ।
स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ ९० ॥

होकर बाणवर्षा से कौरव-सेना को मारने और भगाने लगे। हे महाराज! हमारे पक्ष के सब योद्धा अर्जुन के बाणों से अत्यन्त व्यथित और भीत होकर भागने लगे। हे राजेन्द्र! सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्व, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और कैकेय, इन देशों के वीरों ने और उनकी सेना के लोगों ने संग्राम में अर्जुन के बाणों से पीड़ित और अत्यन्त घायल होकर भी भीष्म का साथ नहीं छोड़ा॥७९।८३॥अब पाण्डव पक्ष के सब वीरों ने मिलकर भीष्म को चारों ओर से घेर लिया। [ शिखण्डी को आगे करके अर्जुन तो भीष्म पर प्रहार कर रहे थे और अन्य वीरगण बाणों की वर्षा करके कौरव-सेना के योद्धाओं को दूर भगा रहे थे। ] उस समय पाण्डव पक्ष के लोग भीष्म के रथ के पास "गिरा दो, पकड़ लो, युद्ध करो, छिन्न-भिन्न कर दो" इत्यादि कहते हुए घोर कोलाहल करने लगे। हे महाराज! भीष्म के शरीर में कोई ऐसा स्थान नहीं था जहाँ वीर अर्जुन के बाण न प्रवेश हो गये हों॥८३।८६॥हे राजेन्द्र! ऐसी दशा में आपके पिता बाल-ब्रह्मचारी भीष्म, आपके पुत्रों के सम्मुख ही, पूर्व की ओर सिर करके रथ से नीचे गिर पड़े। उस समय सूर्य के अस्त होने में कुछ ही देर थी। आकाश में देवता और पृथ्वी में सब राजा लोग हाहाकार करने लगे। महात्मा

इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।
धरणीं न स पस्पर्श शरसङ्घैः समावृतः ॥ ९१ ॥
शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम् ।
रथात्प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् ॥ ९२ ॥
अभ्यवर्षच्च पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी ।
पतन्स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥ ९३ ॥
संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं सञ्चिन्त्य भारत ।
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः ॥ ९४ ॥
कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कालकर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने ॥ ९५ ॥
स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ।
धारयामास च प्राणान्पतितोऽपि महीतले ॥ ९६ ॥
उत्तरायणमन्विच्छन्भीष्मः कुरुपितामहः ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ॥ ९७ ॥
महर्षीन्हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै ।
ततः सम्पातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ॥ ९८ ॥
आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९९ ॥
ते तु भीष्मं समासाद्य ऋषयो हंसरूपिणः ।
अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १०० ॥

भीष्म को रथ से नीचे गिरते देखकर हम लोगों के हृदय भी उनके साथ ही गिर पड़े॥८७।९०॥सब धनुर्द्धरों में श्रेष्ठ पितामह भीष्म जिस समय इन्द्र की ध्वजा के समान पृथ्वी पर गिरे उस समय पृथ्वी काँप उठी और घोर शब्द होने लगा। पितामह के शरीर में इतने बाण प्रवेश हुए थे कि रथ से नीचे गिरने पर भी उनका शरीर पृथ्वी में नहीं छू गया। वे उन्हीं बाणों की शय्या पर गिर गये। उस समय उनके हृदय में दिव्य सात्विक भाव का उदय हो आया। पृथ्वी काँप उठी और मेघ जल बरसाने लगे ॥९०।९३॥हे राजेन्द्र! गिरते समय भीष्म ने सूर्य को दक्षिणायन में देखा था, इसीलिए उन्होंने उस समय प्राण त्याग नहीं किये। उपयुक्त समय न देखकर वे फिर सचेत हो गये। उसी समय अन्तरिक्ष में उन्हें यह आकाशवाणी सुन पड़ी "सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पुरुषसिंह महात्मा भीष्म ने दक्षिणायन सूर्य में कैसे प्राण-त्याग किये?" यह देववाणी सुनकर भीष्म ने उत्तर दिया—"मैं अभी जीवित हूँ।" पितामह भीष्म इस प्रकार दक्षिणायन काल में गिरकर भी सद्गति की इच्छा से उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करने लगे॥९३।९७॥हिमवान् की कन्या और भीष्म की माता गङ्गा ने भीष्म की इच्छा जानकर महर्षियों को हंसरूप में उनके पास भेजा। भीष्म को देखने वे महर्षि उस स्थान पर आये, जहाँ वे पुरुष-

ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
गाङ्गेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् ॥१०१॥
इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः ।
भीष्मः कथं महात्मा सन्संस्थाता दक्षिणायने ॥१०२॥
इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशम् ।
सम्प्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥१०३॥
तानब्रवीच्छान्तनवो नाऽहं गन्ता कथञ्चन ।
दक्षिणावर्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम् ॥१०४॥
गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम् ।
उदगायन आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥१०५॥
धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकांक्षया ।
ऐश्वर्यभूतः प्राणानामुत्सर्गो हि यतो मम ॥१०६॥
तस्मात्प्राणान्धारयिष्ये मुमूर्षुरुदगायने ।
यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ॥१०७॥
छन्दतो मृत्युरित्येवं तस्य चाऽस्तु वरस्तथा ।
धारयिष्ये ततः प्राणानुत्सर्गे नियते सति ॥१०८॥
इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसान्स शेते शरतल्पगः ।
एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि ॥१०९॥
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
तस्मिन्हते महासत्त्वे भरतानां पितामहे ॥११०॥

---

सिंह बाणों की शय्या पर पड़े हुए थे॥९७।१००॥ हंसरूपी ऋषियों ने वहाँ पहुँचकर, भीष्म को देखकर, उनकी प्रदक्षिणा की। सूर्य के दक्षिण ओर स्थित ऋषियों ने परस्पर कहा—"महात्मा होकर भीष्म कैसे दक्षिणायन सूर्य में प्राण त्याग करेंगे?" महामति भीष्म ने मन में विचारकर उन ऋषियों की ओर देखकर कहा—"मैंने मन में यह निश्चय कर लिया है कि दक्षिणायन सूर्य में प्राण-त्याग नहीं करूँगा॥१०१। १०४॥ हे हंसो! मैं सत्य कहता हूं, उत्तरायण सूर्य होने पर प्राणत्याग कर मैं अपने धाम को जाऊँगा। उत्तरायण सूर्य आने तक मैं जीवित रहूँगा, क्योंकि पिता ने मुझको मृत्यु पर आधिपत्य का वर दिया है कि मैं जब चाहूं तभी मरूँ। इसी से मैं जीवित हूँ। उपयुक्त समय आने पर मरूँगा।" हंसों से इतना कहकर भीष्म उसी शरशय्या पर लेट रहे। हे राजन्द्र! कुरुकुलतिलक महात्मा महाबली और अवध्य भीष्म के गिरने पर पाण्डव और सृञ्जयगण आशातीत आनन्द के मारे सिंहनाद करने लगे। महासत्त्व पितामह के हत होने पर आपके पुत्र किंकर्तव्य विमूढ़ और शोक से व्याकुल हो उठे। कुरुवंश के सब लोग व्याकुल हो गये॥१०९।१११॥ कृपाचार्य और दुर्योधन आदि लम्बे-लम्बे श्वास लेते हुए रोने लगे। खेद के मारे बहुत देर तक वे जड़ की तरह खड़े रहे। उनकी इन्द्रियां चेष्टा रहित हो गईं। युद्ध के

न किञ्चित्प्रत्यपश्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत्तदा ॥१११॥
कृपदुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः ।
विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन्विगतेन्द्रियाः ॥११२॥
दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः ।
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाऽभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥११३॥
अवध्ये शन्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि ।
अभावः सहसा राजन्कुरुराजस्य तर्कितः ॥११४॥
हतप्रवीरास्तु वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।
कर्तव्यं नाऽभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ॥११५॥
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम् ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खाञ्शूराः परिघबाहवः ॥११६॥
सोमकाश्च सपञ्चाला प्राहृष्यन्त जनेश्वर ।
ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु स महाबलः ॥११७॥
आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च ।
सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये निहते विभो ॥११८॥
संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः ।
प्राक्रोशन्प्राद्रवंश्चाऽन्ये जग्मुर्मोहं तथाऽपरे ॥११९॥
क्षत्रं चाऽन्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चाऽन्येऽभ्यपूजयन् ।
ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्महाव्रतम् ॥१२०॥
भरतानां च ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे ।
महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान् ॥१२१॥
जपञ्शान्तनवो धीमान्कालाकांक्षी स्थितोऽभवत्॥ १२२॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मनिपातने ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

लिए वे उद्यत न हो सके। जैसे किसी ने उनके पाओं को पकड़ लिया हो इस प्रकार वे लोग पाण्डवों पर आक्रमण करने के लिए नहीं दौड़ सके। महापराक्रमी और अवध्य भीष्म के गिरने पर कुरुराज दुर्योधन को चारों ओर शून्य और अँधेरा देख पड़ने लगा॥११२।११४॥हम लोगों के सब अङ्ग अर्जुन के बाणों से क्षत-विक्षत हो रहे थे, हमारे अनेक वीर और अजेय भीष्म भी मारे जा चुके थे। अर्जुन से हारे हुए हम लोग कुछ अपना कर्तव्य न निश्चित कर सके। पाण्डव लोग इस लोक में विजय और परलोक के लिए परम गति प्राप्त करके आनन्द से शङ्ख बजाने लगे॥११५।११६॥सृञ्जय, सोमक और पाञ्चालगण आनन्द से पुलकित हो उठे। सैंकड़ो तुरही और नगाड़े बजने लगे। महाबली भीमसेन

बारम्बार सिंहनाद करते हुए ताल ठोकने और उछलने लगे। भीष्म की मृत्यु होने पर दोनों पक्ष के सैनिक शस्त्रों को रखकर चिन्ता करने लगे। कुछ लोग चिल्लाने लगे और कुछ लोग खेद और दुःख से अचेत-से हो गये। कुछ लोग क्षत्रिय-धर्म की निन्दा करने लगे और कुछ लोग महात्मा भीष्म की प्रशंसा करने लगे। ऋषिगण, पितृगण और भरतकुल के स्वर्गवासी पूर्वपुरुषगण भीष्म को साधुवाद देने लगे। महावीर भीष्म शरशय्या पर पड़े-पड़े उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते हुए योगधारणपूर्वक महोपनिषद् गायत्री का जाप करने लगे॥११७।१२२॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ उन्नीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११९ ॥

अथ विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथमासंस्तदा योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ १ ॥
तदैव निहतान्मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः ।
न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणित्वाद् द्रुपदात्मजम् ॥ २ ॥
ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत्प्रभविष्यति ।
अद्याऽहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः ॥ ३ ॥
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥ ४ ॥
यदन्यन्निहतेनाऽऽजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।
चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥ ५ ॥
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा ॥ ६ ॥
स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
सञ्जय उवाच—सायाह्ने निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान्विषादयन् ॥ ७ ॥
पञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः ।
स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ॥ ८ ॥

एक सौ बीस अध्याय ॥ १२० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पिता के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहनेवाले देवतुल्य महात्मा भीष्म के गिर जाने पर, उनसे हीन, मेरे पक्ष के योद्धाओं की क्या दशा हुई ? जब घृणा के कारण भीष्म ने द्रुपद के पुत्र शिखण्डी पर प्रहार नहीं किया, तभी मैंने समझ लिया कि पाण्डवों के हाथों कौरव मारे गये। हा ! इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा ? ॥१।३॥ पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर भी मुझ दुर्मति का हृदय सौ टुकड़े होकर फट क्यों नहीं जाता ? मेरा हृदय अवश्य ही वज्र का बना हुआ है। हे सुव्रत ! जय की इच्छा रखनेवाले कुरुसिंह भीष्म ने युद्ध में गिरने के अनन्तर और जो कुछ किया हो वह मेरे आगे कहो। देवव्रत को बारम्बार शत्रुओं ने बाणों से मारा, यह अनर्थ मुझसे नहीं

भीष्मे रथात्प्रपतिते प्रच्युते धरणीतले ।
हाहेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ॥ ९ ॥
सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिञ्जये ।
सेनयोरुभयो राजन्क्षत्रियान्भयमाविशत् ॥ १० ॥
भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् ।
कुरवः पर्यवर्तन्त पाण्डवाश्च विशाम्पते ॥ ११ ॥
खं तमः संवृतमभूदासीद्भानुर्गतप्रभः ।
ररास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥ १२ ॥
अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ह्ययं ब्रह्मविदां वरः ।
इत्यभाषन्त भूतानि शयानं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥
अयं पितरमाज्ञाय कामार्त्तं शन्तनुं पुरा ।
ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥
इति स्म शरतल्पस्थं भरतानां महत्तमम् ।
ऋषयस्त्वभ्यभाषन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥ १५ ॥
हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे ।
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिष ॥ १६ ॥
विषण्णवदनाश्चाऽऽसन्हृतश्रीकाश्च भारत ।
अतिष्ठन्व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥ १७ ॥
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १८ ॥

सहा जाता। जिन पराक्रमी भीष्म को पहले दिव्य अस्त्रों के द्वारा परशुराम भी नहीं मार सके, वही भीष्म आज पाञ्चालकुमार शिखण्डी के हाथ से मारे गये !॥४।७॥सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र ! पितामह भीष्म सन्ध्या के समय रथ से गिरकर कौरवों को विषादमग्न और पाण्डवों तथा पाञ्चालों को आनन्दित करते हुए शरशय्या पर लेट गये। उनका शरीर पृथ्वी से ऊपर ही रहा। असंख्य बाणों से छिन्न-भिन्न होकर भीष्म जब रथ से गिरे तब सब लोग हाहाकार करने लगे। सीमावृक्ष की तरह दोनों सेनाओं के मध्य में जब भीष्म गिर पड़े तब दोनों पक्ष के क्षत्रिय अत्यन्त भयभीत और उद्विग्न हो उठे॥७।१०॥ कवच और ध्वजा जिनकी कट गई हैं ऐसे पितामह भीष्म के गिरने पर कौरव और पाण्डव दोनों ने युद्ध बन्द कर दिया। उस समय आकाश में घना अँधेरा छा गया और अस्त होते हुए सूर्य की प्रभा मलिन हो गई। पृथ्वी के फटने का सा दारुण शब्द होने लगा। पुरुषश्रेष्ठ भीष्म पितामह को शरशय्या पर पड़े देखकर सब प्राणी कहने लगे कि ये महात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्मज्ञानियों की गति हैं॥११।१३॥ शर शय्या पर पड़े हुए भीष्म को देखकर सिद्ध-चारणों सहित ऋषिगण परस्पर कहने लगे कि इन्होंने पूर्व समय में अपने पिता शान्तनु को कामपीड़ित देखकर, उन्हें सुखी करने के लिए, जन्मभर नैष्ठिक

हर्षात्तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चाऽनघ ।
अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥
विक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् ।
निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् ॥ २० ॥
सम्मोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत्ततः ।
कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥
तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे ।
हाहाभूतमभूत्सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥
भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनाऽनीकेन दंशितः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं सविषादयन् ॥ २४ ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्यवारयन् ।
दुःशासनं महाराज किमयं वक्ष्यतीति च ॥ २५ ॥
ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः ।
द्रोणस्तत्राऽप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥ २६ ॥
स संज्ञामुपलभ्याऽऽशु भारद्वाजः प्रतापवान् ।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥ २७ ॥
विनिवृत्तान्कुरून्दृष्ट्वा पाण्डवाऽपि स्वसैनिकान् ।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ २८ ॥

ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया था। हे महाराज! भरतवंश के पितामह भीष्म के मारे जाने पर आपके पुत्रों को कुछ नहीं सूझ पड़ता था कि वे क्या करें। वे श्रीहीन लज्जित विषादमग्न होकर, सिर झुकाकर, शोक करने लगे॥१४।१७॥उधर संग्रामभूमि में स्थित पाण्डव लोग विजय पाकर सुवर्णभूषित महाशङ्ख बजाने लगे। अनेक तुरही और नगाड़े आदि बजाकर पाण्डवों की सेना हर्ष प्रकट करने लगी। महाबली शत्रु के मारे जाने के कारण परम आनन्दित भीमसेन बालकों की तरह उछलने और कूदने लगे। किन्तु कौरवगण चिन्तित हो गये। कर्ण और दुर्योधन [ सन्ताप, क्षोभ और क्रोध के मारे ] बारम्बार श्वास लेने लगे। सब लोग व्यग्रभाव से इधर-उधर दौड़ते हुए हाहाकार करने लगे॥१८।२१॥भीष्म के गिरने पर दुर्योधन की आज्ञा से कवचधारी दुःशासन अपनी बड़ी भारी सेना लेकर बड़े वेग से द्रोणाचार्य के दल में गये॥२२।२४॥दुःशासन को आते हुए देखकर, ये क्या कहेंगे, इस कौतुहल से सब कौरवों ने उनको चारों ओर से घेर लिया। दुःशासन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर भीष्म के गिरने का वृत्तान्त कहा। वह अप्रिय समाचार सुनतेमार ही द्रोणाचार्य मूर्छित हो गये। सचेत हो जाने पर प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को युद्ध बन्द कर देने की आज्ञा दी॥२५।२७॥ कौरवों को युद्ध बन्द करते देखकर पाण्डवों ने भी

निवृत्तेषु च सैन्येषु पारम्पर्येण सर्वशः ।
निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः ॥ २९ ॥
व्युपरम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः ।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवाऽमराः ॥ ३० ॥
ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम् ।
अभिवाद्याऽवतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३१ ॥
अथ पाण्डून्कुरूंश्चैव प्रणिपत्याऽग्रतः स्थितान् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३२ ॥
स्वागतं वो महाभागा स्वागतं वो महारथाः ।
तुष्यामि दर्शनाद्वाऽहं युष्माकममरोपमाः ॥ ३३ ॥
अभिमन्त्र्याऽथ तानेवं शिरसा लम्बताऽब्रवीत् ।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥
ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च ।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत्तानि पितामहः ॥ ३५ ॥
अथाऽब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान्नृपान् ।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ ३६ ॥
ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् ।
धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३७ ॥
धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते ।
दीयतामुपधानं वै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥ ३८ ॥

---

शीघ्रगामी घोड़ों पर दूतों को भेजकर युद्ध बन्द करा दिया। सब सेनाएँ युद्ध बन्द करके एकत्रित हुईं। तब सब राजा लोग कवच खोलकर भीष्म के पास आये। सैकड़ों-सहस्रों योद्धा युद्ध बन्द करके, प्रजापति के पास देवताओं की तरह, पितामह भीष्म के पास आये॥२८।३०॥इस प्रकार पाण्डव और कौरव दोनों, शरशय्या पर लेटे हुए, भीष्म के पास आकर उन्हें प्रणाम करके सन्मुख खड़े हो गये। तब धर्मात्मा भीष्म ने उन सब से स्नेह के साथ कहा हे महाभाग क्षत्रियो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। हे महारथी वीरो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। हे वीरो ! मैं तुम्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। हे भरतश्रेष्ठ ! भीष्म का सिर नीचे लटक रहा था। उन्होंने सबका स्वागत करने के पश्चात् कहा– 'हे राजाओ ! मेरा सिर बहुत नीचे लटक रहा है, इसलिए मुझे तकिया दो' ॥३१।३४॥राजा लोग और कौरवगण उसी समय बढ़िया कोमल मूल्यवान् तकिये लेकर दौड़े आये; किन्तु भीष्म ने उनके लिए अनिच्छा प्रकट करके हँसकर कहा—"हे नरपतियो ! ये तकिये वीरशय्या के योग्य नहीं हैं"॥३५।३६॥ अब अर्जुन की ओर देखकर कहा —हे महाबाहु अर्जुन ! मेरा सिर बहुत नीचे लटक रहा है। तुम इस वीर शय्या के योग्य जो तकिया समझते हो, वह मुझे दो॥३६।३८॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! तब अर्जुन ने नेत्रों में

सञ्जय उवाच—समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर ।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥ ४० ॥
तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते ।
उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥ ४१ ॥
शयनस्याऽनुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे ।
त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ४२ ॥
क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्वगुणान्वितः ।
फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत् ॥ ४३ ॥
गृह्याऽनुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान्सन्नतपर्वणः ।
अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ॥ ४४ ॥
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः ।
अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ॥ ४५ ॥
अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् ।
उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्धनञ्जयम् ॥ ४६ ॥
प्राह सर्वान्समुद्वीक्ष्य भरतान्भारतं प्रति ।
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ॥ ४७ ॥
शयनस्याऽनुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥ ४८ ॥
एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता ।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाऽऽजौ शरतल्पगतेन वै ॥ ४९ ॥

आँसू भरकर, श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष चढ़ाकर पितामह को प्रणाम करके कहा—हे पितामह ! मैं आपका आज्ञापालक हूँ । हे धनुर्द्धरश्रेष्ठ ! हे कुरुश्रेष्ठ ! आज्ञा दीजिए क्या करूँ ?॥३९।४०॥ भीष्म ने कहा—हे बेटा ! मेरा सिर नीचे लटक रहा है। हे अर्जुन ! तुम समर्थ, सब धनुर्द्धरों में श्रेष्ठ, क्षत्रिय-धर्म के ज्ञाता और बुद्धिमान् हो । तुम सत्व और गुण से सम्पन्न वीर पुरुष हो । इसलिए वीरशय्या के योग्य तकिया मुझे दो॥४१।४२॥"जो आज्ञा" कहकर, अपना कर्तव्य विचारकर, शत्रुविजयी अर्जुन ने गाण्डीव को अभिमन्त्रित किया और तीक्ष्ण धारवाले तीन बाण लेकर उस पर चढ़ाये । फिर पितामह को प्रणाम करके वे तीनों बाण मस्तक में मारे । उन बाणों पर तकिये के समान भीष्म का सिर ठहर गया॥४३।४५॥ सुहृदों का आनन्द बढ़ानेवाले अर्जुन ने ठीक तकिया दिया, यह देखकर धर्मात्मा धर्मार्थतत्त्व के ज्ञाता भीष्म उन पर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अर्जुन का अभिनन्दन करके सब कौरवों की ओर देखकर कहा—

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥ ५० ॥
पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाऽभिसन्धितम् ।
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ॥ ५१ ॥
ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२ ॥
नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान्सुहृदः सुप्रियानिव ॥ ५३ ॥
परिखाः खन्यतामत्र ममाऽवसदने नृपाः ।
उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ॥ ५४ ॥
उपारमध्वं संग्रामाद्वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः ।
सञ्जय उवाच—उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥ ५५ ॥
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।
तान्दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥ ५६ ॥
धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ।
एवङ्गते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहाऽस्ति किम् ॥ ५७ ॥
क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥ ५८ ॥
एभिरेव शरैश्चाऽहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ५९ ॥

---

हे अर्जुन ! तुमने इस वीरशय्या के योग्य तकिया मुझे दिया। तुम यह न देकर और प्रकार का तकिया देते, तो मैं कुपित होकर तुमको शाप दे देता। हे महाबाहो ! संग्राम में धर्मनिरत क्षत्रियों के लिए ऐसी ही शय्या और ऐसा ही तकिया होना चाहिए॥४६।४९॥ महात्मा भीष्म ने अर्जुन से यों कहकर उनके पास खड़े हुए राजाओं और राजपुत्रों से कहा हे राजाओ और राजपुत्रो ! देखो, अर्जुन ने मुझे यह तकिया दिया है। मैं सूर्य के उत्तरायण होने तक इसी शय्या पर लेटा रहूँगा। सूर्य जब सात घोड़ों से युक्त और तेज से प्रदीप्त रथ पर चढ़कर उत्तरायण मार्ग में प्राप्त होंगे तब जो लोग मेरे समीप आवेंगे वे देखेंगे कि मैं अपने प्रियतम प्राणों को छोड़ूँगा। इस समय तुम लोग मेरे इस निवासस्थान के चारों ओर खाई खोद दो। मैं यहीं शरशय्या पर भगवान् सूर्य की उपासना करूँगा। मेरा यह भी अनुरोध है कि तुम लोग परस्पर वैर-भाव छोड़कर यह युद्ध बन्द कर दो॥५०।५५॥सञ्जय कहते हैं—अब दुर्योधन की आज्ञा से शल्य-चिकित्सा में निपुण सुशिक्षित वैद्य लोग मरहम-पट्टी का सब सामान लेकर, चिकित्सा के लिए, भीष्म पितामह के पास आये। धर्मात्मा भीष्म ने उन्हें देखकर राजा दुर्योधन से कहा—तुम इन चिकित्सकों को जो कुछ देना है वह धन देकर सत्कार के साथ विदा कर दो। मैंने क्षत्रिय की प्रशम-

वैद्यान्विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ।
ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ॥ ६० ॥
स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
उपधानं ततो दत्त्वा पितुस्ते मनुजेश्वराः ॥ ६१ ॥
सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः ।
उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥ ६२ ॥
तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिःप्रदक्षिणम् ।
विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥ ६३ ॥
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
निवेशाऽभ्युपागच्छन्सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ ६४ ॥
निविष्टान्पाण्डवांश्चैव प्रीयमाणान्महारथान् ।
भीष्मस्य पतने हृष्टानुपगम्य महाबलः ॥ ६५ ॥
उवाच माधवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
दिष्ट्या जयसि कौरव्य दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ॥ ६६ ॥
अवध्यो मानुषैरेव सत्यसन्धो महारथः ।
अथवा दैवतैः सार्धं सर्वशास्त्रस्य पारगः ॥ ६७ ॥
त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा ।
एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ ६८ ॥
तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात्तव पराजयः ।
त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥ ६९ ॥

---

नीय गति प्राप्त की है, इस समय इन वैद्यों की क्या आवश्यकता है ? हे राजा लोगो ! मैं शरशय्या पर लेटा हुआ हूँ; यह मेरा धर्म नहीं है कि चिकित्सा कराकर फिर आरोग्य होने की इच्छा करूँ। देखो ! इन बाणों की ही चिता में मुझे भस्म करना॥५५।५९॥ राजा दुर्योधन ने पितामह भीष्म की यह आज्ञा सुनकर वैद्यों को, यथोचित धन देकर, सत्कार के साथ विदा कर दिया। हे महाराज ! अनेक देशों के निवासी राजा लोग महातेजस्वी भीष्म की यह धर्म-निष्ठा और धर्मानुकूल मृत्यु की व्यवस्था देखकर चकरा गये। उन सब राजाओं, कौरवों और पाण्डवों ने भीष्म के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, और तीन बार उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उनके चारों ओर रक्षक नियुक्त करके सब लोग चिन्ता करते हुए अपने अपने शिविर को गये। सन्ध्या हो जाने पर रुधिर-लिप्त, घायल और थके हुए सब लोग दीन भाव से अपने डेरों में पहुँचे॥५९।६४॥ भरतकुल-पितामह भीष्म के युद्ध में गिरने पर प्रसन्न पाण्डवगण अपने शिविर में एकत्र हुए। उस समय महात्मा श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा—हे महाराज ! आपके समर में अमर-सदृश भीष्म को गिराकर आज जय प्राप्त की, इससे बढ़कर सौभाग्य क्या हो सकता है। देवता, मनुष्य, दानव आदि कोई भी इन युद्ध-निपुण सत्यव्रत भीष्म को युद्ध में परास्त



( १ ) वीर अर्जुन का ज़मीन में बाण मारकर जल का फुवारा भीष्म पितामह जी के मुख में डालना।

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव ।
रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चाऽपि हिते रतः ॥ ७० ॥
सर्वथा त्वां समासाद्य नाऽऽश्चर्यमिति मे मतिः ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः ।
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥ ७१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपधानदाने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

नहीं कर सकता; किन्तु आपकी घोर दृष्टि में पड़कर ही आज उनकी मृत्यु हुई। आप जिसको कोप की दृष्टि से देखें वह किसी प्रकार नहीं बच सकता॥६५।६८॥ तब धर्मराज ने जनार्दन को सम्बोधन करके कहा—हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे ही प्रसाद और अनुग्रह से आज हमने जय प्राप्त की है। तुम्हारे ही कोप से कौरव परास्त हुए हैं। तुम हमारे लिए परम आश्रय और भक्तों को अभय देनेवाले हो। तुम जिनके हितैषी और रक्षक हो, उनकी जय होने में आश्चर्य ही क्या है? तुमको सर्वथा अपना आश्रय बना लेनेवाला जो पा जाय वह थोड़ा है। मैं यही समझता हूँ। धर्मराज के ये वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले—हे महाराज! ऐसे नम्र वचन कहना सर्वथा आपके ही योग्य कार्य है॥६८।७१॥

भीष्मपर्व का एक सौ बीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२० ॥

अथ एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सञ्जय उवाच—व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन्पितामहम् ॥ १ ॥
तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तम ।
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ २ ॥
कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः ।
अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ॥ ३ ॥
स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः ।
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ॥ ४ ॥
तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनर्तकाः ।
शिल्पिनश्च तथाऽऽजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम् ॥ ५ ॥

एक सौ इक्कीस अध्याय ॥ १२१ ॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातःकाल फिर कौरव, पाण्डव और उनके अधीन अन्य राजा लोग शरशय्या पर पड़े हुए महारथी भीष्म के पास गये। उन्हें सबने प्रणाम किया। सहस्रों कन्याएँ वहाँ जाकर भीष्म के ऊपर चन्दन-चूर्ण, खीलें, माला-फूल आदि बरसाने लगीं। प्रजा जैसे भगवान् सूर्य की उपासना करती है वैसे ही स्त्रियाँ, बालक, वृद्ध, और अन्यान्य देखनेवाले लोग भी भीष्म को देखने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे॥१।४॥बाजे बजानेवाले, नट, नर्तक और अनेक प्रकार के शिल्पी लोग भी भीष्म के पास गये। कौरव और पाण्डवगण अस्त्र-शस्त्र, कवच आदि युद्ध

उपारम्य च युद्धेभ्यः सन्नाहान्विप्रमुच्य ते ।
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥ ६ ॥
अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिन्दमम् ।
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ॥ ७ ॥
सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता ।
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवाऽऽदित्यमण्डलम् ॥ ८ ॥
विबभौ च नृपाणां सा गङ्गासुतमुपासताम् ।
देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ९ ॥
भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ ।
अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १० ॥
शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसम्पातमूर्छितः ।
पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान्प्रत्यभाषत ॥ ११ ॥
ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रुः समन्ततः ।
भक्ष्यानुच्चावचांस्तत्र वारिकुम्भांश्च शीतलान् ॥ १२ ॥
उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् ।
नाऽद्याऽतीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः॥ १३ ॥
अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम् ।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥ १४ ॥
एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन्वाक्येन पार्थिवान् ।
अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत ॥ १५ ॥

की सज्जा त्यागकर, पहले की तरह प्रीतिपूर्वक अवस्था की छुटाई-बड़ाई के क्रम से, भीष्म के पास बराबर-बराबर बैठे । असंख्य राजाओं के मध्य तेजस्वी भीष्म से शोभित वह भरतकुल की सभा आकाश में स्थित सूर्यमण्डल के समान शोभित हुई॥५।८॥देवगण जैसे इन्द्र की उपासना किया करते हैं वैसे ही सब राजा भीष्म के पास शोभायमान हुए । महात्मा भीष्म असंख्य बाणों से विन्धे हुए और पीड़ित होकर भी धैर्य से उस वेदना को सँभाले हुए थे । उन्होंने नागराज की तरह लम्बे श्वास लेकर, सब राजाओं की ओर देखकर, पीने के लिए जल माँगा॥९।११॥उसी समय क्षत्रियगण चारों ओर से अनेक प्रकार के उत्तम भोजन और स्वादिष्ठ शीतल जल से भरे कलश ले आये। भीष्म ने वह जल देखकर राजाओं से कहा—हे नरपालो ! मैं इस शरशय्या पर लेटा हुआ हूँ सही, किन्तु अब मनुष्यलोक में मेरा निवास नहीं है। केवल उत्तरायण की प्रतीक्षा में मेरे प्राण अटके हुए हैं [ वास्तव में मैं मृततुल्य और परलोकवासी हो चुका हूँ । यह समय ऐसा नहीं कि मैं इस लोक का सुन्दर भोजन और यह जल ग्रहण करूँ ]॥१२।१४॥इस प्रकार राजाओं की निन्दा करके महात्मा भीष्म फिर बोले—हे नरपतियो ! इस समय अर्जुन को देखने की मुझे बड़ी अभिलाषा है । हे महाराज ! तब महाबाहु अर्जुन ने पितामह के पास जाकर प्रणाम

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् ।
अतिष्ठत्प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याऽग्रतः स्थितम् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम् ॥ १७ ॥
दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः ।
मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति ॥ १८ ॥
वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छाऽपो ममाऽर्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि ॥ १९ ॥
अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ २० ॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि सर्वे श्रुत्वा च पार्थिवाः ॥ २१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः ।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २२ ॥
सन्धाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः ।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥
अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥ २४ ॥
शीतस्याऽमृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ।
अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥ २५ ॥
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम् ।
कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः ॥ २६ ॥

किया और हाथ जोड़कर कहा— हे पूज्य पितामह! मुझे क्या आज्ञा है? ॥१५-१६॥ धर्मात्मा भीष्म ने पराक्रमी अर्जुन को सम्मुख देखकर, उनका सत्कार करके, प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे बेटा अर्जुन! तुम्हारे बाणों की जलन से मेरा शरीर जल रहा है, मर्मस्थलों में व्यथा हो रही है और मुख सूख रहा है, मैं वेदना से अत्यन्त पीड़ित हूँ। इसलिए तुम जल देकर मेरी तृषा को शान्त करो। हे महारथी! तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मुझे उपयुक्त रूप से जल नहीं पिला सकता॥१७-१९॥ तब महावीर अर्जुन ने रथ पर बैठकर गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। वज्र की कड़क के समान वह प्रत्यञ्चा का शब्द सुनकर सब राजा और अन्य लोग भयभीत हो गये। इसके पश्चात् महारथी अर्जुन ने शरशय्या पर पड़े हुए सर्वशास्त्रज्ञ भरतकुल-श्रेष्ठ पितामह की प्रदक्षिणा करके धनुष पर प्रज्वलित बाण चढ़ाया ॥२०-२२॥ फिर उसे अभिमन्त्रित कर, पर्जन्य अस्त्र का प्रयोग करके, भीष्म के दक्षिण पार्श्व में पृथ्वी पर वह बाण मारा। तुरन्त ही पृथ्वी फट गई और उसी

विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः ।
तत्कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥ २७ ॥
सम्प्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव ।
विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन्सर्वतो नृपाः ॥ २८ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
तृप्तः शान्तनवश्चाऽपि राजन्बीभत्सुमब्रवीत् ॥ २९ ॥
सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव ।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ॥ ३० ॥
कथितो नारदेनाऽसि पूर्वर्षिरमितद्युते ।
वासुदेवसहायस्त्वं महत्कर्म करिष्यसि ॥ ३१ ॥
यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम् ।
विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ॥ ३२ ॥
धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृपु ॥ ३३ ॥
मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः ।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ ३४ ॥
आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान्वरः ।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ॥ ३५ ॥
न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं मयोच्यमानं विदुरेण चैव ।
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम् ॥ ३६ ॥

स्थान से सुगन्धपूर्ण अमृततुल्य मधुर निर्मल शीतल जल की धारा ऊपर निकली। वह जल पीकर महात्मा भीष्म बहुत प्रसन्न और तृप्त हो गये॥२३।२५॥इन्द्र-सदृश पराक्रमी अर्जुन ने इस प्रकार भीष्म को जल पिलाया। अर्जुन का यह अद्भुत कार्य देखकर सब राजा लोग अत्यन्त विस्मित होकर वस्त्र हिलाने लगे तथा कौरव लोग जाड़े से पीड़ित गायों की तरह भय के मारे काँपने लगे। उस समय चारों ओर शङ्ख और नगाड़े बजने लगे॥२६।२९॥हे महाराज! इस प्रकार भीष्म ने तृप्त होकर सब राजाओं के आगे अर्जुन की प्रशंसा करके कहा — हे महाबाहु! तुमने जो कार्य आज कर दिखाया वह तुम्हारे लिए कुछ विचित्र नहीं है। पहले नारद ऋषि ने मुझसे कहा था कि तुम पुरातन ऋषि नर हो। इन्द्र भी सब देवताओं के साथ मिलकर जो काम करने का साहस नहीं कर सकते वह कार्य तुम, श्रीकृष्ण की सहायता से, अकेले ही करोगे। हे अर्जुन! पृथ्वी-मण्डल भर पर तुम अद्वितीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हो॥३०।३३॥जैसे सब प्राणियों में मनुष्य, पक्षियों में गरुड़, जलाशयों में सागर, चौपायों में गाय, तेजस्वी पदार्थों में आदित्य, पर्वतों में हिमालय और जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, वैसे ही तुम सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हो। मैं, विदुर, द्रोणाचार्य, बलराम, जनार्दन कृष्ण और सञ्जय, सबने बारम्बार दुर्योधन को हित का उपदेश किया; किन्तु मन्दमति दुर्योधन ने अश्रद्धा-पूर्वक किसी का कहा नहीं माना। इस कारण शास्त्र-

परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्योधनो न च तच्छ्रद्दधाति ।
स शेष्यते वै निहतश्चिराय शास्त्रातिगो भीमबलाभिभूतः ॥ ३७ ॥
एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्योधनो दीनमना बभूव ।
तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन्भव वीतमन्युः ॥ ३८ ॥
दृष्टं दुर्योधनैतत्ते यथा पार्थेन धीमता ।
जलस्य धारा जनिता शीतस्याऽमृतगन्धिनः ॥ ३९ ॥
एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन्नाऽन्यः कश्चन विद्यते ।
आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ॥ ४० ॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथाऽपि वा ॥ ४१ ॥
सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः ।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नाऽन्यो वेदेह कश्चन ॥ ४२ ॥
अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन ।
अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ॥ ४३ ॥
तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाऽऽहवशोभिना ।
कृतिना समरे राजन्सन्धिर्भवतु मा चिरम् ॥ ४४ ॥
यावत्कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम ।
तावत्पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४५ ॥
यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
नाशयत्यर्जुनस्तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४६ ॥
यावत्तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः ।
नृपाश्च बहवो राजंस्तावत्सन्धिः प्रयुज्यताम् ॥ ४७ ॥

---

मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाला दुर्मति दुर्योधन भीमसेन के बल से बहुत शीघ्र नष्ट होगा॥३४।३७॥ भीष्म के इन तिरस्कारपूर्ण वाक्यों को सुनकर कौरवेन्द्र दुर्योधन बहुत ही व्याकुल हुए। उनको दुःखित देखकर महात्मा भीष्म ने कहा--हे दुर्योधन! तुम इस समय क्रोध को छोड़ दो। बुद्धिमान् बलविक्रमशाली अर्जुन ने जिस प्रकार मुझे जल पिलाया, सो तुमने प्रत्यक्ष देख लिया। इस लोक में ऐसा कार्य और कौन कर सकता है?॥३८।४०॥आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत और ब्राह्म आदि सब दिव्य अस्त्र महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता॥४०।४२॥हे भाई! जिनके ऐसे अलौकिक कार्य हैं उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता। हे राजेन्द्र! इन सत्यपरायण युद्धनिपुण पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। सर्वशक्तिमान् महात्मा श्रीकृष्ण जिनके पक्ष में हैं उनके साथ सन्धि कर लेना ही श्रेष्ठ है। मृत्यु से बचे हुए तुम्हारे भाई और शेष राजा लोग जब तक मारे न जायँ, उसके पहले ही

न निर्दहति ते यावत्क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम् ।
युधिष्ठिरो रणे तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४८ ॥
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।
यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ॥ ४९ ॥
तावत्ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते ।
युद्धं मदन्तमेवाऽस्तु तात संशाम्य पाण्डवैः ॥ ५० ॥
एतत्तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयाऽनघ ।
एतत्क्षममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥ ५१ ॥
त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्याप्तमेतद्यत्कृतं फाल्गुनेन ।
भीष्मस्याऽन्तादस्तु वः सौहृदं च जीवन्तु शेषाः साधु राजन्प्रसीद ॥५२॥
राजस्याऽर्धं दीयतां पाण्डवानामिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु ।
मा मित्रध्रुक्पार्थिवानां जघन्यः पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र ॥५३॥
ममाऽवसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां सङ्गच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः ।
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन् ॥५४॥
न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्ध्या ।
तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे सत्यामेतां भारतीमीरयामि ॥५५॥
एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा ।
तूष्णीमासीच्छल्यसन्तप्तमर्मा योज्याऽऽत्मानं वेदनां संनियम्य ॥५६॥
सञ्जय उवाच—धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम् ।
नाऽरोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम् ॥ ५७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधन प्रति भीष्मवाक्ये एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१२१॥

सन्धि कर लो॥४३।४६॥जब तक राजा युधिष्ठिर का कोप रूप प्रज्वलित अग्नि तुम्हारी सारी सेना को भस्म नहीं कर देता, उसके पहले ही सन्धि कर लो। जब तक नकुल, सहदेव और भीमसेन तुम्हारी सेना के महावीरों को नष्ट नहीं कर देते, उसके पहले ही महावीर पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेना अच्छा है। यही मेरी सम्मति है। मेरी मृत्यु से ही इस युद्ध का अन्त हो जाय॥४७।५०॥ हे दुर्योधन! पाण्डवों के साथ होनेवाले युद्ध की शान्ति के लिए मैंने जो तुमसे कहा है वह तुम्हारे और तुम्हारे कुल के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। इसलिए क्रोध त्यागकर शान्त भाव से पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। अर्जुन ने अब तक जो किया है वही तुम्हारे सावधान होने के लिए पर्याप्त है। मेरे विनाश से ही इस घोर हत्याकाण्ड की समाप्ति हो जाय और तुम लोग शान्ति प्राप्त करो। पाण्डवों को आधा राज्य दे दो; युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में जाकर राज्य करें। हे कुरुराज! राजाओं की निन्दित नीच वृत्ति जो मित्र-द्रोह है, उसमें लिप्त होकर अकीर्ति एकत्रित मत करो ॥५१।५३॥मेरे अन्त से ही प्रजा शान्ति का सुख भोगे। वैर भुलाकर सब राजा लोग प्रसन्नतापूर्वक परस्पर मिलें। हे राजेन्द्र! पिता पुत्र को, भानजा

मामा को, भाई भाई को और मित्र मित्र को फिर पावे । मैं सत्य कहता हूँ, तुम मोह के आवेश से यदि फिर युद्ध करोगे तो अन्त को अवश्य तुम्हारा सर्वनाश होगा॥५४।५५॥हे महाराज ! महात्मा भीष्म सब राजाओं के आगे राजा दुर्योधन से यों कहकर चुप हो रहे । क्योंकि उनके मर्मस्थल के घावों में वेदना हो रही थी । सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो रहा है उसे औषधि जैसे नहीं रुचती वैसे ही महात्मा भीष्म के धर्मार्थ-सङ्गत परमहितकर वचन आपके पुत्र दुर्योधन को नहीं रुचे॥५६।५७॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ इक्कीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२१ ॥

अथ द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

सञ्जय उवाच—ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान्पुनः ।
तूष्णीम्भूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥ १ ॥
श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः ।
ईषदागतसन्त्रासस्त्वरयोपजगाम ह ॥ २ ॥
स ददर्श महात्मानं शरतल्पगतं तदा ।
जन्मशय्यागतं वीरं कार्तिकेयमिव प्रभुम् ॥ ३ ॥
निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः ।
भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः ॥ ४ ॥
राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव ।
द्वेष्योऽहं तव सर्वत्र इति चैनमुवाच ह ॥ ५ ॥
तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि बलात्संवृतलोचनः ।
शनैरुद्वीक्ष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रहितं धिष्ण्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः ।
पितेव पुत्रं गाङ्गेयः परिरभ्यैकपाणिना ॥ ७ ॥
एह्येहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह ।
यदि मां नाऽधिगच्छेथा न ते श्रेयो ध्रुवं भवेत् ॥ ८ ॥

एक सौ बाईस अध्याय ॥ १२२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! भीष्म जब चुप हो गये तब सब राजा लोग उठकर अपने स्थानों को गये । उस समय पुरुषश्रेष्ठ कर्ण, भीष्म के गिरने का समाचार सुनकर, कुछ सकुचित होकर शीघ्रता के साथ उनके पास पहुँचे॥१।२॥वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि जन्म-(सेंठे की) शय्या पर पड़े हुए कार्तिकेय के समान भीष्म पितामह शरशय्या पर नेत्र मूँदे पड़े हैं । कर्ण के नेत्रों में आँसू भर आये । उन्होंने गद्गद स्वर से कहा—हे कुरुश्रेष्ठ भीष्म ! मैं वही राधेय कर्ण हूँ जो सदा आपकी आँखों पर चढ़ा हुआ था और जिसको, निरपराध होने पर भी, आप द्वेषी समझते थे॥३।५॥पितामह भीष्म ने कर्ण के ये वचन सुनकर धीरे धीरे नेत्र खोले । फिर रक्षकों को वहाँ से हटाकर एकान्त में उन्होंने, पिता जैसे पुत्र को गले से लगाता

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाऽधिरथः पिता ।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ॥ ९ ॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः ।
न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥
तेजोवधनिमित्तं तु परुषं त्वाऽहमब्रुवम् ।
अकस्मात्पाण्डवान्सर्वानवाक्षिपासि सुव्रत ॥ ११ ॥
येनाऽसि बहुशो राज्ञा चोदितः सूतनन्दन ।
जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ १२ ॥
नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि ।
तेनाऽसि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥ १३ ॥
जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि ।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम् ॥ १४ ॥
न त्वया सदृशः कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम ।
कुलभेदभयाच्चाऽहं सदा परुषमुक्तवान् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रे चाऽस्त्रसन्धाने लाघवेऽस्त्रबले तथा ।
सदृशः फाल्गुनेनाऽसि कृष्णेन च महात्मना ॥ १६ ॥
कर्ण काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता ।
कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥ १७ ॥
तथा च बलवान्राजा जरासन्धो दुरासदः ।
समरे समरश्लाघिन्न त्वया सदृशोऽभवत् ॥ १८ ॥

है वैसे ही, स्नेहपूर्वक एक हाथ से कर्ण को हृदय से लगा लिया। इसके अनन्तर उन्होंने कहा—हे कर्ण! आओ आओ। तुम मेरे प्रतियोगी हो। सदा मेरे साथ लाग डाँट रखनेवाले तुम्हीं एक हो। हे कर्ण! जो तुम इस समय मेरे पास न आते तो कभी तुम्हारा कल्याण न होता॥६।८॥ हे महाबाहो! मैंने नारदजी और व्यासजी के मुख से सुना है कि तुम राधा के पुत्र नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं, साक्षात् सूर्यदेव हैं। हे भाई! मैं सत्य कहता हूँ, तुम पर किञ्चित् मात्र भी द्वेष का भाव मेरे हृदय में नहीं है। मैंने तुम्हारा तेज घटाने के लिए ही सदा तुम्हारे लिए कठोर वाक्यों का प्रयोग किया है। हे कर्ण! तुम्हारा जन्म धर्मलोप से हुआ है इसी कारण तुमसे पाण्डवों को अनेक कष्ट और दुःख पहुँचे हैं। तुम्हारी बुद्धि और प्रकृति इसी कारण गुणियों से द्वेष रखती है। इसी से कुरुसभा में मैंने अनेक बार तुम को रूक्ष और कटु वचन सुनाये हैं। मैं जानता हूँ कि युद्ध में तुम बहुत निपुण हो और तुम्हारा पराक्रम तथा बल शत्रुओं के लिए अत्यन्त असह्य है॥१०।१४॥ हे कर्ण! तुम ब्रह्मनिष्ठ, शूर और श्रेष्ठ दानी हो। तुम बाणसन्धान और हाथ की स्फूर्ति में वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान हो। तुम्हारे समान पुरुष संसार में बहुत ही कम होंगे। यह सब जानकर भी तुम्हारे कारण पाण्डवों और कौरवों में फूट पड़ने के

ब्रह्मण्यः सत्त्वयोधी च तेजसा च बलेन च ।
देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैरधिको युधि ॥ १९ ॥
व्यपनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः ।
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २० ॥
सोदर्याः पाण्डवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन ।
सङ्गच्छ तैर्महाबाहो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ २१ ॥
मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनन्दन ।
पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः ॥ २२ ॥
कर्ण उवाच – जानाम्येव महाबाहो सर्वमेतन्न संशयः ।
यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः ॥ २३ ॥
अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्धितः ।
भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ २४ ॥
वसुदेवसुतो यद्वत्पाण्डवाय दृढव्रतः ।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥ २५ ॥
सर्वं दुर्योधनस्याऽर्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण ।
मा चैतद्व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥ २६ ॥
कोपिताः पाण्डवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम् ।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम् ॥ २७ ॥
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ।
पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥ २८ ॥

भय से मैं सदा तुमसे दुर्वचन कहता रहा हूँ॥१४। ।१६॥ हे कर्ण ! तुमने काशिपुर में जाकर कुरुराज की कन्या के लिए एक धनुषमात्र की सहायता से सब राजाओं को परास्त किया था । युद्धनिपुण दुर्धर्ष प्रबल मगधराज जरासन्ध भी तुम्हारे समान नहीं थे। तुम युद्ध करने में देवसदृश हो। हे कर्ण ! पौरुष के द्वारा कोई भाग्य को टाल नहीं सकता॥१७।२०॥ इस समय जो तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अपने भाई पाण्डवों से मिल जाओ। मेरी मृत्यु से ही वैर की यह अग्नि बुझ जाय और सब राजा कुशल से रहें॥२१।२२॥ कर्ण ने कहा हे महात्मा ! आप जो कुछ कह रहे हैं वह सब उचित ही है। मैं सच-मुच कुन्ती का पुत्र हूँ, सूत का नहीं। किन्तु कुन्ती ने जब मुझे त्याग दिया था तब सूत ने ही मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया। उसके पश्चात् दुर्योधन के ऐश्वर्य और कृपा से मैं अब तक सुख भोग रहा हूँ। इन बातों को मैं मिथ्या या वृथा नहीं कर सकता। दृढ़व्रत श्रीकृष्ण जैसे पाण्डवों के लिए यश, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर तक का त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं वैसे ही मैं पुत्र, स्त्री आदि अपना सब कुछ दुर्योधन को अर्पण कर चुका हूँ। हे कौरव ! क्षत्रियों के लिए व्याधि मृत्यु अनुचित है और पाण्डव-गण भी दुर्योधन पर अत्यन्त कुपित हैं॥२३।२६॥ अतएव इन कारणों से यह अवश्यम्भावी युद्ध निर्मा

भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥ २९ ॥
अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे ।
विजयिष्ये रणे पाण्डूनिति मे निश्चितं मनः ॥ ३० ॥
न च शक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।
धनञ्जयेन योत्स्येऽहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥ ३१ ॥
अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम् ।
अनुज्ञातस्त्वया वीर युद्ध्येयमिति मे मतिः ॥ ३२ ॥
दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात्तथा ।
यन्मयेह कृतं किञ्चित्तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥
भीष्म उवाच—न चेच्छक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।
अनुजानामि कर्ण त्वां युद्ध्यस्व स्वर्गकाम्यया ॥ ३४ ॥
निर्मन्युर्गतसंरम्भः कृतकर्मा रणे स्म ह ।
यथाशक्ति यथोत्साहं सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥ ३५ ॥
अहं त्वामनुजानामि यदिच्छसि तदाप्नुहि ।
क्षत्रधर्मजिताँल्लोकानवाप्स्यसि धनञ्जयात् ॥ ३६ ॥
युध्यस्व निरहङ्कारो बलवीर्यव्यपाश्रयः ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३७ ॥

प्रकार रुक नहीं सकता। सन्धि होने की कोई आशा नहीं। यह तो आप मानते ही हैं कि कोई मनुष्य पौरुष के द्वारा भावी को टाल नहीं सकता। आप लोगों ने पृथ्वी के लोगों के नाश की सूचना देनेवाले घोर उत्पात देखे थे और कुरु सभा में उनका वर्णन भी किया था। इसलिए यह हत्याकाण्ड, यह युद्ध, किसी प्रकार बन्द नहीं होगा॥२७।२९॥ मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण सहित पाण्डव अजेय हैं—उन्हें कोई जीत नहीं सकता। अन्य पुरुषों के द्वारा अजेय समझकर भी मैं उनसे युद्ध करने का उत्साह रखता हूँ। मैं समझता हूँ कि मैं युद्ध में पाण्डवों को जीत लूँगा। हम लोगों का यह दारुण वैरभाव किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए आप मुझे क्षत्रिय-धर्म के अनुसार अर्जुन से युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। मैं युद्ध के लिए निश्चय कर चुका हूँ। हे वीर! मैं चाहता हूँ कि आपसे आज्ञा लेकर मैं युद्ध करूँ। मैंने क्रोध या चञ्चलता के कारण आपको जो कुछ बुरा-भला कहा हो उसे, और मेरे दुर्व्यवहार को, क्षमा कीजिए॥२९।३३॥ भीष्म ने कहा—हे कर्ण! यदि यह दारुण वैरभाव तुम नहीं छोड़ सकते तो मैं तुमको युद्ध की आज्ञा देता हूँ। तुम क्षत्रिय-धर्म के अनुसार स्वर्ग की इच्छा से युद्ध करो। आलस्य और क्रोध छोड़कर, शक्ति और उत्साह के अनुसार, सदाचार का पालन करते हुए, शत्रुओं से युद्ध करो और दुर्योधन का कार्य करो। मैं तुमको अनुमति देता हूँ कि जो चाहते हो सो पाओ॥३४।३६॥ अर्जुन के द्वारा तुम उन लोकों को पाओगे जिन्हें लोग क्षत्रिय-धर्म का पालन करने

प्रशमे हि कृतो यत्नः सुमहान्सुचिरं मया ।
नचैव शकितः कर्तुं कर्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच—इत्युक्तवति गाङ्गेये अभिवाद्योपमन्त्र्य च ।
राधेयो रथमारुह्य प्रायात्तव सुतं प्रति ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

॥ समाप्तं भीष्मवधपर्व ॥

से प्राप्त करते हैं। अहङ्कार छोड़कर, बल और वीरता का आश्रय लेकर, युद्ध करो। क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर शुभ कर्म और दूसरा नहीं है। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि सन्धि के लिए मैंने बहुत दिनों तक यत्न किया, किन्तु किसी प्रकार कृतकार्य नहीं हो सका॥३७।३८॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! महात्मा भीष्म के यों कहकर चुप हो जाने पर प्रणाम करके कर्ण, आज्ञा लेकर, वहाँ से चल दिये। रथ पर चढ़कर वे दुर्योधन के पास जाने को चले॥३९॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ बाईस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२२ ॥

## भीष्मपर्व समाप्त हुआ।



अस्याऽनन्तरं द्रोणपर्व भविष्यति तस्याऽयमाद्यः श्लोकः—

जनमेजय उवाच—तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥

# द्रोणपर्व

## अध्याय [१-१००]

# द्रोणपर्व ।

अथ प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

श्रीगणेशायनम ॥ श्रीवेदव्यासायनम ॥

ॐ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच—तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यपराक्रमम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥
धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥ २ ॥
तस्य पुत्रो हि भगवन्भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान्पाण्डवान्राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥
तस्मिन्हते तु भगवन्केतौ सर्वधनुष्मताम् ।
यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥
तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् ।
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ ६ ॥
शिबिरात्सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् ।
आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥ ७ ॥
श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।
पुत्राणां जयमाकांक्षन्विललापाऽऽतुरो यथा ॥ ८ ॥

पहला अध्याय ॥ १ ॥

राजा जनमेजय ने कहा—हे भगवन्! तेजस्वी, वीर्यशाली अलौकिक अतुल सत्त्वधारी और अतिशय पराक्रमी भीष्म पितामह की शिखण्डी के हाथ से मृत्यु सुनकर शोक से व्याकुल हुए हुए राजा धृतराष्ट्र ने क्या किया? उनके पुत्र दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण आदि महारथियों की सहायता से महायोद्धा पाण्डवों को परास्त करके राज्य भोगने की इच्छा की थी। श्रेष्ठ योद्धा भीष्म की मृत्यु हो जाने पर दुर्योधन ने क्या किया? यह सब वृत्तान्त ठीक ठीक कहिए॥१।४॥ वैशम्पायन ने कहा—हे महाराज! राजा धृतराष्ट्र, भीष्म की मृत्यु का हाल सुनकर, चिन्ता और शोक से ऐसे व्याकुल हो गये कि किसी प्रकार उनके चित्त की अशान्ति दूर नहीं हुई। वे दिन-रात उसी चिन्ता में डूबे रहते थे। इसी समय सायङ्काल में सञ्जय

धृतराष्ट्र उवाच—संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥
तस्मिन्विनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि ।
किं नु स्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥ १० ॥
तदुदीर्णं महत्सैन्यं त्रैलोक्यस्याऽपि सञ्जय ।
भयमुत्पादयेत्तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥
को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः ।
यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये ॥ १२ ॥
देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।
किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १३ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।
यत्ते पुत्रास्तदाऽकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १४ ॥
निहते तु तदा भीष्मे राजन्सत्यपराक्रमे ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥
विस्मिताश्च प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशाम्य ते ।
स्वधर्मं निन्दमानास्ते प्रणिपत्य महात्मने ॥ १६ ॥
शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायाऽमिततेजसे ।
सोपाधानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥
विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् ।
अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १८ ॥

---

युद्धस्थल से हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के पास आया॥५।७॥ पुत्रों के जीतने की इच्छा रखनेवाले राजा धृतराष्ट्र ने जब से भीष्म की मृत्यु का हाल सुना था तभी से वे खिन्न होकर विलाप कर रहे थे। सञ्जय के आने पर उनसे धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! काल प्रेरित कौरवों ने महाबली भीष्म की मृत्यु होने पर अत्यन्त शोकपीड़ित होकर क्या किया? मैं तो समझता हूँ कि वीर पाण्डवों की सेना त्रिभुवन के हृदय में भय उत्पन्न कर सकती है ॥८।१३॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! संग्राम में भीष्म के गिरने पर आपके पुत्रों ने जो कुछ किया, सो मैं कहता हूँ। हे महाराज! सत्यपराक्रमी भीष्म के गिरने पर आपके पक्ष के और पाण्डव-पक्ष के वीर पृथक्-पृथक् सम्मति करने लगे। हे महाराज! आपके पक्ष के लोगों को पितामह की मृत्यु से आश्चर्य था और पाण्डव-पक्ष के लोग आनन्दित थे। दोनों ओर के लोग क्षत्रियधर्म के अनु-सार भीष्म के पास गये। सबने उनको प्रणाम किया। पाण्डवों ने तीक्ष्ण सन्नतपर्व बाणों के द्वारा पितामह के लिए तकिये और बिछौने की रचना की और उनके चारों ओर रक्षक नियुक्त कर दिये ॥१४।१७॥ इसके पश्चात् वे सब परस्पर सम्भाषण करके, पितामह की अनुमति लेकर और उनकी प्रदक्षिणा करके, फिर युद्ध के लिए युद्धभूमि में आये। दोनों पक्ष के वीर, क्रोध से लाल नेत्र किये, एक-दूसरे को देख

क्रोधसंरक्तनयनाः समवेत्य परस्परम् ।
पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १९ ॥
ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां निनदेन च ।
तावकानामनीकानि परेषां च विनिर्ययुः ॥ २० ॥
व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते ।
अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥ २१ ॥
अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः ।
निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वराः ॥ २२ ॥
मोहात्तव सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च ।
कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः ॥ २३ ॥
अजावय इवाऽगोपा वने श्वापदसंकुले ।
भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २४ ॥
पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी ।
द्यौरिवाऽपेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥ २५ ॥
विपन्नसस्येव मही वाक्चैवाऽसंस्कृता तथा ।
आसुरीव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ ॥ २६ ॥
विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥ २७ ॥
शरभाहतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।
भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥ २८ ॥

रहे थे । उनके सिर पर काल सवार था । दोनों पक्ष की सेना युद्ध के लिये निकली । उसमें तुरही, भेरी आदि बाजे बजने लगे॥१९।२०॥दूसरे दिन प्रातःकाल कालग्रस्त कौरवगण क्रोधपरवश होकर, महात्मा भीष्म के हितकारी उपदेश को न मानकर, अस्त्र शस्त्र ले-लेकर युद्धभूमि में पहुँच गये। हे राजेन्द्र ! आपकी और दुर्योधन की जयाशाजन्य मूढ़ता के कारण कौरवों को मृत्यु का न्योता मिल गया है । कौरव और उनके पक्ष के राजा लोग भीष्म के शरशय्याशायी होने पर उसी प्रकार चिन्तित हुए, जिस प्रकार खूनी जानवरों से भरे वन में बिना रक्षक के बकरियाँ और भेड़ें व्याकुल हो जाती हैं॥२१।२४॥ महाराज ! आपके पक्ष की सेना भीष्म के बिना नक्षत्रहीन आकाश की तरह, वायुहीन अन्तरिक्ष की तरह, फसल रहित खेत की तरह, अशुद्ध वाक्य की तरह और राजा बलि को जब वामनजी ने बलपूर्वक बाँध लिया था उस समय की नायकविहीन असुरसेना की तरह उद्विग्न, विचलित और श्रीहीन हो गई । हे राजेन्द्र ! आपकी सेना उस समय विधवा सुन्दरी की तरह, जिसका जल शुष्क हो गया हो उस नदी की तरह, भेड़ियों ने जिस किसी को घेर रक्खा हो और जिसका साथी यूथप मार डाला गया हो उस मृगी की तरह तथा शरभ ने जिसमें रहनेवाले सिंह को मार डाला हो उस कन्दरा की तरह उद्विग्न, विच-

विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवाऽऽसीन्महार्णवे ।
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता ॥ २९ ॥
सा तदाऽऽसीद्भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३० ॥
तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः ।
पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ॥ ३१ ॥
कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवाऽतिथिम् ॥ ३२ ॥
बन्धुमापद्गतस्येव तमेवोपागमन्मनः ।
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥ ३३ ॥
राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
स हि नाऽयुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥ ३४ ॥
सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम् ।
भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥
रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥ ३६ ॥
रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसम्मतः ।
सासुरानपि देवेशान्रणे यो योद्धुमुत्सहेत् ॥ ३७ ॥
स तु तेनैव कोपेन राजन्गाङ्गेयमुक्तवान् ।
त्वयि जीवति कौरव्य नाऽहं योत्स्ये कदाचन ॥ ३८ ॥

न्ति और श्रीहीन हो गई॥२५।२८॥तूफान में फँसी नाव की जो अवस्था समुद्र में होती है वही दशा आपकी सेना की हुई । ठीक निशाना लगानेवाले वीर पाण्डव आपकी सेना को अत्यन्त पीड़ित करने लगे। घोड़े, रथ, हाथी और पैदल सब नष्ट भ्रष्ट होने लगे। सब सैनिक उत्साहहीन, व्याकुल और विकल देख पड़ने लगे । भीष्म के बिना कौरव पक्ष के राजा और सैनिक मानो पाताल में डूबने लगे॥२९।३१॥ उस समय कौरवों ने कर्ण को सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ भीष्म-तुल्य जानकर अपनी रक्षा के लिए स्मरण किया । जैसे गृहस्थ का मन साधु अतिथि की ओर और आपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति का मन अपने मित्र की ओर दौड़ता है, वैसे ही कौरवों का विचार कर्ण की ओर गया । उस समय सब राजा लोग कर्ण को अपना हितैषी और समर्थ समझकर "कर्ण ! कर्ण !" चिल्लाने लगे । उन्होंने कहा – महायशस्वी कर्ण ने इन दस दिनों तक शत्रुओं से युद्ध नहीं किया । उन्हें उनके मन्त्रियों, साथियों और सुहृदों सहित शीघ्र बुलाओ, विलम्ब न करो॥३२।३५॥महावीर कर्ण दो रथी योद्धाओं के तुल्य तथा रथी और अतिरथी योद्धाओं में अग्रगण्य हैं। बड़े बड़े शूरवीर उनका सम्मान करते हैं । वे यमराज, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों और बड़े-बड़े असुरों से भी युद्ध कर सकते हैं; तथापि बल विक्रमशाली रथी महारथी

त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ॥ ३९ ॥
पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि ।
हन्ताऽस्म्येकरथेनैव कृत्स्नान्यान्मन्यसे रथान् ॥ ४० ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशाः ।
नाऽयुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव सम्मते ॥ ४१ ॥
भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत ।
जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२ ॥
तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्य सन्धे महौजसि ।
त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥ ४३ ॥
तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः ।
हा कर्ण इति चाऽऽक्रन्दन्कालोऽयमिति चाऽब्रुवन् ॥ ४४ ॥
एवं ते स्म हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥ ४५ ॥
जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।
अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४६ ॥
स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान्महाभयात् ।
त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥ ४७ ॥
वैशम्पायन उवाच—तथा तु सञ्जयं कर्णं कीर्तयन्तं पुनः पुनः ।
आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥

---

आदि की गिनती के समय पितामह भीष्म ने उनको अर्द्धरथी कहा। इसी से क्रोधवश होकर कर्ण ने भी भीष्म के आगे प्रतिज्ञा की थी कि "हे पितामह! तुम्हारे जीते जी मैं कदापि युद्ध नहीं करूँगा। इस महासंग्राम में यदि तुम्हारे हाथ से पाँचों पाण्डव मारे गये तो मैं, दुर्योधन की अनुमति लेकर, वनवास करने चल दूँगा। और जो पाण्डवों के हाथों मरकर तुम स्वर्गवासी हुए तो मैं अकेला ही उन सब क्षत्रियों को मारूँगा, जिन्हें तुम पूर्ण रथी और महारथी कह रहे हो"॥३५।४०॥हे महाराज! आपके पुत्र दुर्योधन की सम्मति से यशस्वी कर्ण ने दस दिन तक शत्रुओं से युद्ध नहीं किया। महायशस्वी भीष्म ही युधिष्ठिर-पक्ष के योद्धाओं को नष्ट करते रहे। महापराक्रमी सत्य-सन्ध महाशूर भीष्म की मृत्यु हो जाने पर आपके पुत्र और उनके पक्ष के राजा लोग कर्ण को वैसे ही स्मरण करने लगे जैसे पार जाने की इच्छा रखनेवाले लोग नाव को स्मरण करते हैं॥४१।४३॥सब लोग यों चिल्लाने लगे—हा कर्ण! यही तुम्हारे पराक्रम प्रकट करने का समय है। हे राजेन्द्र! कर्ण ने परशुराम से अस्त्र-विद्या सीखी है, और उनका पराक्रम दुर्निवार्य है, यही समझकर हमारे पक्ष के मनुष्यों को कर्ण की ही स्मरण हो आई। जैसे बड़ी आपत्ति के समय लोग अपने मित्र को ही स्मरण करते हैं वैसे ही पाण्डवों के द्वारा पीड़ित कौरव-सेना कर्ण

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तद्वैकर्त्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा ।
अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९ ॥
अपि तन्न मृषाऽकार्षीत्कच्चित्सत्यपराक्रमः ।
सम्भ्रान्तानां तदार्त्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ॥ ५० ॥
अपि तत्पूरयाञ्चक्रे धनुर्धरवरो युधि ।
यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपावृतम् ॥ ५१ ॥
तत्खण्डं पूरयन्कर्णः परेषामादधद्भयम् ।
स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके सञ्जय कथ्यते ॥ ५२ ॥
आर्त्तानां बान्धवानां च क्रन्दतां च विशेषतः ।
परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च शर्म च ।
कृतवान्मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

को स्मरण करने लगी । हे राजेन्द्र ! जैसे विष्णु भगवान् सदा देवताओं को महाभय से उबारते रहते हैं वैसे ही युद्धभूमि मे इस महाभय से महाबाहु कर्ण भी हमारी रक्षा कर सकते हैं॥४४।४७॥वैशम्पायन ने कहा——हे राजा जनमेजय! सञ्जय को इस प्रकार बारम्बार कर्ण का ही नाम लेते देखकर विषैले नाग के समान लम्बी श्वास छोड़कर राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! दुर्योधन आदि तुम सब ने जब अत्यन्त उद्विग्न और पीड़ित होकर कर्ण को स्मरण किया तब क्या कर्ण ने भी तुम्हारी रक्षा करना स्वीकार किया ! सत्यपराक्रमी धनुर्द्धरश्रेष्ठ कर्ण ने आर्त शरणागत कौरव दल की प्रार्थना को विफल तो नहीं किया ! भीष्म पितामह की मृत्यु से कौरवों की जो हानि हुई थी, पितामह का जो स्थान खाली हुआ था, उसे पुरुषसिंह कहे जानेवाले कर्ण ने शत्रुओं को डराते हुए पूरा भी किया ? उन्होंने आर्त होकर रक्षा के लिए चिल्लानेवाले अपने मित्रों की जयाशा को सफल भी किया ? मेरे पुत्रों के भले और विजय के लिए कर्ण ने प्राणों का मोह छोड़कर शत्रुओं से युद्ध किया कि नहीं ?॥४८।५३॥

भीष्मपर्व का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच —हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम् ।
सोदर्यवद्व्यसनात्सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १ ॥
श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शान्तनवं महारथम् ।
अथोपयायात्सहसाऽरिकर्षणो धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कर्ण को जब महात्मा भीष्म के गिरने का समाचार मिला तब वे अथाह सागर में टूटकर डूबते हुए जहाज के समान विपत्तिसागर में पड़ी हुई आपके पुत्र की सेना, सगे भाई की तरह, उबारने के लिए उसके पास आये । पिता जैसे पुत्रों की रक्षा करने के लिए

हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवाऽर्णवे कुरून् ।
पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच—यस्मिन्धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे ।
अस्त्राणि दिव्यान्यथ सन्नतिर्ह्रीः प्रिया च वागनसूया च भीष्मे ॥ ४ ॥
सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म ।
स चेत्प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव च सर्ववीरान् ॥ ५ ॥
नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते लोके ह्यस्मिन्कर्मणोऽनित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताऽऽर्यमहाव्रते हते ॥ ६ ॥
वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे गते वसूनेव वसुन्धराधिपे ।
वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा कुरूंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम् ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच—महाप्रभावे वरदे निपातिते लोकेश्वरे शास्तरि चाऽमितौजसि ।
पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्त्तयन् ॥ ८ ॥
इदं च राधेयवचो निशम्य सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह ।
परस्परं चक्रुशुरार्तिजं मुहुस्तदाऽश्रु नेत्रैर्मुमुचुश्च शब्दवत् ॥ ९ ॥
प्रवर्त्तमाने तु पुनर्महाहवे विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः ।
अथाऽब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो रथर्षभान्सर्वमहारथर्षभः ॥ १० ॥
जगत्यनित्ये सततं प्रधावति प्रचिन्तयन्नस्थिरमद्य लक्षये ।
भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११ ॥
निपातिते शान्तनवे महारथे दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा ।
न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं गिरिप्रवोढारमिवाऽनिलं द्रुमाः ॥ १२ ॥

---

दौड़ता है, वैसे ही महावीर कर्ण आपके पुत्रों की और उनके दल की रक्षा करने के लिए शीघ्रता के साथ वहाँ आये॥१।३॥महापराक्रमी शत्रु-समूहनाशन कर्ण [परशुराम के दिये हुए धनुष का स्पर्श करके, उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर, काल अग्नि और वायु के तुल्य प्राणनाशक और शीघ्रगामी बाणों को उछालते हुए] कौरवों से कहने लगे—चन्द्रमा में जैसे श्री नित्य रहती है वैसे ही जिन द्विज-शत्रुहन्ता कृतज्ञ भीष्म में धृति, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति, प्रिय वाणी, ईर्ष्या का अभाव आदि वीरों के सब गुण विद्यमान् थे, वे शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेवाले पितामह यदि आज मृत्यु का शिकार बन गये तो मैं अन्य सब वीरों को मरा हुआ सा ही समझता हूँ॥४।५॥ ब्रह्मचारी भीष्म की मृत्यु को देखकर किसको आज सूर्योदय होने का भी निश्चय होगा ! [भीष्म की मृत्युरूप अनहोनी होने पर सूर्योदय न होने की अनहोनी पर भी विश्वास किया जा सकता है।] मृत्युविजयी भीष्म की भी जब मृत्यु हो गई तब हम लोगों के जीवन की क्या आशा है ? सत्य है कि इस लोक में कर्म के अनित्य सम्बन्ध से कोई भी वस्तु अविनाशी नहीं है, एक न एक दिन सभी का नाश होगा। वसुओं के समान महाप्रभावशाली और वसुओं के तेज से उत्पन्न भीष्म पितामह वसुलोक को जाकर वसुओं में लीन हो गये। अब धन, पुत्र, पृथ्वी, कौरवगण

हतप्रधानं त्विदमार्त्तरूपं परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै ।
मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३ ॥
समाहितं चाऽऽत्मनि भारमीदृशं जगत्तथाऽनित्यमिदं च लक्षये ।
निपातितं चाऽहवशौण्डमाहवे कथं नु कुर्यामहमीदृशे भयम् ॥ १४ ॥
अहं तु तान्कुरुवृषभानजिह्मगैः प्रवेशयन्यमसदनं चरन्रणे ।
यशः परं जगति विभाव्य वर्तिता परैर्हतो भुवि शयिताऽथवा पुनः ॥ १५ ॥
युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्त्ववान्वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः ।
तथाऽर्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा न तद्बलं सुजयमिहाऽमरैरपि ॥ १६ ॥
यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले स सात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः ।
न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान्निवर्त्तते मृत्युमुखान्न चाऽसुभृत् ॥ १७ ॥
तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः ।
मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाऽचलवद्व्यवस्थितम् ॥ १८ ॥
एवं चैषां बाधमानः प्रभावं गत्वैवाऽहं ताञ्जयाम्यद्य सूत ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने सैन्ये यः समेयात्स मित्रम् ॥ १९ ॥
कर्त्तास्म्येतत्सत्पुरुषार्यकर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् ।
सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २० ॥
सम्प्राक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराहते पौरुषे धार्त्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि सूत तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून्विजेष्ये ॥ २१ ॥

---

और इस सब सेना के लिए शोक करो । भीष्म के बिना हम सबकी शोचनीय दशा हो गई है॥६।७॥ सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! महाप्रतापी भीष्म को मृत और कौरवों को शत्रुओं से परास्त देखकर कर्ण के नेत्रों में आँसू आ गये; वे दुःखित होकर बारम्बार श्वास लेने लगे । हे महाराज ! आपके पुत्र और सैनिकगण वीर कर्ण के ये वचन सुनकर जोर से रोने लगे । हे राजेन्द्र ! अब फिर भयङ्कर संग्राम आरम्भ हुआ । राजा लोग शत्रुसेनाओं में प्रवेश होकर उनका संहार करने लगे, सब सैनिक सिंहनाद करते दिखाई पड़ने लगे । उस समय महारथी-श्रेष्ठ कर्ण सब योद्धाओं को प्रसन्न और उत्साहित करते हुए बोले—॥८।१०॥ हे भाइयो ! इस अनित्य जगत् में मुझे कुछ भी स्थिर नहीं देख पड़ता । प्रत्येक वस्तु नाश होनेवाली है । यदि ऐसी बात नहीं है, तो फिर आप लोगों के देखते-देखते वीरवर पितामह भीष्म को पाण्डवों ने कैसे मार गिराया ? महारथी भीष्म पृथ्वी पर पड़े हुए सूर्य के समान दिखाई पड़ रहे हैं । जैसे पर्वत को भी उखाड़ने के लिए तैयार आँधी को साधारण वृक्ष नहीं रोक सकते, वैसे ही हमारे पक्ष के राजा लोग इस समय भीष्म के अतिरिक्त अर्जुन के पराक्रम के सम्मुख नहीं ठहर सकते॥११।१२॥कौरव-सेना के प्रधान वीर भीष्म के मारे जाने से सब सैनिक अनाथ, आर्त और उत्साह-हीन हो रहे हैं । मैं इस समय उसी प्रकार इस कुरु-सेना की रक्षा करूँगा, जिस प्रकार महात्मा भीष्म कर रहे थे । इस समय यह मेरा कर्त्तव्य हो गया है । जब कि युद्धप्रेमी महापराक्रमी भीष्म मारे गये हैं और मेरे ऊपर यह कर्त्तव्यभार आ पड़ा

कुरून्रक्षन्पाण्डुपुत्राञ्जिघांसंस्त्यक्त्वा प्राणान्घोररूपे रणेऽस्मिन् ।
सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्निहत्य दास्याम्यहं धार्त्तराष्ट्राय राज्यम् ॥ २२ ॥
निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
शिरस्त्राणं चाऽर्कसमानभासं धनुः शरांश्चाऽग्निविषाहिकल्पान् ॥ २३ ॥
उपासङ्गान्षोडश योजयन्तु धनूंषि दिव्यानि तथाऽऽहरन्तु ।
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः शङ्खं च जाम्बूनदचित्रनालम् ॥ २४ ॥
इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्कम् ।
श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्याऽनयन्तु चित्रां मालां चारुबद्धां सलाजाम् ॥ २५ ॥
अश्वानग्र्यान्पाण्डुराभ्रप्रकाशान्पुष्टान्स्नातान्मन्त्रपूताभिरद्भिः ।
तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेताञ्शीघ्राञ्शीघ्रं सूतपुत्राऽऽनयस्व ॥ २६ ॥
रथं चाऽग्र्यं हेममालावनद्धं रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः ।
द्रव्यैर्युक्तं सम्प्रहारोपपन्नैर्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्त्तयस्व ॥ २७ ॥
चित्राणि चापानि च वेगवन्ति ज्याश्चोत्तमाः सन्नहनोपपन्नाः ।
तूणांश्च पूर्णान्महतः शराणामासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥
प्रायात्रिकं चाऽऽनयताऽऽशु सर्वं दध्ना पूर्ण वीर कांस्यं च हैमम् ।
आनीय मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः ॥ २९ ॥
प्रयाहि सूताऽऽशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय गच्छामि हतो द्विपद्भिः ॥ ३० ॥

और जब यह जगत् और जीवन सदा रहने का है नहीं तब भला मैं क्यों भयभीत होने लगा ? मैं शीघ्रता के साथ सीधे निशाने पर पहुँचनेवाले बाणों से शत्रु-सेना को मारता हुआ रणभूमि में विचरण करूँगा। यदि विजय प्राप्त कर सका तो जगत् में श्रेष्ठ यश प्राप्त करूँगा और शत्रुओं के हाथ से मारा गया तो रणभूमि में वीर-गति प्राप्त करूँगा॥१३।१५॥युधिष्ठिर धैर्य, बुद्धि, धर्म और उत्साह से युक्त हैं; भीमसेन में सौ हाथियों का बल है; अर्जुन इन्द्र के पुत्र और जवान हैं; इसलिए देवता भी पाण्डवों की सेना को सहज में नहीं जीत सकते। माद्री के पुत्र और सात्यकि सहित साक्षात् वासुदेव जिस पक्ष में हैं, वह यमराज के मुख के समान है। कोई भी कायर उसके सम्मुख पहुँचकर जीता नहीं लौट सकता। मनस्वी लोग बढ़े हुए तप को तप से ही और बल को बल से ही रोकते हैं। मेरा मन निश्चित रूप से शत्रुओं को रोकने और अपनी रक्षा करने के लिए पर्वत के समान अटल है॥१६।१८॥इस प्रकार मैं आज शत्रुओं के प्रभाव को रोकता हुआ जाते ही उन लोगों को जीत लूँगा। मित्रों के प्रति शत्रुओं के द्रोह को मैं सह नहीं सकता। जो सेना के भाग खड़े होने पर साथ दे, वही मित्र है। या तो मैं सत्पुरुषों के योग्य इस श्रेष्ठ कार्य को करूँगा, और या शत्रुओं के हाथ से मर-कर भीष्म का अनुगामी होऊँगा। नारियों और कुमारों का रोना-चिल्लाना सुनकर और दुर्योधन का पौरुष प्रतिहत होने पर मेरा यही कर्तव्य है, यह मैं जानता हूँ। इसीलिए मैं आज राजा दुर्योधन के शत्रुओं को मारूँगा॥१९।२१॥पाण्डवपक्ष को मारने और कौरव

यस्मिन्राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१ ॥
तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाऽप्रमत्तः समरे किरीटिनम् ।
तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय ॥ ३२ ॥
न त्वेवाऽहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्र चाऽहं ब्रवीमि ।
मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥ ३३ ॥
सञ्जय उवाच—सम‍ृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं सकूबरं हेमपरिष्कृतं शुभम् ।
पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥ ३४ ॥
सम्पूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः ।
ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा यत्राऽवसानं भरतर्षभस्य ॥ ३५ ॥
वरूथिना महता स ध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना ।
सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्वनेनाऽर्क इवाऽमितौजाः ॥ ३६ ॥
हुताशनाभः स हुताशनप्रभे शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
स्थितो रराजाऽधिरथिर्महारथः स्वयं विमाने सुरराडिवाऽऽस्थितः ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

पक्ष की रक्षा करने के लिए इस भयङ्कर रण में या तो मैं अपने प्रिय प्राण दूँगा, और या युद्ध में शत्रुओं को मारकर दुर्योधन को राज्य दूँगा। मुझे सुवर्णमय मणिरत्नमण्डित विचित्र उज्ज्वल कवच पहनाओ, सूर्य के समान प्रभा-युक्त शिरस्त्राण मेरे सिर पर रक्खो। बाण-पूर्ण सोलह तरकस और दिव्य धनुष ले आओ। तलवारें, शक्तियां, भारी गदाएँ, सुवर्णमण्डित विचित्र शङ्ख, सोने की शृङ्खला आदि सब युद्ध-सामग्री लाओ। कमलचिह्नयुक्त विजयसूचक पताका को, वस्त्रों से स्वच्छ करके, ले आओ। विचित्र माला और खीलें आदि माङ्गलिक वस्तुएँ उपस्थित करो॥२२।२५॥ श्वेत मेघसदृश, हृष्ट-पुष्ट, मन्त्र से पवित्र किये गये जल में नहलाये गये, तेज, बढ़िया, सुवर्ण के अलङ्कारों से अलंकृत घोड़े शीघ्र लाओ। सुवर्णमाल्य से शोभित, चन्द्र-सूर्य सदृश कान्तियुक्त, रत्नों से भूषित, वाहनों से युक्त और समाम की सामग्री से परिपूर्ण बढ़िया रथ मेरी सवारी के लिए अभी लाओ। वेगशाली विचित्र चाप, उत्तम और ज़ोर को सहनेवाली धनुष की डोरियां, बाणपूर्ण बड़े-बड़े तरकस और कवच आदि सब सामग्री लाओ॥२६।२८॥ प्रस्थानकाल में शुभसूचक जलपूर्ण सुवर्णकलश और दही भरा हुआ बर्तन लाओ। मुझे माला पहनाकर जयसूचक नगाड़े बजाओ। हे सूत! तुम शीघ्र ही वहाँ पर मेरा रथ ले चलो जहाँ वीर भीमसेन, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव हैं। मैं युद्धभूमि में उनके सन्मुख पहुँचकर या तो उन्हें मारूँगा, और या भीष्म की तरह शत्रुओं के हाथ से मारा जाऊँगा। जिस सेना में सत्यपरायण युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, श्रीकृष्ण और सब सृञ्जय विद्यमान हैं उसे मैं, सब राजाओं के साथ मिलकर आक्रमण करने पर भी, अजेय ही मानता हूँ॥२९।३१॥ किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सर्वनाशक मृत्यु भी सावधान होकर सदैव यदि अर्जुन की रक्षा करे तो भी मैं युद्ध में उनको अवश्य मारूँगा, अथवा भीष्म की तरह उनके हाथों से मारा जाऊँगा। केवल मैं ही उन शूरवीर पाण्डवों की सेना के मध्य युद्ध करने न जाऊँगा,

प्रत्युत ये सब सहायक शूर राजा भी मेरे साथ अपना पराक्रम दिखावेंगे। ये मेरे सहायक राजा और योद्धा लोग मित्रद्रोही, कच्ची भक्ति रखनेवाले, कायर या पापी नहीं हैं॥ ३२।३३॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! अब सुवर्ण-मुक्ता-मणि-रत्नमण्डित उत्तम दृढ़ रथ कर्ण के सम्मुख लाया गया। उसमें सुन्दर पताका फहरा रही थी, और वायुगामी बढ़िया घोड़े जुते हुए थे। उसी रथ पर बैठकर महारथी कर्ण विजय के लिए रवाना हुए। सब कौरव उग्रधन्वा वीर कर्ण की स्तुति वैसे ही करने लगे, जैसे इन्द्र की स्तुति देवता किया करते हैं। श्रेष्ठ योद्धा कर्ण रथ पर बैठकर वहाँ चले जहाँ भीष्म पितामह शरशय्या पर शयन कर रहे थे। सुवर्ण मुक्ता-मणि-रत्नमण्डित, ध्वजायुक्त, अश्वशोभित रथ पर कर्ण उसी तरह शोभायमान हुए जिस प्रकार गरजते हुए मेघ पर सूर्य विराजमान हों। अग्नितुल्य तेजस्वी शुभरूप महारथी महाधनुर्द्धर कर्ण अग्निपिण्ड-सदृश उस रथ पर बैठकर विमान पर स्थित इन्द्र के समान शोभा को प्राप्त हुए॥ ३४।३७॥

द्रोणपर्व का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

सञ्जय उवाच— शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम्।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम्॥ १॥
दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रान्तकं गुरुम्।
दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना॥ २॥
जयाशा तव पुत्राणां सम्भग्ना शर्म वर्म च।
अपाराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम्॥ ३॥
स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिप्लुतम्।
महेन्द्रेणेव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम्॥ ४॥
नभश्च्युतमिवाऽऽदित्यं पतितं धरणीतले।
शतक्रतुमिवाऽचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम्॥ ५॥
मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम्।
ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम्॥ ६॥
धनञ्जयशरैर्व्याप्तं पितरं ते महाव्रतम्।
तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम्॥ ७॥

तीसरा अध्याय॥ ३॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! कर्ण ने जाकर देखा कि महापराक्रमी महात्मा भीष्म शरशय्या पर पड़े हुए हैं। जैसे तूफान ने समुद्र को सुखा डाला हो, वैसे ही अर्जुन ने सर्वक्षत्रान्तक गुरु पितामह भीष्म को दिव्य अस्त्रों के द्वारा गिरा दिया था। भीष्म के गिरते ही आपके पुत्रों की जय की आशा, कल्याण और रक्षारूपी कवच खण्डित सा हो गया। महात्मा भीष्म कौरवों के लिए वैसे ही आश्रय-स्वरूप थे जैसा अथाह में डूबकर थाह चाहनेवाले मनुष्य के लिए टापू होता है। यमुना के प्रवाह के समान असंख्य बाण उनके अङ्गों में छिदे हुए थे। इन्द्र के वज्र-प्रहार से पृथ्वी पर पड़े हुए मैनाक पर्वत के समान,

भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः ।
अवतीर्य रथादार्त्तो बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ॥ ८ ॥
अभिवाद्याऽञ्जलिं बध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ।
कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत ॥ ९ ॥
पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चाऽवलोकय ।
न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ॥ १० ॥
यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ।
कोशसञ्चयने मन्त्रे व्यूहे प्रहरणेषु च ॥ ११ ॥
नाऽहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव ।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद्भयात् ॥ १२ ॥
योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यति ।
अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयम् ॥ १३ ॥
पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ।
अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
कुरवः सन्त्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवाऽसुराः ।
अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ॥ १५ ॥
त्रासयिष्यति बाणानां कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।
समिद्धोऽग्निर्यथा वीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ॥ १६ ॥
धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यन्ति तथा बाणाः किरीटिनः ।
येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ वने ॥ १७ ॥

आकाश से गिरे हुए सूर्य के समान, वृत्रासुर से पराजित इन्द्र के समान भीष्म पितामह पृथ्वी पर पड़े हुए थे। युद्ध में सब शत्रुसेना को अपने पराक्रम से मूढ़ बनानेवाले, सब सैनिकों में श्रेष्ठ, धनुर्द्धरों के शिरोमणि, आपके चाचा महात्मा भीष्म को अर्जुन के बाणों से शिथिल होकर वीरोचित शरशय्या पर पड़े देखकर कर्ण शोक और मोह के आवेश में विह्वल हो उठे। उनके नेत्रों में आँसू भर आये। वे तुरन्त ही रथ से उतरकर पैदल ही महात्मा भीष्म के पास पहुँचे। हाथ जोड़कर प्रणाम करके कर्ण ने कहा—हे पितामह! आपका कल्याण हो। मैं कर्ण हूँ। अपनी कल्याणमयी दृष्टि से मेरी ओर देखिए, और पवित्र वाक्यों से मुझे कृतार्थ कीजिए। आप ऐसे धर्मनिष्ठ वृद्ध को पृथ्वी पर इस प्रकार पड़े देखकर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस लोक में कोई भी अपने पुण्य का फल नहीं भोगता॥११०॥ हे कुरुश्रेष्ठ! मुझे तो कौरवों में अब कोई कोष-सञ्चय, मन्त्रणा, व्यूहरचना और अस्त्रप्रयोग में आप सा निपुण नहीं देख पड़ता। विशुद्ध बुद्धि से युक्त आप ही कौरवों को इस विपत्ति के पार लगानेवाले थे, सो आप बहुत से योद्धाओं को मारकर अब पितृलोक जानेवाले हैं। जैसे क्रुद्ध बाघ मृगों को चौपट करते हैं, वैसे ही अब से पाण्डव लोग कुरुसेना का संहार करेंगे। हे पितामह! अर्जुन के पराक्रम को

तेन तेन प्रदहतो भूरिगुल्मतृणद्रुमान् ।
यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक्पार्थो न संशयः ॥ १८ ॥
यथा वायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ।
नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाण्डिवस्य च ॥ १९ ॥
श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत ।
कपिध्वजस्योत्पततो रथस्याऽमित्रकर्षिणः ॥ २० ॥
शब्दं सोढुं न शक्ष्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः ।
को ह्यर्जुनं योधयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ॥ २१ ॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
अमानुषैश्च संग्रामस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥ २२ ॥
तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया ॥ २३ ॥
जितो येन रणे रामो भवता वीर्यशालिना ।
क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
तमद्याऽहं पाण्डवं युद्धशौण्डममृष्यमाणो भवता चाऽनुशिष्टः ।
आशीविषं दृष्टिहरं सुघोरं शूरं शक्ष्याम्यस्त्रबलान्निहन्तुम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जाननेवाले वीरवर अब गाण्डीव धनुष के शब्द से वैसे ही भयभीत होंगे जैसे वज्र के शब्द से असुर भयभीत होते हैं। अब गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों का शब्द, वज्र की कड़क के समान, कौरवों को और उनके पक्ष के अन्य राजाओं को भयविह्वल बनावेगा॥११।१६॥ हे वीर! जैसे प्रज्वलित अग्नि बड़ी बड़ी ज्वालाओं से वृक्षों को जलाती है वैसे ही अर्जुन के बाण धृतराष्ट्र पुत्रों को भस्म करेंगे। वायु और अग्नि दोनों मिलकर महावन में बड़े बड़े वृक्षों और घास फूस लता आदि को भस्म कर डालते हैं। सो अर्जुन तो अग्नि के तुल्य हैं, और कृष्ण वायु के समान हैं॥१८।१९॥ हे भरतकुलदीपक! पाञ्चजन्य शङ्ख और गाण्डीव धनुष का शब्द सुनकर सब सेना भयभीत हो जायगी। हे वीर! आपके न रहने से सब राजा लोग अर्जुन के रथ के शब्द को नहीं सह सकेंगे। पण्डित और वीर लोग जिनके अलौकिक कर्मों का वर्णन किया करते हैं, जिन्होंने निवातकवच आदि दानवों को मारा और साक्षात् शङ्कर को संग्राम में सन्तुष्ट करके साधारण मनुष्यों के लिए दुर्लभ वरदान प्राप्त किये तथा जिनकी रक्षा सदा श्रीकृष्ण करते हैं, उन समराभिमानी अर्जुन से युद्ध करके आपके अतिरिक्त कोई भी राजा उनको परास्त नहीं कर सकता। आपने क्षत्रियकुल के काल, सुरासुर पूजित, महाशूर परशुरामजी को अपने पराक्रम से रण में जीत लिया था। ऐसा कौन वीर है, जिसे आपने परास्त नहीं किया? किन्तु काल की कैसी विचित्र गति है कि वही आप आज अर्जुन के बाणों से घायल होकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। मैं उन युद्धशूर पाण्डव अर्जुन को आपकी अनुमति लेकर मारने की इच्छा रखता हूँ। विषैले नाग के समान

दृष्टि से ही वीरों के प्राण हर लेनेवाले शूर अर्जुन को मैं आपकी अनुमति प्राप्त होने से, अपने अस्त्रबल के द्वारा मार सकूँगा॥१९।२५॥

द्रोणपर्व का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच—तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः ।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्प्रीतमानसः ॥ १ ॥
समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः ।
सत्यस्य च यथा सन्तो बीजानामिव चोर्वरा ॥ २ ॥
पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव ।
बान्धवास्त्वाऽनुजीवन्तु सहस्राक्षमिवाऽमराः ॥ ३ ॥
मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्धनः ।
कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ४ ॥
स्वबाहुबलवीर्येण धार्त्तराष्ट्रजयैषिणा ।
कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजा निर्जितास्त्वया ॥ ५ ॥
गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः ।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥ ६ ॥
हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः ।
दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥ ७ ॥
उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः कलिङ्गान्ध्राश्च संयुगे ।
निषादाश्च त्रिगर्ताश्च बाह्लीकाश्च जितास्त्वया ॥ ८ ॥
तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा ।
बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसा ॥ ९ ॥

चौथा अध्याय ॥ ४ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! कर्ण के ये वचन सुनकर पितामह भीष्म प्रसन्नतापूर्वक देश और काल के अनुकूल यह वचन बोले — हे कर्ण! सागर जैसे नदियों का, सूर्य जैसे ज्योतिर्मय पदार्थों का, सज्जन पुरुष जैसे सत्य का, उर्वरा भूमि जैसे सब बीजों का और मेघ जैसे सब प्राणियों के जीवन का आश्रय है, वैसे ही तुम अपने सुहृद् कौरवों के आश्रयस्थल हो। देवता जैसे इन्द्र के अधीन हैं वैसे ही तुम्हारे बान्धव कौरव तुम्हारे अधीन हों। नारायण जैसे देवताओं का आनन्द बढ़ाते हैं वैसे ही तुम अपने मित्र कौरवों का आनन्द बढ़ाओ। हे वीर कर्ण! तुमने पहले कौरवों का प्रिय करने के लिए राजपुर में जाकर अपने बाहुवीर्य से काम्बोजगण को जीता था। गिरिव्रज में स्थित नग्नजित आदि राजाओं, अम्बष्ठों, विदेहों, गान्धारों और हिमवान् पर्वत के दुर्ग में रहनेवाले रणकर्कश किरातों को जीतकर तुमने

यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलबान्धवः ।
तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥ १० ॥
शिवेनाऽभिवदामि त्वां गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।
अनुशाधि कुरून्संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ११ ॥
भवान्पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा ।
तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥ १२ ॥
यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं सङ्गतं सताम् ।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३ ॥
स सत्यसङ्गतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः ।
कुरूणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥ १४ ॥
निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च ।
ययौ वैकर्त्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥ १५ ॥
सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत् ।
व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत्समबृंहयत् ॥ १६ ॥
हर्षिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७ ॥
कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् ।
क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि ।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥ १८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णाश्वासे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दुर्योधन के अधीन कर दिया था । हे वीर ! तुमने दुर्योधन के हित के लिए उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिङ्ग, अन्ध्र, निशाद, त्रिगर्त, बाह्लीक, आदि देशों में जाकर वहाँ के रहनेवाले बड़े-बड़े वीरों को अपने पराक्रम से जीता था । इस समय दुर्योधन जैसे सजातीय कुल और बान्धव आदि समेत सब कौरवों का आश्रयस्थल हैं वैसे ही तुम भी उनके रक्षक बनो ॥१।१०॥मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, जाओ, शत्रुओं से युद्ध करो । सब कौरवों को अपना अनुगामी बनाकर दुर्योधन को विजयी बनाओ। दुर्योधन के समान तुम भी मेरे पौत्रतुल्य हो । धर्म से जैसे मैं दुर्योधन का पितामह हूँ वैसे ही तुम्हारा भी हूँ । क्योंकि पण्डित लोग सत्सङ्गति के सम्बन्ध को जातिसम्बन्ध से भी अधिक माननीय बताते हैं । हे वीर कर्ण ! कौरवों के साथ तुम्हारा वही सम्बन्ध हो गया है । सज्जन लोग इसी लिए अन्य लोगों से भी मित्रता करना चाहते हैं । मेरी सम्मति यह है कि तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर, उसी सम्बन्ध के विचार से, ममतापूर्वक दुर्योधन की तरह कौरव-सेना की रक्षा करो॥११।१५॥हे महाराज! भीष्म के ये वचन सुनकर, उनके चरणों में प्रणाम करके, महावीर कर्ण रथ पर सवार हुए और शीघ्रता के साथ युद्धभूमि की ओर चले । कर्ण ने सब राजाओं की बढ़िया सेना को देखकर उसे यथास्थान स्थापित और उत्साहित किया । विशाल वक्षःस्थलवाले बड़े-

बड़े वीर सिपाही अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। सब सेना के आगे चलनेवाले वीर कर्ण को लौटकर युद्ध के लिए तैयार देखकर दुर्योधन आदि कौरव बहुत ही प्रसन्न हुए। सभी वीर ताल ठोककर, उछल-उछलकर, सिंहनाद और धनुष की डोरियों का शब्द करके अपना उत्साह प्रकट करते हुए वीर कर्ण की अभ्यर्थना करने लगे॥१५।१८॥

—०—

भीष्मपर्व का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच— रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम् ।
अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत्सम्प्रधार्यताम् ॥ २ ॥

कर्ण उवाच— ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप ।
यथा चाऽर्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥
ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर ।
नाऽन्याय्यं हि भवान्वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥

दुर्योधन उवाच— भीष्मः सेनाप्रणेताऽऽसीद्वयसा विक्रमेण च ।
श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा ॥ ५ ॥
तेनाऽतियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान्मम ।
सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्म महात्मना ॥ ६ ॥
तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् ।
कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७ ॥
न विना नायकं सेना मुहूर्तमपि तिष्ठति ।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥ ८ ॥

पाचवाँ अध्याय ॥ ५ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! कर्ण को रथ के ऊपर सन्मुख देखते ही दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कहा—हे मित्र! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित अपनी सेना को मैं सर्वथा सनाथ समझता हूँ। बताओ, अब हमें क्या करना उचित है? जो हमारे लिए हित और हमारी शक्ति से साध्य हो, वह निश्चित करके कहो॥१।२॥कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र! आप हम सबके प्रभु और श्रेष्ठ बुद्धिमान् हैं। आप ही कर्तव्य-निर्द्धारण कीजिए। प्रधान स्वामी या राजा स्वयं जैसे कर्तव्य का निश्चय कर सकता है, वैसे दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता। हे नरनाथ! हम लोग आपके ही मुख से आज्ञा सुनना चाहते हैं। मुझे निश्चय है कि आप अनुचित या अनुपयुक्त नहीं कहेंगे॥३।४॥दुर्योधन ने कहा—हे कर्ण! अवस्था, पराक्रम और ज्ञान में वृद्ध पितामह भीष्म ने सेनापति होकर सब योद्धाओं के साथ दस दिन तक अच्छी प्रकार युद्ध चलाया और मेरी सेना की रक्षा की। महायशस्वी पितामह ने अपने युद्ध-कौशल से मेरे शत्रुओं को भी मारा और

यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चाऽसारथिर्यथा ।
द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९ ॥
अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति ।
अनायका तथा सेना सर्वान्दोषान्समर्छति ॥ १० ॥
स भवान्वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥ ११ ॥
यं हि सेनाप्रणेतारं भवान्वक्ष्यति संशयः ।
तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥ १२ ॥
कर्ण उवाच—सर्वे एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
सेनापतित्वमर्हन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।
युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥ १४ ॥
युगपन्न तु ते शक्याः कर्तुं सर्वे पुरःसराः ।
एक एव तु कर्त्तव्यो यस्मिन्वैशेषिका गुणाः ॥ १५ ॥
अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि ।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव ॥ १६ ॥
अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ १७ ॥
को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे ।
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥ १८ ॥

---

अपनी सेना की भी रक्षा की। ऐसा दुष्कर कर्म करके महात्मा भीष्म स्वर्गलोक की यात्रा को तयार हो चुके। अब हमारा पहला काम उपयुक्त सेनापति को चुनना है। तुम किसको सेनापति बनाने के योग्य समझते हो ?॥५।८॥ जैसे बिना मल्लाह के नाव पल भर भी जल में नहीं रह सकती वैसे ही सेनापति के बिना सेना क्षण भर युद्धभूमि में नहीं ठहर सकती। सेना-पति के न होने पर, सारथी से शून्य रथ अथवा बिना मल्लाह की नाव के समान, सेना भी इधर-उधर बहकी-बहकी फिरती है। सेना का ठीक-ठीक सञ्चालन करने के लिए एक योग्य सेनापति का होना परम आवश्यक है। पथप्रदर्शक मुखिया के बिना मुसाफिरों के झुण्ड जैसे कष्ट पाते हैं वैसे ही सेना-पति हीन सेना में भी दोष होते हैं। अतएव तुम विचारकर देखो कि हमारे पक्ष में जितने महानुभाव वीर हैं, उनमें ऐसा योग्य पुरुष कौन है जो महापराक्रमी भीष्म के उपरान्त उपयुक्त सेनापति हो सके। तुम जिसको उचित समझोगे उसी को हम सहर्ष अपना सेनापति बनावेंगे॥९।१२॥ कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र! आपकी सेना में जितने श्रेष्ठ पुरुष हैं वे सब सत्कुल में उत्पन्न, समर-विशारद, ज्ञानी, महाबली, महापरा-क्रमी, बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, युद्ध में पीठ न दिखानेवाले और सेनापति होने के उपयुक्त हैं। किन्तु सब श्रेष्ठ महारथी एक साथ सेनापति नहीं बनाये जा सकते।

न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत ।
द्रोणं यः समरे यान्तमनुयास्यति संयुगे ॥ १९ ॥
एष सेनाप्रणेतॄणामेष शस्त्रभृतामपि ।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन्गुरुस्तव ॥ २० ॥
एवं दुर्योधनाऽऽचार्यमाशु सेनापतिं कुरु ।
जिगीषन्तोऽसुरान्संख्ये कार्तिकेयमिवाऽमराः ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इन सबमें से जिस एक में अधिक गुण देख पड़े उसी को इस समय सेनापति बनाना चाहिए। किन्तु इन परस्पर समान स्पर्धा रखनेवाले वीरों में से किसी एक को जो आप सेनापति बना देंगे तो शेष सब शायद खिन्न होकर उस प्रकार उत्साह से आपके हित के लिए युद्ध न करें॥१३।१६॥इसलिए मेरी सम्मति में योद्धाओं के आचार्य वृद्ध गुरु और सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणजी को ही सेनापति बनाना उचित है। यही सबसे अधिक इस पद के उपयुक्त हैं। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और नीतिज्ञान में बृहस्पति तथा शुक्र के समान महात्मा द्रोणाचार्य के रहते और कौन सेनापति-पद के योग्य हो सकता है? आपके पक्ष के राजाओं में ऐसा कौन है जो सेनापति होकर युद्ध के लिए जानेवाले गुरुवर द्रोणाचार्य का साथ न दे? हे राजेन्द्र ! ये महात्मा आपके गुरु हैं, फिर सेनापतियों, शस्त्रधारियों और बुद्धिमानों में भी श्रेष्ठ हैं। हे दुर्योधन ! जैसे युद्ध में असुरों को जीतने के लिए देवताओं ने कार्त्तिकेय को अपना सेनापति बनाया था वैसे ही आप शीघ्र द्रोणाचार्यजी को अपनी सेना का प्रधान सेनापति बनाइए॥१७।२१॥

द्रोणपर्व का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच—कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
दुर्योधन उवाच—वर्णश्रैष्ठ्यात्कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया ।
वीर्याद्दाक्ष्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २ ॥
तपसा च कृतज्ञत्वाद्वृद्धः सर्वगुणैरपि ।
युक्तोऽभवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥ ३ ॥
स भवान्पातु नः सर्वान्देवानिव शतक्रतुः ।
भवन्नेत्राः पराञ्जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

छठा अध्याय ॥ ६ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण के ये वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने सेना के मध्य में स्थित द्रोणाचार्य से प्रार्थना की—हे महात्मन् ! आप वर्ण में श्रेष्ठ हैं; कुल, अवस्था, बुद्धि, वीरता, चतुरता आदि में भी बड़े हैं। आप शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष हैं। अर्थज्ञान, नीति, विजय, तपस्या, कृतज्ञता आदि गुणों में दूसरा कोई आपकी बराबरी नहीं कर सकता। हमारे पक्ष के राजाओं में आपके समान उपयुक्त सेनापति

रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५ ॥
वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
पितृणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाऽम्बुराट् ॥ ६ ॥
नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः ।
श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥ ७ ॥
अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु तेऽनघ ।
ताभिः शत्रून्प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥ ८ ॥
प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पाविकिः ।
अनुयास्यामहे त्वाऽजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥ ९ ॥
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन्धनुः ।
अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नाऽर्जुनः प्रहरिष्यति ॥ १० ॥
ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम् ।
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान्सेनापतिर्यदि ॥ ११ ॥
सञ्जय उवाच---एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवाऽऽत्मजम् ॥ १२ ॥
सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः ।
दुर्योधनं ततो राजन्द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणसमाह्वने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

और कोई नहीं है॥१।२॥हे भगवन् ! सब देवताओं की जैसे इन्द्र रक्षा करते हैं वैसे ही आप हम सब के रक्षक बनिए। हे द्विजश्रेष्ठ ! आपको सेनापति बनाकर हम अपने शत्रुओं को जीतना चाहते हैं। जैसे रुद्रों में कपाली, वसुओं में पावक, यक्षों में कुबेर, देवगण में इन्द्र, ब्राह्मणों में वसिष्ठ, तेजस्वियों में सूर्य, पितरों में यमराज, जलचारियों में वरुण, नक्षत्रों में चन्द्रमा, दानवों में शुक्राचार्य और सम्पूर्ण विश्व में सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता प्रभु नारायण श्रेष्ठ हैं, वैसे ही इन सेनापति-पद के लिए उपयुक्त क्षत्रियों में आप श्रेष्ठ सेनापति हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना स्वीकार करके आप मेरी सेना के सेनापति बनिए॥४।७॥हे निष्पाप! यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना आपके अधीन होकर युद्ध करे। हे भगवन् ! इन्द्र जैसे दानवों को जीतते हैं वैसे ही शत्रुओं के विरुद्ध इस सेना से व्यूहरचना करके आप मेरे शत्रुओं को जीतिए। कार्त्तिकेय जैसे देवताओं के आगे आगे चलते थे, वैसे ही आप हम लोगों की सेना के अग्रगामी सेनापति हों। जैसे बैल सांड के पीछे पीछे चलते हैं वैसे ही हम लोग युद्धभूमि में आपके अनुगामी होंगे। अपने दिव्य धनुष का शब्द करते हुए महायोद्धा उग्रधन्वा अर्जुन जब संग्राम में आपको आगे देखेंगे तो कभी प्रहार नहीं करेंगे। हे पुरुषसिंह ! आप यदि मेरे सेनापति बनेंगे तो मैं युद्ध में बन्धु-बान्धव और अनुगामी राजाओं सहित

युधिष्ठिर को जीत लूँगा॥८।११॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! दुर्योधन के यों कहने पर सब राजा लोग सिंहनाद से आपके पुत्र को प्रसन्न करते हुए 'द्रोणाचार्य की जय हो' ऐसा कहने लगे। सैनिकगण भी महत् यश की इच्छा से प्रसन्नतापूर्वक दुर्योधन की बातों का समर्थन करते हुए द्रोणाचार्य की अभ्यर्थना करने लगे। अब महायशस्वी द्रोणाचार्य ने आपके पुत्र से यों कहा॥१२।१३॥

द्रोणपर्व का छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

द्रोण उवाच—वेदं षडङ्गं वेदाऽहमर्थविद्यां च मानवीम् ।
त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥
ये चाऽप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकांक्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान्योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥ २ ॥
पार्षतं तु रणे राजन्न हनिष्ये कथञ्चन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन्सर्वसोमकान् ।
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः ।
द्रोणं तव सुतो राजन्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥
अथाऽभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः ।
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ ६ ॥
ततो वादित्रघोषेण शङ्खानां च महास्वनैः ।
प्रादुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ७ ॥
ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च ।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधवन्दिनाम् ॥ ८ ॥

सातवाँ अध्याय ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे दुर्योधन ! मैं वेद के छहों अङ्ग, मनुवर्णित अर्थविद्या, भगवान् शूलपाणि का पाशुपत अस्त्र और अन्य अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र तथा उनका प्रयोग भली भाँति जानता हूँ। तुम लोगों ने जय की इच्छा करके मुझमें जिन-जिन गुणों का होना बतलाया है उन गुणों का परिचय, तुम्हारा हित करने के लिए, देता हुआ मैं पाण्डवों से युद्ध करूँगा। किन्तु हे राजेन्द्र ! मैं द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को किसी प्रकार न मार सकूँगा। वह पुरुषश्रेष्ठ मुझे मारने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। मैं सब सोमकों और पाञ्चालों को मारूँगा, और सब सैनिकों के साथ युद्ध करूँगा किन्तु प्रसन्न पाण्डवगण जी खोलकर मुझसे नहीं युद्ध करेंगे॥१४॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इस प्रकार द्रोणाचार्य की अनुमति पाकर आपके पुत्र दुर्योधन ने विधिपूर्वक उनको सेनापति बनाया। पूर्व समय में जैसे इन्द्र आदि देवताओं ने कार्त्तिकेय को अपना सेनापति बनाकर उनका अभिषेक किया था, वैसे ही दुर्योधन आदि

जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्त्तितैस्तथा ।
सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच—सैनापत्यं तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥ १० ॥
सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥
प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ १२ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥ १३ ॥
तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ १४ ॥
मद्रास्त्रिगर्ताः साम्बष्ठाः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥ १५ ॥
सौवीराः कितवाः प्राच्या दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तवाऽऽत्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६ ॥
हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तव सुतैः सह ।
प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत् ॥ १७ ॥
ययौ वैकर्त्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ।
तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ १८ ॥

---

राजाओं ने मिलकर सेनापति-पद पर द्रोणाचार्य को स्थापित किया, उनका अभिषेक किया। उस समय कौरवगण विचित्र बाजे और शङ्ख बजाकर हर्ष प्रकट करने लगे। अब ब्राह्मणों ने पुण्याह-पाठ और स्वस्ति-वाचन किया, सूत-मागध-वन्दीजन स्तुति गायन करने लगे, ब्राह्मण लोग शुभ आशीर्वाद के साथ जय-जय-कार करने लगे और सुन्दरी स्त्रियाँ नाचने गाने लगीं। इस प्रकार विधिपूर्वक द्रोणाचार्य का सत्कार और अभिषेक करके, सेनापति बनाकर, कौरवों ने समझ लिया कि अब पाण्डव परास्त हो गये॥५।९॥सञ्जय कहते हैं—सेनापति बनाये जाने पर महारथी द्रोणाचार्य युद्ध की इच्छा से कौरवसेना की व्यूहरचना करके आपके पुत्रों के साथ युद्ध के लिए चले। सिन्धुनरेश जयद्रथ, कलिङ्गनरेश और आपके पुत्र विकर्ण उनके दक्षिण भाग में सुसज्जित सेना के साथ स्थित हुए। गान्धार देश के प्रधान-प्रधान घुड़सवार, जिनके हाथों में उज्ज्वल प्रास चमक रहे थे, शकुनि की अधीनता में उस सैन्यभाग की रक्षा के लिए, उसके पीछे चले॥१०।१२॥कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति और दुःशासन आदि वीर योद्धा द्रोणाचार्य के वाम भाग की रक्षा में नियुक्त हुए। राजा सुदक्षिण की अधीनता में वीर काम्बोज, शक और यवनगण शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार हो इस सैन्यभाग की रक्षा के लिए पीछे-पीछे चले। इस प्रकार

हस्तिकक्ष्यो महाकेतुर्बभौ सूर्यसमद्युतिः ।
न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९ ॥
विशोकाश्चाऽभवन्सर्वे राजानः कुरुभिः सह ।
हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राऽजल्पन्त वेगतः ॥ २० ॥
नहि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः ।
कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान्सवासवान् ॥ २१ ॥
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥ २२ ॥
तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ।
एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं हृष्टरूपा विशाम्पते ॥ २३ ॥
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ।
अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ २४ ॥
परेषां क्रौञ्च एवाऽसीद्व्यूहो राजन्महात्मनाम् ।
प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ २५ ॥
व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ ।
वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ २६ ॥
ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्यपथगः केतुः पार्थस्याऽमिततेजसः ॥ २७ ॥
दीपयामास तत्सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुन्धराम् ॥ २८ ॥

---

मद्र, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, शिबि, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर, कितव, प्राच्य और दाक्षिणात्य देशों के राजा और उनकी सेना—दुर्योधन और कर्ण को आगे करके—अपने पक्ष को आनन्दित और उत्साहित करती हुई आगे बढ़ी॥१३-१७॥सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ महारथी कर्ण सब सेना के हृदय में बल और उत्साह बढ़ाते हुए सबके आगे चले। उनकी बहुत बड़ी ध्वजा सूर्य के समान चमक रही थी और हाथियों के बाँधने की सुवर्ण-शृङ्खला से रथ में बँधी हुई थी। उसे देखकर कुरुसेना के हृदय में हर्ष और युद्ध के लिए उत्साह बढ़ रहा था। उस समय महारथी कर्ण को देखकर सब लोगों को भीष्म की मृत्यु का शोक भूल गया। कौरव और उनके पक्ष के राजा लोग शोकहीन होगये॥१७।२०॥ बहुतेरे सुभट एकत्र होकर परस्पर कहने लगे कि पाण्डवगण वीर कर्ण को देखते ही युद्धभूमि से भाग खड़े होंगे। पराक्रम और वीर्य में हीन पाण्डवों की कौन कहे, देवगण सहित इन्द्र भी समर में कर्ण को परास्त नहीं कर सकते। पराक्रमी भीष्म ने रण में पाण्डवों की रक्षा की थी, उनको नहीं मारा था, किन्तु कर्ण उन्हें युद्ध में अवश्य अपने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर देंगे। हे महाराज! योद्धा लोग इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक कर्ण की प्रशंसा करते हुए रणभूमि की ओर चले॥२०।२४॥हे राजेन्द्र! द्रोणाचार्य ने हमारी सेना

दीप्यन्दृश्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः ।
योधानामर्जुनः श्रेष्ठोः गाण्डीवं धनुषां वरम् ॥ २९ ॥
वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ।
चत्वार्येतानि तेजांसि वहञ्श्वेतहयो रथः ॥ ३० ॥
परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम् ।
एवं तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ॥ ३१ ॥
तावकानां मुखे कर्णः परेषां च धनञ्जयः ।
ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥ ३२ ॥
अवेक्षेतां तदाऽन्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ ।
ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ॥ ३३ ॥
आर्त्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत ।
ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ ३४ ॥
वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ।
ववर्ष द्यौरनभ्राऽपि मांसास्थिरुधिराण्युत ॥ ३५ ॥
गृध्राः श्येना बकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः ।
उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन्नृप ॥ ३६ ॥
गोमायवश्च प्राक्रोशन्भयदान्दारुणान्रवान् ।
अकार्षुरपसव्यं च बहुशः पृतनां तव ॥ ३७ ॥
चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ।
अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ॥ ३८ ॥

में शकट-व्यूह की रचना की थी। उधर युधिष्ठिर ने भी प्रसन्नतापूर्वक क्रौञ्च-व्यूह की रचना की। अपने रथ की वानरयुक्त ध्वजा को उड़ाते हुए महावीर अर्जुन और महात्मा श्रीकृष्ण उस व्यूह के मुखभाग में स्थित थे। सब योद्धाओं में श्रेष्ठ और सब धनुर्धरों के तेज के समूह स्वरूप महातेजस्वी अर्जुन की ध्वजा आकाश-मार्ग में स्थित होकर सारी सेना को प्रकाशित कर रही थी। उसे देखकर जान पड़ने लगा, मानो प्रलय-काल का सूर्य पृथ्वी को भस्म करने के लिए उदित हुआ है। अर्जुन सब योद्धाओं में, श्रीकृष्ण सब प्राणियों में, गाण्डीव धनुष सब धनुषों में और सुदर्शन चक्र सब चक्रों में श्रेष्ठ है॥२४।२०॥ इन चारों श्रेष्ठ तेजो को धारण किये हुए, श्वेत घोड़ों से शोभित अर्जुन का रथ उद्यत कालचक्र के समान शत्रुसेना के आगे स्थित था। इस प्रकार कौरव-सेना के अग्रभाग में कर्ण और पाण्डव-सेना के अग्रभाग में अर्जुन क्रुद्ध होकर जय की और परस्पर वध की इच्छा से युक्त होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे॥२०।३३॥ महारथी द्रोणाचार्य जब युद्ध के लिए चले तब उनके सिंहनाद और शङ्खनाद से पृथ्वी काँप उठी। कौओं के समान काली तीव्र धूल वायु से उड़कर आकाश-मण्डल में छा गई, इससे सूर्य भी छिप गये। आकाश-मण्डल में मेघ न होने पर भी मांस, हड्डी और रक्त की वर्षा होने लगी। सहस्रों गिद्ध, बाज, कौए, बक

उल्का ज्वलन्ती संग्रामपुच्छेनाऽऽवृत्य सर्वशः ।
परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ३९ ॥
भास्करस्याऽभवद्राजन्प्रयाते वाहिनीपतौ ।
एते चाऽन्ये च बहवः प्रादुरासन्सुदारुणाः ॥ ४० ॥
उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः ।
ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥ ४१ ॥
कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनाऽपूरयज्जगत् ।
ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥ ४२ ॥
अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाद्युतिः ॥ ४३ ॥
वेगेनाऽभ्यद्रवत्सेनां किरञ्शरशतैः शितैः ।
द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ॥ ४४ ॥
प्रत्यगृह्णंस्तदा राजञ्छरवर्षैः पृथक्पृथक् ।
विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥ ४५ ॥
व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव वलाहकाः ।
बहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥ ४६ ॥
अपीडयत्क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ॥ ४७ ॥
पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ४८ ॥

आदि मांसहारी पक्षी सेनाओं के ऊपर मँडलाने लगे। गीदड़ों के झुण्ड, भयानक चीत्कार करते हुए, मास खाने और रक्त पीने की इच्छा से बारम्बार आपकी सेना के दाहने भाग में चक्कर लगाने लगे। बड़ी-बड़ी उल्काएँ, अपनी पूँछ फैलाये घोर शब्द करती और जलती हुई, संग्रामभूमि में गिरने लगीं॥३३।३८॥ सेनापति के चलने के समय बिजली की चमक और कड़कड़ाहट के साथ सूर्य के चारों ओर बड़ा भारी मण्डल पड़ गया। कौरव-सेना के प्रस्थान के समय ये और अन्य अनेक घोर उत्पात दिखाई पड़ने लगे, जो कि युद्ध में वीरों की मृत्यु की सूचना दे रहे थे। अब परस्पर वध की इच्छा रखनेवाले सैनिकों में युद्ध होने लगा॥३८।४२॥कौरवों और पाण्डवों की सेना का घोर कोलाहल जगत् भर में फैल गया। जय की इच्छा रखनेवाले क्रुद्ध कौरव और पाण्डव एक दूसरे पर तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार करने लगे। महातेजस्वी महारथी द्रोणाचार्य सैकड़ों-सहस्रों तीक्ष्ण बाणों से शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करते हुए वेग से आगे बढ़े। उनको इस तरह युद्ध के लिए उद्यत देखकर पाण्डव और सृञ्जयगण भी अलग-अलग उन पर बाणों की वर्षा और उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे॥४२।।४५॥द्रोणाचार्य भी पाण्डवों की महासेना और पाञ्चालों के दल में हलचल डालते हुए उन्हें छिन्न-भिन्न करने लगे। द्रोणाचार्य के अनेक दिव्य अस्त्रों

अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।
द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः ॥ ४९ ॥
सन्निवार्य ततः सर्वान्कुरूनप्यवधीद्बली ।
संयम्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाऽऽहवे ॥ ५० ॥
स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपाद्रवत् ।
सबाणवर्षं सुमहदसृजत्पार्षतं प्रति ॥ ५१ ॥
मघवान्समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव ।
ते कम्प्यमाना द्रोणेन बाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ॥ ५२ ॥
पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां बले बली ।
अलातचक्रवद्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५३ ॥
खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या चलदनिलपताकं ह्लादनं वल्गिताश्वम् ।
स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शात्रवाणां रथवरमधिरूढः सञ्जहाराऽरिसेनाम् ॥५४॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्याय. ॥ ७ ॥

से व्यथित और पीड़ित पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना वैसे ही तितर-बितर होने लगी, जैसे वायु के झोंके से मेघ फट जाते है। इन्द्र के प्रहार से पीड़ित असुरों के समान द्रोणाचार्य के प्रहारों से पीड़ित धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल कांप उठे॥४५।४८॥तब दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले धृष्टद्युम्न ने भी बाणवर्षा करके द्रोणाचार्य की सेना को उसी तरह छिन्न-भिन्न और पीड़ित किया। बली धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों की वर्षा से द्रोणाचार्य की बाणवर्षा को रोककर सब कौरवों को अपने तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया। महावीर द्रोणाचार्य अपनी भागती हुई सेना को रोक-कर और युद्धभूमि में ठहराकर धृष्टद्युम्न की ओर दौड़े। जैसे क्रुद्ध होकर इन्द्र दानवों के ऊपर बाण वर्षा करें वैसे ही द्रोण भी धृष्टद्युम्न के ऊपर बाण बरसाने लगे॥४८।५२॥सिंह के मारे मृगों के समान द्रोण के बाणों से पीड़ित पाण्डव और सृञ्जयगण बारम्बार युद्ध से हटने लगे। जैसे जलती हुई लकड़ी घुमाई जाय वैसे ही द्रोणाचार्य बाणवर्षा करते हुए पाण्डवों की सेना में विचरने लगे। यह एक अद्भुत दृश्य देखने में आया। शास्त्रोक्त विधि से सुसज्जित आचार्य का रथ आकाश में घूमनेवाले नगर के समान देख पड़ रहा था। स्फटिक-सदृश उज्ज्वल ध्वजदण्ड से शोभित रथ के घूमते रहने से उसकी छोटी-छोटी पताकाएं फहरा रही थीं। घोड़े हिनहिना रहे थे। उसकी गति देखकर अपने पक्ष के लोग प्रसन्न थे और शत्रुपक्ष के लोग भयभीत हो रहे थे। ऐसे उत्तम रथ पर चढ़े हुए महात्मा द्रोणाचार्य शत्रुसेना का संहार करने लगे॥५२।५४॥

द्रोणपर्व का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच – तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनञ्जयौ ।
अब्रवीत्सर्वतोयत्तैः कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥ २ ॥
तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः ।
प्रत्यगृह्णात्ततः सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥ ३ ॥
केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ।
युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्याऽऽत्मजास्तथा ॥ ४ ॥
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः ।
चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥
ये चाऽन्ये पार्थिवा राजन्पाण्डवस्याऽनुयायिनः ।
कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६ ॥
संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे ।
व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद्भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥ ७ ॥
स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः ।
व्यधमत्पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥
रथानश्वान्नरान्नागानभिधावन्नितस्ततः ।
चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ९ ॥
तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः ।
आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥ १० ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम् ।
दृष्ट्वा सम्प्राद्रवन्योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः ॥ ११ ॥

आठवाँ अध्याय ॥ ८ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! द्रोणाचार्य को इस प्रकार सारथी-रथ-हाथी-घोड़े आदि का संहार करते देखकर उनके प्रहार से व्यथित पाण्डवों की सेना और पाण्डवगण उनका सामना नहीं कर सके। तब राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न और अर्जुन से कहा—हे वीरो ! तुम सावधान होकर सब ओर से घेरकर द्रोणाचार्य को रोको॥१।२॥अब अर्जुन, धृष्टद्युम्न और उनके अनुगामी कैकयनरेश, भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टकेतु, सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु और अन्य राजा लोग द्रोणाचार्य के सम्मुख जाकर अपने कुल और पराक्रम के अनुरूप अनेक अद्भुत कार्य करने लगे॥३।६॥रण में अपनी सेना को पाण्डवों की बाणवर्षा से भागते देखकर महाबली द्रोणाचार्य ने लाल-लाल नेत्रों को चढ़ाकर पाण्डवों की ओर देखा। युद्धदुर्मद द्रोणाचार्य तीव्र कोप के वश होकर रथ पर बैठे बैठे ही बाणवर्षा से वैसे ही पाण्डवसेना को सब ओर छिन्न भिन्न करने लगे, जैसे आँधी मेघों को तितर-बितर कर डालती है। वृद्ध होने पर भी तरुणतुल्य चपल और फुर्तीले द्रोणाचार्य क्रोध से उन्मत्त की तरह हाथी, घोड़े, रथ, मनुष्य आदि की ओर इधर-उधर जा-जाकर उन्हें नष्ट करने

तेषां प्राद्रवतां भीमः पुनरावर्त्ततामपि ।
पश्यतां तिष्ठतां चाऽऽसीच्छब्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥
शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥
ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन्युधि ।
अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् ॥ १४ ॥
स तथा तेष्वनीकेषु पाण्डुपुत्रस्य मारिष ।
कालवद्व्यचरद् द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥
उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान्बाहूनपि सुभूषणान् ।
कृत्वा शून्यान्रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथान् ॥ १६ ॥
तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन वा विभो ।
प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥ १७ ॥
द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषणेन च ।
धनुःशब्देन चाऽऽकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥ १८ ॥
अथाऽस्य धनुषो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्वरथपत्तिषु ॥ १९ ॥
तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् ।
द्रोणमासाद्याश्चक्रुः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ २० ॥
तान्स कुञ्जरपत्यश्वान्प्राहिणोद्यमसादनम् ।
चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम् ॥ २१ ॥

गे॥७।९॥ वायु के समान वेगशाली द्रोणाचार्य के घोड़े स्वाभाविक लाल रङ्ग के थे, उस पर रक्त मे सन जाने के कारण और भी लाल हो गये। इधर-उधर वेग से दौड़ने पर भी वे थके नहीं, सुगमता से चारों ओर घूमने लगे। वे घोड़े अच्छी जाति के थे। क्रुद्ध काल के समान द्रोणाचार्य को आते हुए देखकर पाण्डवपक्ष के योद्धा लोग इधर उधर भागने लगे 'इधर-उधर भागते, लौटते, युद्ध को देखने और ठहरते योद्धाओं का दारुण कोलाहल चारों ओर गूँज उठा'। शूरों के हृदय में हर्ष और कायरों के हृदय में भय उत्पन्न करनेवाला वह कोलाहल आकाश और पृथ्वी में भर गया। द्रोणाचार्य युद्धभूमि में बारम्बार अपना नाम सुना सुनाकर असंख्य बाणों से शत्रुसेना को आच्छन्न करते हुए भयानक हो उठे। बली द्रोणाचार्य साक्षात् काल के समान पाण्डवों की सेना के मध्य विचर रहे थे॥१०।१५॥ वे उग्र रूप धारण करके शूरों के सिर और अलङ्कार-शोभित भुजाएँ काट-काट कर गिराते हुए घोर सिंहनाद कर रहे थे। द्रोणाचार्य ने बाणों की वर्षा से शत्रुसेना के रथों को रथियों से शून्य कर दिया। द्रोणाचार्य के बाणों की वर्षा और हर्षसूचक सिंहनाद से योद्धा लोग शीत से पीड़ित गायों के समान काँपने लगे। द्रोणाचार्य के रथ-चक्रों की घरघराहट, प्रत्यञ्चा के शब्द और धनुष के निर्घोष से आकाश में घोर प्रतिध्वनि होने

तन्वता परमास्त्राणि शरान्सततमस्यता ।
द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥ २२ ॥
पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः ।
तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चरन्केतुरदृश्यत ॥ २३ ॥
स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च पञ्चालराजं च शरैः प्रमथ्य ।
युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो द्रोणोऽभ्ययात्कार्मुकबाणपाणिः ॥ २४ ॥
तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च ।
शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च हृष्टा नदन्तो व्यकिरञ्छरौघैः॥ २५ ॥
तेषामथ द्रोणधनुर्विमुक्ताः पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः ।
भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयूनां जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥ २६ ॥
सायोधसङ्घैश्च रथैश्च भूमिः शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७ ॥
शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् ।
अन्यांश्च वीरान्समरे ममर्द द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥
एतानि चाऽन्यानि च कौरवेन्द्र कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा ।
प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन्॥ २९ ॥

लगी॥१६।१८॥उनके धनुष से निरन्तर निकले हुए सहस्रों बाण सब दिशाओं में व्याप्त हो गये और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के ऊपर वेग से गिरने लगे। पाण्डवों और सृञ्जयों ने देखा कि धनुष और अन्य अस्त्र-शस्त्रों से प्रज्वलित अग्नि के समान द्रोणाचार्य उनकी सेना को भस्म कर रहे हैं। पाण्डव और सृञ्जय-गण उनके पास पहुँचकर उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। महापराक्रमी द्रोणाचार्य ने हाथियों, रथों, पैदलों और घोड़ों सहित पाण्डव-सेना का संहार करके बहुत शीघ्र पृथ्वी पर रक्त की कीचड़ कर दी॥२०।२१॥ वे ऐसे बाण बरसाने लगे और दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे कि चारों ओर हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के ऊपर बाण ही बाण दिखाई पड़ने लगे। उनके रथ की ध्वजा मेघों में बिजली की तरह सर्वत्र घूमती दिखाई पड़ रही थी।

अब वीर द्रोणाचार्य केकयदेश पाँचों राजकुमारों को और पाञ्चालराज द्रुपद को अपने बाणों से पीड़ित करके हाथ में धनुष-बाण लिये युधिष्ठिर की सेना के मध्य और आगे बढ़े। इतना पराक्रम और परिश्रम करके वे तनिक भी नहीं थके॥२२।२४॥ उन्हें देख-कर सिंहनाद करते हुए भीमसेन, अर्जुन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, काशिराज और शिबि, ये सब वीर उन पर बाणों की वर्षा करने लगे। द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण और सुवर्णमय विचित्र पुङ्ख से शोभित बाण हाथी, घोड़े और नौजवान योद्धा आदि के शरीरों को फाड़कर पृथ्वी में प्रवेश हो जाते थे। उनके विचित्र पङ्ख रक्त में भीग जाते थे। बाणों के प्रहार से कट-कटकर गिरे हुए योद्धा, रथ, हाथी, घोड़े आदि से परिपूर्ण रणभूमि काले मेघों से व्याप्त आकाश की तरह शोभायमान हुई॥२५।२७॥ हे महाराज! आपके पुत्रों का विभव और विजय चाहनेवाले वीर द्रोणाचार्य ने सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रुपद, काशिराज आदि अन्यान्य सब वीरों को अपने अद्भुत पराक्रम से पीड़ित और व्यथित

एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः ।
पाण्डवानां रणे योधान्पार्षतेन निपातितः ॥ ३० ॥
अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
निहत्य पश्चाद्धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥ ३१ ॥
पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः ।
हतो रुक्मरथो राजन्कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥
ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत ।
सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥ ३३ ॥
द्यां धरां खं दिशो वाऽपि प्रदिशश्चाऽनुनादयन् ।
अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद्भृशम् ॥ ३४ ॥
देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चाऽस्य बान्धवाः ।
ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
सिंहनादेन महता समकम्पत मेदिनी ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणवधश्रवणे अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

किया। हे महाराज! ये और अन्य अनेक अद्भुत कार्य करके, प्रलयकाल के प्रचण्ड सूर्य के समान सब लोगों को तपाकर, अन्त को महात्मा द्रोणाचार्य भी इस लोक को छोड़कर स्वर्ग को सिधार गये। सुवर्णमण्डित रथ पर सवार द्रोणाचार्य इस तरह सैकड़ों हजारों शूरों को मारकर पाण्डवों से युद्ध करते-करते धृष्टद्युम्न के हाथ से मारे गये। धैर्यशाली महावीर द्रोणाचार्य, समर में स्थिर होकर युद्ध करनेवाले वीरों की एक अक्षौहिणी से भी अधिक सेना का संहार करने के पश्चात्, परमगति को प्राप्त हुए। हे महाराज! अनेक अद्भुत कर्म करके क्रूरकर्मा अशुभ पाञ्चालों और पाण्डवों के हाथों महारथी द्रोणाचार्य मारे गये॥२८।३२॥ युद्ध में आचार्य की मृत्यु होने पर आकाश में सिद्धगण, देवगण और पृथ्वी पर आपके पक्ष के सैनिक लोग घोर शोकसूचक कोलाहल करने लगे। सब प्राणी बारम्बार कहने लगे कि अहो, धिक्कार है! उनके इस शब्द की प्रतिध्वनि आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और सब दिशाओं में गूँज उठी। देवों, पितरों और आचार्य के भाई बन्धुओं ने देखा कि महारथी द्रोणाचार्य पृथ्वी पर मरे पड़े हैं। पाण्डव लोग इस तरह जय प्राप्त करके आनन्द से सिंहनाद करने और शङ्ख बजाने लगे। उनके सिंहनाद से पृथ्वी काँपने लगी॥३३।३६॥

द्रोणपर्व का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—किंकुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवसृञ्जयाः ।
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १ ॥

रथभङ्गो बभूवाऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ।
प्रमत्तो वाऽभवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् ॥ २ ॥
कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम् ।
किरन्तमिषुसङ्घातान्रुक्मपुङ्खाननेकशः ॥ ३ ॥
क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥ ४ ॥
पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद्दिव्यास्त्रधरमच्युतम् ।
कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम् ॥ ५ ॥
व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः ।
यद् द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ६ ॥
अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् ।
तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥ ७ ॥
श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम् ।
जातरूपपरिष्कारं नाऽद्य शोकमुपाददे ॥ ८ ॥
न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय ।
यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ॥ ९ ॥
दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् ।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ १० ॥
यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते ।
ब्राह्मे दैवे तथेष्वस्त्रे यमुपासन्गुणार्थिनः ॥ ११ ॥

नवमाँ अध्याय ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय ! द्रोणाचार्य तो सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और सब शस्त्रों के युद्ध में निपुण थे। उन्हें जिस समय पाण्डवों और सृञ्जयों ने मिलकर मारा उस समय वे क्या कर रहे थे? उनका रथ टूट गया था या धनुष कट गया था, अथवा वे असावधान थे जो उनकी मृत्यु हुई? शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष, सुवर्ण-पुङ्ख असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसानेवाले, फुर्तीले, कृतविद्य विचित्र युद्ध में अद्वितीय, बहुत दूर तक बाण को पहुँचा सकनेवाले, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, अस्त्रयुद्ध के पारगामी, जितेन्द्रिय, द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न कैसे मार सका? ॥१।५॥ मेरी समझ में पौरुष की अपेक्षा दैव ही प्रबल है। ऐसा न होता तो रण में दारुण कर्म करनेवाले, सावधान, महारथी द्रोण के हाथ में धनुष-बाण रहने पर भी धृष्टद्युम्न उन्हें कैसे मार डालता? चतुर्विध अस्त्रों के जाननेवाले, शस्त्रधारियों के आचार्य द्रोण की मृत्यु होना तुम बता रहे हो! सुवर्णमय और व्याघ्रचर्ममण्डित रथ पर चढ़नेवाले द्रोणाचार्य के मारे जाने की सूचना पाकर मेरा शोक किसी तरह शान्त नहीं होता। हे सञ्जय! यह निश्चय है कि पराये दुःख को सुनकर उस दुःख से किसी के प्राण नहीं निकलते। तभी तो मन्दमति मैं, द्रोणाचार्य की मृत्यु का समाचार सुनकर भी, अब तक जीवित हूँ।

ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हृतः ।
शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥ १२ ॥
पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम् ।
दुष्टानां प्रतिषेद्धाऽऽसीद्धार्मिकाणां च रक्षिता ॥ १३ ॥
योऽहासीत्कृपणस्याऽर्थे प्राणानपि परन्तपः ।
मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥ १४ ॥
बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ।
ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः ॥ १५ ॥
रथे वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगा रणे ।
बलिनो ह्वेषिणो दान्ताः सैन्धवाः साधुवाहिनः ॥ १६ ॥
दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्नविह्वलाः ।
करिणां बृंहतां युद्धे शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ १७ ॥
ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणां च सहिष्णवः ।
आशंसन्तः पराञ्जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८ ॥
हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः ।
ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहृताः ॥ १९ ॥
कथं नाऽभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ।
जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ २० ॥
भारद्वाजः किमकरोद्युधि सत्यपराक्रमः ।
विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥ २१ ॥

इस समय मुझे दैव ही प्रधान और प्रबल जान पड़ता है; पौरुष निरर्थक है । हाय ! मेरा यह हृदय वज्र का बना हुआ है जो द्रोण की मृत्यु सुनकर भी इसके सौ टुकड़े नहीं हो जाते ॥६।११॥गुण सीखने की इच्छा से ब्राह्मण और दैव अस्त्र सीखने के लिए ब्राह्मण-कुमार और राजपुत्र जिनकी सेवा करते थे वही द्रोणाचार्य आज मृत्यु के वश कैसे हुए ? हे सञ्जय ! समुद्र का सूख जाना, सुमेरु का जड़ से उखड़ना, सूर्य का पृथ्वी पर गिर पड़ना और द्रोणाचार्य का मरना एक बराबर है । द्रोणाचार्य की मृत्यु मेरे लिए असह्य हो रही है । दुष्टों का दमन और धर्मात्मा पुरुषों की रक्षा करने-वाले शत्रुदमन द्रोणाचार्य ने दुर्मति दुर्योधन के लिए ही अपने प्राण दिये । मेरे दुर्मति पुत्रों की जय की आशा जिन पर निर्भर थी, जो बुद्धि में बृहस्पति और शुक्र के समान थे, वे द्रोणाचार्य किस प्रकार मारे गये ॥१२।१५॥द्रोणाचार्य के रथ के घोड़े सुवर्णमय जाल ओढ़े रहते थे; वे घोड़े सब प्रकार के शस्त्रों के प्रहार को बचा जाते थे और संग्राम के समय दृढ़ता से डटे रहते थे; वे शङ्ख-दुन्दुभि-नाद, हाथियों की चिंघार और प्रत्यञ्चाओं के घोर घोष को सुनकर भी भड़कते नहीं थे; वे अनायास शस्त्रों और बाणों की वर्षा को सह लेते थे; वे बहुत परिश्रम करने पर भी थकते या हाँफते नहीं थे और शत्रुओं की हार की सूचना देते थे; वे लाल रङ्ग के, ऊँचे-

स सत्यसन्धो बलवान्द्रोणः किमकरोद्युधि ।
दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् ॥ २२ ॥
के नु ते रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ।
ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ॥ २३ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् ।
उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥ २४ ॥
पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।
नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः ॥ २५ ॥
ततो द्रोणं समारोहत्पार्षतः पापकर्मकृत ।
नह्यहं परिपश्यामि वधे कञ्चन शुष्मिणः ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्पाल्यमानात्किरीटिना ।
तैर्वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥ २७ ॥
केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः ।
व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ॥ २८ ॥
कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम ।
योऽधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गानाख्यानपञ्चमान् ॥ २९ ॥
ब्राह्मणानां प्रतिष्ठाऽऽसीत्स्रोतसामिव सागरः ।
क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत्परन्तपः ॥ ३० ॥
स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान् ।
अमर्षिणा मर्षितवान्क्लिश्यमानान्सदा मया ॥ ३१ ॥

पूरे, वायु के समान वेग से चलनेवाले शान्त, सुशिक्षित, कभी विह्वल न होनेवाले सिन्धु देश के घोड़े क्या पराजित हो गये थे ? सुवर्णभूषित और नरवीर द्रोणाचार्य के द्वारा शोभित रथ में जुते हुए वे घोड़े पाण्डवों की सेना में प्रवेश होकर उसके पार क्यों नहीं पहुँच सके ? ॥१५।२०॥ सत्यपराक्रमी द्रोणाचार्य ने सुवर्णमण्डित श्रेष्ठ रथ पर बैठकर युद्धभूमि में क्या-क्या किया था ? हे सञ्जय ! सब लोकों के धनुर्द्धर वीरों ने जिनसे अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी थी, उन सत्य-सन्ध वली द्रोणाचार्य ने किस प्रकार युद्ध किया था ? उग्रधन्वा इन्द्रसदृश धनुर्द्धर-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के सम्मुख कौन-कौन योद्धा युद्ध करने आये थे ? ॥२०।२३॥ सुवर्णमण्डित रथ पर विराजमान उन महायशी द्रोणाचार्य को दिव्य अस्त्र छोड़ते देखकर पाण्डव क्या भाग खड़े हुए थे ? अथवा सेनापति धृष्टद्युम्न, अर्जुन आदि भाई और सब सेना को साथ लिये हुए धर्मराज ने चारों ओर से द्रोणाचार्य को घेर लिया था ? अवश्य अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से और राजाओं को द्रोणाचार्य के पास सहायता के लिए नहीं पहुँचने दिया होगा, तभी पापकर्मी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मार सका। अर्जुन के द्वारा सुरक्षित तेजस्वी रौद्ररूप धृष्टद्युम्न के अतिरिक्त और कोई मुझे द्रोणाचार्य को मारनेवाला नहीं देख पड़ता॥२५।२७॥ मैं समझता हूँ कि जैसे चींटियाँ सर्प को घेरकर व्याकुल कर देती हैं वैसे ही नराधम पाञ्चालों की सेना तथा केकय, चेदि, करूष, मत्स्य और अन्यान्य देशों के क्षुद्र राजाओं के द्वारा घेरे

अनर्हमाणान्कौन्तेयान्कर्मणस्तस्य तत्फलम् ।
यस्य कर्माऽनुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ॥ ३२ ॥
स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् ।
दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥ ३३ ॥
स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा निमिः ।
क्षिप्रहस्तश्च बलवान्दृढधन्वाऽरिमर्दनः ॥ ३४ ॥
न यस्य विजयाकांक्षी विषयं प्राप्य जीवति ।
यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥ ३५ ॥
ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम् ।
अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ३६ ॥
नाऽहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।
कथं सञ्जय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३७ ॥
पश्यतां पुरुषेन्द्राणां समरे पार्षतोऽवधीत् ।
के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात् ॥ ३८ ॥
के नु पश्चादवर्त्तन्त गच्छतो दुर्गमां गतिम् ।
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः ॥ ३९ ॥
पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे ।
के च तस्मिंस्तनूंस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥ ४० ॥
द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम् ।
कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन्रणे ॥ ४१ ॥

और आयु में वृद्ध होने पर भी जो धनुष से कम्पायमान करने वाले आचार्य को धृष्टद्युम्न ने मारा होगा। जैसे नदियों में सागर श्रेष्ठ है वैसे ही द्रोणाचार्य सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ थे। उन्होंने सब वेद, वेदाङ्ग और इतिहास पुराण पढ़े थे। वे ब्राह्मण भी थे और क्षत्रियधर्म के अनुयायी भी थे। वे शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारङ्गत थे। वे वृद्ध ब्राह्मण शस्त्र के द्वारा कैसे मारे गये ? ॥२७।३१॥ मैंने मोह के वश होकर सदा पाण्डवों को क्लेश पहुँचाया, किन्तु द्रोणाचार्य ने क्लेश के अयोग्य पाण्डवों को सदा स्नेह की दृष्टि से देखा, और अर्जुन को सबसे बढ़कर युद्ध विद्या सिखाई। उसी का यह परिणाम उन्हें मिला। सब धनुर्धर योद्धा जिनके शिष्य हैं, जिनकी दी हुई शिक्षा से अपनी जीविका चलाते हैं, उन द्रोणाचार्य को राज्यश्री प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले पाण्डवों ने कैसे मारा॥३२।३४॥ द्रोणाचार्य सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ और पुण्यात्मा थे। वे महासत्त्व, महाबली और देवताओं में जैसे इन्द्र श्रेष्ठ हैं वैसे ही सारे पुरुषों में श्रेष्ठ थे। उन फुर्तीले, दृढधन्वा, शत्रुमर्दन, बलवान् द्रोणाचार्य को, क्षुद्र मछलियाँ जैसे निमि नामक महामत्स्य को मार डालें वैसे ही, पाण्डवों ने कैसे मार डाला ? द्रोणाचार्य के सम्मुख पहुँचकर विजय की इच्छा रखनेवाला कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं बच सकता था। वेदपाठियों के वेदपाठ का शब्द और धनुर्वेद सीखनेवालों के धनुष का शब्द

रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चित्तैर्न हतः परैः ।
न स पृष्ठमरेस्त्रासाद्रणे शौर्यात्प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥
परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।
एतदार्येण कर्त्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ४३ ॥
पराक्रमेद्यथा शक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ॥ ४४ ॥
भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रशोके नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

सदा द्रोणाचार्य के यहाँ सुनाई पड़ता था। अर्थात् शास्त्र पढ़नेवाले और धनुर्विद्या सीखनेवाले विद्यार्थी सदा उनके पास बने रहते थे। कभी दीन न होने-वाले, पुरुषसिंह, श्रीयुक्त, अपराजित और धनुर्द्धरों के आचार्य द्रोण को रथियों ने किस प्रकार मार डाला? ॥३४।३७॥जिनका यश और बल दुर्द्धर्ष था, उन सिंह और गजराज के सदृश पराक्रमी द्रोणाचार्य को सब नरेन्द्रों के सन्मुख धृष्टद्युम्न ने कैसे मारा? हे सञ्जय! दुर्गम गति से जानेवाले किन वीरों ने द्रोणा-चार्य के आगे रहकर युद्ध किया था? कौन वीर योद्धा द्रोणाचार्य के पास रहकर उनकी रक्षा कर रहे थे और कौन वीर उनके पश्चाद्भाग की रक्षा करते थे? महात्मा द्रोणाचार्य के रथ के दहिने पहिये और बाँयें पहिये की रक्षा करनेवाले कौन वीर थे? ॥३७।३९॥संग्राम के समय कौन लोग द्रोणाचार्य के आगे स्थित थे? किन वीरों ने द्रोणाचार्य से युद्ध करके वीरगति प्राप्त की? किन वीरों ने परम धैर्य के साथ आचार्य का सामना किया था? मन्दमति कायर क्षत्रिय, जो उनके सहायक और रक्षक थे, उन्हें छोड़कर भाग तो नहीं गये थे? उसी समय में तो कहीं उन्हें अकेले पाकर शत्रुओं ने नहीं मार डाला? प्रसिद्ध द्रोणाचार्य कभी विकट आपत्ति या सङ्कट के समय भी शत्रु के भय से युद्ध में पीठ नहीं दिखाते थे। उन्हें शत्रुओं ने किस प्रकार मारा? घोर सङ्कट और विपत्ति के आ पड़ने पर भी आर्य पुरुष का कर्तव्य है कि यथाशक्ति अपना पराक्रम दिखलावे, भयभीत होवे और भागे नहीं। महात्मा द्रोणाचार्य मे यह बात थी। हे सञ्जय! शोक के मारे मैं व्याकुल हो रहा हूँ, मुझे मूर्च्छा सी आ रही है। तुम अभी शान्त रहो। जब मेरा चित्त ठिकाने होगा तब मैं तुमसे सब वृत्तान्त पूछूँगा॥४०।४५॥

—०—

द्रोणपर्व का नवम अध्याय समाप्त हुआ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच—एतत्पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनाऽर्दितो भृशम् ।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत्क्षितौ ॥ १ ॥
तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः ।
जलेनाऽत्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥

दसवाँ अध्याय ॥ १० ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय! महाराज धृतराष्ट्र सञ्जय से इस प्रकार पूछते-पूछते हार्दिक शोक से व्याकुल और अपने पुत्रों की जय से निराश हो, अचेत होकर, पृथ्वी पर गिर पड़े। तब अचेत पड़े हुए राजा धृतराष्ट्र को दासियाँ वायु करने लगीं और सुगन्धित शीतल जल छिड़कने लगीं।

पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३ ॥
उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः ॥ ४ ॥
आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—यः स उद्यन्निवाऽऽदित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः ।
अजातशत्रुमायान्तं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७ ॥
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥ ८ ॥
वासितासङ्गमे यद्वदजय्यं प्रतियूथपैः ।
निजघान रणे वीरान्वीरः पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥
यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद्घोरचक्षुषा ।
कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान्सत्यसङ्गरः ॥ १० ॥
चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् ।
दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ॥ ११ ॥
के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् ।
समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥ १२ ॥

---

इसके पश्चात् कुरुकुल की स्त्रियों ने बूढ़े राजा को अचेत होकर गिरते देखकर चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने उन्हें हाथों से छूकर धीरे धीरे पृथ्वी से उठाकर सिंहासन पर बिठाया। उन स्त्रियों के नेत्रों में आँसू भर आये। वे चारों ओर से वायु करने और उनकी सेवा करने लगीं। कुछ समय के पश्चात धृत-राष्ट्र को होश आया किन्तु उनका शरीर उस समय भी काँप रहा था। उन्होंने फिर सञ्जय से सब वृत्तान्त पूछा॥३।६॥धृतराष्ट्र ने कहा हे सञ्जय! जैसे उदय हो रहे सूर्य अपने तेज से अँधेरे को नष्ट कर देते हैं वैसे ही शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले द्रोणाचार्य के पास आते हुए राजा युधिष्ठिर का सामना किस वीर ने किया था? जैसे अपने विपक्षी दूसरे हाथियों के द्वारा न जीता जा सकनेवाला, वेग से चलनेवाला, मस्त गजराज अन्य गजराज को हथिनी के समागम से प्रसन्न देखकर कुपित होकर उस पर आक्रमण करने के लिए चलता है, वैसे ही वीरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने शत्रु-सेना में प्रवेश करके रण में वीरों को मारा होगा। महात्मा युधिष्ठिर अकेले ही अपनी दारुण क्रोधदृष्टि से दुर्योधन की सेना को भस्म कर सकते हैं। युधिष्ठिर महावीर, धीर, सत्यवादी, जय की इच्छा रखनेवाले और अतुल पराक्रमी धनुर्धर हैं; वे दृष्टि से ही शत्रु को नष्ट करने की शक्ति रखनेवाले जितेन्द्रिय, जगन्मान्य, दुर्धर्ष और अजातशत्रु हैं। उनसे युद्ध करने के लिए मेरे पक्ष के कौन-कौन वीर अग्रसर हुए थे॥७।१२॥जो बड़े वेग से एकाएक

तरसैवाऽभिपद्याऽथ यो वै द्रौणमुपाद्रवत् ।
यः करोति महत्कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥ १३ ॥
महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले ।
तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
यदाऽयाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनीं सृजन् ॥ १५ ॥
विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव ।
अवस्फूर्जन्दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥ १६ ॥
चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
सनेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥ १७ ॥
रोषनिर्जितजीमूतो मनोभिप्रायशीघ्रगः ।
मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥ १८ ॥
सम्प्लावयन्दिशः सर्वा मानवैरास्तरन्महीम् ।
भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधनपुरागमान् ॥ १९ ॥
युद्धेऽभ्यषिञ्चद्विजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
गाण्डीवं धारयन्धीमान्कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २० ॥
इषुसम्बाधमाकाशं कुर्वन्कपिवरध्वजः ।
यदाऽयात्कथमासीत्तु तदा पार्थं समीक्षताम् ॥ २१ ॥
कच्चिद्गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम् ।
यद्वः स भैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्य के सन्मुख गये होंगे, जो रण में शत्रुसेना के मध्य बड़े-बड़े अद्भुत कर्म करते हैं, उन महाकाय, महान् उत्साही, दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन ने जब द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया तब उनको मेरे पक्ष के किन-किन वीरों ने रोका ?॥१३।।१४॥मेघ-सदृश, परम पराक्रमी अर्जुन जब, वज्रवर्षा करते हुए इन्द्र जैसे जल बरसाते हैं वैसे, बाण बरसाते हुए तल-घोष से और रथ के घर्घरनाद से सब दिशाओं को पूर्ण करते हुए सन्मुख आये थे तब हमारे पक्ष के वीरों की क्या दशा हुई थी ! गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन जब मेघ के समान गृध्रपत्रयुक्त बाण बरसाते हुए दुर्योधन आदि के आगे आये तब, हमारी सेना की क्या दशा हुई ? अर्जुन का धनुष बिजली की तरह चमक रहा होगा । रथ घटा के समान घिरे हुए होंगे । रथ का घर्घर शब्द ही मेघगर्जन सा प्रतीत हो रहा होगा । बाणों का शब्द ही बिजली की कड़कड़ाहट जान पड़ती होगी । मन और मनोरथ के समान वेग से वे सर्वत्र विचर रहे होंगे । क्रोध से मेघ को भी मात करनेवाले अर्जुन ने मर्मभेदी बाणों से जल की तरह रक्त बहाकर सब दिशाओं को प्लावित कर दिया होगा॥१५-२०॥भयङ्कर सिंहनाद करते हुए अर्जुन आकाश को बाणों से व्याप्त करते हुए जिस समय सन्मुख आये होंगे उस समय उन्हें देखकर हमारे पक्ष के राजाओं की क्या अवस्था हुई होगी ! जब

काच्चिन्नाऽपानुदत्प्राणानिषुभिर्वो धनञ्जयः ।
वातो वेगादिवाऽऽविध्यन्मेघाञ्शरगणैर्नृपान् ॥ २३ ॥
को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति ।
यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥ २४ ॥
यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद्भयम् ।
के तत्र नाऽजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ॥ २५ ॥
के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ।
अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनञ्जयम् ॥ २६ ॥
न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिःस्वनम् ॥ २७ ॥
विष्वक्सेनो यस्य यन्ता यस्य योद्धा धनञ्जयः ।
अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि ॥ २८ ॥
सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
मेधावी निपुणो धीमान्युधि सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥
आरावं विपुलं कुर्वन्व्यथयन्सर्वसैनिकान् ।
यदाऽयान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥
आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाऽभ्ययात् ।
कदनं करिष्यञ्शत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥ ३१ ॥
आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥

भयानक कर्म करते हुए अर्जुन तुम लोगों के सम्मुख आये थे तब गाण्डीव धनुष का शब्द सुनकर ही तो हमारी सेना नहीं भाग गई हुई थी? वायु जैसे मेघों को और सेंठे के वन को छिन्न भिन्न करती है, वैसे ही अर्जुन ने तुम लोगों का वध तो नहीं किया? ॥२१।२३॥ जिन्हें सेना आगे स्थित सुनकर ही योद्धाओं की छाती दहल जाती है, उन गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन का सामना कौन कर सकता है? सैनिकों को विचलित, कम्पित और वीरों को भयविह्वल करनेवाले घोर संग्राम में किन वीरों ने द्रोणाचार्य का साथ नहीं छोड़ा, और कौन कायर भय के मारे रण में भाग खड़े हुए? किन लोगों ने रण में प्राण त्यागकर परमणीय वीर-गति पाई? मैं समझता हूँ कि समर में देवताओं को भी परास्त कर सकनेवाले अर्जुन के श्वेत घोड़ों के वेग और वर्षाकाल की घनघटा के घोर गर्जन-सदृश गाण्डीव घोष को मेरे सैनिक कभी नहीं सह सकते अर्जुन का सामना नहीं कर सकते। तात्पर्य यह है कि जनार्दन जहाँ रथ हाँकनेवाले सारथी और अर्जुन रथी हैं, उस पक्ष को देवता भी नहीं हरा सकते॥२४।२८॥ जिस समय सुकुमार, युवा, शूर, दर्शनीय, बुद्धिमान्, युद्धनिपुण, धीर और सत्यपराक्रमी नकुल महासिंहनाद से सैनिकों को विह्वल करते हुए द्रोणाचार्य के पास पहुँचे थे उस समय किन वीरों ने उनका सामना किया था ॥२९।३०॥ जिन योद्धा

यस्तु सौवीरराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
आदत्त महिषीं भोजां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३३ ॥
सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे ॥ ३४ ॥
बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥ ३५ ॥
धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रकर्मणि ।
पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३६ ॥
वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥ ३७ ॥
सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चाऽस्त्रमनुत्तमम् ।
सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३८ ॥
तमेवं गुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ।
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥
पञ्चालेषूत्तमं वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् ।
नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥ ४० ॥
युक्तं धनञ्जयहिते ममाऽनर्थार्थमुत्थितम् ।
यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ४१ ॥
महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्के शूराः समवारयन् ॥ ४२ ॥

---

से युक्त रथ पर बैठनेवाले, समर में दुर्जय, आर्यव्रती, ह्रीमान्, अपराजित सहदेव विषैले सर्प के समान क्रोध से फुफकारते हुए, शत्रुओं को पीड़ित करने के लिए, जब रणाङ्गण में आये थे तब किन किन वीरों ने उनका सामना किया था? जयद्रथ की विशाल सेना को दल मल कर कमनीय, सर्वाङ्गसुन्दरी, भोजनन्दिनी रानी को हर लानेवाले, अखण्ड ब्रह्मचर्य, सत्य, धैर्य और शौर्य को धारण करनेवाले, महाबली, सत्यकर्मा, उत्साही, अपराजित, संग्राम में वासुदेव सदृश, वासुदेव के अनुज, अर्जुन की दी हुई शिक्षा पाकर अस्त्रादि के प्रयोग में औरों से श्रेष्ठ और अर्जुन के समकक्ष सात्यकि जब द्रोणाचार्य के पास पहुँचे थे तब किन किन वीरों ने उन्हें रोका था ?॥३१।३६॥ वृष्णिवंश में श्रेष्ठ, सब धनुर्द्धरों में अग्रगण्य, अस्त्र-शस्त्र आदि के प्रयोग में निपुण, यश और अस्त्रविद्या में परशुराम के समान, और जैसे श्रीकृष्ण त्रिभुवन के आश्रयस्वरूप हैं वैसे ही उत्कृष्ट अस्त्रों के जानकार, प्रधान यादव सात्यकि सत्य, धैर्य, बुद्धि, और वीरता के आधार हैं। उनके वेग को किन किन वीरों ने रोका था ?॥३७।३९॥ पाञ्चालों में श्रेष्ठ, कुलीनों के प्रेमपात्र, सत्कर्मनिरत, अर्जुन के हितचिन्तक, मेरे अनिष्ट के लिए उद्यत, यम कुबेर सूर्य इन्द्र चन्द्र वरुण के समान प्रसिद्ध महारथी उत्तमौजा जिस समय द्रोण के साथ प्राणपण से युद्ध करने को प्रस्तुत हुए थे उस समय किन-

एकोऽपसृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥ ४३ ॥
योऽवधीत्केतुमान्वीरो राजपुत्रं दुरासदम् ।
अपरान्तगिरिद्वारे द्रोणात्कस्तं न्यवारयत् ॥ ४४ ॥
स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् ।
शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥ ४५ ॥
देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ४६ ॥
यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात् ।
यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च सर्वदा ॥ ४७ ॥
वासुदेवसमं वीर्ये धनञ्जयसमं बले ।
तेजसाऽऽदित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मतौ ॥ ४८ ॥
अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः समवारयन् ॥ ४९ ॥
तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा ।
यदाऽभ्यधावद्वै द्रोणं तदाऽऽसीद्वो मनः कथम् ॥ ५० ॥
द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः ।
यद् द्रोणमाद्रवन्संख्ये के शूरास्तान्न्यवारयन् ॥ ५१ ॥
एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः ।
अस्त्रार्थमवसन्भीष्मे बिभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

किन वीरों ने उन्हें रोका था ?॥४०।४२॥ जो महावीर धृष्टकेतु अकेले ही पाण्डवों की सहायता के लिए चेदि देश से आकर युद्ध में सम्मिलित हुए हैं वे जब द्रोण पर आक्रमण करने चले थे तब उन्हें किसने रोका था ? जिस वीर ने गिरिद्वार में भागते हुए दुर्द्धर्ष राजपुत्र को मारा था, उन केतुमान् को द्रोण के समीप आने से किसने रोका था ? जो पुरुषसिंह स्त्री और पुरुष दोनों के गुण-दोषों को जानते हैं, जो महात्मा भीष्म की मृत्यु का कारण हैं, वे उत्साही राजपुत्र शिखण्डी जब प्रसन्नतापूर्वक द्रोणाचार्य के सम्मुख आये थे तब उन्हें किसने रोका था ?॥४३।४६॥ जो अर्जुन से भी अधिक गुणी हैं, जो अस्त्रविद्या सत्य और ब्रह्मचर्य के अखण्ड आधार हैं, जो वीरता में श्रीकृष्ण के सदृश, बल में अर्जुन के समान, तेज में आदित्य के तुल्य और बुद्धि में बृहस्पति के समान हैं, वे मुख फैलाकर आते हुए काल के समान वीरवर अभिमन्यु जब द्रोणाचार्य के सम्मुख आये थे तब किन वीरों ने उनका सामना किया था ? जिस समय वे तरुण प्रज्ञ युवा अभिमन्यु द्रोण पर आक्रमण करने वेग से चले थे उस समय तुम लोगों के मन की क्या दशा हुई थी ?॥४७।५०॥ जैसे सब नद-नदी आदि समुद्र की ओर वेग से जाते हैं वैसे ही द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने जब द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया था तब उन्हें किन वीरों ने रोका था ? बाल्यावस्था में बारह

क्षत्रञ्जयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः ।
धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान्द्रोणादवारयन् ॥ ५३ ॥
शताद्विशिष्टं यं युद्धे सममन्यन्त वृष्णयः ।
चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५४ ॥
वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद्युधि ।
अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५५ ॥
भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः ।
इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्तवर्मायुधध्वजाः ॥ ५६ ॥
मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः ।
तान्द्रोणं हन्तुमायातान्के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७ ॥
यं योधयन्तो राजानो नाऽजयन्वारणावते ।
षण्मासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥ ५८ ॥
धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं महाबलम् ।
द्रोणात्कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥ ५९ ॥
यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् ।
समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनाऽपाहरद्रथात् ॥ ६० ॥
धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥ ६१ ॥
निर्दहन्तं रणे योधान्दारयन्तं च सर्वतः ।
द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ६२ ॥

---

वर्ष तक खेल-कूद छोडकर, कठोर ब्रह्मचर्य धारण करके, भीष्म पितामह के पास रहकर युद्धकला सीखनेवाले धृष्टद्युम्न के चारों पुत्र—क्षत्रञ्जय, क्षत्रदेव, क्षत्रवर्मा और मानद—जब युद्धभूमि में देख पडे थे तब उन्हें किन वीरों ने रोका था ? ॥५१।५३॥ जिन्हे वृष्णिवंश के वीर यादव सौ वीरों से भी अधिक बलवान् और पराक्रमी समझते हैं, उन महाबली चेकितान को किन वीरों ने द्रोण की ओर बढने से रोका था ? कलिङ्ग-कुमारी को हरण करनेवाले साहसी अनाधृष्टि वार्धक्षेमि को आचार्य पर आक्रमण करने से किसने रोका था ? धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ, लाल ध्वजा और लाल शस्त्रों से शोभित, लाल कवच धारण करनेवाले, देखने में बीरबहूटी के समान लाल, पाण्डवों के मौसेरे भाई, पाण्डवों की जय चाहनेवाले, पाँचों भाई कैकेय राजकुमार जब द्रोणाचार्य को मारने के लिए आगे बढे थे तब उन्हें किन-किन वीरों ने रोका था ? ॥५४।५७॥ वारणावत में क्रुद्ध और मारने को तत्पर होकर छः महीने तक युद्ध करके भी राजा लोग जिन्हें परास्त नहीं कर सके, जिन्होंने वाराणसीपुरी में स्त्री लोभी महारथी काशिराज के पुत्र को भल्ल के द्वारा रथ से नीचे मार गिराया था, उन सत्यपरायण युयुत्सु को द्रोणाचार्य के ऊपर आक्रमण करते समय किन-किन वीरों ने रोका था ! महाधनुर्धर पाण्डवों के प्रधान मन्त्री और सेनापति, दुर्योधन के

उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्याऽस्त्रवित्तमम् ।
शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणादवारयन् ॥ ६३ ॥
य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत्समवेष्टयत ।
महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६४ ॥
दशाश्वमेधानाजह्रे स्वन्नपानाप्तदक्षिणान् ।
निरर्गलान्सर्वमेधान्पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥ ६५ ॥
गङ्गास्रोतसि यावत्यः सिकता अप्यशेषतः ।
तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥ ६६ ॥
न पूर्वे नाऽपरे चक्रुरिदं केचन मानवाः ।
इतीदं चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७ ॥
पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्नुचारिषु ।
जातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयं चापि साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥
अन्यमौशीनराच्छैब्याद्धुरो वोढारमित्युत ।
गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥ ६९ ॥
तस्य नप्तारमायान्तं शैब्यं कः समवारयत् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ७० ॥
विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ७१ ॥
सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः ।
मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद्भयम् ॥ ७२ ॥

परम शत्रु और द्रोणवध के लिए ही उत्पन्न, धृष्टद्युम्न जिस समय मेरे सैनिकों को मारते और छिन्न-भिन्न करते हुए द्रोणाचार्य के सम्मुख पहुँचे थे उस समय उनको किन-किन वीरों ने रोका था ?॥५८।६२॥ उनको किन-किन वीरों ने रोका था ? द्रुपदराज की गोद में पले और बढ़े हुए और अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी जब द्रोणाचार्य पर क्रोध से झपटे थे तब उन्हें किन-किन वीरों ने रोका था ? हे सञ्जय ! जिन्होंने चर्म सदृश इस भूमण्डल को घेर रक्खा था, जिन शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेवाले महारथी के रथ से भयानक शब्द उत्पन्न होता है, जिन्होंने स्वादिष्ट उत्तम खाने-पीने के पदार्थ खिला-पिलाकर और यथेष्ट दक्षिणा देकर बिना किसी प्रकार के विघ्न के दस अश्वमेध यज्ञ किये हैं, जो पुत्र के समान अपनी प्रजा का पालन करते हैं, जिन्होंने यज्ञों में अगणित गोदान किये हैं, जिनके बराबर गोदान कभी कोई नहीं कर सका, और जिनका यह दुष्कर कार्य पूर्ण होने पर देवताओं ने जिनका नाम लेकर कहा था कि "इस जगत् में उशीनर-तनय के समान महात्मा कोई नहीं उत्पन्न हुआ, न होगा और न इस समय है", उन उशीनर के वंशधर शैब्य का सामना किसने किया था ?॥६३।७०॥ राजा विराट की रथ-सेना जब, मुख फैलाये हुए काल की तरह, आचार्य पर आक्रमण करने आई थी तब उसे किन वीरों ने रोका था ? जो महापराक्रमी मायावी

पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् ।
घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७३ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो येषामर्थाय सञ्जय ।
त्यक्तारः संयुगे प्राणान्किं तेषामजितं युधि ॥ ७४ ॥
येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७५ ॥
लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः ।
नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥ ७६ ॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ॥ ७७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

राक्षस भीमसेन से तत्काल उत्पन्न हुआ था, जिसे मैं बहुत ही डरता हूँ, जो पाण्डवों की जय चाहनेवाला और मेरे पुत्रों का कण्टक है, वह घटोत्कच जब द्रोणाचार्य के सन्मुख आया था तब उसको किन किन वीरों ने रोका था ?॥७१।७३॥हे सञ्जय ! ये सब और अन्यान्य वीरगण जिनके लिए प्राणपण से रण कर रहे है, और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जिनके सहायक और हितचिन्तक है, वे पाण्डव किस प्रकार परास्त हो सकते हैं । श्रीकृष्ण लोकगुरु, लोकनाथ, सनातन पुरुष, समर में मानवों को शरण देनेवाले, दिव्यरूप और प्रभु हैं । पण्डित लोग उनके सम्पूर्ण दिव्य कर्मों का वर्णन करते हैं । मैं भी अपने चित्त को शान्त करने के लिए उन श्रीकृष्ण के गुणों का कीर्तन करूँगा॥७४।७७॥

द्रोणपर्व का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय ।
कृतवान्यानि गोविन्दो यथा नाऽन्यः पुमान्कचित्॥ १ ॥
संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना ।
विख्यापितं बलं बाहोस्त्रिषु लोकेषु सञ्जय ॥ २ ॥
उच्चैः श्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे ।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥
दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम् ।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ॥ ४ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! गोविन्द के अलौकिक कर्मों को सुनो। इन महात्मा ने बाल्यकाल में ही गोपमण्डली में पलकर अपने बाहुबल का परिचय त्रिभुवन भर में दिया था। इन्होंने उच्चैःश्रवा (इन्द्र के घोड़े)

प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् ।
मुरुं चाऽन्तकसङ्काशमवधीत्पुष्करेक्षणः ॥ ५ ॥
तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः ।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥ ६ ॥
सुनामा रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः ।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७ ॥
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनाऽमित्रघातिना ।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥
दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः ।
आराधितः सदारेण स चाऽस्मै प्रददौ वरान् ॥ ९ ॥
तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे ।
निर्जित्य पृथिवीपालानावहत्पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥
अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव ।
रथ वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥ ११ ॥
जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् ॥ १२ ॥
चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
अर्घे विवदमानं च जघान पशुवत्तदा ॥ १३ ॥
सौभं दैत्यपुरं स्वस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् ।
समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥ १४ ॥

---

क समान बली और वायु के समान शीघ्र चलनवाले यमुनावन-वासी केशी दैत्य का दमन किया। [श्रीकृष्ण ने पूतना, शकटासुर, धेनुक, महाबली अरिष्टासुर आदि को मारा है। महाबाहु वासुदेव ने गोवर्द्धन गिरि उठा-कर शिलावर्षा से व्रज को बचाया और दावानल भी बुझाया है।]॥१।४॥इन्होंने ऋषभ (वृषरूपधारी असुर), प्रलम्बासुर, नरकासुर, जम्भ, महासुर पीठ और यमतुल्य मुर दानव को मारा है। निहत्थे श्रीकृष्ण ने पराक्रम के साथ रण में कंस को, जिसका सहायक महाबली अजेय जरासन्ध था, उसके साथियों समेत मार डाला है। महापराक्रमी, अक्षौहिणीपति, भोजराज के मध्यस्थ, कंस के भाई, शूरसेन देश के राजा, सुनामा को भी बलदेव सहित श्रीकृष्ण ने युद्ध में मारा और उसकी सेना को नष्टभ्रष्ट कर दिया॥५।८॥महाक्रोधी ब्रह्मर्षि दुर्वासा को, सेवा करके, अपनी पत्नी सहित श्रीकृष्ण ने एक समय प्रसन्न किया और उनसे अमोघ वर प्राप्त किये। श्रीकृष्ण स्वयंवर में गान्धारराज की कन्या को हर लाये, सब राजाओं को वहाँ हराया और उस कन्या के साथ उन्होंने विवाह किया। राजा लोग यह नहीं सह सके कि राजकन्या उन्हें न मिल-कर श्रीकृष्ण को मिले। असील घोड़ा जैसे चाबुक की चोट नहीं सह सकता, वैसे ही वे उसे न सह-कर विवाह के अवसर पर बिगड़ खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने बाण-रूप कोड़ों की मार से उनकी चमड़ी उखाड़

अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च मागधान्काशिकोसलान् ।
वात्स्यगार्ग्यकरूपांश्च पौण्ड्रांश्चाऽप्यजयद्रणे ॥ १५ ॥
आवन्त्यान्दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयान्दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान्पिशाचांश्च समुद्गलान् ॥ १६ ॥
काम्बोजान्वाटधानांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च सञ्जय ।
त्रिगर्त्तान्मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥ १७ ॥
नानादिग्भ्यश्च सम्प्राप्तान्खशांश्चैव शकांस्तथा ।
जितवान्पुण्डरीकाक्षो यवनं च सहानुगम् ॥ १८ ॥
प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिषेवितम् ।
जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥
युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् ।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् ॥ २० ॥
खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम् ।
आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥
वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२ ॥
तच्च मर्षितवाञ्शक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
राज्ञां चाप्यजितं कश्चित्कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥
यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय ।
कृतवान्पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहाऽर्हति ॥ २४ ॥

दी। जनार्दन श्रीकृष्ण ने अनेक अक्षौहिणी सेना के स्वामी महाबाहु जरासन्ध को कौशल से भीमसेन के हाथों द्वन्द्वयुद्ध में मरवा डाला॥९।१२॥धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर राजसेना के अगुआ महाबली चेदिदेश के राजा शिशुपाल ने सबसे पहले जनार्दन श्रीकृष्ण को अर्घ्य ( पूजा ) मिलते देखकर उसका विरोध किया तब, इसी कारण, श्रीकृष्ण ने कुपित होकर पशु की तरह उसे तुरन्त मार डाला। श्रीकृष्ण ने शाल्व के पराक्रम से सुरक्षित दुर्द्धर्ष आकाशगामी मायामय सौभ नामक दैत्यपुर को पराक्रम से तोड़-फोड़कर समुद्र में गिरा दिया॥१३।१४॥उन्होने अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, काशी, कोसल, वात्स्य, गार्ग्य, करूप, पौण्ड्र, अवन्ती, दाक्षिणात्य, पहाड़ों, दाशेरक, काश्मीर, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज वाटधान, चोल, पाण्ड्य, त्रिगर्त, मालव, दुर्जय, दरद, खश, शक और अन्य अनेक देशों और उनके राजाओं को जीता। अनुचरों सहित आये हुए महाशक्तिशाली कालयवन को उन्होंने अपने बाहुबल से मार भगाया ॥१५।१८॥उन्होंने विकट जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र के भीतर प्रवेश किया, और जल के भीतर जाकर वरुण देव को अपने वश में कर लिया। उन माधव ने पाताल-तलवासी पञ्चजन दानव को युद्ध में मारकर दिव्य पाञ्चजन्य शङ्ख उससे प्राप्त किया। महात्मा जनार्दन ने अर्जुन के साथ खाण्डव वन में अग्नि को

यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम् ।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चाऽऽगमम् ॥ २५ ॥
नाऽन्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः ।
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य सञ्जय ॥ २६ ॥
तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
अगावहोऽनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥ २७ ॥
उल्मुको निशठश्चैव झिल्ली बभ्रुश्च वीर्यवान् ।
पृथुश्च विपृथुश्चैव शमीकोऽथाऽरिमेजयः ॥ २८ ॥
एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
कथञ्चित्पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥ २९ ॥
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना ।
ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥ ३० ॥
नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥
यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः ।
अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय सञ्जय ॥ ३२ ॥
स यदा तात सन्नह्येत्पाण्डवार्थाय सञ्जय ।
न तदा प्रतिसंयोद्धा भविता तत्र कश्चन ॥ ३३ ॥
यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम पाण्डवान् ।
वार्ष्णेयोऽर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

---

तृप्त किया, और उनसे आग्नेयास्त्र तथा दुर्द्धर्ष चक्र प्राप्त किया॥१९।२१॥महावीर श्रीकृष्ण गरुड़ पर बैठकर अमरावती पुरी गये और अमरावती-निवासी देवगण को भयविह्वल करके इन्द्र-भवन से पारिजात का वृक्ष उखाड़ लाये। इन्द्र उनके पराक्रम को अच्छी प्रकार जानते थे, इसी से विवश होकर उन्हें सब सहना पड़ा। हे सञ्जय! मैंने कभी यह नहीं सुना कि ऐसा कोई राजा है जिसे श्रीकृष्ण ने नहीं हराया, या नीचा नहीं दिखाया। उन कमललोचन महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने सभा के मध्य जैसा अद्भुत कर्म कर दिखाया था वैसा कर्म उनके अतिरिक्त और कौन कर सकता है?॥२२।२४॥ भक्ति से विशुद्धात्मा होकर मैंने परमेश्वर श्रीकृष्ण को देखा है। इसी से उनके सब काम मुझे प्रत्यक्ष से दिखाई पड़ रहे हैं। पराक्रमी बुद्धिमान् वासुदेव के कार्य अनन्त हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। महात्मा केशव की आज्ञा से गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अवगाह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, पराक्रमी, झिल्लीबभ्रु, पृथु, विपृथु, शमीक और अरिमेजय आदि अनेकानेक योद्धा वृष्णिवीर—उनके बुलाने पर—रण में पाण्डवों का ही पक्ष लेंगे। तब अवश्य ही मेरे सैनिक प्राणसंशय और सङ्कट में पड़ेंगे। जिस ओर महात्मा वासुदेव होंगे उसी ओर दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाले पराक्रमी कैलास पर्वत के समान वनमाली बलदेव भी अवश्य होंगे॥२५।३१॥

ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन्रणे ।
कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात्स मेदिनीम् ॥ ३५ ॥
यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ॥ ३६ ॥
न केनचिदुपायेन कुरूनां दृश्यते जयः ।
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥
अर्जुनः केशवस्याऽऽत्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः ।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ॥ ३८ ॥
सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः ।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ॥ ३९ ॥
मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह केशवम् ।
मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥ ४० ॥
न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् ।
पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ॥ ४१ ॥
एकात्मानौ द्विधा भूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि ।
मनसाऽपि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥ ४२ ॥
नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः ।
युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ॥ ४३ ॥
भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः ।
नह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥ ४४ ॥

हे सञ्जय ! द्विजगण जिन्हें सबका पिता बतलाते हैं वे जनार्दन कृष्ण क्या पाण्डवों का पक्ष लेकर युद्ध करेंगे ? वे जब पाण्डवों के हित की इच्छा से युद्ध के लिए तैयार होंगे तब कोई उनका सामना नहीं कर सकेगा। यदि कौरवगण पाण्डवों को जीत लेंगे तो महाबाहु वासुदेव पाण्डवों के लिए शस्त्र धारण करके कौरवों को और उनके पक्ष के सब राजाओं को मारकर कुन्ती को सम्पूर्ण राज्य दे देंगे। जिस ओर श्रीकृष्ण सारथी हैं और अर्जुन योद्धा हैं, उसके सन्मुख युद्ध में कौन ठहर सकेगा॥३२।३६॥अतएव, हे सञ्जय! मैं किसी प्रकार कौरवों के लिए कल्याण की प्राप्ति नहीं देखता। अब जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह सब मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ, मुझसे कहो। अर्जुन श्रीकृष्ण की और श्रीकृष्ण अर्जुन का आत्मा हैं। अर्जुन में विजय और श्रीकृष्ण में शाश्वती कीर्ति सदा रहती है। हे सञ्जय ! अर्जुन को इस त्रिभुवन में कोई योद्धा परास्त नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण भी सर्वगुणालङ्कृत और अलौकिक शक्तिशाली हैं॥३७।३९॥दुष्ट दुर्योधन दैव विडम्बना से मोहित और निकटवर्ती मृत्यु के वशीभूत है, इसीलिए अर्जुन और श्रीकृष्ण के प्रभाव और पौरुष को नहीं जानता। ये दोनों महात्मा नर नारायण का अवतार हैं। दोनों एक प्राण दो-देह हैं। एक के ही दो रूप हैं। उनका पराभव असम्भव है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ये दोनों यशस्वी महात्मा

न क्रियाभिर्न चाऽस्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते ।
लोकसम्भावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥ ४५ ॥
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि सञ्जय ।
यां तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ ४६ ॥
अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन ह ।
मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ॥ ४७ ॥
पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत ।
अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥ ४८ ॥
यस्य कोपान्महात्मानौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न धर्मो मामकान्प्रति ॥ ४९ ॥
क्रूरः सर्वविनाशाय कालोऽसौ नाऽतिवर्त्तते ।
अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ।
अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैवादिति मतिर्मम ॥ ५० ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थे सम्प्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

चाहें तो हमारे पक्ष की सारी सेना को अकेले ही नष्ट कर सकते हैं। किन्तु मनुष्ययोनि में उत्पन्न होनेके कारण ही मनुष्य-धर्म का पालन करते हुए वैसा नहीं करते ॥४०।४३॥भीष्म और द्रोणाचार्य की मृत्यु ऐसी घटना है कि जिसे युग का बदल जाना समझना चाहिए। इससे यह सिद्ध हो गया कि ब्रह्मचर्य, वेदपाठ, अथवा शस्त्र-शिक्षा आदि किसी के द्वारा मनुष्य मृत्यु से नहीं बच सकता। मृत्यु अनिवार्य है। हे सञ्जय! युद्धदुर्मद लोकपूजित अस्त्रनिपुण महावीर भीष्म और द्रोणाचार्य की युद्ध में मृत्यु सुनकर भी जो मैं जीवित हूँ, यही आश्चर्य है ॥४३।४६॥पहले युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी और ऐश्वर्य देखकर मुझे बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हुई थी। अब भीष्म और द्रोण की मृत्यु हो जाने के कारण मुझे युधिष्ठिर के आश्रित होकर रहना पड़ेगा। मेरे ही कारण कुरुवंश का यह विनाश हुआ है। हे सूत! जिन लोगों की मृत्यु आ गई है, उनके लिए तिनके वज्र बन जाते हैं। जिनके क्रोध से संग्राम में महावीर भीष्म और द्रोणाचार्य की मृत्यु हुई है, वे युधिष्ठिर अवश्य ही अनन्त ऐश्वर्य के अधिकारी होंगे। अतएव धर्मपुत्र युधिष्ठिर के ही पक्ष में धर्म है; मेरे पुत्रों की ओर से वह बिलकुल ही विमुख है। यह पापात्मा क्रूर काल सबका नाश किये बिना नहीं रहेगा। हे तात! मनस्वी लोग अपने मन में जो-जो मनोरथ करते हैं उन्हें प्रबल दैव मिथ्या कर देता है, उनकी सोची हुई बात पूर्ण नहीं होने पाती। जो यह दुश्चिन्त्य विषय उपस्थित हुआ है, इसके परिहार का उपाय नहीं है। अस्तु, अब तुम युद्ध का वृत्तान्त वर्णन करो॥५०।५१॥

द्रोणपर्व का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

---

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच—हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
यथा स न्यपतद् द्रोणः सूदितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥
सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
यत्कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् ।
सैनापत्येन यद्राजन्मामद्य कृतवानसि ॥ ३ ॥
सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत ।
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः ।
सम्मन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥
ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् ।
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहाऽऽनय ॥ ६ ॥
ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः ।
सेनां प्रहर्षयन्सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
धन्यः कुन्तीसुतो राजन्यस्य ग्रहणमिच्छसि ।
न वधार्थं सुदुर्धर्ष वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८ ॥
किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य कांक्षसे ।
नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥ ९ ॥
आहोस्विद्धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते ।
यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चाऽऽत्मनः ॥ १० ॥

बारहवाँ अध्याय ॥ १२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! मैंने सब वृत्तान्त अपने नेत्रों देखा है। जिस प्रकार पाण्डवों और सृञ्जयों के हाथों द्रोणाचार्य की मृत्यु हुई है, सो सब मैं आपके आगे विस्तारपूर्वक कहता हूँ॥१॥महारथी भारद्वाज द्रोणाचार्य जब सेनापति बनाये गये तब सब सेना के मध्य में खड़े होकर उन्होंने दुर्योधन से कहा—हे राजेन्द्र ! तुमने कौरवश्रेष्ठ भीष्म पितामह के अस्त्र-त्याग के उपरान्त ही इस समय मुझे सेनापति का पद देकर जो मेरा सत्कार किया है, उसके अनुरूप फल अवश्य तुम प्राप्त करोगे। हे भारत ! बतलाओ, तुम्हारी अब क्या इच्छा है ? मैं कौन सा कार्य करूँ, जिससे तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो ?॥२।४॥तब राजा दुर्योधन ने कर्ण और दुःशासन आदि मन्त्रियों और स्वजनों से सम्मति करके विजयी दुर्द्धर्ष द्रोणाचार्य से कहा—हे महामते ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वरदान देते हैं तो मैं यह माँगता हूँ कि आप श्रेष्ठ रथी युधिष्ठिर को जीते ही पकड़कर मेरे सन्मुख लाइए॥५।६॥यह सुनकर द्रोणाचार्य ने सारी सेना को हर्षित और उत्साहित करने के लिए दुर्योधन से कहा—हे राजेन्द्र ! राजा युधिष्ठिर धन्य हैं; क्योंकि तुमने

अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान् ।
राज्यं सम्प्रति दत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि ॥ ११ ॥
धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातं चाऽस्य धीमतः ।
अजातशत्रुता सत्या तस्य यत्स्निह्यते भवान् ॥ १२ ॥
द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत ।
सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥ १३ ॥
नाऽऽकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि ।
तस्मात्तव सुतो राजन्प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥
वधे कुन्तिसुतस्याऽऽजौ नाऽऽचार्य विजयो मम ।
हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान्हि नो ध्रुवम् ॥ १५ ॥
न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि ।
य एव तेषां शेषः स्यात्स एवाऽस्मान्न शेषयेत् ॥ १६ ॥
सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते ।
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥
सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति ।
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८ ॥
तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित् ।
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥ १९ ॥

उनकी मृत्यु का वर न माँगकर जीते ही पकड़ लाने का वर माँगा। हे नरश्रेष्ठ ! तुमने उनके वध की इच्छा क्यों नहीं की ? हे दुर्योधन ! तुमने मन्त्रणा-निपुण होकर भी युधिष्ठिर की मृत्यु क्यों नहीं चाही ? युधिष्ठिर सचमुच अजातशत्रु हैं, उनका यह नाम सार्थक है। युधिष्ठिर का कोई शत्रु नहीं है। तुमने क्या अपने कुल की रक्षा करने के विचार से ही युधिष्ठिर की मृत्यु-कामना नहीं की ?॥७।१०॥अथवा युद्ध में पाण्डवों को परास्त करके अन्त को उन्हें उनका राज्यांश देकर सौभ्रात्र बनाये रखने का अभिप्राय कर लिया है ? जो हो, राजा युधिष्ठिर के समान भाग्यवान् कोई नहीं है। उनका जन्म सार्थक है, उनका अजातशत्रु नाम भी आज सफल हुआ; क्योंकि तुम उनके महावैरी होकर भी उनसे इतना स्नेह रखते हो कि चाहे जिस कारण से हो, उनकी मृत्यु नहीं चाहते॥११।१२॥हे भारत ! बृहस्पतितुल्य व्यक्ति भी ऐसे अवसर पर अपने हृदय के भाव को नहीं छिपा सकता। इसी कारण उस समय दुर्योधन के हृदय का भाव एकाएक प्रकट हो गया। आचार्य की बात सुनकर वे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—हे आचार्य ! राजा युधिष्ठिर की मृत्यु होने से मैं विजय नहीं प्राप्त कर सकूँगा; क्योंकि युधिष्ठिर को मार डालने पर पाण्डव (अर्जुन) क्रुद्ध होकर हम सबको मार डालेंगे। फिर सब पाण्डवों का विनाश तो देवता भी मिलकर नहीं कर सकते। अतएव युधिष्ठिर के मारे जाने पर चारों पाण्डव निःसन्देह हमारे कुल को निर्मूल कर डालेंगे॥१३।१६॥किन्तु इस समय यदि आप सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर को जीते ही

द्रोण उवाच— न चेद्युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि ।
मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥
न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि ।
प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१ ॥
असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चाऽस्त्रकर्मणि ।
तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह ॥ २२ ॥
अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान् ।
अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नाऽमर्षयाम्यहम् ॥ २३ ॥
स चाऽपक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते ।
अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥
ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ ।
एतेन चाऽप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥ २५ ॥
अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् ।
आनयिष्यामि ते राजन्वशमद्य न संशयः ॥ २६ ॥
यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥ २७ ॥
फाल्गुनस्य समीपे तु नहि शक्यो युधिष्ठिरः ।
ग्रहीतुं समरे राजन्सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २८ ॥
सञ्जय उवाच—सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥ २९ ॥

मेरे पास पकड़ लावेंगे तो मैं फिर उनसे जुआ खेल करके उन्हें हरा दूँगा, और तब वे और उनके अधीन पाण्डव वनवासी होने के लिए विवश होंगे। इस प्रकार मैं बहुत समय तक विजयी होकर राज्य कर सकूँगा। यही कारण है कि मैं राजा युधिष्ठिर को मारना नहीं चाहता॥१७।१८॥अर्थतत्त्व के ज्ञाता,बुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने दुर्योधन के इस कुविचार का वर्णन सुनकर उनके माँगे वर में एक दाव लगा दिया। आचार्य ने कहा—हे दुर्योधन! यदि संग्राम में महावीर अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा नहीं कर सकेंगे तो तुम युधिष्ठिर को अपने वश में समझ लो। किन्तु अर्जुन के रहते यह बात नहीं हो सकती। इन्द्र सहित देवता और दानव मिलकर भी युद्धभूमि में पराक्रमी अर्जुन को परास्त नहीं कर सकते। इसी कारण मैं अर्जुन के सम्मुख युधिष्ठिर को पकड़ लेने का साहस नहीं करता ॥१९।२१॥अर्जुन मेरे प्रिय शिष्य हैं। उनकी अस्त्र-शिक्षा के लिए ही मैं आचार्य-पद पर रक्खा गया था। युवा और पुण्यात्मा अर्जुन ने मेरे अतिरिक्त इन्द्र और महादेव से भी बहुत से दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं। अर्जुन तुम्हारे अनुचित व्यवहार से अत्यन्त क्रुद्ध हैं। इसी कारण मैं उनके आगे युधिष्ठिर को जीते ही पकड़ लेने का साहस नहीं करता। अतएव यदि किसी उपाय से अर्जुन को युद्धभूमि से हटा सको तो मैं अनायास युधिष्ठिर को जीते ही पकड़ लाकर

पाण्डवेयेषु साक्षेपं द्रोणं जानाति ते सुतः ।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः ॥ ३० ॥
ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत् ।
सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितमरिन्दम ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रतिज्ञाया द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

तुम्हारा इच्छा पूर्ण कर सकता हूँ॥२२।२४॥हे पुरुषश्रेष्ठ ! युधिष्ठिर को जान से न मारकर जीते पकड़ लेने से ही तुम्हें विजय प्राप्त होगी, और वे भी इस उपाय से काबू में आ जायँगे । नरोत्तम अर्जुन को हटा देने पर युधिष्ठिर यदि मेरे सन्मुख, सम्मुख युद्ध में थोड़ा देर भी ठहर जायँगे तो मैं आज ही उन्हें पकड़कर तुम्हारे अधीन कर दूँगा । हे राजेन्द्र ! अर्जुन के सन्मुख समर में इन्द्रादि देवगण और दानवगण कोई भी युधिष्ठिर को पकड़ नहीं सकेगा॥२५।२८॥सञ्जय कहते हैं— आचार्य द्रोण ने जब राजा युधिष्ठिर को पकड़ने के बारे में इस प्रकार निर्दिष्ट रूप से प्रतिज्ञा की तब आपके मूर्ख पुत्रों ने समझ लिया कि अब युधिष्ठिर पकड़ लिये गये । किन्तु दुर्योधन को भली भाँति प्रतीत था कि द्रोणाचार्य भीतर ही भीतर पाण्डवों के [विशेषकर अर्जुन के] पक्षपाती और हितैषी हैं । इसी कारण द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा को शिथिल न होने देने के लिए, अनेक प्रकार की सम्मति करके, दुर्योधन ने अपने पक्ष की सारी सेना में यह घोषणा करा दी कि आज आचार्य ने युधिष्ठिर को जीते ही पकड़ लेने की प्रतिज्ञा की है॥२९।३१॥

द्रोणपर्व का बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

---

अथ त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच- सान्तरे तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम् ॥ १ ॥
सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाहुशब्दांश्च कृत्स्नशः ।
तच्च सर्वं यथान्याय धर्मराजेन भारत ॥ २ ॥
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् ।
ततः सर्वान्समानाय्य भ्रातॄनन्यांश्च सर्वशः ॥ ३ ॥
अब्रवीद्धर्मराजस्तु धनञ्जयमिदं वचः ।
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याऽद्य चिकीर्षितम् ॥ ४ ॥
यथा तन्न भवेत्सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् ।
सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनाऽमित्रकर्षिणा ॥ ५ ॥

तेरहवाँ अध्याय ॥ १३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! द्रोणाचार्य ने जब युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की तब आपके पक्ष की सेना के लोग यह वृत्तान्त सुनकर बाणध्वनि, शङ्खनाद और सिंहनाद करके प्रसन्नता प्रकट करने लगे । उधर राजा युधिष्ठिर स्वजनों के मध्य बैठे थे । उनके दूतों ने तुरन्त जाकर उन्हें द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा का सब समाचार कह सुनाया॥१।३॥युधिष्ठिर ने अन्यान्य प्रधान लोगों को और भाइयों को तत्काल बुलाकर

तत्राऽन्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् ।
स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥ ६ ॥
यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ।

अर्जुन उवाच—यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन ॥ ७ ॥
तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः ।
अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८ ॥
प्रतीपो नाऽहमाचार्ये भवेयं वै कथञ्चन ।
त्वां निगृह्याऽऽहवे राज्यं धार्त्तराष्ट्रोऽयमिच्छति ॥ ९ ॥
न स तं जीवलोकेऽस्मिन्कामं प्राप्येत्कथञ्चन ।
प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ॥ १० ॥
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ।
यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ॥ ११ ॥
विष्णुर्वा सहितो देवैर्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे ।
मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात्सर्वशस्त्रभृतामपि ।
अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम् ॥ १३ ॥
न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम् ।
न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच—ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १५ ॥

---

अर्जुन से कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुमने द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा का वृत्तान्त सुन लिया न ? अतएव अब ऐसा उपाय करो जिसमें उनकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण न हो। हे वीर ! शत्रुनाशन द्रोण ने जो अटल प्रतिज्ञा की है उसकी सीमा तुम्हीं हो, अर्थात् तुम मेरी रक्षा करते रहोगे तो वे मुझे पकड़ने का साहस नहीं कर सकते। इसलिए तुम मेरे पास रहकर द्रोणाचार्य से संग्राम करो, जिसमें दुर्योधन द्रोणाचार्य की सहायता से अपने सङ्कल्प को सिद्ध न कर सके॥३।७॥अर्जुन ने कहा—हे महाराज ! जैसे आचार्य का वध करना किसी प्रकार मेरा कर्तव्य नहीं है वैसे ही युद्धभूमि में अकेले अरक्षित भाव से आपको छोड़ जाना भी मेरा कर्तव्य नहीं है। युद्धभूमि में चाहे मुझे प्राण दे देने पड़े, तथापि आचार्य के विपक्ष में मैं किसी प्रकार युद्ध न करूँगा। किन्तु दुर्योधन जो आपको जीवित पकड़कर विजय की इच्छा कर रहा है, वह मेरे जीते जी पूर्ण नहीं हो सकती॥७।१०॥नक्षत्रों समेत आकाश भले ही गिर पड़े, पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े भले ही हो जायँ, किन्तु मेरे जीते जी आचार्य आपको नहीं पकड़ सकते। यदि वज्रपाणि इन्द्र अथवा विष्णु भगवान् सब देवताओं के साथ मिलकर स्वयं समर में दुर्योधन की सहायता करें तो भी वह आपको किसी प्रकार नहीं पकड़ सकता। हे राजेन्द्र ! यद्यपि द्रोणाचार्य सब अस्त्रों के और अस्त्रविद्या के जाननेवालों

सिंहनादश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक्सुभैरवः ॥ १६ ॥
श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः ।
त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥ १७ ॥
ततो व्यूढान्यनीकानि तत्र तेषां च भारत ।
शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे ॥ १८ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि ॥ १९ ॥
यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।
न शेकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ २० ॥
तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
न शेकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥ २१ ॥
आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्षमाणे परस्परम् ।
सम्प्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते ॥ २२ ॥
ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता ।
वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत्पृतनामुखे ॥ २३ ॥
तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः ॥ २४ ॥
तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम् ।
त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम् ॥ २५ ॥

---

मैं प्रधान हूँ तथापि मेरे रहते आप के लिए भय नहीं है। हे राजेन्द्र ! मेरी प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हुई और न आगे व्यर्थ हो सकती है। जहाँ तक स्मरण है, मैं कभी असत्य नहीं बोला, किसी से नहीं अपराजित हुआ, और न कभी किसी से कुछ प्रतिज्ञा करके उसे मैंने किञ्चित्मात्र मिथ्या किया है॥१०।१४॥ महावीर अर्जुन के यों कहने पर पाण्डवों के शिविर में शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, डङ्के, तुरही आदि बाजे बजने लगे, वीरगण सिंहनाद और प्रत्यञ्चा के शब्द करने लगे, योद्धा लोग खम ठोकने लगे। ये अनेक प्रकार के निर्घोष आकाशमण्डल में गूँज उठे और उनकी प्रतिध्वनि दूर-दूर तक छा गई। उस समय शत्रु-पक्ष के शङ्खनाद आदि को सुनकर आपकी सेना में भी बाजे बजने लगे। अब आपके और पाण्डव पक्ष के युद्ध चाहनेवाले वीर सैनिक मोर्चेबन्दी करके संग्राम की इच्छा से आगे बढ़े और एक दूसरे के समीप पहुँच गये। उस समय कौरवों के साथ पाण्डवों का, और द्रोणाचार्य के साथ पाञ्चालों का लोमहर्षण संग्राम होने लगा ॥१५।१९॥ तब द्रोणाचार्य के द्वारा सुरक्षित कौरवों की सेना को नष्ट करने के लिए सृञ्जयगण अधिक यत्नपूर्वक युद्ध करने लगे, परन्तु किसी प्रकार कृतकार्य न हो सके। दुर्योधन के पक्ष के महारथी लोग भी अर्जुन के द्वारा सुरक्षित सेना को नष्ट करने के लिए जी जान से यत्न करके भी उसमें सफलता न प्राप्त

मध्यन्दिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः ।
यथा दृश्येत घर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥ २६ ॥
न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत ।
वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥ २७ ॥
मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥
स दिशः सर्वतो रुद्ध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः ।
पार्षतो यत्र तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृतयुधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

कर सके। दोनों ओर के सैनिक, रात्रिकाल के विविध पुष्पों से शोभित वृक्षों की श्रेणी के समान, निस्तब्ध देख पड़ने लगे॥२०।२२॥इधर शत्रुनाशन द्रोणाचार्य सुवर्णमण्डित रथ पर बैठकर पाण्डवों की सेना को नष्ट भ्रष्ट करते हुए उसके भीतर प्रवेश हो गये और प्रज्वलित प्रतापी सूर्य के समान बाण बरसाते हुए चारों ओर विचरने लगे। पाण्डव और सृञ्जयगण रथ पर बैठे हुए, फुर्तीले, अकेले, द्रोणाचार्य को अनेक-रूप और विभीषिकामय देखने लगे। द्रोणाचार्य के चलाये हुए बाण सब सैनिकों को भयविह्वल करते हुए चारों ओर गिरने लगे। महारथी द्रोण उस समय आकाशमण्डल में विचरते हुए, असंख्य किरण वेष्टित, मध्याह्न काल के सूर्य के समान देख पड़ने लगे॥२३।२६॥जैसे दानवगण समर में क्रुद्ध इन्द्र की ओर नेत्र उठाकर नहीं देख सकते वैसे ही उस समय पाण्डवों की सेना का कोई सुभट द्रोणाचार्य की ओर नेत्र उठाकर नहीं देख सकता था। अब प्रबल प्रतापी द्रोणाचर्य शत्रुसेना को मोहित करते हुए स्फूर्त्ति के साथ बाण चलाकर धृष्टद्युम्न की सेना को पीड़ा पहुँचाने लगे। जहाँ पर धृष्टद्युम्न थे वहाँ पर द्रोणचार्य ने इतने बाण बरसाये कि सब दिशाएँ और आकाश मण्डल बाणा से व्याप्त हो गया। द्रोणाचार्य उसी स्थान पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे॥२७।२९॥

—०—

द्रोणपर्व का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच—ततः स पाण्डवानीके जनयन्सुमहद्भयम् ।
व्यचरत्पृतनां द्रोणो दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १ ॥
निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २ ॥
सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याऽऽशुकारिणः ।
ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥ ३ ॥

चौदहवाँ अध्याय ॥ १४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! तब द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना को, घास फूँस अग्नि की तरह, बाणों से भस्म करते हुए विचरने लगे। द्रोणाचार्य को क्रोध के मारे प्रदीप्त अग्नि के समान सब सेना को भस्म करते देखकर सृञ्जयगण भयविह्वल होकर काँपने लगे। द्रोणाचार्य के कानों तक खिंची हुई धनुष की डोरी

रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान्पदातिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः संमृद्नन्ति स्म सायकाः ॥ ४ ॥
नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।
अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेषामावहद्भयम् ॥ ५ ॥
विचरन्स तदा राजन्सेनां संक्षोभयन्प्रभुः ।
वर्धयामास सन्त्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥ ६ ॥
तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
भ्रमद्रथाम्बुदे चाऽस्मिन्दृश्यते स्म पुनः पुनः ॥ ७ ॥
स वीरः सत्यवान्प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः ।
युगान्तकालवद्घोरां रौद्रां प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ ८ ॥
अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम् ॥ ९ ॥
शोणितोदां रथावर्त्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ।
कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥ १० ॥
मेदोमज्जास्थिसिकतामुष्णीपचयफेनिलाम् ।
संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥
नरनागाश्वकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् ।
शरीरदारुसङ्घट्टां रथकच्छपसंकुलाम् ॥ १२ ॥
उत्तमाङ्गैः पङ्कजिनीं निस्त्रिंशझपसंकुलाम् ।
रथनागह्रदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥

का शब्द वज्र निर्घोष के समान सुनाई पड़ने लगा ॥१।३॥स्फूर्त्ति के साथ हाथ चलानेवाले द्रोणाचार्य के बाण रथ, रथी, घुड़सवार, हाथी, घोड़े, पैदल आदि को काट काटकर गिराने लगे। जैसे गरजते हुए मेघ वायु की सहायता पाकर वर्षाकाल में शिलाओं की वर्षा करते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्य भी सिंहनाद-पूर्वक बाण बरसाते हुए शत्रुपक्ष के लिए भयानक हो उठे। वे शत्रुसेना में विचरते हुए उसे क्षुब्ध करके शत्रुओं के हृदय में दारुण भय उत्पन्न करने लगे ॥४।६॥उनके घूमते हुए रथ पर सुवर्णमण्डित धनुष बार-बार मेघों के मध्य बिजली की तरह चमक रहा था। सत्यपरायण, प्राज्ञ, नित्य धर्म के अनुरागी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर ऐसा घोर युद्ध किया कि रक्त की भयानक नदी बह चली॥७।८॥उस नदी में अनेक मांसाहारी जीव भरे पड़े थे। सेनाएँ ही उसका स्रोत थीं। ध्वजाओं को ही किनारे पर के वृक्षों के समान वह गिरा रही थी। जल के स्थान पर उसमें रक्त था। हाथियों और घोड़ों की लाशों के ढेर तटभूमि की तरह देख पड़ते थे। टूटे हुए कवच घन्नई की तरह जान पड़ते थे। मांस की कीचड़ थी और मेदा-मज्जा हड्डी आदि ही बालू के समान थे। पगड़ियाँ फेन की तरह बह रही थीं। युद्ध के घिरे हुए मेघ से वह उत्पन्न हुई थी। उसमें प्राम और खड्ग रूपी मत्स्य थे॥९।११॥मनुष्य-हाथी-घोड़े आदि से वह

महारथशतावर्त्तां भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ १४ ॥
शरीरशतसम्बाधां गृध्रकङ्कनिषेविताम् ।
महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसादनम् ॥ १५ ॥
शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिषेविताम् ।
छिन्नक्षत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥ १६ ॥
चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् ।
वकगृध्रसृगालानां घोरसङ्घैर्निषेविताम् ॥ १७ ॥
निहतान्प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे ।
वहन्तीं पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥ १८ ॥
शरीरशतसम्बाधां केशशैवलशाद्वलाम् ।
नदीं प्रावर्त्तयद्राजन्भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ १९ ॥
तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः ।
सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तदभूल्लोमहर्षणम् ॥ २१ ॥
शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि ।
नाऽतिक्रुद्धः शरैश्छित्वा षष्ट्या विव्याध सौबलम्॥ २३ ॥

दुर्गम थी । बाणों का वेग ही उसका प्रवाह था । लोगों की लाशें लकड़ियों के समान उसमें बह रही थीं। रथ कच्छप की तरह देख पड़ते थे । कटे हुए मस्तक कमल की तरह जान पड़ते थे । रथ-हाथी आदि उसके भीतर कुण्ड से जान पड़ते थे । उसमें पड़े अनेक आभूषण चमक रहे थे । बड़े-बड़े रथ सैंकड़ो भवर से देख पड़ते थे । पृथ्वी से उठती हुई धूल ही उसमें उठनेवाली लहरों के समान जान पड़ती थी। महापराक्रमी वीर योद्धा तो सहज में उस नदी के पार जा सकते थे, किन्तु कायरों के लिए वह अत्यन्त दुस्तर थी ॥१२।१४॥ सहस्रों लाशें उसमें भरी पड़ी थीं । कङ्क गिद्ध आदि जीव उसके चारों ओर मँडला रहे थे। वह नदी सहस्रों महारथी वीरों को यमलोक को लिये जा रही थी । बड़े बड़े त्रिशूल उसमें नाग से जान पड़ते थे । अनेक जीव पक्षियों के समान प्रतीत होते थे । कटे हुए छत्र हंसों के समान उसमें देख पड़ते थे; कटे हुए मुकुट पक्षियों के सदृश जान पड़ते थे॥१३।१६॥चक्र कच्छप से, गदाएँ मगर सी और बाण छोटी-छोटी मछलियों से उसमें बह रहे थे । भयानक बगलों, गिद्धों और गीदड़ों के झुण्ड उसके आस-पास घूम रहे थे। महाबली द्रोणाचार्य के द्वारा युद्ध में मारे गये सहस्रों वीरों को वह रक्त की नदी यमलोक पहुँचा रही थी । केश सेवार और घास के समान दिखाई पड़ रहे थे । द्रोणाचार्य ने

सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
स तस्य गदया राजन्रथात्सूतमपातयत् ॥ २४ ॥
ततस्तौ विरथौ राजन्गदाहस्तौ महाबलौ ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सशृङ्गाविव पर्वतौ ॥ २५ ॥
द्रोणः पाञ्चालराजानं विध्वा दशभिराशुगैः ।
बहुभिस्तेन चाऽभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः ॥ २६ ॥
विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः ।
विध्वा नाऽकम्पयद्वीरस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥
विविंशतस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् ॥ २८ ॥
स तन्न ममृषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे ।
ततोऽस्य गदया दान्तान्हयान्सर्वानपातयत् ॥ २९ ॥
हताश्वात्स रथाद्राजन्गृह्य चर्म महाबलः ।
अभ्यायाद्भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३० ॥
शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः ।
विव्याध प्रहसन्बाणैर्लालयन्कोपयन्निव ॥ ३१ ॥
तस्याऽश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

कायरों के हृदय में भय उत्पन्न करनेवाली ऐसी महा-भयानक रक्त की नदी युद्धभूमि में बहा दी॥१७। १९॥द्रोणाचार्य को इस प्रकार गरज गरजकर अपनी सेना को भयविह्वल करते देख युधिष्ठिर आदि पाण्डव-पक्ष के योद्धा चारों ओर से द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने और उन्हें रोकने चले। महापराक्रमी कौरवों ने जब उन शूरों को इस प्रकार आते देखा तब वे भी उन्हें रोकने के लिए चारों ओर से चले। उस समय उनका लोमहर्षण युद्ध होने लगा॥२०।२१॥ बहुत बड़े मायावी शकुनि समरभूमि में सहदेव के सन्मुख आकर अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों के द्वारा उनको पीड़ित करने लगे। उन्होंने सहदेव के रथ की ध्वजा काट डाली और सारथी को भी घायल कर दिया। सहदेव ने भी क्रोध के वश होकर बाणों से शकुनि के धनुष, पताका, सारथी और घोड़ों को छिन्न भिन्न करके शकुनि को साठ पैने बाण मारे। अब शकुनि रथ पर से उतर पड़े और बड़े वेग से गदा लेकर दौड़े। उन्होंने गदा के प्रहार से सहदेव के सारथी को मार गिराया। तब दोनों ही वीर रथ-हीन होकर गदा हाथ में लेकर शिखर-शोभित पर्वतों की तरह युद्धभूमि में गदायुद्ध के पैंतरे दिखाते हुए क्रीडा सी करने लगे॥२२।२५॥द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद को दस बाण मारे तब वे भी असंख्य बाणों से आचार्य को जर्जर करने लगे। आचार्य ने फिर उनसे भी अधिक पराक्रम के साथ असंख्य बाणों से राजा द्रुपद को घायल कर डाला। भीमसेन ने विविंशति को अत्यन्त तीक्ष्ण बीस बाण मारे, परन्तु वे उस प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुए। यह एक अद्भुत घटना हुई। विविंशति ने सहसा भीमसेन के घोड़े मार डाले और ध्वजा तथा धनुष की डोरी काट दी।

धृष्टकेतुः कृपेणाऽस्तांश्छित्वा बहुविधाञ्छरान् ।
कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चाऽस्याऽऽहरत्त्रिभिः ॥३३॥
तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत् ।
विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥
तं भोजः सप्तसप्तत्या विध्वाऽऽशु निशितैः शरैः ।
नाऽकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाऽचलम् ॥ ३६ ॥
सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत् ।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ॥ ३७ ॥
वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत् ।
सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३८ ॥
तत्पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् ।
यत्सैन्यं वारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥
द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन सङ्गतः ।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ॥ ४० ॥
भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ४१ ॥

इस पर विविंशति की सेना ने उनकी प्रशंसा की। अपने शत्रु का यह पराक्रम भीमसेन देख नहीं सके। उन्होंने भी शत्रु के घोड़ों को गदा के प्रहार से गर्द-बर्द कर डाला। महाबली विविंशति मत्त गजराज की तरह क्रुद्ध होकर ढाल तलवार हाथ में लेकर रथ से कूद पड़े और भीमसेन पर प्रहार करने के लिए झपटे ॥२६।३०॥ महावीर शल्य अपने भानजे नकुल को कुपित करने के लिए हँसकर लीलापूर्वक धनुष घुमा कर उन पर बाण बरसाने लगे। महापराक्रमी नकुल ने भी उनके सब घोड़े नष्ट कर दिये, सारथी को मार डाला तथा ध्वजा, छत्र और धनुष की डोरी काट कर शङ्ख बजाया। धृष्टकेतु ने भी कृपाचार्य के चलाये बाणों को काटकर उन्हें सत्तर बाण मारे और तीन बाणों से उनकी सुन्दर ध्वजा काटकर गिरा दी। कृपाचार्य भी बहुत से बाणों से धृष्टकेतु के बाणों को व्यर्थ करके घोर युद्ध करने लगे। सात्यकि ने पहले हँसकर कृतवर्मा की छाती में लोहमय नाराच बाण, फिर सत्तर बाण, और उसके पश्चात् अन्य अनेक प्रकार के अगणित बाण मारे। वेग से चलनेवाली आँधी जैसे पर्वत को नहीं कँपा सकती वैसे ही भोजराज कृतवर्मा सात्यकि को, पैने सतत्तर बाण मारकर भी, विचलित नहीं कर सके॥३१।३६॥ सेनापति धृष्टद्युम्न ने सुशर्मा के मर्मस्थलों में तीक्ष्ण बाण मारे। सुशर्मा ने भी तोमर के प्रहार से उनको अत्यन्त पीड़ित किया। महावीर राजा विराट मत्स्यदेश की सेना लेकर वीर कर्ण के सन्मुख आये। उन्होंने अपने अपूर्व पराक्रम और युद्धकौशल से उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। यह देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। सूतपुत्र कर्ण ने भी पौरुष प्रकट करते हुए तीक्ष्ण बाणों से मत्स्यसेना को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया।

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम् ।
आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ४२ ॥
युद्धं योधवरौ लोके सौमदत्तिशिखण्डिनौ ।
भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ॥ ४३ ॥
भूरिश्रवा रणे राजन्याज्ञसेनिं महारथम् ।
महता सायकौघेन च्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४४ ॥
शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते ।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ॥ ४५ ॥
राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुषावुभौ ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ ॥ ४६ ॥
मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम् ।
अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४७ ॥
चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चाऽतिभैरवम् ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४८ ॥
लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद्भृशम् ।
यथा विष्णुः पुरा राजन्हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४९ ॥
ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
रथेनाऽभ्यपतद्राजन्सौभद्रं पौरवो नदन् ॥ ५० ॥
ततोऽभ्ययात्स त्वरितो युद्धाकांक्षी महाबलः ।
तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युररिन्दमः ॥ ५१ ॥

---

राजा द्रुपद स्वयं भगदत्त के सन्मुख आकर उनके साथ घोर युद्ध करने लगे । भगदत्त ने बाणों से द्रुपद के सारथी, ध्वजा, रथ आदि को नष्ट करके द्रुपद को घायल कर दिया । उन्होंने भी अत्यन्त कुपित होकर तीक्ष्ण बाण से भगदत्त के वक्ष स्थल को छेद दिया॥३७।४२॥अस्त्रविद्याविशारद भूरिश्रवा और शिखण्डी,ये दोनों वीरवर देखनेवालों को भयविह्वल बना देनेवाला दारुण युद्ध करने लगे । वीर्यशाली भूरिश्रवा ने असंख्य बाणों से महारथी शिखण्डी को ढक दिया । शिखण्डी ने भी क्रोध करके नब्बे बाण मारकर भूरिश्रवा के छक्के छुड़ा दिये । गर्वित राक्षस घटोत्कच और अल-म्बुप दोनों ही जय की इच्छा से तरह-तरह की आसुरी माया प्रकट करके अत्यन्त घोर युद्ध करते हुए, कभी कभी अन्तर्द्धान होकर, दर्शकों के हृदय में आश्चर्य उत्पन्न करने लगे । देवासुर-युद्ध में जैसे आश्चर्य में डालनेवाले कार्य हुए थे वैसे ही कार्य दिखाते हुए चेकितान और अनुविन्द भयानक युद्ध करने लगे । पहले किसी समय वराहरूप विष्णु के साथ हिरण्याक्ष दानव का जैसा युद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध लक्ष्मण और क्षत्रदेव करने लगे॥४३।४९॥अब महाबली हार्दि-क्य बहुत शीघ्र अश्वयुक्त और शीघ्रता के साथ चल रहे रथ पर बैठकर युद्ध की आकांक्षा से अभिमन्यु के निकट पहुँचकर सिंहनाद करने लगे । अभिमन्यु उनके साथ भयानक युद्ध करने लगे । हार्दिक्य ने कई बाणों से

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् ।
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥ ५२ ॥
सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥ ५३ ॥
ततः प्रहर्षयन्सेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
समादत्ताऽऽर्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ॥ ५४ ॥
तं तु सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः ॥ ५५ ॥
तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्ववर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६ ॥
स तेनाऽनेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
भ्रान्तासिना चरन्मार्गान्दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ५७ ॥
भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।
चर्म निस्त्रिंशयो राजन्निर्विशेषमदृश्यत ॥ ५८ ॥
स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन् ।
पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥ ५९ ॥
जघानाऽस्य पदा सूतमसिना पातयद् ध्वजम् ।
विक्षोभ्याऽम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तं नागमिव चाऽक्षिपत् ॥ ६० ॥
तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१ ॥

अभिमन्यु को घायल किया। अभिमन्यु ने भी तत्काल क्षत्र, ध्वजा और धनुष काट डाला। अभिमन्यु ने और सात बाण हार्दिक्य को मारे तथा पाँच बाणों से उनके घोड़ों को और सारथी को पीडित करके वे सिंह की तरह बार-बार गरजकर सैनिकों के हृदय में हर्ष बढ़ाने लगे॥५०।५३॥ अब अभिमन्यु ने शत्रु के प्राणों को हरनेवाला एक बाण धनुष पर चढ़ाना चाहा। किन्तु हार्दिक्य ने उस भयानक बाण को देखकर दो बाणों से मय धनुष के उसको काट डाला। शत्रुदमन अभिमन्यु ने कटे हुए धनुष को फेंककर युद्ध के लिए ढाल तलवार हाथ में ली। उस खड्ग को घुमाते और अनेक ताराचिह्नों से शोभित ढाल चमकाते हुए वीर अभिमन्यु अद्भुत् पराक्रम प्रकट करते हुए रणभूमि में विचरने लगे॥५४।५७॥ कभी ढाल-तलवार को घुमाते, कभी ऊपर फेरते और कभी हिलाते तथा तानते हुए अभिमन्यु ने ऐसी स्फूर्ति दिखाई कि किसी को ढाल और तलवार में कुछ भी अन्तर नहीं देख पड़ता था। अभिमन्यु सिंहनाद के साथ उछलकर हार्दिक्य के रथ पर चढ़ गये। पहले हार्दिक्य के बाल पकड़कर उन्हें आसन के नीचे खींच लिया, फिर पाँव मारकर सारथी के प्राण ले लिये और तलवार से ध्वजा काट गिराई। गरुड़ जैसे समुद्र को मथकर सर्प को पकड़कर झटकते हैं वैसे ही अभिमन्यु ने हार्दिक्य को पकड़कर झटक डाला। उस समय जिनके बाल

तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
पौरवं पातितं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत जयद्रथः ॥ ६२ ॥
स बर्हिबर्हावततं किङ्किणीशतजालवत् ।
चर्म चाऽऽदाय खड्गं च नदन्पर्यपतद्रथात् ॥ ६३ ॥
ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
उत्पपात रथात्तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥ ६४ ॥
प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्छत्रुभिः सम्प्रचोदितान् ।
चिच्छेद चाऽसिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च ॥ ६५ ॥
स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाऽथ पुनर्बली ॥ ६६ ॥
वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ससाराऽभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६७ ॥
तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
हृष्टवत्सम्प्रजह्राते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६८ ॥
सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
न तयोरन्तरं कश्चिद्ददर्श नरसिंहयोः ॥ ६९ ॥
अवक्षेपोऽसिनिर्ह्लादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥ ७० ॥
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥ ७१ ॥

बिखरे हुए हैं वे पौरव हार्दिक्य सिंह के पछाड़े हुए अचेत साँड़ के समान जान पड़ने लगे॥५८।६१॥ जयद्रथ ने देखा कि अनाथ की तरह हार्दिक्य मारे जा रहे हैं; अभिमन्यु ने उन्हें पटक दिया है और बाल पकड़कर प्राण लेने को उद्यत हैं। तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर, सिंहनाद करके, सुवर्णजालयुक्त मयूर-शोभित घुँघरूदार ढाल और तलवार लिये रथ से उतर पड़े। अभिमन्यु ने जयद्रथ को आते देखकर हार्दिक्य को छोड़ दिया, और रथ पर से कूदकर बाज की तरह वे जयद्रथ पर झपटे। अभिमन्यु ने शत्रुपक्ष के चलाये हुए प्रास, पट्टिश, खड्ग आदि शस्त्रों की वर्षा को ढाल पर रोकना और खड्ग से काटना शुरू कर दिया ॥६२।६५॥ पाण्डवसेना को अपना बाहुबल दिखाते हुए वीर अभिमन्यु, बाघ का बच्चा जैसे गजराज पर आक्रमण करता है वैसे ही, ढाल-तलवार घुमाते हुए, अपने पिता के वैरी क्षत्रियश्रेष्ठ जयद्रथ के पास प्रहार करने के लिए पहुँचे। जैसे बाघ और सिंह दोनों परस्पर नखों और दाँतों से प्रहार करते हैं वैसे ही ये दोनों एक दूसरे को पाकर अत्यन्त उत्साह के साथ खड्ग-प्रहार करने लगे। ढाल और तलवार के करतबों में, प्रहार में, बचाने में और पतरे में दोनों वीर समान कौशल और स्फूर्ति दिखा रहे थे। दोनों ही दोनों पर समान रूप से प्रहार करते, पीछे हटने और भीतरी-बाहरी चोट करते थे॥६६।७०॥ दोनों वीर

ततो निक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ७२ ॥
रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे ।
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः ॥ ७३ ॥
भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४ ॥
तं कार्ष्णिं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ७५ ॥
ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
ननादाऽर्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥ ७६ ॥
सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
तापयामास तत्सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥ ७७ ॥
तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् ।
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ७८ ॥
तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाऽकरोदसिम् ।
वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७९ ॥
तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चाऽमिततेजसः ।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथाऽनदन् ॥ ८० ॥
ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम् ॥ ८१ ॥

जिस समय भीतरी और बाहरी चोटों के पैंतरे काट रहे थे उस समय वे परदार पर्वत से प्रतीत होते थे। महावीर अभिमन्यु ने अवसर पाकर जयद्रथ को तलवार मारी, जयद्रथ ने भी शत्रु का वार अपनी ढाल पर रोककर खड्ग-प्रहार किया, जिसे अभिमन्यु ने अपनी ढाल पर रोक लिया॥७१।७२॥जयद्रथ का वह दृढ खड्ग अभिमन्यु की ढाल में मढे हुए सुवर्ण के पत्तर में लगकर टूट गया। मैंने देखा कि उसी समय जयद्रथ अपने खड्ग को खण्डित देखकर, छः पग हटकर, पलक मारते ही स्फूर्त्ति के साथ अपने रथ पर चढ गये। इधर अभिमन्यु भी खड्गयुद्ध बन्द करके फिर श्रेष्ठ रथ पर जा बैठे। उनके पक्ष के योद्धा राजाओं ने उनको चारों ओर से घेर लिया। वीर अभिमन्यु ढाल-तलवार उछालकर जयद्रथ की ओर देखते हुए सिंहनाद करने लगे। सूर्य जैसे सब दिशाओं को अपने तेज से तपाते हैं वैसे ही शत्रुदलन अभिमन्यु जयद्रथ को इस प्रकार परास्त करके शत्रुसेना को पीड़ित करने लगे॥७४।७७॥ अब शल्य ने एक भयानक सुवर्णमण्डित लोहमय, अग्निशिखा की तरह चमकीली, शक्ति लेकर अभिमन्यु को ताककर मारी। गरुड जैसे उछलकर आये हुए नाग को पकड लेते हैं वैसे ही अभिमन्यु ने उछलकर उस शक्ति को पकड लिया और फिर अपनी तीक्ष्ण तलवार म्यान से निकाली। सब राजा लोग अभिमन्यु के बल-वीर्य

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ८२ ॥
ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ८३ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ।
बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादश्च पुष्कलाः ॥ ८४ ॥
प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
तन्नाऽमृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥
तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवम् ।
आर्त्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

ओर अद्भुत पराक्रम को देखकर सिंहनाद करने लगे। अब अमित तेजस्वी शत्रुवीरनाशन अभिमन्यु ने वही अभेद्य मणिखचित शक्ति शल्य के ऊपर चलाई ॥७८।८१॥ केंचुल छोड़े हुए नाग के समान वह शक्ति शल्य के रथ पर पहुँची। उस शक्ति के प्रहार से सारथी मरकर गिर पड़ा। यह देखकर धृष्टकेतु, द्रुपद, विराट, युधिष्ठिर, कैकेय, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पुत्र सब अभिमन्यु को साधुवाद देते हुए चिल्लाने लगे। उस समय बहुविध बाणों के शब्द और सिंहनाद से समरभूमि गूँज उठी ॥८२।८५॥ अपराजित अभिमन्यु उस प्रशंसासूचक कोलाहल को सुनकर बहुत आनन्दित हुए। मेघमण्डल जैसे जल बरसाकर पर्वत के शिखर को ढक लेते हैं वैसे ही आपके पुत्रगण, शत्रुपक्ष के उस जयनाद और सिंहनाद को न सह सकने के कारण, एकाएक चारों ओर से अभिमन्यु पर बाण बरसाने लगे। शत्रुदमन शल्य ने सारथी की मृत्यु देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, आपके पुत्रों की विजय की इच्छा से अभिमन्यु पर आक्रमण किया ॥८५।८७॥

—०—

द्रोणपर्व का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच – बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय ।
त्वयोक्तानि निशम्याऽहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥
आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय ॥ १५ ॥

राजा धृतराष्ट्र कहते हैं—हे सञ्जय ! तुमने जो इन वीरों के द्वन्द्वयुद्धों का वर्णन किया उसे सुनकर इस समय मुझे भी नेत्र न होने का खेद हो रहा है। मनुष्य इस कुरु-पाण्डव-युद्ध को देवासुर-युद्ध के समान

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ८२ ॥
ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ८३ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ।
बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादश्च पुष्कलाः ॥ ८४ ॥
प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
तन्नाऽमृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥
तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवम् ।
आर्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

और अद्भुत पराक्रम को देखकर सिंहनाद करने लगे। अब अमित तेजस्वी शत्रुविनाशन अभिमन्यु ने वही अभेद्य मणिखचित शक्ति शल्य के ऊपर चलाई ॥७८।८१॥ केंचुल छोड़े हुए नाग के समान वह शक्ति शल्य के रथ पर पहुँची। उस शक्ति के प्रहार से सारथी मरकर गिर पड़ा। यह देखकर धृष्टकेतु, द्रुपद, विराट, युधिष्ठिर, कैकेय, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पुत्र सब अभिमन्यु को साधुवाद देते हुए चिल्लाने लगे। उस समय बहुविध बाणों के शब्द और सिंहनाद से समरभूमि गूँज उठी॥८२।८५॥ अपराजित अभिमन्यु उस प्रशंसासूचक कोलाहल को सुनकर बहुत आनन्दित हुए। मेघमण्डल जैसे जल बरसाकर पर्वत के शिखर को ढक लेते हैं वैसे ही आपके पुत्रगण, शत्रुपक्ष के उस जयनाद और सिंहनाद को न सह सकने के कारण, एकाएक चारों ओर से अभिमन्यु पर बाण बरसाने लगे। शत्रुदमन शल्य ने सारथी की मृत्यु देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, आपके पुत्रों की विजय की इच्छा से अभिमन्यु पर आक्रमण किया॥८५।८७॥

--०--

द्रोणपर्व का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय ।
त्वयोक्तानि निशम्याऽहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥
आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय ॥ १५ ॥

राजा धृतराष्ट्र कहते हैं—हे सञ्जय ! तुमने जो इन वीरों के द्वन्द्वयुद्धों का वर्णन किया उसे सुनकर इस समय मुझे भी नेत्र न होने का खेद हो रहा है। मनुष्य इस कुरु-पाण्डव-युद्ध को देवासुर-युद्ध के समान

न हि मे तृप्तिरस्तीह श्रृण्वतो युद्धमुत्तमम् ।
तस्मादार्त्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच—सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
समुत्क्षिप्य नदन्क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ४ ॥
तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
जवेनाऽभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५ ॥
सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ॥ ६ ॥
वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् ।
शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ७ ॥
तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम् ।
ससाराऽभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ८ ॥
ततस्तूर्यनिनादाश्च शङ्खानां च सहस्रशः ।
सिंहनादाश्च सञ्जज्ञुर्भेरीणां च महास्वनाः ॥ ९ ॥
पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योऽन्यमभिधावताम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च साधुसाध्विति निःस्वनाः ॥ १० ॥
न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ११ ॥
तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात् ॥ १२ ॥

---

अद्भुत और आश्चर्य में डालनेवाला कहेंगे । यह उत्तम युद्ध-वृत्तान्त सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं होती । इसलिए तुम मेरे आगे शल्य और अभिमन्यु के युद्ध का वृत्तान्त फिर कहो॥१।३॥सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र! शल्य ने जब अपने सारथी को मरते देखा तब अत्यन्त कुपित होकर, लोहे की भारी गदा लेकर, वे रथ से उतर पड़े । हे महाराज ! भीमसेन उन्हें कालदण्ड हाथ में लिये साक्षात् यमराज के समान देखकर अपनी गदा लेकर बड़े वेग से उनकी ओर झपटे । अभिमन्यु भी वज्रतुल्य गदा हाथ में लेकर शल्य को गदा युद्ध के लिए ललकारने लगे॥४।६॥महाप्रतापी भीमसेन ने समझाकर अभिमन्यु को रोक लिया । वे स्वयं शल्य के सन्मुख पर्वत के समान जाकर डट गये । उसी प्रकार मद्रराज शल्य भी महाबली भीमसेन को देखकर, गजराज की ओर सिंह की तरह, झपटे । उधर तुरही, सहस्रों शङ्ख और डङ्के बजने लगे; वीर योद्धा सिंहनाद करने लगे और एक दूसरे की ओर झपटते हुए पाण्डवों और कौरवों के मध्य असंख्य साधुवाद और जयनाद सुनाई पड़ने लगे॥७।१०॥संग्राम में शल्य को छोड़कर और कोई भीमसेन का वेग नहीं सह सकता था । वैसे ही भीमसेन के अतिरिक्त और कोई वीरश्रेष्ठ मद्रराज शल्य की गदा का वार नहीं सँभाल सकता था । सुवर्ण की पट्टियों से शोभित और अपने लोगों के मन में हर्ष बढ़ानेवाली भारी गदा भीमसेन

पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षणी ।
प्रजज्वाल तदा विद्धा भीमेन महती गदा ॥ १३ ॥
तथैव चरतो मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः ।
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा ॥ १४ ॥
तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्तितगदाश्रृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥ १५ ॥
मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ १६ ॥
ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा ।
साग्निज्वाला महारौद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥
तथैव भीमसेनस्य द्विषताऽभिहता गदा ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाऽऽबभौ ॥ १८ ॥
गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत ।
व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः ॥ १९ ॥
तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा ।
तापयामास तत्सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥ २० ॥
ते गदे गदिनां श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् ।
श्वसन्त्यौ नागकन्येव ससृजाते विभावसुम् ॥ २१ ॥
नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ ।
तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्र्याभ्यां परस्परम् ॥ २२ ॥

के चलाने पर प्रज्वलित हो उठा । उधर विभाग के अनुसार मण्डलाकार से घूमकर पैतरा काटते हुए शल्य की विशाल गदा भीमसेन के वज्रतुल्य कठोर अंगों से लगकर बिजली की तरह चमकने लगी ॥१३।१४॥ वे दोनों वीर दो बड़े साँड़ों की तरह, घूमती हुई गदाओं के ही सींगों से शोभित होकर, गरजते हुए मण्डलाकार गति से घूमने लगे । दोनों वीर समान रूप से पैंतरे बदलते और गदा-युद्ध का कौशल दिखाते हुए प्रहार कर रहे थे॥१५।१६॥ शल्य की भारी गदा भीमसेन की गदा पर पड़कर भयानक अग्नि उगलती हुई तत्काल टूट गई । भीमसेन की गदा भी शल्य की गदा पर पड़कर, बरसात के सन्ध्याकाल में जुगनुओं से शोभित वृक्ष की तरह, चिनगारियों से शोभायमान हुई । अब मद्रराज शल्य ने दूसरी गदा चलाई । उस गदा से बारम्बार प्रहार के समय अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं, जिनसे आकाशमण्डल प्रकाशित हो उठता था॥१७।१८॥ शत्रु के ऊपर चलाई गई भीमसेन की गदा भी, भारी उल्कापिण्ड के समान, प्रज्वलित होकर शल्य की सेना को सन्ताप और भय से विह्वल बनाने लगी । वे दोनों गदाएँ परस्पर टकराकर फुफकारती हुई नागकन्याओं के समान अग्नि उगल रही थीं॥१९।२१॥ जैसे दो बड़े बाघ नखों से, या महागजराज दाँतों से, परस्पर भिड़कर आक्रमण करते हों वैसे ही मद्रराज शल्य और भीमसेन गदाओं से

ततो गदाभ्यामभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविव पुष्पितौ ॥ २३ ॥
शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥ २४ ॥
गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
नाऽकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाऽचलः ॥ २५ ॥
तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः ।
धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाऽऽहतः ॥ २६ ॥
आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥
अथाऽऽप्लुत्य पदान्यष्टौ सन्निपत्य गजाविव ।
सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २८ ॥
तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ ।
युगपत्पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥
ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाऽभिनिपीडितम् ।
विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतम् ॥ ३१ ॥
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे ।
अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥

---

परस्पर आक्रमण करते हुए युद्धभूमि में विचरने लगे। अब क्षण भर में ही भीमसेन और शल्य दोनों, दारुण गदा-प्रहार से निकलनेवाले रक्त से लिप्त होकर फूले हुए ढाक के वृक्ष के समान शोभित हुए। उन दोनों पुरुषसिंहों के भयानक गदा-प्रहार से वज्रपात के समान भयानक शब्द उठकर सब दिशाओं में व्याप्त हो गया॥२२।२४॥जैसे पर्वत फट जाने पर भी कम्पित नहीं होता, वैसे ही दाहने और बायें अङ्गों में बारम्बार शल्य के गदा मारने पर भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए, और मद्रराज भी भीमसेन की गदा की चोटें खाकर वज्राहत पर्वत के समान धैर्य धारण किये खड़े रहे। बली गजराज के समान तुल्य बलवाले दोनों वीर भारी गदाएँ उठाकर एक दूसरे पर चोट कर रहे थे और मण्डलाकार घूमकर, अन्तर-मार्ग में रहकर, फिर मण्डलाकार गति से विचरण करते थे॥२५।२७॥कभी आठ पग जाकर एकाएक उछलकर दोनों, दोनों को नष्ट करने के विचार से, एक दूसरे पर लोहे की भारी गदाओं की चोट करते थे। इस तरह बारम्बार वेग के साथ दौड़ने में और गदाओं की चोटों से घायल होकर दोनों वीर, इन्द्र की ध्वजा के समान, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥२८।३०॥ इधर महारथी कृतवर्मा गदा-प्रहार से पीड़ित, निश्चेष्ट, नाग के समान मूर्च्छा में पड़े हुए शल्य को विह्वल भाव से बारम्बार श्वास लेते देखकर बड़ी स्फूर्ति से

क्षीववद्विह्वलो वीरो निमेषात्पुनरुत्थितः ।
भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥ ३३ ॥
ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम् ।
सनागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥ ३४ ॥
ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः ।
भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥ ३५ ॥
निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः ।
व्यरोचन्त रणे राजन्दीप्यमाना इवाऽग्नयः ॥ ३६ ॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च हर्षिताः ।
भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चाऽऽनकैः सह ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उनके पास गये और शीघ्र ही उन्हें उठाकर रथ पर बिठाकर युद्धभूमि से हट गये । मैंने देखा कि मतवाले के समान विह्वल वीर्यशाली भीमसेन क्षण भर में सचेत होकर उठ खड़े हुए । शल्य को समर से विमुख देखकर आपके पुत्रगण चतुरङ्गिणी सेना सहित भय से काँपने लगे । विजयशाली पाण्डवों के द्वारा पीड़ित कौरवगण, शङ्का से व्याकुल होकर, आँधी के भगाये मेघों के समान चारों ओर भागने लगे ॥३१।३५॥ हे महाराज ! महारथी पाण्डवगण इस प्रकार आपकी सेना को हराकर प्रज्वलित अग्नि के समान अपने तेज से शोभायमान हुए । पाण्डव पक्ष की सेना में चारों ओर वीर लोग प्रसन्नचित्त हो ऊँचे स्वर से सिंहनाद और जयनाद करने लगे; शङ्खध्वनियाँ होने लगीं तथा तुरही, डङ्का, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे॥३६।३७॥

—०—

द्रोणपर्व का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच - तद्बलं सुमहद्दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान् ।
दधारैको रणे राजन्वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥
शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे ।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् ॥ २ ॥
तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः ।
भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥

सोलहवाँ अध्याय ॥ १६ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे राजेन्द्र ! पराक्रमी वृषसेन ने अपनी सेना को इस प्रकार जब भागते देखा तब वे युद्धभूमि में अकेले ही अपनी अपूर्व अस्त्रविद्या के कौशल से कौरव-सेना की रक्षा करने लगे । युद्ध में वृषसेन ने अनेक प्रकार के असंख्य बाण चलाये। वे बाण पाण्डवों की सेना के हाथी, घोड़े, पैदल,

तेनाऽर्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा ।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥
हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः ।
अपातयद्रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥
नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात् ।
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ७ ॥
तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्वा केतुमपातयत् ।
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥ ८ ॥
कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा ।
तान्नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥
छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान्महारथान् ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वताञ्जलदा इव ॥ १० ॥
तान्पाण्डवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः ॥ ११ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं सुमहल्लोमहर्षणम् ।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥ १२ ॥
एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपाण्डवाः ।
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥ १३ ॥

रथी आदि को छेदकर इधर-उधर गिरने लगे। हे महाराज! उनके प्रज्वलित सहस्रों तीक्ष्ण बाण ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की किरणों के समान सब ओर फैलकर रथियों और सवारों को अत्यन्त पीड़ित करके, आँधी के उखाड़े वृक्षों की तरह, एकाएक पृथ्वीतल पर गिराने लगे। महारथी वृषसेन अगणित घोड़ों, रथों और हाथियों को गिराते हुए रणभूमि मे विचरने लगे। युद्ध के मैदान में वृषसेन को, अकेले, निर्भय भाव से घूमते देखकर, सब राजाओं ने मिलकर चारों ओर से घेर लिया॥१।६॥इसी समय नकुल के पुत्र वीर शतानीक ने वृषसेन को मर्मभेदी दस नाराच बाण मारे। इसके पश्चात् कर्ण के पुत्र वृषसेन ने भी शतानीक के धनुष और रथ की ध्वजा को काट डाला। द्रौपदी के पुत्रों ने भाई की यह दशा देखी तो वे उनके समीप जाने के लिए वृषसेन की ओर दौड़े। उन्होंने बहुत से बाणों से वृषसेन को छिपा दिया। हे राजेन्द्र! मेघ जैसे जल बरसाकर उससे पर्वत को ढक देते हैं वैसे ही अश्वत्थामा आदि वीरगण वृषसेन को पीड़ित करनेवाले द्रौपदी के पुत्रों को अपने बाणों से अदृश्य करते हुए उनकी ओर दौड़े॥७।१०॥पूर्व समय में दानवों के साथ देवताओं का जैसा भयानक संग्राम हुआ था वैसा ही लोमहर्षण रण कौरवों और पाण्डवों से होने लगा। पाण्डव, पाञ्चाल, कैकेय, मत्स्य और सृञ्जयगण शस्त्र ताने हुए

तेषां ददृशिरे कोपाद्वपूंष्यमिततेजसाम् ।
युयुत्सूनामिवाऽऽकाशे पतत्रिवरभोगिनाम् ॥ १४ ॥
भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः ।
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥ १५ ॥
तदासीत्तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ।
महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥ १६ ॥
ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धृतार्णवनिःस्वनम् ।
त्वदीयमवधीत्सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥ १८ ॥
ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः ।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ १९ ॥
तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥
चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः ।
दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥ २१ ॥
द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् ।
सिंहनादरवो ह्यासीत्साधुसाध्विति भाषितम् ॥ २२ ॥
कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन्मुहुः ॥ २३ ॥

शत्रुवीरों को मारने के लिए दौड़े । एक दूसरे के अपराधी कौरव और पाण्डवगण, विजय की इच्छा से, एक दूसरे को क्रूर दृष्टि से देखते हुए घोरतर युद्ध करने लगे । ये सब क्रुद्ध योद्धा आकाश में युद्ध करने के लिए उद्यत पक्षियों के राजा गरुड़ और नागों के समान जान पड़ते थे । भीम कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि दोनों ओर के वीरों के बाहुबल के प्रभाव से समरभूमि प्रलयकाल के उदय हुए सूर्य के समान प्रदीप्त हो उठी । देवासुर संग्राम के समान परस्पर प्रहार करते हुए महाबलशाली वीरगण घोरतम संग्राम करने लगे ॥११।१६॥ कुछ ही समय में कौरवपक्ष के वीर भाग खड़े हुए और युधिष्ठिर की सेना कुरु-सेना को नष्ट करने लगी । शत्रुओं के द्वारा कौरव सेना को पीड़ित, भागते और क्षत विक्षत होते देखकर द्रोणाचार्य उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहने लगे कि हे शूरवीरो ! तुम भागो नहीं । अब लाल रङ्ग के घोड़ोंवाले रथ पर बैठे द्रोणाचार्य ने, चार दाँतोंवाले गजराज की तरह, पाण्डव-सेना में प्रवेश करके युधिष्ठिर पर आक्रमण किया॥१७।१९॥ युधिष्ठिर भी कङ्कपत्रशोभित अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाण आचार्य को मारने लगे । आचार्य बड़ी स्फूर्ति के साथ उनका धनुष काटकर उनकी ओर झपटे । जैसे तटभूमि सागर के वेग को रोकती है वैसे ही पाञ्चालों के यश को बढ़ानेवाले कुमार ने, जो

संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः ।
शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४ ॥
तं शूरमार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् ।
चक्ररक्षं परामृद्गात्कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥ २५ ॥
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्ताऽऽसीद्भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६ ॥
शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
नकुलं पञ्चभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
सात्यकिं पञ्चभिर्विद्ध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥
व्यक्षोभयद्रणे योधान्यथामुख्यमभिद्रवन् ।
अभ्यवर्त्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ २९ ॥
युगन्धरस्ततो राजन्भारद्वाजं महारथम् ।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धतमिवाऽर्णवम् ॥ ३० ॥
युधिष्ठिरं स विद्ध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३१ ॥
ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिविः ।
व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
एते चाऽन्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
*आवव्रुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान्बहून् ॥ ३३ ॥*

युधिष्ठिर के रथ-चक्र की रक्षा कर रहे थे, द्रोणाचार्य को रोक दिया। इस प्रकार कुमार के द्वारा द्रोणाचार्य को रोके जाते देखकर सब योद्धा सिंहनाद करते हुए कुमार को साधुवाद से सम्मानित करने लगे। महावीर कुमार ने अत्यन्त कुपित होकर आचार्य की छाती में एक बाण मारा। निरन्तर कई सहस्र बाणों से द्रोणाचार्य को हटा करके कुमार बारम्बार सिंहनाद करने लगे॥२०।२४॥कौरव-सेना के रक्षक द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने फुर्तीले, संग्राम में न थकनेवाले, मन्त्रविद्या और अस्त्रविद्या में निपुण, आर्यव्रती, चक्र-रक्षक कुमार को परास्त करके पाण्डव-सेना के भीतर प्रवेशकर अपूर्व रणकौशल दिखाना आरम्भ किया। द्रोण ने बारह बाण शिखण्डी को, बीस बाण उत्तमौजा को, पाँच बाण नकुल को, सात बाण सहदेव को, बारह बाण युधिष्ठिर को, तीन-तीन बाण द्रौपदी के पुत्रों को, पाँच बाण सात्यकि को और दस बाण राजा विराट को मारे। यों प्रधानता के अनुसार हर एक योद्धा को प्रहार से पीड़ित और विह्वल करते हुए द्रोणचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। तब आँधी से उमड़े हुए और क्षोभ को प्राप्त समुद्र के समान चले आते क्रुद्ध वीर द्रोणाचार्य को रोकने के लिए महारथी युगन्धर आगे बढ़े। द्रोणाचार्य ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से युधिष्ठिर को पीड़ित करके एक भल्ल बाण मारकर युगन्धर को रथ से गिरा दिया

व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।
पञ्चाशता शितै राजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥
त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विध्वा महारथम् ।
प्राहसत्सहसा हृष्टस्त्रासयन्वै महारथान् ॥ ३५ ॥
ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥
ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
व्याघ्रदत्तस्य चाऽऽक्रम्य भल्लाभ्यामहरद्बली ॥ ३७ ॥
तान्प्रमृज्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् ।
युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवाऽन्तकः ॥ ३८ ॥
ततोऽभवन्महाशब्दो राजन्यौधिष्ठिरे बले ।
हृतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥
अब्रुवन्सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् ।
अद्य राजा धार्त्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ॥ ४० ॥
अस्मिन्मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः ।
आगमिष्यति नो नूनं धार्त्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४१ ॥
एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥ ४२ ॥
शोणितोदां रथावर्तां कृत्वा विशसने नदीम् ।
शूरास्थिचयसङ्कीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥ ४३ ॥

॥३४।३६॥अब कैकेय, विराट, सात्यकि, द्रुपद, शिखि, पाञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्त, महाबली सिंहसेन और अन्यान्य महारथीगण युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए अनेक प्रकार के बाण बरसाते हुए द्रोणाचार्य की राह रोक कर खड़े हो गये। पाञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्त ने स्फूर्ति के साथ द्रोणाचार्य को पचास तीक्ष्ण बाण मारे। इस अद्भुत कर्म को देखकर लोग हाहाकार करने लगे। उत्साहपूर्ण प्रसन्नचित्त सिंहसेन भी अन्य वीरों को भयविह्वल करते हुए द्रोणाचार्य को कई बाण मारकर हँसने लगे। महाबली द्रोणाचार्य क्रोध से नेत्र फाड़कर, धनुष की डोरी को स्वच्छ करते हुए, तल-शब्द के साथ आगे बढ़े। आचार्य ने दो भल्ल बाणों से सिंहसेन और व्याघ्रदत्त के कुण्डल भूषित सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये॥३७॥इस प्रकार पाण्डवपक्ष के वीरों को नष्ट करते हुए साक्षात् यमराज के समान द्रोणाचार्य महाराज युधिष्ठिर के रथ के पास पहुँचे। यतव्रत अजेय द्रोणाचार्य को युधिष्ठिर के पास पहुँचते देखकर पाण्डव सेना के मध्य महाकोलाहल उठा कि महाराज युधिष्ठिर पकड़े गये। हे राजेन्द्र! आप की सेना के लोग आचार्य का पराक्रम देखकर कहने लगे कि आज राजा दुर्योधन विजयी होकर कृतार्थ होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि द्रोणाचार्य क्षण भर में ही युधिष्ठिर को पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक हमारे और महाराज दुर्योधन के समीप ले आवेंगे॥३८।४१॥हे महाराज! आपके

तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ।
नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून्विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४४ ॥
ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५ ॥
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान्सन्दधानस्य चाऽनिशम् ।
नाऽन्तरं ददृशे कश्चित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४६ ॥
न दिशो नाऽन्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी ।
अदृश्यन्त महाराज बाणभूता इवाऽभवन् ॥ ४७ ॥
नाऽदृश्यत तदा राजंस्तत्र किञ्चन संयुगे ।
बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥ ४८ ॥
सूर्ये चाऽस्तमनुप्राप्ते तमसा चाऽभिसंवृते ।
नाऽज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ ४९ ॥
ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।
तान्विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥ ५० ॥
स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।
ततोऽभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पाण्डुसृञ्जयाः ॥ ५१ ॥
पञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ।
एवं स्वशिविरं प्रायाज्जित्वा शत्रून्धनञ्जयः ॥ ५२ ॥

सैनिक इस प्रकार कह ही रहे थे कि महावीर अर्जुन रथ के शब्द से सब दिशाओं को कम्पायमान और कौरव-सेना को पीड़ित करते हुए बड़े वेग से उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ द्रोणाचार्य थे। अर्जुन ने युद्धभूमि में रक्त की महानदी बहा दी थी। उस नदी मे जल की जगह रक्त था, बड़े-बड़े रथ भँवर से पड़ते दिखाई दे रहे थे। शूरों के शरीर और हाड़ उस नदी को और भी भयानक बना रहे थे। प्रेत-भूत आदि उसके किनारों पर मरे पड़े थे। बाण उसमें फेने से जान पड़ते थे और बहते हुए प्रास आदि शस्त्र मछली आदि जीव-जन्तुओं के समान देख पड़ते थे। महावीर अर्जुन वेग से उस नदी को लाँघकर एकाएक द्रोणाचार्य के समीप पहुँच गये। महारथी अर्जुन ने द्रोणाचार्य की सेना को अपने युद्ध-कौशल से मोहित और बाणवर्षा से विह्वल करके उन पर घोर आक्रमण किया॥४२।४५॥महापराक्रमी अर्जुन इस स्फूर्त्ति के साथ धनुष पर बाण चढ़ाते और छोड़ते थे कि किसी को यह नहीं देख पड़ता था कि वे कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं और कब छोड़ते हैं। उनके धनुष से निरन्तर बाणों की वर्षा सी हो रही थी। अर्जुन के चलाये हुए अगणित बाणों से रणभूमि में चारों ओर अँधेरा छा गया—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। सर्वत्र बाण ही बाण देख पड़ते थे। धूल के उड़ने से वह अँधेरा और भी घना हो गया। उधर सूर्य भी अस्ताचल पर पहुँच गये। उस समय यह नहीं जान पड़ता था कि कौन शत्रु है, कौन मित्र है, कौन अपने पक्ष का है और कौन दूसरे पक्ष का है॥४६।४९॥तब द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि ने युद्ध बन्द कर दिया। अर्जुन ने भी शत्रुपक्ष को

पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै स केशवः ॥ ५३ ॥
मसारगल्वर्कसुवर्णरूपैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।
चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

भयविह्वल और युद्ध से विमुख देखकर अपनी सेना को शिविर की ओर लौटने की आज्ञा दी । हे महाराज ! जैसे मुनि लोग सूर्यदेव की स्तुति किया करते हैं वैसे ही पाण्डव, सृञ्जय और पाञ्चालगण प्रसन्न होकर अर्जुन की प्रशंसा करने लगे । इस प्रकार शत्रुओं को परास्त करके कृष्ण सहित अर्जुन प्रसन्नता पूर्वक अपने डेरे को लौटे । सब योद्धाओं के पीछे अर्जुन का रथ चला । हीरे, नीलम, पुखराज, पन्ने, मूँगे, मोती, मानिक, बिल्लौर आदि रत्नों और सुवर्ण से भूषित रथ पर बैठे हुए अर्जुन नक्षत्रों से शोभित आकाशमण्डल में पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभायमान हुए॥५०।५४॥

द्रोणपर्व का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

---

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच—ते सेने शिविरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते ।
यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मं च सर्वशः ॥ १ ॥
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये ।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।
मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥
अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने ।
तत एष्यति ते राजन्वशमेष युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु ।
तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथञ्चन ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप ।
ग्रहीष्यामि चमूं भित्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥

---

सत्रहवाँ अध्याय ॥ १७ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ अपने-अपने शिविरोंमें जाकर अपने-अपने स्थान पर विश्राम करने लगीं । महारथी द्रोणाचार्य ने शिविर में पहुँचकर बहुत ही व्याकुल और लज्जित होकर राजा दुर्योधन की ओर देखकर कहा—हे राजेन्द्र ! मैंने पहले ही तुमसे कह दिया था कि अर्जुन के सन्मुख युद्ध में देवगण भी राजा युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकते । तुम लोगों ने युधिष्ठिर के

अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् ।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥ ८ ॥
एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९ ॥
यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्त्तमपि पाण्डवः ।
अथाऽपयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच – द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्त्ताधिपतिस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥
वयं विनिकृता राजन्सह गाण्डीवधन्वना ।
अनागःस्वपि चाऽऽगस्तत्कृतमस्मासु तेन वै ॥ १२ ॥
ते वयं स्मरमाणास्तान्विनिकारान्पृथग्विधान् ।
क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि ॥ १३ ॥
स नो दिष्ट्याऽस्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
कर्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥ १४ ॥
भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकं च यशस्करम् ।
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्याऽयोधनाद्बहिः ॥ १५ ॥
अद्याऽस्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्त्ताऽथवा पुनः ।
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या च भविष्यति ॥ १६ ॥
एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत ।
सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥

---

पकड़ने का बड़ा यत्न किया, परन्तु सफलता नहीं प्राप्त कर सके। अर्जुन ने युधिष्ठिर को बचा लिया। तुम मेरी बात सत्य मानो। श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता। अतएव किसी उपाय से अर्जुन को रणभूमि से दूर हटा ले जाओ, तो युधिष्ठिर को मैं कल पकड़कर तुम्हारे समीप ले आऊँगा। इसका उपाय यही है कि कोई योद्धा अर्जुन को युद्ध करने के लिए ललकार कर दूर हटा ले जाय। अर्जुन अवश्य उससे युद्ध करने को जायँगे, और उसे युद्ध में जीते बिना कभी न लौटेंगे। मैं इसी मध्य में अवसर पाकर धृष्टद्युम्न के सन्मुख ही, पाण्डव सेना के भीतर प्रवेश होकर, युधिष्ठिर को पकड़ लाऊँगा। अर्जुन की अनुपस्थिति में युधिष्ठिर यदि मुझे देखकर भय से भाग न खड़े हुए तो मैं उनको अवश्य पकड़ लाऊँगा। यदि युधिष्ठिर संग्राम में क्षण भर भी ठहर गये तो मैं उन्हें और उनके साथियों को पकड़कर तुम्हारे समीप ले आऊँगा, अथवा जो वे युद्ध से भाग खड़े हुए तो वह भी विजय से बढ़कर है॥१।१०॥सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! द्रोणाचार्य के ये वचन सुन कर त्रिगर्तदेश के राजा सुशर्मा ने, अपने भाइयों के साथ, खड़े होकर दुर्योधन से कहा—हे महाराज! अर्जुन ने कई बार हमें परास्त किया है, हम पर चढ़ाई की है। हम लोगों ने उनका कोई अपराध नहीं किया, अर्जुन ही अकारण हम पर आक्रमण

सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च ।
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८ ॥
मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्त्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १९ ॥
मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि ।
रथानामयुतेनैव सोऽगमद्भ्रातृभिः सह ॥ २० ॥
नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥ २१ ॥
ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् ।
जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥ २२ ॥
ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥ २३ ॥
यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
योक्ष्यमाणास्तदाऽऽत्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ।
प्राप्यॉंल्लोकान्सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान्दत्वा पृथक्पृथक् ।
गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्परम् ॥ २६ ॥
प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम् ।
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥

करने के कारण अपराधी हैं। उन अपनी पराजयों को स्मरण करके हम सदा क्रोध की अग्नि में भीतर ही भीतर जला करते हैं, यहाँ तक कि उसी ही व्याकुलता के मारे रात्रि को हम सुख की निद्रा नहीं सो सकते॥११।१२॥भाग्यवश ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ है कि वही अर्जुन अस्त्र-शस्त्र धारण किये रणभूमि में हमारे सन्मुख उपस्थित है। आज हम अपनी इच्छा के अनुसार ऐसा कार्य करेंगे जिससे आपका कल्याण होगा और हमें भी यश प्राप्त होगा। हम अर्जुन को युद्ध के लिए ललकार कर रण-भूमि के बाहर ले जायेंगे और वहाँ उनको मार डालेंगे। आज पृथ्वी पर या तो अर्जुन नहीं रहेंगे, और या त्रिगर्त (हम लोग) नहीं रहेंगे। हम लोग यह प्रतिज्ञा करते हैं ॥१४।१६॥प्रस्थल के अधिपति त्रिगर्तनरेश सुशर्मा ने अपने पाँचों भाइयों — सत्यवर्मा, सत्यरथ, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा — के साथ दस सहस्र रथों सहित युद्ध की सौगन्ध ली। सुशर्मा के साथ मावेल्लक, ललित्थ, मद्रकगण, मालव, तुण्डिकेरगण और अनेक जनपदों (देशों) से आये हुए विशेष-विशेष दस सहस्र रथी भी युद्ध की सौगन्ध लेने के लिए उद्यत हुए॥१७।२१॥तदनन्तर सब लोगों ने हवन के लिए पृथक्-पृथक् वेदियों पर अग्नि को लाकर स्थापित किया। इसके पश्चात् सब योद्धा कुश-चीर और विचित्र कवच धारण करने लगे। घृतस्नान, मौर्वी मेखला

शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे ।
सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ २८ ॥
ये वै लोकाश्चाऽव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम् ।
मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥ २९ ॥
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।
शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ॥ ३० ॥
अगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि ।
अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥ ३१ ॥
स्वभार्यामृतुकालेषु मोहाद्वै नाऽभिगच्छताम् ।
श्राद्धमैथुनिकानां च ये चाऽप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥
न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥
नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निमातृपितृत्यजाम् ।
तानाप्नुयामहे लोकान्ये च पापकृतामपि ॥ ३४ ॥
यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्त्तेम धनञ्जयम् ।
तेन चाऽभ्यर्दितास्त्रासाद्भवेम हि पराङ्मुखा ॥ ३५ ॥
यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
इष्टाँल्लोकान्प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥ ३६ ॥
एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥ ३७ ॥

आदि से अलङ्कृत, कुश-चीर और कवच धारण किये कृतकृत्य, जीवन के मोह को छोडकर पवित्र लोक, यश और विजय की इच्छा रखनेवाले, पुत्रसम्पन्न, यजमान, वीर महारथीगण रण में शरीर त्यागकर—ब्रह्मचर्य वेदपाठ आदि प्रधान कर्मवाले बहुदक्षिणायुक्त यज्ञों से मिलनेवाले लोकों को—शीघ्र ही पहुँच जाने की इच्छा से हवन, ब्राह्मण भोजन आदि श्रेष्ठ कर्म करने लगे। उन्होंने पृथक् पृथक् भोजन कराकर, गऊ सुवर्ण वस्त्र दक्षिणा आदि देकर, ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। फिर परस्पर सम्भाषण और समव्रत धारण करके, अग्नि जलाकर दृढ़ निश्चय के साथ, सब लोगों को सुनाकर उन्होंने ऊँचे स्वर से अर्जुन को मारने के लिए प्रतिज्ञा की॥२२।२८॥वे अग्नि को छूकर, साक्षी बनाकर, कहने लगे—"हे नरपतियो! अर्जुन को मारे बिना यदि हम युद्ध से लौटें, अथवा अर्जुन से भयभीत होकर युद्ध से भाग जायँ तो उन्हीं निकृष्ट लोकों को जायँ जहाँ मिथ्यावादी, मदिरा पीनेवाले, ब्रह्महत्या करनेवाले, गुरुस्त्री गामी, ब्राह्मण के धन और राजपिण्ड को हरनेवाले, किसी की धरोहर हजम कर जानेवाले, शरणागत को त्यागनेवाले और दीन वाणी कहते हुए को मारनेवाले पातकी जाते हैं। जो हम अर्जुन के सन्मुख से हटें तो उन्हीं निकृष्ट लोकों को जायँ जहाँ शास्त्रविहित मार्ग को छोडकर कुमार्ग पर चलनेवाले, नास्तिक, किसी के घर में अग्नि लगा

आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरञ्जयः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
आहूतो न निवर्त्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥ ३९ ॥
एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयते रणे ।
वधाय सगणस्याऽस्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥
नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतान्विद्धि परान्युधि ॥ ४१ ॥
युधिष्ठिर उवाच---श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम् ।
यथा तदनृतं तस्य भवेत्तत्त्वं समाचर ॥ ४२ ॥
द्रोणो हि बलवाञ्शूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः ।
प्रतिज्ञातं च तेनैतद्ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३ ॥
अर्जुन उवाच---अयं वै सत्यजिद्राजन्नद्य त्वां रक्षिता युधि ।
ध्रियमाणे च पाञ्चाल्येनाऽऽचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४ ॥
हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो ।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथञ्चन ॥ ४५ ॥
सञ्जय उवाच---अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः ।
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्चाऽस्य योजिताः ॥ ४६ ॥
विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्त्तान्प्रत्ययाद्बली ।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥ ४७ ॥

देनेवाले, गोहत्या करनेवाले, अपकारी, ब्रह्मद्रोही, अग्नि और माता-पिता को छोड़ देनेवाले, मोहवश ऋतुकाल में अपनी पत्नी के समीप न रहनेवाले, श्राद्ध के दिन स्त्री-सङ्ग करनेवाले, नपुंसक से युद्ध करनेवाले तथा अन्य अनेक पातकी जाते हैं। यदि आज हम समर में अर्जुन-वधरूप दुष्कर कर्म कर सकेंगे तो अवश्य उत्तम इष्ट लोकों को पावेंगे।"॥२९।३६॥सुशर्मा आदि योद्धा इस प्रकार सौगन्ध खाकर युद्ध के लिए चले और दक्षिण दिशा की ओर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारते हुए समरभूमि में पहुँचे। उनका युद्ध के लिए ललकारना सुनकर अर्जुन ने कहा—हे धर्मराजजी! मेरी यह प्रतिज्ञा है कि यदि कोई युद्ध के लिए ललकारे तो मैं उससे अवश्य युद्ध करूँगा। इस समय ये संशप्तकगण युद्ध के लिए मुझे बुला रहे हैं। अतएव आप मुझे आज्ञा दीजिए जिससे मैं जाकर उन्हें उनके साथियों सहित नष्ट कर आऊँ। मैं उनके इस आह्वान को नहीं सह सकता। मैं आपके आगे प्रतिज्ञा करता हूँ कि उन्हें अवश्य ही मारूँगा॥३७।४१॥राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे पार्थ! महारथी द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा का समाचार तुमसे छिपा नहीं है, तुम सब सुन चुके हो। इस समय तुम वही करो जिसमें द्रोण की प्रतिज्ञा किसी प्रकार पूर्ण न होने पावे। अस्त्रविद्या में निपुण और युद्ध में न थकनेवाले द्रोणाचार्य बड़े पराक्रमी हैं। उन्होंने मुझे

ततो दौर्योधनं सैन्यं मुदा परमया युतम् ।
ऋतेऽर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥ ४८ ॥
ततोऽन्योन्येन ते सैन्यं समाजग्मतुरोजसा ।
गङ्गासरय्वौ वेगेन प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ४९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धनञ्जययाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पकड़कर दुर्योधन के पास ले जाने की प्रतिज्ञा की है॥४२।४३॥इस पर अर्जुन ने कहा—हे महाराज! आज मैं सत्यजित् को आपकी रक्षा का भार सौंपता हूँ; वही आपकी रक्षा करेंगे। इनके जीते जी आचार्य अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकेंगे। यदि दैवयोग से सत्यजित् वीरगति को प्राप्त हों तो फिर आप लोग युद्धभूमि में कदापि न ठहरिएगा ॥४४।४५॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने प्रीति-प्रफुल्ल नेत्रों से अर्जुन को देखकर गले से लगाया और बारम्बार आशीर्वाद देकर जाने की अनुमति दी। भूखा सिंह जैसे भूख मिटाने के लिए मृगों के झुण्ड की ओर झपटता है वैसे ही अर्जुन त्रिगर्त देश की सेना की ओर वेग से चले। इसी अवसर में दुर्योधन के क्रुद्ध सैनिकगण अर्जुन-परित्यक्त युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े। अब दोनों ओर के योद्धा लोग वैसे ही महावेग से भिड़ गये जैसे वर्षाकाल में गङ्गा और सरयू वेग के साथ समुद्र में जा मिलती हैं॥४५।४९॥

द्रोणपर्व का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच—ततः संशप्तका राजन्समे देशे व्यवस्थिताः ।
व्यूह्याऽनीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ॥ १ ॥
ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष ।
उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥ २ ॥
स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत् ।
आवृतत्वाच्च लोकस्य नाऽसीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥
सोऽतीव संप्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनञ्जयः ।
किञ्चिदभ्युत्स्मयन्कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
पश्यैतान्देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे ।
भ्रातॄंस्त्रैगर्त्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥ ५ ॥
अथवा हर्षकालोऽयं त्रैगर्त्तानामसंशयम् ।
कुनरैर्दुरवापान्हि लोकान्प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥

अठारहवाँ अध्याय ॥ १८ ॥

संञ्जय ने कहा—हे महाराज! उधर संशप्तकगण समतल भूमि में ठहरकर, प्रसन्नतापूर्वक रथों का अर्धचन्द्राकार मोर्चा बनाकर, अर्जुन को आते देख हर्ष के साथ चिल्लाने और सिंहनाद करने लगे। वह शब्द चारों ओर और अन्तरिक्ष भर में भर गया। किन्तु चारों ओर मनुष्य ही मनुष्य देख पड़ते थे,

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम् ॥ ७ ॥
स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम् ।
दध्मौ वेगेन महता घोषेणाऽऽपूरयन्दिशः ॥ ८ ॥
तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
विचेष्टाऽवस्थिता संख्ये ह्यश्मसारमयी यथा ॥ ९ ॥
वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः ।
विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुस्रुवुः ॥ १० ॥
उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
युगपत्पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥ ११ ॥
तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः ।
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाऽऽशु पराक्रमी ॥ १२ ॥
ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्राविध्यन्त ततः पार्थस्तानविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १३ ॥
एकैकस्तु ततः पार्थं राजन्विव्याध पञ्चभिः ।
स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥ १४ ॥
भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम् ।
आपूरयञ्शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः ॥ १५ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति ।
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने ॥ १६ ॥

---

इस कारण उसकी प्रतिध्वनि नहीं हुई॥१।३॥अर्जुन ने उनको अत्यन्त प्रसन्न देखकर कृष्णचन्द्र से मुसकरा-कर कहा—हे वासुदेव ! इन मरने के लिए उद्यत त्रिगर्त देश के लोगों को देखिए । ये लोग रुदन करने के स्थान प्रसन्नता और हर्ष प्रकट कर रहे हैं। अथवा इसमें सन्देह नहीं कि वे यह समझकर हर्ष प्रकट कर रहे हैं कि कापुरुषों के लिए दुष्प्राप्य उत्तम लोक उन्हें, युद्ध में मरने से, प्राप्त होंगे॥४।६॥अब त्रिगर्त लोगों की विशाल सेना के समीप पहुँचकर अर्जुन ने बड़े जोर से सुवर्णभूषित 'देवदत्त' शङ्ख बजाया, जिससे सब दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं । संशप्तक-गण की सेना उस शङ्ख के भयानक शब्द को सुन-कर अत्यन्त शङ्कित और पत्थर की मूर्ति की तरह चेष्टारहित हो गई॥७।९॥उनके घोड़े भय से नेत्र फाड़कर, कान खड़े करके, पाँव और गर्दन समेट-कर एक साथ रक्त उगलने और मल-मूत्र त्याग करने लगे । कुछ समय के पश्चात् संशप्तकगण होश में आये । उन्होंने अपनी सेना को सँभाल करके अर्जुन पर निरन्तर बाण बरसाना आरम्भ किया । अर्जुन ने संशप्तकों के चलाये तीक्ष्ण सहस्रों बाणों को केवल पन्द्रह बाणों से राह में ही टुकड़े टुकड़े कर डाला ॥१०।१२॥तब संशप्तकों में से प्रत्येक ने अर्जुन को दस-दस बाण मारे । अर्जुन ने भी उनको तीन-तीन बाण मारे । अर्जुन को फिर उन्होंने पाँच-पाँच बाण

ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः ।
अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥
तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवोत्थितः ॥ १८ ॥
हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः ।
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥
ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् ।
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत् ॥ २० ॥
तांस्तु सर्वान्पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः ।
प्रत्यविध्यद् ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान् ॥ २१ ॥
सुधन्वनो धनुश्छित्वा हयांश्चाऽस्याऽवधीच्छरैः ।
अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत् ॥ २२ ॥
तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
व्यद्रवन्त भयाद्भीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥ २३ ॥
ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम् ।
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांऽशुभिः ॥ २४ ॥
ततो भग्ने बले तस्मिन्विप्रलीने समन्ततः ।
सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्त्तान्भयमाविशत् ॥ २५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव ॥ २६ ॥

मारे। अर्जुन ने उसके उत्तर में फिर दो दो तीक्ष्ण बाण मारकर उनको घायल कर दिया। संशप्तकगण ने फिर कुपित होकर, जैसे जलधाराएँ तालाब को भर देती हैं वैसे ही, तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से श्री कृष्ण और अर्जुन सहित उनके रथ को पाट दिया। वन के मध्य जैसे भौंरों की कतार फूले हुए वृक्ष पर गिरती है वैसे ही उस समय अर्जुन के ऊपर सहस्रों बाण गिरने लगे॥१३।१६॥अब सुबाहु ने बड़े, भारी और तीक्ष्ण लोहमय तीस बाण अर्जुन के किरीट में मारे। स्वर्णपुङ्खयुक्त बाण किरीट मुकुट में लगने से अर्जुन उदित दिवाकर से, और सुवर्ण के अलङ्कारों से अलङ्कृत से, जान पड़ने लगे। तब अर्जुन ने भल्ल बाण मारकर सुबाहु का दृढ हस्तावाप ( हाथों के बचाव के लिए पहना जानेवाला ) काट डाला। अर्जुन सुबाहु पर सहस्रों बाणों की वर्षा करने लगे ॥१७।१९॥तब सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहु ने अत्यन्त कुपित होकर दस-दस बाण अर्जुन को मारे। अर्जुन ने उन सबको तीक्ष्ण बाणों से घायल करके भल्ल बाणों से उनकी ध्वजाएँ काट डालीं। अर्जुन ने क्रुद्ध होकर सुधन्वा का धनुष काटकर रथ के घोड़े मार डाले, और उसका शिरस्त्राण शोभित सिर पृथ्वी पर काट गिराया॥२०।२२॥इससे सुधन्वा के अनुचर अत्यन्त विह्वल होकर भागकर दुर्योधन की सेना के पास जा खड़े हुए। जैसे सूर्यदेव अपनी

ततस्त्रिगर्त्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ ॥ २७ ॥
शप्त्वाऽथ शपथान्घोरान्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः ॥ २८ ॥
नाऽवहास्याः कथं लोके कर्मणाऽनेन संयुगे ।
भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम् ॥ २९ ॥
एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः ।
शङ्खांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥ ३० ॥
ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः ।
नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि सुशर्मवाक्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

किरणों से अँधेरे को नष्ट कर देते हैं वैसे ही वीर अर्जुन कुपित होकर, निरन्तर बाण बरसाकर, त्रिगर्त सेना का संहार करने लगे। त्रिगर्तसेना के लोग शङ्कित और छिन्न भिन्न होकर रक्षक की खोज में इधर उधर भागने लगे। संशप्तकगण अर्जुन को कोप से अत्यन्त अपार देखकर बहुत ही भयभीत अर्जुन के बाणों से घायल होकर वे लोग भयातुर मृगों के समान मोहाभिभूत होने लगे ॥२३।२६॥ त्रिगर्त राज सुशर्मा ने क्रुद्ध होकर संशप्तकगण से कहा—हे वीरो! भयभीत होकर भाग खड़े होना तुम लोगों का कर्तव्य नहीं है। तुम लोग दुर्योधन के सन्मुख वैसी भयङ्कर सौगन्ध खाकर यहाँ युद्ध करने आये हो। अब इस प्रकार रण से भागकर वहाँ प्रधान-प्रधान वीरों से क्या कहोगे? उन्हें क्या मुख दिखाओगे? भागोगे तो लोग क्या तुमको हँसेंगे नहीं? अतएव तुम सब मिलकर यथाशक्ति युद्ध करो। मृत्यु का क्या भय है?॥२७।२९॥सब सैनिकगण सुशर्मा के उत्साहवाक्य सुनकर लौट पड़े। वे तत्क्षण महा-कोलाहल करते हुए, शङ्ख बजाते हुए, हर्ष और सन्तोष के साथ युद्ध करने के लिए डट गये। संशप्तकगण और नारायणी सेना जीवन का मोह छोड़कर युद्ध करने लगी॥३०।३१॥

द्रोणपर्व का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

अथ ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा तु सन्निवृत्तांस्तान्संशप्तकगणान्पुनः ।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥
चोदयाऽश्वान्हृषीकेश संशप्तकगणान्प्रति ।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥ २ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय ॥ १९ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! अर्जुन ने संशप्तकगण को लौटकर आते देख महात्मा वासुदेव से कहा—हे श्रीकृष्ण! शीघ्रता से संशप्तकगण के सन्मुख रथ ले चलिए। जान पड़ता है कि प्राण रहते ये युद्ध करना न छोड़ेंगे। हे वासुदेव! आज आप मेरे बाहुबल और धनुष का प्रभाव देखिए रुद्रदेव ने जैसे

पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च ।
अद्यैतान्पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ३ ॥
ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम् ।
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥ ४ ॥
स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा ।
उह्यमानमिवाऽऽकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥
मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च ।
यथा शक्ररथो राजन्युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥
अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ७ ॥
अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ ।
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८ ॥
क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः ।
गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥ ९ ॥
बध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम् ।
देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥
अथाऽस्त्रमरिसङ्घघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः ।
ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन्पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥
आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः ।
अन्योऽन्येनाऽर्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जघ्निरे ॥ १२ ॥
अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ ।
इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥

पशुओं का संहार किया था वैसे ही मैं आज इन संशप्तकगण का संहार करूँगा॥१।३॥वासुदेव ने अर्जुन के ये वचन सुनकर,मङ्गल-कामना द्वारा उनका अभिनन्दन करके, उनकी इच्छा के अनुसार रथ चलाया। श्वेत घोड़ों से युक्त वह रथ आकाशचारी विमान की तरह शोभा को प्राप्त हुआ। हे राजेन्द्र! देवासुर-संग्राम में इन्द्र के रथ के समान वह अर्जुन का रथ अनेक प्रकार की गतियों से मण्डलाकार घूमने लगा। तब विविध शस्त्र हाथ में लिए नारायणी सेना ने क्षण भर में बाण बरसाकर वासुदेव सहित अर्जुन को अदृश्य कर दिया। महावीर अर्जुन ने भी परम कुपित होकर उस युद्ध में दुगना पराक्रम प्रकट किया। उन्होंने स्फूर्त्ति के साथ गाण्डीव धनुष को हाथ से पोंछकर, क्रोधसूचक भौंहें टेढ़ी करके, 'देवदत्त' शङ्ख बजाया और शत्रुनाशन त्वाष्ट्र अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्र के प्रभाव से एक ही अर्जुन के पृथक्-पृथक् सहस्रों रूप चारों ओर दिखाई पड़ने लगे॥४।११॥शत्रुपक्ष के योद्धा लोग उन अनेक प्रतिरूपों से ऐसे मोहित हो

मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् ।
अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥
ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् ।
कृत्वा तदस्त्रं तान्वीराननयद्यमसादनम् ॥ १५ ॥
अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान्मालवानपि ।
मावेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चाऽर्दयच्छरैः ॥ १६ ॥
ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥
न ध्वजो नाऽर्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥ १८ ॥
ततस्तेऽलब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा ॥ १९ ॥
भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥ २० ॥
ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चाऽर्जुनमब्रवीत् ।
क्वाऽसि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥ २१ ॥
तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः ।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥
ततः संशप्तकव्रातान्साश्वद्विपरथायुधान् ।
उवाह भगवान्वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥ २३ ॥

---

गये कि परस्पर एक दूसरे को अर्जुन समझकर मारने काटने लगे। "ये कृष्ण और अर्जुन एकत्र उपस्थित हैं," इस प्रकार कहते कहते वे लोग माया से मोहित होकर परस्पर प्रहार करने लगे। हे महाराज! परम दिव्य त्वाष्ट्र अस्त्र से मोहित सशप्तकगण इस प्रकार परस्पर प्रहार करके नष्ट होने लगे। सग्राम में योद्धा लोग फूले हुए ढाक के पेड़ के समान शोभायमान हुए। अर्जुन के उस अस्त्र ने शत्रुओं को यमपुर भेज दिया और उनके बाणों को भस्म कर दिया। अब अर्जुन हँसकर ललित्थ, मालव, मावेल्लक और त्रिगर्तदेश के योद्धाओं को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। वे सब महावीर भी कालप्रेरित होकर अर्जुन के ऊपर अनेक प्रकार के असख्य बाण छोड़ने लगे॥१२।१७॥ उन दारुण बाणों से अर्जुन, वासुदेव और उनका ध्वजासहित दिव्य रथ, सब अदृश्य हो गये। इसी अवसर में निशाना ठीक लग जाने से सशप्तकगण परस्पर कोलाहल करने लगे। वे लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन को विनष्ट समझकर प्रसन्नचित्त हो वस्त्रों को हिलाने लगे। सहस्रों योद्धा भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदि बजाने और कोलाहल करने लगे॥१८।२०॥ वासुदेव बहुत ही थककर और पसीने से तर होकर अर्जुन से बोले—हे पार्थ! तुम कहा हो? हे शत्रुनाशन! मैं तुम्हें देख नहीं पाता। तुम जीवित भी हो? यह सुनकर अर्जुन ने उसी समय वायव्य अस्त्र छोड़ा,

उह्यमानास्तु ते राजन्वह्वशोभन्त वायुना ।
प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥ २४ ॥
तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥
शिरांसि भल्लैरहरद्बाहूनपि च सायुधान् ।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरूञ्शरैरुर्व्यामपातयत् ॥ २६ ॥
पृष्ठच्छिन्नान्विचरणान्बाहुपार्श्वेक्षणाकुलान् ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकाराऽरीन्धनञ्जयः ॥ २७ ॥
गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
शरैर्विशकलीकुर्वंश्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥ २८ ॥
मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे ।
छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित्क्वचित् ॥ २९ ॥
सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकांकुशध्वजाः ।
पेतुः शक्राशनिहता द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥ ३० ॥
चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा ।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थवाणहताः क्षितौ ॥ ३१ ॥
विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः ॥ ३२ ॥
तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पातितैरपि ।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ ॥ ३३ ॥

जिससे वे सब बाण उड़ गये। उस अस्त्र से उत्पन्न वायु ने सूखे पत्तों की तरह हाथी, घोड़े, रथ और शस्त्र-अस्त्र आदि के साथ संशप्तकगण को उडाना आरम्भ कर दिया॥२१।२३॥ हे राजेन्द्र! जैसे पक्षियों के झुण्ड वृक्षों पर से उड़ते हैं वैसे ही संशप्तकगण उस वायव्य अस्त्र से उड़ने लगे। अर्जुन इस प्रकार उन्हें, अत्यन्त व्याकुल करके, सहस्रों बाणों से पीड़ित करने लगे। अर्जुन भल्ल बाणों से किसी का सिर, किसी का सशस्त्र हाथ और किसी हाथी की सूँड़ के समान जाँघें काट-काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे॥२४।२६॥ किसी की पीठ के टुकड़े-टुकड़े हो गये, किसी की भुजा के कई खण्ड हो गये, और किसी-किसी के नेत्र फूट गए। वीर अर्जुन इस प्रकार शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके गन्धर्व नगर के समान सुसज्जित बड़े-बड़े रथों के टुकड़े-टुकड़े और हाथी-घोड़े आदि को विनष्ट करने लगे। कहीं-कहीं पर ध्वजाओं के कट जाने से मुण्डे रथ ठुण्डे ताड़ के पेड़ों के जङ्गल से प्रतीत होने लगे। कहीं पर योद्धा उत्तम धनुष-पताका से युक्त, ध्वजदण्डमण्डित और अंकुशशोभित बड़े-बड़े गजराज वज्रपात से फटे हुए वृक्षयुक्त पर्वतों के समान विदीर्ण होकर पृथ्वी पर गिरने लगे। चामर-शोभित, कवचधारी घोड़े अर्जुन के बाणों से मरकर आँखें निकालकर अपने सवारों सहित पृथ्वी पर धमाधम गिर रहे थे॥२७।३१॥तलवार और नाराच

रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।
मही चाऽप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसंकुला ॥ ३४ ॥
तद्बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे ।
आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः ।
तमेवाऽभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्याऽतिथितां गताः॥ ३६ ॥
सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः ।
आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥ ३७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि ।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुनसंशप्तकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बाण लगने से जिनके कवच कट गये हैं ऐसे सहस्रों पैदल योद्धा अर्जुन के बाणों से मर-मरकर गिरने लगे। कोई मर गया था, कोई मारा जा रहा था, कोई गिर पड़ा था, कोई गिर रहा था, कोई चक्कर खाकर गिरनेवाला था और कोई गिरकर निश्चेष्ट हो रहा था। उस समय वह युद्धभूमि बहुत ही भयानक हो उठी। युद्धभूमि में एकाएक दौड़ धूप होने से जो बहुत सी धूल उड़ी थी, वह अपार रक्त की वर्षा मे बैठ गई। सैकड़ों सहस्रों कबन्धों से परिपूर्ण होकर वह युद्ध का मैदान बहुत ही भयानक हो गया। उस समय, प्रलय काल में पशु-संहार करनेवाले रुद्र की क्रीड़ाभूमि के समान अर्जुन का वह भयानक रथ शोभा को प्राप्त हुआ॥३२।३५॥संशप्तकगण की सेना के हाथी, घोड़े और रथ ( के घोड़े ) व्याकुल हो उठे। सब शत्रुसेना प्रहार से पीड़ित होकर भी अर्जुन के सन्मुख पहुँचती और मर-मरकर इन्द्रपुरी को जा रही थी। उस समय वह समरभूमि मारे गये महारथियों से परिपूर्ण होकर अत्यन्त शोभित हुई। इधर अर्जुन समर मे उन्मत्त हो उठे, उधर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए उनकी ओर चले। विशाल सुसज्जित सशस्त्र सेना, युधिष्ठिर की इच्छा से, द्रोणाचार्य के साथ चली। उस समय घोर संग्राम होने लगा॥३६।३९॥

द्रोणपर्व का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच — परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः ।
उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥
विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह ।
निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥ २ ॥

बीसवाँ अध्याय ॥ २० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य ने वह रात्रि व्यतीत करके दुर्योधन को बहुत धैर्य बँधाया। उधर युधिष्ठिर की रक्षा का कार्य अन्य वीरों को सौंप-कर महावीर अर्जुन संशप्तकगण को मारने गये, इधर

व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् ।
अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥
व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा ।
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः ।
मुखं त्वासीत्सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ॥ ४ ॥
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ।
चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद्गौतमश्चाऽस्यतां वरः ॥ ५ ॥
भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान् ।
कलिङ्गाः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः ॥ ६ ॥
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये ।
ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७ ॥
गजाश्वरथपत्त्योघास्तस्थुः परमदंशिताः ।
भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च वाह्लिकः ॥ ८ ॥
अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ९ ॥
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः ।
पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥ १० ॥
गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः पार्वतीया वसातयः ।
पुच्छे वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिबान्धवः ॥ ११ ॥
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया ।
जयद्रथो भीमरथः सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥ १२ ॥

द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छा से व्यूह-रचना-पूर्वक अपनी विशाल सेना साथ लेकर पाण्डवों की सेना की ओर चले। युधिष्ठिर ने देखा कि द्रोणाचार्य अपनी सेना को सुपर्णव्यूह रचकर युद्ध मे लाये हैं। तब युधिष्ठिर ने भी मण्डलार्द्धव्यूह अर्थात् अर्द्ध-चक्राकार व्यूह रचकर उनके विरुद्ध अपनी सेना को सञ्चालित किया। कौरव-सेना का व्यूह इस प्रकार था कि स्वयं महारथी द्रोणाचार्य उस व्यूह के मुख में स्थित थे। अपने अनुचरों और भाइयों सहित महाराज दुर्योधन उसके मस्तक में स्थित थे। कृतवर्मा और महातेजस्वी कृपाचार्य दोनों नेत्रों के स्थान पर थे। व्यूह के ग्रीवाभाग में भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, पराक्रमी करकाक्ष, कलिङ्ग, सिंहल, प्राच्य, शूर आभीर, दशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हस-पथ शूरसेन, दरद, मद्र और कैकेयगण सहस्रों हाथी, घोड़े, रथ और पैदल लिये हुए स्थित थे। भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त और वाह्लीक अक्षौहिणी सेना साथ लिये उसके दक्षिण भाग की रक्षा कर रहे थे। अवन्ती देश के विन्द, अनुविन्द और काम्बोजराज सुदक्षिण अश्वत्थामा के आगे रहकर वाम भाग की रक्षा कर

भूमिञ्जयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः ।
वृता बलेन महता ब्राह्मलोकपरिष्कृताः ॥ १३ ॥
व्यूहस्योरसि ते राजन्स्थिता युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ॥ १४ ॥
वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ।
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥ १५ ॥
सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे ।
तस्य प्राग्जोतिषो मध्ये विधिवत्कल्पितं गजम् ॥ १६ ॥
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ।
माल्यदामवता राजञ्श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ १७ ॥
कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ॥ १८ ॥
अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात्पर्वतो महान् ।
नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ॥ १९ ॥
समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।
ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥ २० ॥
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् ।
ब्राह्मणस्य वशं नाऽहमियामद्य यथा प्रभो ।
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥

रहे थे। अम्बष्ठ, कलिङ्ग, मागध, पौण्ड्र, मद्रक, गान्धार, शकुन, प्राच्य, पार्वतीय और वसातिगण पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे॥११११॥महारथी कर्ण के पुत्र अपने जातिवालों, बान्धवों और भाइयों सहित बहुत से देशों से आई हुई विशाल सेना साथ लिये उस व्यूह के पुच्छभाग में स्थित हुए। जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिञ्जय, वृष, क्राथ और पराक्रमी निषधराज बहुत सी सेना साथ लेकर उसके वक्ष-स्थल में स्थित हुए॥११।१४॥हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के द्वारा द्रोणाचार्य का रचा हुआ वह सुपर्ण-व्यूह आँधी से चलायमान महासागर के समान आन्दो-लित होने लगा। बड़े बड़े वीर योद्धा लोग युद्ध की इच्छा से व्यूह के पक्ष-प्रपक्ष-स्थानों से, वर्षाकाल के बिजली से शोभित गरजते हुए मेघों के समान, निक-लने लगे। सुसज्जित हाथी पर सवार प्राग्ज्योतिषेश्वर भगदत्त उस व्यूह के भीतर उदयाचल पर स्थित सूर्य के समान लगते थे। सेवकों ने भगदत्त के मस्तक पर फूलमाला से युक्त श्वेत छत्र लगाया, जिससे कार्त्तिकी पूर्णिमा को कृत्तिका नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के समान भगदत्त की शोभा हुई। उनका अञ्जनपुञ्जसदृश मद-मत्त गजराज जलधाराओं से नहा रहे महापर्वत के समान शोभायमान हुआ। देवगण जैसे इन्द्र के आस-पास शोभा को प्राप्त होते हैं, वैसे ही विविध शस्त्र धारण किये हुए, विचित्र अलङ्कारों से शोभित, पहाड़ी राजा लोग भगदत्त के आस-पास शोभित हो रहे थे ॥१४।२०॥उधर धर्मराज युधिष्ठिर ने बहुत ही दृढ़

धृष्टद्युम्न उवाच—द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २२ ॥
मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि ।
नहि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथञ्चन ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा किरन्बाणान्द्रुपदस्य सुतो बली ।
पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥
अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्षणेनैवाऽभवद् द्रोणो नाऽतिहृष्टमना इव ॥ २५ ॥
तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २६ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत ।
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥ २७ ॥
पार्षतः शरजालेन क्षिप्रम्प्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८ ॥
द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवाऽऽत्मजः ।
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् ॥ २९ ॥
तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः ।
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३० ॥
अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित्क्वचित् ॥ ३१ ॥

और दुर्भेद्य सुपर्णव्यूह की रचना देखकर सेनापति धृष्टद्युम्न से कहा— हे वीर ! आज ऐसा उपाय करो जिसमें द्रोणाचार्य मुझे पकड़ न सकें । धृष्टद्युम्न ने कहा—हे महाराज ! आप निर्भय रहें, द्रोणाचार्य बहुत यत्न करके भी आपको पकड़ न सकेंगे । मैं अपनी सेना और साथियों सहित उन्हें रोकूँगा, उनकी सारी चेष्टा व्यर्थ कर दूँगा । मेरे जीते जी आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें । आचार्य द्रोण मुझको किसी प्रकार भी परास्त नहीं कर सकते॥२१।२३॥ सञ्जय कहते हैं—अब महावीर धृष्टद्युम्न बाणों की वर्षा करते हुए आचार्य के सन्मुख आये । द्रोणाचार्य अपने कालस्वरूप अशुभदर्शन धृष्टद्युम्न को देखकर बहुत ही अप्रसन्न और उत्साहहीन हो गये । हे महाराज ! उस समय आपके पुत्र दुर्मुख, द्रोणाचार्य को अत्यन्त व्याकुल देखकर, उनका हित और सहायता करने के लिए धृष्टद्युम्न के सन्मुख आये । तब वे दोनों वीर भयानक संग्राम करने लगे । धृष्टद्युम्न ने बड़ी स्फूर्ति के साथ दुर्मुख को अपने बाणों की वर्षा से ढक दिया और फिर निरन्तर बाण बरसाकर आचार्य को भी रोका । दुर्मुख ने धृष्टद्युम्न के द्वारा आचार्य को निवारित देखकर स्फूर्ति से जाकर अनेक चिह्नों से युक्त तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से धृष्टद्युम्न को मोहित कर दिया । दोनों वीर इस प्रकार घोर संग्राम इधर करने लगे, उधर आचार्य द्रोण युधिष्ठिर की सेना

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्तत ॥ ३२ ॥
नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत्समवर्तत ॥ ३३ ॥
चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु ।
तेषामादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥ ३४ ॥
तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे ॥ ३५ ॥
नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् ।
रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३६ ॥
समुच्छ्रितपताकानां गजानां परमद्विपैः ।
क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ॥ ३७ ॥
तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसङ्घातसङ्घर्षात्सधूमोऽग्निरजायत ॥ ३८ ॥
विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाऽम्बुदाः ॥ ३९ ॥
विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।
सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव शारदी ॥ ४० ॥
तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरऋष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव सम्प्लवे ॥ ४१ ॥

पर बाण बरसाने लगे। जैसे मेघमण्डल वायु के वेग से छिन्न भिन्न हो जाता है वैसे ही युधिष्ठिर की सेना भी छिन्न भिन्न होने लगी। वह युद्ध क्षण भर ऐसा घोर हुआ कि देखनेवाले चकित हो गये॥२७।३२॥ अन्त को योद्धा लोग उन्मत्त की तरह युद्ध की मर्यादा और नियम आदि तोड़ करके तुमुल युद्ध करने लगे। उस समय दोनों पक्ष के लोग अपने-पराये का कुछ विचार न करके जो सन्मुख आया उसी को मारने लगे। [धूल और बाणों से ऐसा अँधेरा छा गया कि] केवल अनुमान और चेतना के द्वारा एक दूसरे को जान सकता था, किन्तु वास्तव मे कोई किसी को पहचान नहीं सकता था। वीरों के अङ्गों में चूडा-मणि, निष्क आदि अन्यान्य आभूषण और कनक-मण्डित कवच चमक रहे थे, जिनसे वे योद्धा लोग सूर्य के समान प्रतीत होते दिखाई देते थे। बगलों की कतार से शोभित मेघमण्डल के समान वे चलते-फिरते हुए पताकायुक्त गजराज, घोड़े और रथ अत्यन्त मनोहर देख पड़ते थे। योद्धाओं को योद्धाओं ने मारा, घोड़े घोड़ों से भिड़ गये, हाथियों ने हाथियों को गिराया और रथियों ने रथियों का नाश कर दिया॥३३।३६॥क्षण भर में हाथियों से हाथी भिड़ गये, और उनमें घोर युद्ध होने लगा। उन मदान्ध हाथियों के दाँतों की टक्कर और शरीर की रगड़ से धूमयुक्त अग्नि प्रकट होने लगी। हाथियों के दाँन

तोमराभिहताः केचिद्बाणैश्च परमद्विपाः ।
वित्रेसुः सर्वनागानां शब्दमेवाऽपरेऽव्रजन् ॥ ४२ ॥
विषाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३ ॥
प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमांकुशैः ॥ ४४ ॥
महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः ।
गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ॥ ४५ ॥
निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्परम् ॥ ४६ ॥
हतान्परिवहन्तश्च पतितान्पतितायुधान् ।
दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥ ४७ ॥
ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
पेतुरार्त्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ॥ ४८ ॥
तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः ।
आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ॥ ४९ ॥
सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।
मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५० ॥

और होदों पर की पताकाएँ टूट टूटकर गिरने लगीं और पूर्वोक्त प्रकार से अग्नि प्रज्वलित हो उठी, जिससे वे गजराज आकाश में बिजली युक्त मेघों के समान शोभा को प्राप्त होने लगे। जैसे शरद ऋतु के प्रथम आकाशमण्डल में मेघ छा जाते हैं, वैसे ही उस रण-भूमि में चारों ओर हाथी ही हाथी देख पड़ते थे। कोई हाथी घोर चीत्कार कर रहा था, कोई प्रहार से पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर रहा था। कोई-कोई हाथी तीक्ष्ण तोमर और बाणों के प्रहार से पीड़ित हो प्रलयकाल के मेघ के समान चिल्लाता हुआ पृथ्वी पर गिरकर मर जाता था॥३७।४१॥ कोई हाथी बाण और तोमर के प्रहार से विह्वल और शङ्कित होकर भाग खड़ा हुआ। कुछ हाथी दूसरे हाथियों के दाँतों के कठिन प्रहार से पीड़ित होकर प्रलयकाल के मेघगर्जन के समान भयानक आर्तनाद करने लगे। कोई हाथी दूसरे हाथी के प्रहार से पीड़ित होकर युद्ध छोड़कर भागा तो महावत ने उसको बारम्बार अङ्कुश मारे, जिससे उत्तेजित होकर वह फिर लौट पड़ा और क्रोधान्ध होकर शत्रुसेना को रौंदने लगा। महावतों में से किसी को दूसरे महावत ने बाण या तोमर मारे और वह मरकर हाथी की पीठ पर से पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसके हाथों से अङ्कुश और शस्त्र छूटकर अलग गिर पड़े। महावतों के बिना केवल होदा लादे हुए हाथी आर्तनाद करने और परस्पर भिड़कर, छिन्न भिन्न मेघखण्ड की तरह, पृथ्वी पर गिरने लगे॥४२।४५॥ कुछ हाथी पीठ पर निहत, पातित और पतितायुध योद्धाओं को लादे हुए बेसिलसिले गैंड़े की तरह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहे थे। कुछ हाथी तोमर, ऋष्टि और परशु आदि शस्त्रों की चोट खाकर आर्तनाद करते हुए, फटे हुए पर्वतशिखर की तरह, धमाधम

गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।
रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णांकुशतोमराः ॥ ५१ ॥
क्रौञ्चवद्विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः ।
परान्स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥ ५२ ॥
गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता ।
बभूव पृथिवी राजन्मांसशोणितकर्दमा ॥ ५३ ॥
प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः ।
सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥ ५४ ॥
रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः ॥ ५५ ॥
जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५६ ॥
आगुल्फेभ्योऽवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः ।
दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥ ५७ ॥
शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च ।
छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥ ५८ ॥
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा रथनेमिभिः ॥ ५९ ॥
सगजौघमहावेगः परासुनरशैवलः ।
रथौघतुमुलावर्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥ ६० ॥

पृथ्वी पर गिर रहे थे। उनकी पर्वतसदृश देहों के धमाके से पृथ्वीतल एकाएक काँप उठता था और शब्दायमान होने लगता था। मारे गये महावत की लाश लादे हुए पताकाशोभित बड़े-बड़े हाथी मर-मरकर चारों ओर गिरे पड़े थे, जिनसे वह रणभूमि पर्वतमालाओं से घिरी हुई सी जान पड़ती थी। हाथियों पर बैठे हुए महावत रथियों के मारे भल्ल बाणों से आहत और भिन्न हृदय होकर, अंकुश और तोमर छोड़कर, पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे। कोई कोई हाथी लोहमय नाराच बाणों की चोट खाकर क्रौञ्च पक्षी की तरह चिल्लाते हुए दोनों पक्ष की सेना को रौंदते हुए चारों ओर भागने लगे॥४६।५२॥ उस समय वह रणभूमि छिन्न-भिन्न हाथियों, घोड़ों और रथों से परिपूर्ण तथा मांस और रक्त की भयानक कीचड़ से अत्यन्त ही दुर्गम हो उठी। बड़े बड़े हाथी पहियोंदार और बे-पहियों के बड़े बड़े रथों को अपने दाँतों से तोड़ते-फोड़ते हुए उन्हें रथियों सहित ऊपर उछालने लगे। रथी वीरों से शून्य रथ, सवारों से शून्य घोड़े और हाथी शङ्कित और व्याकुल हुए चारों ओर भागने लगे। ऐसा संकुल युद्ध हुआ कि पिता पुत्र को न पहचानकर मारने-काटने लगा। इस प्रकार अत्यन्त घोर संग्राम होने पर ऐसा हो गया कि किसी को कुछ नहीं जान पड़ता था। रक्त की कीच में लोगों के पाँव निहत्ता-घिता भर धँस जाने लगे। उस

तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः ।
अवगाह्याऽथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ॥ ६१ ॥
शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वाञ्चितलक्ष्मसु ।
न तेष्वचित्ततां लेभे कश्चिदाहतलक्षणः ॥ ६२ ॥
वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान्द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ६३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

समय ऐसा जान पड़ने लगा कि मानों वृक्ष प्रज्व-लित दावानल के मध्य में गाड़ दिये गये हों। वस्त्र, कवच, छत्र और पताका आदि रक्त में सन जाने के कारण सभी कुछ रुधिरमय सा प्रतीत होने लगा। मरे और घायल होकर गिरे अधमरे घोड़े, हाथी, रथ और मनुष्य सब रथों के पहियों से छिन्न-भिन्न और खण्ड-खण्ड होने लगे। वह सेना का समुद्र ऐसा था कि बड़े बड़े हाथी से देख पड़ते थे ॥५६।६०॥ विजयाभिलाषी वीरगण वाहनरूप नौका पर बैठे उसमें नहा करके, निमग्न न होकर, शत्रुओं को मोह से अभिभूत करने लगे। अपने-अपने विशेष चिह्नों से अलङ्कृत वीरगण बाणों से अदृश्य हो उठे। बाण-प्रहार से उनके चिह्न नष्ट हो जाने के कारण कोई किसी को नहीं पहचान सकता था। महारथी द्रोणाचार्य उस भयानक संग्राम में शत्रुओं को मोहा-भिभूत करके राजा युधिष्ठिर की ओर चले॥६१।६३॥

द्रोणपर्व का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सञ्जय उवाच—ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वाऽन्तिकमुपागतम् ।
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥
ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे बले ।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम् ॥ २ ॥
दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
युधिष्ठिरमभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते महाबलौ ।
विक्षोभयन्तौ तत्सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥ ४ ॥
ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन् ॥ ५ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय ॥ २१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! राजा युधि-ष्ठिर द्रोणाचार्य को अपने समीप आये हुए देखकर उन पर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। हाथियों के यूथपति को जब कोई महासिंह पकड़ना चाहता है तब जैसे अन्य हाथी चिल्लाने लगते हैं, वैसे ही युधिष्ठिर के सैनिक लोग उस समय कोलाहल करने

तथाऽस्य सारथेः पञ्च शरान्सर्पविषोपमान् ।
अमुञ्चदन्तकप्रख्यान्संमुमोहाऽस्य सारथिः ॥ ६ ॥
अथास्य सहसाऽविध्यद्धयान्दशभिराशुगैः ।
दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ७ ॥
मण्डलं तु समावृत्य विचरन्पृतनामुखे ।
ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्याऽमित्रकर्षणः ॥ ८ ॥
द्रोणस्तु तत्समालोक्य चरितं तस्य संयुगे ।
मनसा चिन्तयामास प्राप्तकालमरिन्दमः ॥ ९ ॥
ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्वाऽस्य सशरं धनुः ॥ १० ॥
स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत्प्रतापवान् ।
द्रोणमभ्यहनद्राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाऽऽहवे ।
वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्याद्रोणमार्दयत् ॥ १२ ॥
सञ्छाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् ।
चुक्रुशुः पाण्डवा राजन्वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ १३ ॥
वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
द्रोणस्तु शरवर्षेण च्छाद्यमानो महारथः ।
वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ १५ ॥

---

लगे। सत्यविक्रमी सत्यजित्, द्रोणाचार्य को देखकर युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए आचार्य के सन्मुख आये। सेना को क्षुब्ध करके दोनों योद्धा वैसा ही घोर युद्ध करने लगे जैसा राजा बलि और इन्द्र से हुआ था। पराक्रमी सत्यजित् ने द्रोणाचार्य को तीक्ष्ण बाणों से घायल करके उनके सारथी को विषैले सर्प और काल के समान पाँच बाण मारे। इससे वह मूर्च्छित हो गया॥१।६॥फिर सत्यजित् ने आचार्य के घोड़ों को दस बाण मारे, दोनों पार्श्वों मे स्थित दोनों सारथियों को दस-दस बाणों से घायल किया, और मण्डलगति से घूमकर क्रोधपूर्वक शत्रुनाशन द्रोणाचार्य के रथ की ध्वजा काट डाली। शत्रुदमन द्रोण ने रणभूमि में सत्यजित् का यह अद्भुत कार्य देखकर उनका काल आया हुआ समझकर, तत्क्षण मर्मभेदी तीक्ष्ण दस बाण उनको मारे और उनका बाण सहित धनुष काट डाला॥७।१०॥हे राजेन्द्र ! प्रतापी सत्यजित् ने स्फूर्ति के साथ अन्य धनुष लेकर द्रोणाचार्य को कङ्कपत्र-शोभित तीस बाण मारे। सत्यजित् को इस प्रकार द्रोणाचार्य पर आक्रमण करते देखकर पाण्डवगण चिल्लाकर, वस्त्र हिलाकर, हर्ष प्रकट करने लगे। तब महाबली वृक ने अत्यन्त कोप करके द्रोणाचार्य के हृदय में साठ बाण मारे। दर्शकों को वृक का यह कार्य अत्यन्त अद्भुत प्रतीत हुआ॥११।१४॥महारथी द्रोण ने भी अत्यन्त कुपित होकर, शत्रु की ओर देखा और

ततः सत्यजितश्चापं छित्वा द्रोणो वृकस्य च ।
षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद्वृकम् ॥ १६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १७ ॥
स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनाऽर्दितो मृधे ।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ १८ ॥
हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।
अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १९ ॥
तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥ २० ॥
स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥
तस्मिन्हते महामात्रे पञ्चालानां महारथे ।
अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात्त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
पञ्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूपकोसलाः ।
युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ २३ ॥
ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवाऽनलः ॥ २४ ॥
निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः ।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥ २५ ॥

फिर वेग के साथ बाणवर्षा से शत्रुसेना को छा दिया। द्रोणाचार्य ने सत्यजित् और वृक का धनुष काटकर छः बाणों वृक के घोड़ा और सारथी को मारकर वृक को भी मार डाला। उधर सत्यजित् बड़े वेग के साथ अन्य धनुष लेकर तीक्ष्ण बाणों से द्रोणाचार्य को तथा उनके सारथी, ध्वजा और घोड़ों को छेदने लगे। सत्यजित् का यह प्रहार-कौशल असह्य होने के कारण, उन्हें मारने के लिए, महाबली द्रोणाचार्य ने शीघ्रता के साथ उनके घोड़े, ध्वजा, धनुष की मूठ और आसपास रहनेवाले रक्षकों तथा सारथी के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ किया। आचार्य द्रोण ने इस प्रकार जब बार-बार सत्यजित् के अनेक धनुष काट डाले तब महावीर सत्यजित् अत्यन्त कुपित होकर आचार्य के साथ भयानक युद्ध करने लगे ॥१५।२०॥ महारथी वीरवर द्रोणाचार्य ने ऐसे प्रभावशाली सत्यजित् को अपने आगे देख, अत्यन्त कुपित होकर, एक अर्धचन्द्र बाण से उनका सिर काट डाला। महारथी सत्यजित् की इस प्रकार मृत्यु हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के भय से शङ्कित और विह्वल होकर, बड़े वेग से रथ हँकवाकर उनके आगे से भाग खड़े हुए। इधर पाञ्चाल, कैकेय, मत्स्य, चेदि, करूष और कोशलदेश के योद्धागण महाराज युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए आचार्य के आगे उपस्थित हुए। जिस प्रकार अग्नि भूमी के ढेर को

सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विध्वाऽनदच्छ्रशम् ॥ २६ ॥
क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।
अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७ ॥
तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
क्षुरेणाऽपाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥
मत्स्याञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्करूपान्केकयानपि ।
पञ्चालान्सृञ्जयान्पाण्डून्भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २९ ॥
तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् ।
दृष्ट्वा रुक्मरथं वीरं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ ३० ॥
उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याऽऽशुकारिणः ।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान्दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ ३१ ॥
नागानश्वान्पदातींश्च रथिनो गजसादिनः ।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये ।
अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेषां भयमादधत् ॥ ३३ ॥
सर्वा दिशः समचरत्सैन्यं विक्षोभयन्निव ।
बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥ ३४ ॥
तस्य विद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्याऽमिततेजसः ॥ ३५ ॥

जलाती है वैसे ही महावीर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने की अभिलाषा से उन सम्मुख आये हुए वीरों को भस्म करने लगे॥२१।२४॥उस समय राजा विराट के छोटे भाई शतानीक द्रोणाचार्य को बारम्बार सेना का संहार करते देखकर उनके सम्मुख पहुँचे। दुष्कर कर्म करने के लिए उन्होंने सूर्य किरण सदृश तेज पुञ्ज छः बाणों से द्रोणाचार्य को, उनके घोड़ों को और सारथी को घायल किया। फिर बारम्बार सिंह नाद करके वे द्रोण पर बाण बरसाने लगे। उस समय द्रोणाचार्य ने स्फूर्ति के साथ क्षुरप्र बाण मारकर उनका कुण्डलमण्डित सिर काटकर गिरा दिया। यह देखकर मत्स्यदेश की सेना भय के मारे भाग खड़ी हुई॥२५।२८॥ इस प्रकार महारथी द्रोणाचार्य मत्स्यों को परास्त करके चेदि, कारूष, कैकेय, पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवों की सेना को बारम्बार मारने और हराने लगे। अत्यन्त कुपित द्रोणाचार्य को, वन को जलाते हुए दावानल के समान, सब शत्रुसेना को भस्म करते देखकर सृञ्जयगण भयभीत हो गये। शत्रुनाशन महारथी द्रोणाचार्य के धनुष का शब्द दसों दिशाओं में गूँज उठा। द्रोण के हाथ से छूटे हुए बाण असंख्य घोड़ा, हाथियों, रथों और पैदलों को नष्ट करने लगे॥२९।३३॥ग्रीष्म ऋतु में प्रबल आँधी से सञ्चालित, शिला बरसानेवाले, मेघों की तरह महाधनुर्द्धर, महाबाहु, मित्रपक्ष को अभयदान करनेवाले महावीर आचार्य

शोभमानां ध्वजे चाऽस्य वेदीमद्राक्ष्म भारत ।
हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे भृशम् ॥ ३६ ॥
द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत् ।
यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३७ ॥
स शूरः सत्यवाक्प्राज्ञो बलवान्सत्यविक्रमः ।
महानुभावः कल्पान्ते रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥ ३८ ॥
कवचोर्मिध्वजावर्त्तां मर्त्यकूलापहारिणीम् ।
गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३९ ॥
वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम् ।
चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥
शरौघिणीं धनुः स्रोतां बाहुपन्नगसङ्कुलाम् ।
रणभूमिवहां तीव्रां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ॥ ४१ ॥
मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम् ।
उष्णीषफेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ॥ ४२ ॥
वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् ।
हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥ ४३ ॥
क्रूरां शरीरसङ्घट्टां सादिनक्रां दुरत्ययाम् ।
द्रोणः प्रावर्त्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादगणसञ्जुष्टां श्वशृगालगणायुताम् ।
निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥ ४५ ॥

निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए युद्धभूमि मे चारों ओर विचरने लगे। उस समय उनका सुवर्णभूषित धनुष मेघमण्डल में स्थित बिजली की तरह चमकता और मण्डलाकार घूमता हुआ चारो ओर दृष्टिगोचर होने लगा॥३३।३५॥उनकी ध्वजा की वेदी हिमाचल के ऊँचे शिखर के समान शोभायमान थी। सुरासुरो के वन्दनीय महाप्रतापी भगवान् विष्णु जैसे दानव दल का दलन करें वैसे ही महावीर्यशाली आचार्य पाण्डवसेना का संहार करने लगे। महाबली सत्य-पराक्रमी द्रोण ने अस्त्रविद्या के प्रभाव से मनुष्य कुल-नाशिनी, कायरों को भयभीत करनेवाली और यमपुरी को जानेवाली घोर रक्त की नदी बहा दी॥३६।३८॥ गीदड़, कुत्ते और गिद्ध आदि मांसभोजी जीव तथा राक्षस उस नदी के आसपास भरे पड़े थे। टूटे-फूटे कवच उसमें लहरों के समान थे, ध्वजाएँ आवर्त-सदृश थीं, घोड़े और हाथी ग्राहगण थे, तलवारें मछली थीं, वीरों की हड्डियाँ कङ्कड़-पत्थर की जगह थीं, भेरी मुरज आदि बाजे कच्छप थे, ढालें और कवच छोटी-छोटी डोंगियाँ थे, केश सेवार और घास-फूस थे, बाणों की गति वेग था, धनुष प्रवाह थे, बाहुएँ पन्नग और मृत मनुष्यों के मस्तक ही शिलाओं के स्थान पर थे। लाशों की आँतें मछली सी, गदाएँ डोंगी सी, पगड़ियाँ फेनपुञ्ज सी, अतड़ियाँ कीड़े-मकोड़े सी, प्रतीत होती थीं। ध्वजाएँ तटवृक्ष की सी और घुड़-

तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥ ४६ ॥
ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥ ४७ ॥
तं तु शूरं महेष्वासं तावकाऽभ्युद्यतायुधाः ।
राजानो राजपुत्राश्च समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ४८ ॥
शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥
उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः ।
सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाऽष्टभिः ॥ ५० ॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः ।
धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥ ५१ ॥
ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२ ॥
ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत् ।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ५३ ॥
स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
त्राता ह्यभवदन्येषां न त्रातव्यः कथञ्चन ॥ ५४ ॥
शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद्यमसादनम् ॥ ५५ ॥

सवार तथा हाथी नक्र (घड़ियाल) से प्रतीत होते थे। उस रक्त की नदी में मांस और रुधिर की कीचड़ हो रही थी॥३९।४५॥द्रोणाचार्य को साक्षात् काल के समान सेना का संहार करते देखकर अनेक वीरों के साथ पाण्डवगण उनके सम्मुख आये और उनको रोकने की चेष्टा करने लगे। सूर्य के समान तेजस्वी द्रोणाचार्य भी उनसे घोर युद्ध करने लगे। यह देख कर कौरवपक्ष के सब राजा और राजपुत्र भी एकत्र होकर द्रोणाचार्य को चारों ओर से घेरकर उनकी रक्षा करने लगे॥४६।४८॥महावीर शिखण्डी ने पाँच बाण, क्षत्रवर्मा ने बीस बाण, वसुदान ने पाँच बाण, उत्तमौजा ने तीन बाण, क्षत्रदेव ने सात बाण, सात्यकि ने सौ बाण, युधामन्यु ने आठ बाण, युधिष्ठिर ने बारह बाण, धृष्टद्युम्न ने दस बाण और चेकितान ने तीन बाण द्रोणाचार्य को मारे। महावीर द्रोणाचार्य ने इन वीरों के बाणों की चोट सहकर, क्रुद्ध हो, मस्त हाथी की तरह रथसेना को लाँघकर दृढसेन को मार गिराया। फिर वे सहसा राजा क्षेम के सम्मुख पहुँचे। क्षेम निर्भय भाव से प्रहार करने लगे। आचार्य ने उन्हें नव बाण मारे। राजा क्षेम मृत्यु को प्राप्त हो गये। उनका शरीर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा॥४९।५३॥महावीर द्रोणाचार्य चारों ओर फिरकर सेना के मध्यस्थल में पहुँचे। अपने पक्ष के अन्य वीरों की रक्षा वही कर रहे थे, उनकी रक्षा कोई क्या करता।

अशीत्या क्षत्रवर्माणं षड्विंशत्या सुदक्षिणम् ।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६ ॥
युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम् ।
विध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५७ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ५८ ॥
तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत् ।
स हतः प्रापतद्भूमौ रथाज्ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥ ५९ ॥
तस्मिन्हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे ।
हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥ ६० ॥
तांस्तथा भृशसंरब्धान्पञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ।
सृञ्जयान्पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद्बली ॥ ६१ ॥
सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम् ॥ ६२ ॥
एतांश्चाऽन्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान् ।
सर्वान्द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥ ६३ ॥
तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे ।
पाण्डवेयान्रणे जघ्नुर्द्रवमाणान्समन्ततः ॥ ६४ ॥
ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना ।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्रोण ने वीर शिखण्डी को बारह और उत्तमौजा को बीस बाण मारकर एक भल्ल बाण से वसुदान को मार गिराया। फिर क्षत्रवर्मा को अस्सी और सुदक्षिण को छब्बीस बाण मारकर एक भल्ल बाण से क्षत्रदेव का सिर काट डाला और उन्हें रथ से गिरा दिया। इसके पश्चात् युधामन्यु को चौसठ और सात्यकि को तीस बाण मारकर वे बड़े वेग से युधिष्ठिर की ओर चले। धर्मपुत्र युधिष्ठिर स्फूर्ति के साथ अपने रथ के वेगशाली घोड़ों को हँकवाकर द्रोणाचार्य के सन्मुख से हट गये। अब महावीर पाञ्चाल्य नाम का राजकुमार द्रोणाचार्य के सन्मुख आया। आचार्य ने उसका धनुष काट डाला, उसके सारथी और रथ के घोड़ों को नष्ट करके उसे भी यमपुरी को भेज दिया। द्रोण के बाणों से निहत होकर महावीर पाञ्चाल्य ऐसे ही रथ से गिर पड़ा जैसे कोई उल्कापिण्ड आकाश से टूट कर पृथ्वी पर गिरता है। पञ्चाल्य के मारे जाने पर सब लोग चारों ओर से "द्रोण को मारो, द्रोण को मारो!" कहकर चिल्लाने लगे॥५४।६०॥ महापराक्रमी आचार्य कुपित होकर पाञ्चाल, मत्स्य, केकय, सृञ्जय और पाण्डवों की सेना को मारने लगे। चारों ओर हलचल सी मच गई। सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेम और चित्रसेन के पुत्र, सेना-

त्रिन्दु, सुवर्चा और अन्य बहुत से वीर द्रोणाचार्य और कौरव-सेना से परास्त हो गये। हे महाराज! कौरवगण इस प्रकार जय प्राप्त करके भागती हुई पाण्डवसेना का संहार करने लगे। दानवगण जैसे इन्द्र से परास्त होकर कम्पायमान हों वैसे ही पाञ्चाल, मत्स्य, केकय गण आचार्य से परास्त होकर काँपने लगे॥६१।६५॥

द्रोणपर्व का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

धृतराष्ट्र उवाच – भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे ।
पाञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम् ।
असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥ २ ॥
स हि वीरो व्रतः शूरो यो भग्नेषु निवर्त्तते ।
अहो नाऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम्॥ ३ ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
त्यजन्तमाहवे प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४ ॥
महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतां भयवर्धनम् ।
कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५ ॥
भारद्वाजं तथाऽनीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम् ।
के शूराः सन्न्यवर्त्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच तान्दृष्ट्वा चलितान्संख्ये प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
पञ्चालान्पाण्डवान्मत्स्यान्सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥ ७ ॥
द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणाऽऽशुहारिणा ।
सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान्यथा प्लवान् ॥ ८ ॥
कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च ।
रथद्विपनरांश्चैव सर्वतः समवारयन् ॥ ९ ॥

बाईसवाँ अध्याय॥ २२॥

धृतराष्ट्र ने कहा – हे सञ्जय! उस महासमर में द्रोणाचार्य ने जब पाञ्चालों और पाण्डवों की सेना को मार भगाया तब और कौन उनके सन्मुख उनका सामना करने के लिए आया? कृतज्ञ, सत्यपरायण, दुर्योधन के हितैषी, चित्रयुद्धनिपुण, महाधनुर्द्धर, शत्रुपक्ष के लिए भयङ्कर, कुपित सिंह के समान, मस्त गजराज के तुल्य, पुरुषसिंह शूर द्रोणाचार्य जब जीवन का मोह छोड़कर क्षत्रियों के लिए यशस्कर, वीरों को प्रिय और कापुरुषों को अप्रिय युद्ध का दृढ़ विचार करके युद्धभूमि में मृत्यु की तरह विचरने लगे होंगे तब उनका सामना किसने किया होगा? हे सञ्जय! उस समय कौन-कौन वीर समर करने के लिए उद्यत हुआ? सब वृत्तान्त मुझे सुनाओ॥१।६॥सञ्जय ने कहा-हे महाराज! पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, सृञ्जय, चेदि और केकयगण को आचार्य के दारुण बाणों के प्रहार से पीड़ित और विह्वल होकर सागर के वेग से बहते हुए

तान्पश्यन्सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥ १० ॥

दुर्योधन उवाच – पश्य राधेय पञ्चालान्प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।
सिंहेनेव मृगान्वन्यांस्त्रासितान्दृढधन्वना ॥ ११ ॥
नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः ।
यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः ॥ १२ ॥
अर्द्यमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना ।
पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्ततः ॥ १३ ॥
सन्निरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना ।
एतेऽन्ये मण्डलीभूताः पावकेनेव कुञ्जराः ॥ १४ ॥
भ्रमरैरिव चाऽऽविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।
अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥ १५ ॥
एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवसृञ्जयैः ।
मदीयैरावृतो योधैः कर्ण नन्दयतीव माम् ॥ १६ ॥
व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः ।
निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥ १७ ॥

कर्ण उवाच – नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत् ।
न चेमान्पुरुषव्याघ्र सिंहनादान्सहिष्यति ॥ १८ ॥
न चाऽपि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः ।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १९ ॥

जहाजो की तरह भागने देखकर कौरव सिंहनाद करने लगे। कौरव सेना में हर्षसूचक विविध बाजे बजने लगे। कौरवपक्ष के वीरगण पराक्रमपूर्वक शत्रुपक्ष के रथों, घोड़ो और हाथियों को आगे बढ़ने से रोकने लगे। सेना और स्वजनमण्डली के मध्य में स्थित राजा दुर्योधन उस समय शत्रुपक्ष की सेना को इस दशा में देखकर प्रसन्नतापूर्वक जोर से हँसकर कर्ण से कहने लगे॥७।१०॥ हे मित्र कर्ण! यह देखो, पाञ्चालगण सिंह के भय से विह्वल हिरनों के झुण्ड की तरह आचार्य के बाणो से अत्यन्त पीड़ित होकर बहुत ही व्याकुल हो रहे है। वायु के झोंके से जैसे वृक्ष टूट जाते हैं वैसे ही ये लोग आचार्य के बाणों से मरकर अथवा घायल होकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं। जान पड़ता है, अब ये लोग युद्ध नहीं करेंगे। वह देखो, अगणित शत्रु-सेना महारथी आचार्य के सुवर्णपुङ्ख-शोभित तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर न तो भाग ही सकती हैं और न ठहर ही सकती है: योद्धा लोग इधर-उधर घूम रहे हैं। वह देखो, हाथी जैसे दावानल के मध्य में घिरकर इधर-उधर दौड़ते है वैसे ही बहुत सी सेना महारथी द्रोण और अन्यान्य कौरवपक्ष के वीरों से घिरकर इधर-उधर भागती और भागने को राह न पाकर चारों ओर घूम रही है॥११।१४॥ वह देखो, पाण्डवों की सेना द्रोणाचार्य के तीक्ष्ण बाणों से, जो भौरों की तरह भन्ना रहे हैं, विद्ध होकर भागती है और परस्पर भिड़

विषाग्निद्यूतसंक्लेशान्वनवासं च पाण्डवाः ।
स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः ॥ २० ॥
निवृत्तो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः ।
वरान्वरान्हि कौन्तेयो रथोदारान्हनिष्यति ॥ २१ ॥
असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः ।
आयसेन च दण्डेन व्रातान्व्रातान्हनिष्यति ॥ २२ ॥
तमेनमनुवर्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
पञ्चाला केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥
शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः ।
विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥ २४ ॥
ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥
एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् ।
अरक्ष्यमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥ २६ ॥
असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चाऽपि वारणे ।
अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् ॥ २७ ॥
शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २८ ॥

जाती है । वह देखो, कुपित भीमसेन को कौरव वीरों ने घेर लिया है और पाण्डवों तथा सृञ्जयों की सेना साथ छोड़कर भाग खड़ी हुई है । इससे मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है । यह दुरात्मा भीमसेन आज चारों ओर द्रोण को ही देख रहा है, और जीवन तथा राज्य से निराश सा हो गया है॥१५।१७॥ कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र! महावीर भीम जीते जी कदापि युद्ध से हटनेवाले नहीं हैं। ये हम लोगों का उल्लास और सिंहनाद भी कदापि नहीं सहन कर सकते । यह सम्भव नहीं है कि बलवीर्य-सम्पन्न, युद्धदुर्मद और अस्त्र-शस्त्र की विद्या को भलीभान्ति सीखे हुए पाण्डव एकाएक हार मान लें और युद्ध छोड़ दें । वे विष दान, अग्नि में जलाने की चेष्टा, जुए की विडम्बना और वनवास के कष्टों को कभी न भूलेंगे और समर में न हटेंगे॥१८।२०॥महा-तेजस्वी महावीर भीमसेन युद्धभूमि में लौटे हुए आ रहे हैं, वे अवश्य ही हमारे पक्ष के प्रधान-प्रधान वीरों को यमपुर पहुँचावेंगे । उनके खड्ग, धनुष, शक्ति और लोहमय गदा के एक एक प्रहार से असंख्य रथ, हाथी, घोड़े और पैदल विनष्ट होंगे । महावीर सात्यकि आदि योद्धा और पाञ्चाल, कैकेय, मत्स्य और पाण्डवगण भीमसेन के साथ हैं । ये सब महावीर महापराक्रमी और महारथी हैं॥२१।२४॥विशेष-कर महाक्रोधी वीर भीमसेन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर इन सबको युद्ध करने के लिए भेजा है । मेघ जैसे सूर्य को घेर लेते हैं वैसे ही ये सब वीर भीमसेन को घेरकर, सुरक्षित करके, चारों ओर से द्रोणाचार्य के सन्मुख आ रहे हैं । मरने के लिए उद्यत पतङ्ग जैसे दीपक पर गिरते हैं वैसे ही ये सब वीर एकाग्र चित्त से, जीवन की आशा छोड़कर, अरक्षित द्रोणा-

सञ्जय उवाच—राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्प्रायाद्द्रोणरथं प्रति ॥ २९ ॥
तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम् ।
पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

चार्य के ऊपर आक्रमण करेंगे। अस्त्र-शस्त्रकला में इन्होंने अच्छी प्रकार अभ्यास किया है, अतएव आचार्य का सामना करना और उन्हें रोकना इन लोगों के लिए कुछ दुःसाध्य नहीं है। मेरी समझ में आचार्य पर बहुत भार आ पड़ा है, इसलिए इस समय उनके पास जाकर उनकी सहायता करना हम लोगों का कर्तव्य है। भेड़िये मिलकर जैसे एक बड़े गजराज को मार डालें वैसे ही पाण्डवपक्ष के सब योद्धा मिल-कर अकेले द्रोणाचार्य को न मार डालें, यही सोचकर हमें आचार्य की सहायता करनी चाहिए॥२५।२८॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! कर्ण के ये वचन सुनकर भाइयों और अन्य वीरों सहित राजा दुर्योधन महारथी द्रोणाचार्य के समीप गये। तब पाण्डवपक्ष के योद्धा, रङ्ग-रङ्ग के घोड़े जिनमें जुते हुए हैं ऐसे, रथों पर बैठकर द्रोणाचार्य को मारने के लिए आगे बढ़े और घोर सिंहनाद तथा कोलाहल करने लगे॥२९।३०॥

द्रोणपर्व का बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि सञ्जय ।
ये द्रोणमभ्यवर्त्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् ।
रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः सन्न्यवर्त्तत ॥ २ ॥
सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन्हयान् ।
पर्यवर्त्तत दुर्धर्षः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ३ ॥
पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो न्यवर्त्तत ॥ ४ ॥
पितरं तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः ।
सिद्धिं चाऽस्य परां काङ्क्षन्शोणाश्वः सन्न्यवर्त्तत ॥ ५ ॥
पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान्मल्लिकाक्षान्स्वलंकृतान् ।
शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु स्वयं प्रत्वरयन्ययौ ॥ ६ ॥

तेईसवाँ अध्याय ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! भीमसेन आदि जो वीर क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य का सामना करने गये थे, उनके रथों और चिह्नों का वर्णन करो, मैं सुनना चाहता हूँ॥१॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! सुनिए। महारथी भीमसेन रीछ के से रङ्ग के घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर समरभूमि में आये। महावीर सात्यकि चाँदी के रङ्ग के श्वेत घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर द्रोणा-चार्य की ओर चले। महारथी युधामन्यु अत्यन्त क्रुद्ध

दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः ।
वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः ॥ ७ ॥
कृष्णास्तु मेघसङ्काशा अवहन्नुत्तमौजसम् ।
दुर्धर्षायाभिसन्धाय क्रुद्धं युद्धाय भारत ॥ ८ ॥
तथा तित्तिरिकल्माषा हया वातसमा जवे ।
अवहंस्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥ ९ ॥
दन्तवर्णास्तु राजानं कालवाला युधिष्ठिरम् ।
भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन्वातरंहसः ॥ १० ॥
हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे ।
अभ्यवर्त्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
राज्ञस्त्वनन्तरो राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत् ।
जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥ १२ ॥
ललामैर्हरिभिर्युक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि ।
राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत ॥ १३ ॥
तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः ।
केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥ १४ ॥
स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः ।
तं तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ १५ ॥
वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
हरिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥ १६ ॥

होकर सारङ्ग-वर्ण (श्वेत नीला और लाल रङ्ग मिश्रित) के घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर और महायोद्धा धृष्टद्युम्न महावेगशाली सुवर्णभूषित कबूतर के रङ्गवाले अर्थात् श्वेत नीले घोड़ों के रथ पर बैठकर युद्ध करने चले। धृष्टद्युम्न के पुत्र महावीर क्षत्रधर्मा अपने पिता की रक्षा करने और विजय प्राप्त करने की इच्छा से लाल घोड़ों-वाले रथ के ऊपर बैठकर चले॥२।४॥शिखण्डी के पुत्र महाबाहु क्षत्रदेव अपने हाथ से, पद्मदल के रङ्गवाले और मल्लिका-पुष्प के रङ्ग की आँखोंवाले, घोड़ों को हाँकते हुए आगे बढ़े। वीर नकुल तोते के पङ्ख के रङ्ग के काम्बोजदेशीय दर्शनीय घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर युद्ध करने चले। वीर उत्तमौजा श्याम-मेघवर्ण घोड़ेवाले रथ पर बैठकर समरभूमि में आये॥५।८॥ सशस्त्र महावीर सहदेव के रथ में वायुवेगगामी तीतर के रङ्ग के कबरे घोड़े जुते हुए थे। सब योद्धा सैनिक-गण सुवर्ण के आभूषणों से भूषित वायुवेगगामी घोड़ों से युक्त रथों पर बैठकर युधिष्ठिर के पीछे चले। महाराज युधिष्ठिर के रथ में ऐसे सुन्दर घोड़े जुते हुए थे, जिनका रङ्ग हाथीदाँत का सा था और जिनकी गर्दन पर काले और लम्बे बाल थे॥९।११॥पाञ्चाल-राज द्रुपद सुवर्णमण्डित रथ पर बैठकर, युधिष्ठिर के पीछे चलनेवाली सेना से सुरक्षित होकर, धर्मराज के पीछे समरभूमि में चले। राजाओं के मध्य में स्थित महाधनुर्द्धर द्रुपद के रथ में ऐसे घोड़े जुते हुए

पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् ।
इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १७ ॥
जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः ।
ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १८ ॥
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः ।
आमपात्रनिकाशास्तु पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ १९ ॥
दत्तास्तुम्बुरुणा दिव्याः शिखण्डिनमुदावहन् ।
तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः ॥ २० ॥
तेषां तु षट्सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः ।
पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ॥ २१ ॥
आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला हयाः ।
धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ॥ २२ ॥
काम्बोजैः शबलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः ।
बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः ॥ २३ ॥
पलालधूमसङ्काशाः सैन्धवाः शीघ्रमावहन् ।
मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा बाल्हिजाताः स्वलंकृताः ॥ २४ ॥
शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेवमुदावहन् ।
रुक्मभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥ २५ ॥
क्षमावन्तोऽवहन्संख्ये सेनाविन्दुमरिन्दमम् ।
युवानमवहन्युद्धे क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमाः ॥ २६ ॥

थे, जो निर्भय, किसी भी शब्द से न भड़कनेवाले, बहुमूल्य आभूषण पहने और परम सुन्दर थे। राजा द्रुपद के सिर पर स्वर्णमय छत्र तना हुआ था। मत्स्यराज बली विराट उनके पीछे चले। केकयदेश के राजकुमार, महावीर शिखण्डी और धृष्टकेतु अपनी-अपनी सेना को साथ लिये राजा विराट के पीछे चले। महाराज विराट के रथ में पाटल-पुष्प के रङ्ग के श्वेत दिव्य घोड़े जुते हुए थे। विराट के पुत्र के रथ में स्वर्णहारभूषित, वेग से चलनेवाले, पीले घोड़े लगे हुए थे ॥१२।१६॥ सुवर्णवर्ण और सुवर्ण की मालाओं से अलंकृत युद्धनिपुण केकयदेश के राजकुमार पाँचों भाई कवच पहने, लाल ध्वजा और बीरबहूटी के रङ्ग के लाल घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर वर्षाकाल के बरसते हुए मेघ के समान शोभायमान हुए॥१६।१९॥ महाबली शिखण्डी के रथ में कच्चे घड़े के रङ्ग के, तुम्बुरु गन्धर्व के दियेहुए, बहुमूल्य दिव्य घोड़े लगे हुए थे। युद्ध के लिए आये हुए बारह सहस्र पाञ्चालदेशीय योद्धाओं में से छः सहस्र वीर समरनिपुण महावीर तेजस्वी शिखण्डी के साथ चले। शिशुपाल के पुत्र के रथ में सारङ्ग के रङ्ग के (चितकबरे) घोड़े जुते थे। महाबलशाली वीर चेदिनरेश अपनी सेना को साथ लेकर काम्बोज देश के घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर युद्ध के लिए चले। कैकेयदेश के राजा बृहत्क्षत्र धुएँ के रङ्ग के सिन्धुदेशीय घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर संग्राम करने

काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम् ।
श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः ।
यन्तुः प्रेष्यकरा राजन्राजपुत्रमुदावहन् ॥ २७ ॥
सुतसोमं तु यः सौम्यं पार्थः पुत्रमजीजनत् ।
माषपुष्पसवर्णास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ २८ ॥
सहस्रसोमप्रतिमो बभूव पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाम्नि ।
तस्मिञ्जातः सोमसंक्रन्दमध्ये यस्मात्तस्मात्सुतसोमोऽभवत्सः ॥ २९ ॥
नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः ।
आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३० ॥
काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसन्निभाः ।
द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ ३१ ॥
श्रुतकीर्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः ।
ऊहुः पार्थसमं युद्धे चाषपत्रनिभा हयाः ॥ ३२ ॥
यमाहुरध्यर्धगुणं कृष्णात्पार्थाच्च संयुगे ।
अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन्रणे ॥ ३३ ॥
एकस्तु धार्त्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।
तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन्रणे ॥ ३४ ॥
पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धक्षेमिं तरस्विनम् ।
ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः कृष्णाः स्वलंकृताः ॥ ३५ ॥

चले॥१९।२४॥शिखण्डी के पुत्र क्षत्रदेव के रथ में कमल के से रङ्ग के, मल्लिका पुष्पसदृश रङ्ग की आँखोंवाले, बाह्लीकदेश के दिव्य घोड़े लगे हुए थे। शत्रुदमन सेनाबिन्दु के रथ में सुवर्णजाल से सुरक्षित और रेशम के रङ्ग के, शान्त, इच्छानुसार चलनेवाले घोड़े शोभायमान थे। काशिराज अभिभू के पुत्र महारथी नवयुवक सुकुमारवर्मा के रथ में क्रौञ्च पक्षी के रङ्ग के दिव्य घोड़े जुते हुए थे। काली गर्दन और श्वेत शरीरवाले, शीघ्रगामी और सारथी के इशारे पर इच्छानुसार चलनेवाले घोड़े युधिष्ठिर के पुत्र प्रतिविन्ध्य के रथ की शोभा बढ़ा रहे थे॥२४।२७॥भीमसेन के पुत्र श्रेष्ठ योद्धा महारथी सुतसोम के रथ के घोड़े उड़द के फूल के रङ्ग के थे। सुतसोम सहस्रसोम (चन्द्रमा) के समान सौम्य हैं और उनका जन्म उदयेन्दु पुर (इन्द्रप्रस्थ) में, सोमाभिषव में, सोम के प्रसाद से हुआ था। वे सोमसभा में प्रसिद्ध हैं। हे महाराज! नकुल के पुत्र प्रशंसनीय शतानीक के रथ में साखू के पुष्प के रङ्ग के और तरुण सूर्य के समान चमकीले श्रेष्ठ घोड़े लगे हुए थे॥२८।३०॥सहदेव के पुत्र महाबली श्रुतकर्मा के घोड़ों का रङ्ग मयूरग्रीव नाम के पक्षी के रङ्ग का था और उनके मुख में सुवर्ण की लगाम थी, साज भी सब सुनहरा था। अर्जुन के पुत्र अर्जुनतुल्य पराक्रमी श्रुतनिधि श्रुतकीर्ति के रथ के घोड़ों का रङ्ग चकवे के पङ्ख के समान था। युद्ध-भूमि में श्रीकृष्ण और अर्जुन से ड्योढ़ी युद्धनिपुणता दिखानेवाले पराक्रमी वीर अभिमन्यु पिशङ्गवर्ण घोड़ों से शोभित रथ

कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुरच्छदैः ।
सौचित्तिमवहन्युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः ॥ ३६ ॥
रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः ।
सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ॥ ३७ ॥
रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः ।
काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३८ ॥
अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् ।
तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥ ३९ ॥
यः स पाञ्चालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत् ।
पारावतसवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ४० ॥
तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥ ४१ ॥
युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेममालिभिः ।
भीषयन्तो द्विषत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥ ४२ ॥
प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः षट्सहस्राण्युदायुधाः ।
नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हेमवर्णरथध्वजाः ॥ ४३ ॥
शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून्विततकार्मुकाः ।
समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥ ४४ ॥
बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५ ॥

पर बैठकर चले॥३१।३३॥अपने सौ भाइयों को छोड़कर पाण्डवों के पक्ष मे जानेवाले आपके पुत्र युयुत्सु के रथ में बहुत बड़े, मृणाल के रङ्ग के, घोड़े जुते हुए थे। महावीर वृद्धक्षेम के पुत्र के रथ में पयाल के रङ्ग के अलंकृत और फुर्तीले घोड़े लगे हुए थे। सुचित्ति के पुत्र के रथ में सुवर्णजालशोभित काले पाँववाले सुशिक्षित विनीत घोड़े जुते हुए थे॥३४।३६॥ श्रेणिमान् राजा के रथ के घोड़े सुवर्णपीठशोभित, अलंकृत, सुवर्ण की मालाओं से भूषित, सधे हुए, श्वेत रङ्ग के थे। काशिराज के रथ में सुवर्णमाला और सुवर्णपीठ से भूषित धीरप्रकृति घोड़े लगे हुए थे ॥३७।३८॥अस्त्रविद्या, धनुर्वेद और वेदशास्त्र के पारगामी पण्डित क्षत्रिश्रेष्ठ सत्यधृति लाल घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर द्रोणाचार्य से युद्ध करने चले। पाञ्चालसेना के सेनापति और द्रोणाचार्य का सिर काटनेवाले धृष्टद्युम्न के रथ में श्वेत नीले रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे। धृष्टद्युम्न के पीछे यम और कुबेर के तुल्य महावीर सत्यधृति, युद्धप्रिय सुचित्तिपुत्र श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराजतनय आदि वीरगण वेगशाली, सुवर्णमालाधारी, काम्बोजदेशीय घोड़ोंवाले रथों पर बैठकर शत्रुसेना को भयभीत करवाते हुए समरभूमि में चले ॥३९।४२॥धृष्टद्युम्न के साथ काम्बोजदेशीय छः सहस्र प्रभद्रक योद्धा शस्त्र उठाये हुए, प्राणों का मोह छोड़कर, धनुष चढाकर शत्रुओं पर बाण बरसाते हुए

इन्द्रायुधसवर्णस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः ।
आयात्सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥ ४६ ॥
अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाचित्रिता इव ।
राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥ ४७ ॥-
कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः ।
जारासन्धिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ॥ ४८ ॥
ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः ।
जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ॥ ४९ ॥
शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्गतराजयः ।
पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥ ५० ॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः ।
तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ५१ ॥
माषवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः ।
दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन्द्रुतम् ॥ ५२ ॥
शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः ।
पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥ ५३ ॥
रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः ।
वल्गन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥ ५४ ॥
हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः ।
सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन् ॥ ५५ ॥

---

चले । उनके रथों में अनेक रङ्ग के बहुमूल्य घोड़े लगे हुए थे और रथ तथा ध्वजाएँ सुवर्णमण्डित थीं॥४३। ४४॥चेकितान के रथ के बहुमूल्य घोड़े सुवर्ण की मालाओं से भूषित, प्रफुल्लचित्त और न्योले के रङ्ग के थे । अर्जुन के मामा कुन्तिभोज पुरुजित् इन्द्र-धनुष के रङ्गवाले श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ में बैठकर युद्ध करने चले । महाराज रोचमान तारागण चित्रित आकाश के समान रङ्गवाले श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर द्रोणाचार्य का सामना करने चले॥४५। ४७॥काले पाँववाले चितकबरे घोड़े जरासन्ध के पुत्र वीरश्रेष्ठ सहदेव के रथ में जुते हुए थे । उन घोड़ों के गले में रत्नमण्डित सुवर्ण की मालाएँ पड़ी हुई थीं। सुदामा नामक वीर के रथ के घोड़े पुष्करनाल के रङ्ग के और वेग में बाज के समान जानेवाले थे । पाञ्चालदेशीय गोपति राजा के पुत्र सिंहसेन के रथ में खरगोश के से लाल रङ्ग के चमकीले रोएँवाले घोड़े जुते हुए थे । पाञ्चालदेशीय प्रसिद्ध वीर जनमेजय ऐसे रथ पर बैठकर युद्धभूमि में चले जिसमें सरसों के फूल के से रङ्गवाले बहुमूल्य घोड़े जुते हुए थे । पाञ्चाल्य नाम के राजा के रथ में सुवर्णमालाधारी वेगशाली उड़द के फूल के रङ्गवाले घोड़े लगे हुए थे॥४८।५१॥उनकी पीठ दही के रङ्ग की थी और चेहरे का रङ्ग विचित्र था। राजा दण्डधार के रथ में पद्मकेसर के रङ्ग के सुन्दर सिरवाले, श्वेत और पुष्ट, शूर घोड़े लगे हुए थे । राजा

इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः ।
काये चित्रान्तराश्चित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥ ५६ ॥
बिभ्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा हयाः ।
कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन् ॥ ५७ ॥
शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः ।
युद्धे सत्यधृतिं क्षेमिमवहन्प्रांशवः शुभाः ॥ ५८ ॥
एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्तत ॥ ५९ ॥
समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम् ।
अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन् ॥ ६० ॥
नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः ।
शैब्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्या वहन्हयाः ॥ ६१ ॥
कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः ।
रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ६२ ॥
यं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् ।
तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णावहन्हयाः ॥ ६३ ॥
चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् ।
ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ ६४ ॥
एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥ ६५ ॥

व्याघ्रदत्त के रथ में अरुण-मलिनवर्ण-शरीर और मूसे के रङ्ग की पीठवाले घोड़े जुते हुए थे। वे घोड़े जाने के लिए बड़ी शीघ्रता दिखा रहे थे॥५२।५४॥विचित्र मालाओं से भूषित, काले मस्तकवाले चितकबरे घोड़े पुरुषसिंह पाञ्चालदेशीय सुधन्वा के रथ में जुते हुए थे। अद्भुतदर्शन, विचित्रवर्ण, बीरबहूटी के रङ्ग के घोड़े चित्रायुध राजा के रथ में जुते हुए थे। कोशलाधिपति के पुत्र सुक्षत्र के रथ में विचित्रवर्ण, ऊँचे, सुवर्णमाला-भूषित, चकवे के पेट के से रङ्गवाले सुन्दर घोड़े जुते हुए थे॥५५।५७॥सत्यधृति क्षेमि भी सुवर्णमाल्य धारी, बड़े और ऊँचे, शुभदर्शन, सधे हुए कबरे घोड़ों से युक्त रथ में बैठकर आगे बढ़े। महावीर शुक्र की ध्वजा, कवच, धनुष और रथ के घोड़े आदि सब सामान श्वेत ही था। रुद्र के समान तेजस्वी समुद्रसेन के पुत्र चन्द्रसेन के रथ के घोड़े चन्द्रमा के समान श्वेत थे। शिबि के पुत्र चित्ररथ के रथ के घोड़े नीलकमल के रङ्ग के, सुवर्णभूषित और विचित्र मालाओं से अलङ्कृत थे। मिश्रश्यामा वर्ण और लाल-श्वेत रोमों से शोभित श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर युद्धप्रिय महायोद्धा रथसेन युद्ध करने चले। पटच्चर नामक असुरों को मारनेवाले और सब मनुष्यों से बढ़कर शूर कहलानेवाले समुद्राधिप के रथ में तोते के रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे॥६१।६३॥विचित्र माला, कवच, आयुध और ध्वजा से अलङ्कृत चित्रा-

नानारूपै रत्नचिह्नैर्वरूथरथकार्मुकैः ।
वाजिध्वजपताकाभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥ ६६ ॥
ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ।
ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७ ॥
योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः ।
श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयावहन् ॥ ६८ ॥
केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे ।
भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च बन्धुषु ॥ ६९ ॥
भीष्मादवाप्य चास्त्राणि द्रोणाद्रामात्कृपात्तथा ।
अस्त्रैःसमत्वं सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥ ७० ॥
इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां जेतुं च मेदिनीम् ।
निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ॥ ७१ ॥
वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः ।
स सागरध्वजः पाण्ड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥ ७२ ॥
वैदूर्यजालसञ्छन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।
दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद्बली ॥ ७३ ॥
आटरूपकवर्णाभा हयाः पाण्ड्यानुयायिनाम् ।
अवहन्रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ७४ ॥
नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः ।
रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७५ ॥

युध के रथ में ढाक के फूल के रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे । महाराज नील की ध्वजा, कवच, धनुष, रथ के घोड़े आदि सब सामान नीले रङ्ग का था । चित्र राजा के घोड़े, ध्वजा, पताका, रथ, धनुष आदि सब सामान विचित्रवर्ण नाना रूप रत्नचिह्नों से विचित्र था॥६४।६६॥रोचमान के पुत्र हेमवर्ण के रथ के श्रेष्ठ घोड़े पद्म के रङ्ग के थे । दण्डकेतु के रथ के घोड़े युद्धसमर्थ, सुडौल, शर-दण्ड के समान उज्ज्वल और पीठवाले, श्वेत अण्डकोशवाले और मुर्गी के अण्डे की सी आभावाले थे॥६७।६८॥श्रीकृष्ण के हाथों युद्ध में पिता की मृत्यु होने पर, पाण्ड्यदेश-नरेश के सहायक मित्रों के भाग जाने और नगर लुट जाने पर जिन्होंने भीष्म, द्रोण और परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त करके अस्त्रविद्या में रुक्मी, कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान होकर द्वारकापुरी को नष्ट-भ्रष्ट करने और पृथ्वीमण्डल को जीतने का अभिप्राय किया था; किन्तु फिर हितचिन्तक सुहृदों के समझाने पर श्रीकृष्ण से वैर और बदला लेने का विचार छोड़ दिया और इस समय जो उत्तमता के साथ अपने राज्य का शासन कर रहे हैं, वे पाण्ड्यनरेश सागरध्वज वैदूर्य-जालमण्डित चन्द्रकिरण के रङ्ग के घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर, अपने बाहुबल से दिव्य दृढ़ धनुष चढ़ाकर, द्रोणाचार्य के सन्मुख चले॥६९।७३॥ पाण्ड्यनरेश के अनुयायी १,४०००० श्रेष्ठ रथियों

भरतानां समेतानामुत्सृज्यैको मतानि यः ।
गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम् ॥ ७६ ॥
लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमरट्टजाः ।
महासत्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥ ७७ ॥
सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् ।
राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ७८ ॥
वर्णैरुच्चावचैरन्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः ।
सन्न्यवर्त्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥ ७९ ॥
ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ ८० ॥
अत्यरोचत तान्सर्वान्धृष्टद्युम्नः समागतान् ।
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत ॥ ८१ ॥
अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः कृष्णाजिनोत्तरः ।
कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः ॥ ८२ ॥
ध्वजं तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम् ।
भ्राजमानं महासिंहं राजन्तं दृष्टवानहम् ॥ ८३ ॥
ध्वजं तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः ।
दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम् ॥ ८४ ॥
मृदङ्गौ चाऽत्र विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ ।
यन्त्रेणाऽऽहन्यमानौ च सुस्वनौ हर्षवर्धनौ ॥ ८५ ॥

के रथों के घोड़े वासकपुष्प के रङ्ग के थे। वीर घटोत्कच के रथ में अनेक रङ्ग, रूप और आकारवाले विचित्र घोड़े जुते हुए थे। उसकी ध्वजा में रथचक्र का चिह्न था। कौरवों के अभिप्राय को और अपनी सब प्रिय वस्तुओं को छोड़कर, भक्तिपूर्वक युधिष्ठिर का आश्रय लेनेवाले, महाबाहु लोहितलोचन युयुत्सु के सुवर्णमय रथ में महाबली पराक्रमी महाकाय घोड़े लगे हुए थे ॥७४।७७॥सेना के मध्यभाग में स्थित धर्मज्ञ नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर के आगे, पीछे और आसपास बहुत से बहुमूल्य घोड़े चले। देवरूपी बहुत से प्रभद्रकगण कई रङ्गों के घोड़ों से शोभित रथों पर बैठकर युद्ध करने के लिए चले। सुवर्णदण्डमण्डित ध्वजाओं से अलङ्कृत वे सब वीर भीमसेन के साथ इन्द्र सहित देवताओं के समान शोभायमान हुए॥७८।८०॥हे राजेन्द्र! पाण्डव-सेना में सब वीरों से अधिक धृष्टद्युम्न शोभायमान थे। वैसे ही इधर कौरवों की सेना में प्रतापी द्रोणाचार्य की शोभा सब वीरों से बढ़कर थी। द्रोणाचार्य के रथ में ध्वजा के ऊपर कृष्णाजिन और सुवर्णमय कमण्डलु बहुत ही शोभायमान हो रहा था। हे महाराज! मैंने देखा कि भीमसेन की ध्वजा पर वैदूर्य-मणिमय नेत्रों से युक्त महासिंह की अपूर्व शोभा हो रही थी। महाराज युधिष्ठिर के रथ में सुवर्णनिर्मित ग्रहों से युक्त चन्द्रमा की अपूर्व शोभा दिखाई पड़ रही थी॥८१।८४॥उनके रथ में बहुत बड़े दिव्य, नन्द-उपनन्द

शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महाध्वजम् ।
अपश्याम रथेऽत्युग्रं भीषयाणमवस्थितम् ॥ ८६ ॥
हंसस्तु राजतः श्रीमान्ध्वजे घण्टापताकवान् ।
सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां शोकवर्धनः ॥ ८७ ॥
पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥ ८८ ॥
अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः ।
रथे ध्वजवरो राजंस्तप्तचामीकरोज्ज्वलः ॥ ८९ ॥
घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत ।
अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥ ९० ॥
माहेन्द्रं च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभून्नृप ॥ ९१ ॥
त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् ।
तद्दिव्यमजरं चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः ॥ ९२ ॥
वैष्णवं नकुलायाऽथ सहदेवाय चाऽश्विजम् ।
घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम् ॥ ९३ ॥
रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव च ।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत ॥ ९४ ॥
रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं लेभे यद्रोहिणीसुतः ।
तत्तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ॥ ९५ ॥

नाम के दो मृदङ्ग——यन्त्र के द्वारा मधुर स्वर से बज कर——हर्ष को बढा रहे थे। नकुल की ध्वजा में सुवर्ण की पीठ से शोभित अतीव उग्र शरभ शत्रु-पक्ष की सेना को भयभीत करता रहा था। सहदेव की ध्वजा में घण्टा-पताका आदि सहित चाँदी का बना हुआ हंस शत्रुओं के शोक को बढ़ा रहा था॥८५।८७॥ द्रौपदी के पाँचों पुत्रों की ध्वजाओं में क्रमशः धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों की प्रतिमाएँ शोभायमान थीं। कुमार अभिमन्यु के रथ की ध्वजा में सुवर्ण का बना हुआ शार्ङ्ग पक्षी था। महाबाहु घटोत्कच की ध्वजा में विकटरूप गिद्ध अङ्कित था। घटोत्कच के रथ में, राक्षसराज रावण के ऐसे इच्छानुसार चलने-वाले, बहुमूल्य घोड़े जुते हुए थे॥८८।९०॥ हे महाराज! राजा युधिष्ठिर के पास दिव्य महेन्द्र का धनुष था। भीमसेन के हाथ में दिव्य वायु का धनुष था। कभी जीर्ण न होनेवाले जिस (गाण्डीव) धनुष को ब्रह्मा जी ने त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए बनाया था वह अर्जुन के हाथ में था। नकुल के हाथ में विष्णु का धनुष और सहदेव के हाथ में अश्विनीकुमारों का दिव्य धनुष था। घटोत्कच के हाथ में बहुत ही भयानक दिव्य पौलस्त्य धनुष था॥९१।९३॥ द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के पास क्रमशः रुद्र, अग्नि, कुबेर, यम और गिरीश के श्रेष्ठ धनुष थे। बलराम को जो श्रेष्ठ रौद्र धनुष प्राप्त हुआ था वही धनुष उन्होंने प्रसन्न होकर

एते चाऽन्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः ।
तत्राऽदृश्यन्त शूराणां द्विषतां शोकवर्धनाः ॥ ९६ ॥
तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसेवितम् ।
द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवाऽर्पितम् ॥ ९७ ॥
शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा ।
द्रोणमाद्रवतां राजन्स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥ ९८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि हयध्वजादिकथने त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

वीर अभिमन्यु को दे दिया था । कुमार अभिमन्यु के हाथ में वही धनुष था॥९४।९५॥हे राजेन्द्र ! ये तथा अन्य अनेक शूरों की सुवर्णमण्डित और शत्रुओं के लिए शोकवर्द्धक ध्वजाएँ दिखाई पड रही थीं। हे महाराज ! द्रोणाचार्य की सेना में चारों ओर ध्वजाएँ देख पड़ती थीं। यहाँ कोई कायर नहीं था। वह सैन्यसागर पट में अङ्कित चित्र के समान दिखाई पडता था। हे राजेन्द्र ! स्वयंवर-सभा के समान उस समरभूमि में द्रोणाचार्य की ओर वेग से जाते हुए वीरों के नाम और गोत्र सुनाई पडने लगे॥९६।९८॥

द्रोणपर्व का तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय ।
आहवे न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ १ ॥
सम्प्रयुक्तः किलैवाऽयं दिष्टैर्भवति पूरुषः ।
तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः ॥ २ ॥
दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी ।
अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
स एव महतीं सेनां समावर्त्तयदाहवे ।
किमन्यद्दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाऽभवत् ॥ ४ ॥
युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥ ५ ॥

चौबीसवाँ अध्याय ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! युद्धभूमि मे भीमसेन के साथ जानेवाले ये वीर राजा लोग देवताओं की सेना को भी व्याकुल और परास्त कर सकते हैं। इनमें कोई भी युद्ध से हटनेवाला नहीं है। हे सञ्जय ! यह जीव भाग्य के अधीन होकर ही जन्म लेता है । मनुष्य चाहे कुछ भी विचार करे, किन्तु उस भाग्य के अनुसार ही फल होता है । यही कारण है कि मनुष्य विचार करता कुछ है और होना कुछ है । मृगछाला पहनकर और जटाधारी होकर युधिष्ठिर बहुत समय तक वन मे रहे, एक वर्ष का अज्ञातवास भी उन्होंने पूर्ण किया। वही युधिष्ठिर अब इतनी भारी सेना एकत्र करके, युद्ध ठानकर, कौरवपक्ष को इस प्रकार परास्त कर रहे हैं। मेरे पुत्र की इस पराजय का कारण अतिरिक्त भाग्य के

द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥
अत्र मे केकया लब्धाः काशिकाः कोसलाश्च ये ।
चेदयश्चाऽपरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥ ७ ॥
पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा ।
इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥ ८ ॥
तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।
निहतः पार्षतेनाऽऽजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥ ९ ॥
मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम् ।
सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरुपेयिवान् ॥ १० ॥
समनुप्राप्तकृच्छ्रोऽहं मोहं परममागतः ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाऽहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥
यन्मां क्षत्ताऽब्रवीत्तात प्रपश्यन्पुत्रगृद्धिनम् ।
दुर्योधनेन तत्सर्वं प्राप्तं सूत मया सह ॥ १२ ॥
नृशंसं तु परं नु स्यात्त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि ।
पुत्रशेषं चिकीर्षेयं कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३ ॥
यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः ।
सोऽस्माच्च हीयते लोकात्क्षुद्रभावं च गच्छति ॥ १४ ॥
अद्य चाऽप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥

और क्या हो सकता है ? ॥१।४॥ इसी से मैं कहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य को साथ लेकर ही जन्म लेता है । मनुष्य जिसको नहीं चाहता, उसी ओर भाग्य उसे खींच ले जाता है । तात्पर्य यह है कि भाग्य जब तक साथ नहीं देता तब तक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी नहीं कर पाता । देखो, युधिष्ठिर ने जुआ खेलकर, सर्वस्व हारकर, क्लेश सहे, परन्तु भाग्य के अनुकूल होने से फिर भी उन्हें सहायक साथी मिल गये । मन्दमति दुर्योधन पहले मुझसे कहा करता था कि कैकेय, काशी, कोशल, चेदि और वङ्ग देश के योद्धा मेरे ही पक्ष में हैं । उसने मुझसे यह भी कहा था कि पृथ्वीमण्डल का अधिकांश उसी के अधिकार में है, युधिष्ठिर के अधिकार में उतनी पृथ्वी नहीं है ॥५।८॥ उसी महती सेना से सुरक्षित होने पर भी महावीर द्रोणाचार्य युद्धभूमि में धृष्टद्युम्न के हाथ से मारे गये, तो यह मेरे पुत्र के दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? अहो ! सदा युद्धप्रिय, सब अस्त्रों के प्रयोग में सिद्धहस्त, महाबाहु अद्वितीय योद्धा द्रोणाचार्य इतने राजाओं के मध्य में सुरक्षित रहकर भी कैसे मारे गये ! भीष्म और द्रोण की मृत्यु का समाचार सुनने से मैं बहुत व्याकुल होकर कष्ट प्राप्त कर रहा हूँ । अब यह दुःखमय जीवन रखने को मेरा जी नहीं चाहता ॥९।११॥ मुझे पुत्र की ममता में फँसे देखकर नीतिज्ञ

कथं स्याद्वशेषो हि धुर्ययोरभ्यतीतयोः ।
यौ नित्यमुपजीवामः क्षमिणौ पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥
व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्त्तत ।
केऽयुध्यन्के व्यपाकुर्वन्के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ॥ १७ ॥
धनञ्जयं च मे शंस यद्यच्चक्रे रथर्षभः ।
तस्माद्भयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात् ॥ १८ ॥
यथाऽऽसीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेयेषु सञ्जय ।
मम सैन्यावशेषस्य सन्निपातः सुदारुणः ॥ १९ ॥
कथं च वो मनस्तात निवृत्तेष्वभवत्तदा ।
मामकानां च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन् ॥ २० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

विदुर ने पहले जो कुछ कहा था वह सब मेरे और दुर्योधन के आगे आया। हाय! यदि मैं उसी समय नृशंस दुर्योधन को छोड़ देता तो इस समय मेरे सभी पुत्र न मारे जाते। एक को निकाल देने से शेष सब बच जाते। सत्य है कि जो मनुष्य धर्म को छोड़कर केवल अर्थ (धन) को ही देखता है वह इस लोक में सुखी नहीं होता, लोग उसे क्षुद्र समझते हैं॥१२। १४॥हे सञ्जय! इस राज्य के श्रेष्ठ योद्धा और रक्षक द्रोणाचार्य के मारे जाने से मुझे यह राज्य विनाश से किसी प्रकार बचता नहीं देख पड़ता। जिन दोनों प्रधान वीर पुरुषों के बाहुबल के आश्रय हम लोग निश्चिन्त और निष्कण्टक थे, उन क्षमताशाली भीष्म और द्रोण की जब मृत्यु हो गई है तब हम लोग कैसे बच सकते हैं? कौन हमारी रक्षा कर सकता है? हे सञ्जय! अब तुम उस भयानक युद्ध का सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मुझे सुनाओ। किस किसने युद्ध किया? किस किसने किस किस पर आक्रमण किया? कौन-कौन क्षुद्रचेता कायर रणभूमि से भाग खड़े हुए? श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन ने कौन-कौन अद्भुत कर्म किये?॥१५। १७॥सत्य ही मुझे अपने भतीजे अर्जुन और भीमसेन से ही अपने पक्ष के लिए बड़ा भय है। पाण्डवसेना के यों आक्रमण करने पर मेरे पक्ष की शेष सेना ने किस प्रकार कैसा दारुण संग्राम किया? युद्ध में पाण्डवों के प्रवृत्त होने पर तुम लोगों की मानसिक अवस्था कैसी हुई? मेरे पक्ष के किन-किन शूर वीरों ने पाण्डवपक्ष के वीरों का सामना किया?॥१८।२०॥

द्रोणपर्व का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच—महद्भैरवमासीन्नः सन्निवृत्तेषु पाण्डुषु ।
दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाऽम्बुदैः ॥ १ ॥
तैश्चोद्धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव ।
ततोऽहतममंस्याम द्रोणं दृष्टिपथे हते ॥ २ ॥

पचीसवाँ अध्याय ॥ २५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! पाण्डवों ने जब इस प्रकार युद्धभूमि में आकर, सूर्य को जैसे मेघ छिपा लेते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्य को घेर लिया तब हम लोग बहुत ही व्याकुल हो उठे। पाण्डवों की

तांस्तु शूरान्महेष्वासान्क्रूरं कर्म चिकीर्षतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत् ॥ ३ ॥
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः ।
वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥
ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत्सुतस्तव ।
आराद्दृष्ट्वा किरन्बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितम् ॥ ५ ॥
तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाऽऽहवे ।
तं च भीमोऽतुदद्बाणैस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ६ ॥
त ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः ।
राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन्परान्युधि ॥ ७ ॥
कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशाम्पते ।
पर्यवारयदायान्तं शूरं समरशोभिनम् ॥ ८ ॥
तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।
कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९ ॥
सैन्धवः क्षत्रवर्माणमायान्तं निशितैः शरैः ।
उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १० ॥
क्षत्रवर्मा सिन्धुपतेश्छित्त्वा केतनकार्मुके ।
नाराचैर्दशभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ११ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत् ।
विव्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥

---

सेना के चलने फिरने से इतनी धूल उड़ी कि उससे कौरवों की सेना ढक गई । आचार्य को न देखकर हम लोगों ने समझा कि वे शत्रुओं के हाथों मार डाले गये॥१।२॥उस समय राजा दुर्योधन ने उन शूरों और महाधनुर्द्धरों को द्रोणवधरूप दुष्कर क्रूर कर्म करने के लिए उद्यत देखकर कौरव सेना को उनका सामना करने के लिए इस प्रकार आज्ञा दी—हे वीर सैनिको ! तुम सब नरेश मिलकर, यथाशक्ति उत्साह और पराक्रम के अनुसार, पाण्डवों की इस सेना को रोको और नष्ट करो॥३।४॥हे राजेन्द्र ! तब आपके पुत्र वीर दुर्मर्षण दूर से भीमसेन को देख कर, द्रोणाचार्य के जीवन की रक्षा करने के लिए, भीमसेन के सम्मुख आये और उन पर बड़ी स्फूर्ति के साथ असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे । क्रोध से भरे हुए यमराज के समान महावीर दुर्मर्षण ने ज्योंही भीमसेन पर बाणों की वर्षा की त्योंही भीमसेन ने दुर्मर्षण के ऊपर निरन्तर बाण बरसाना आरम्भ किया। इस प्रकार ये दोनों वीर लोमहर्षण संग्राम करने लगे । उधर आपके ये युद्धनिपुण महारथी लोग, अपने अपने स्वामियों की आज्ञा पाकर, राज्य की ममता और मृत्यु का भय छोड़कर शत्रुओं से भिड़ गये॥५।७॥युद्ध के लिए उन्मत्त कृतवर्मा ने मत्त मातङ्ग के समान पराक्रमी सात्यकि को और उग्रधन्वा सिन्धुराज जयद्रथ ने क्षत्रवर्मा को तीक्ष्ण बाण मारकर द्रोणाचार्य के समीप जाने

युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम् ।
सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १३ ॥
सुबाहोः सुधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ ॥ १४ ॥
राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराट् समवारयत् ॥ १५ ॥
तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत् ।
मद्रेशस्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विद्ध्वाऽनदद्भृशम् ॥ १६ ॥
तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त च कार्मुकम् ।
क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १७ ॥
तथैव राजा बाह्लीको राजानं द्रुपदं शरैः ।
आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् ॥ १८ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं वृद्धयोः सहसेनयोः ।
यथा महायूथपयोर्द्विपयोः सम्प्रभिन्नयोः ॥ १९ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम् ॥ २० ॥
तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् ।
मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥ २१ ॥
नाकुलिं तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः ।
अस्यन्तमिषुजालानि यान्तं द्रोणादवारयत् ॥ २२ ॥

से रोका। क्रोध से विह्वल क्षत्रवर्मा ने जयद्रथ की ध्वजा और धनुष काटकर उनके मर्मस्थलों में दस नाराच बाण मारे। जयद्रथ ने भी स्फूर्ति के साथ दूसरा दृढ धनुष लेकर लोहमय तीक्ष्ण बाणों से क्षत्रवर्मा को घायल किया॥ १०-१२॥ पाण्डवोंकी विजय के लिए यत्न करनेवाले महारथी शूर युयुत्सु को सुबाहु ने द्रोणाचार्य के समीप जाने से रोका। तब महारथी युयुत्सु ने अत्यन्त तीक्ष्ण दो क्षुर बाणों से सुबाहु की धनुष-बाण-सहित भुजाएँ काट डालीं। जैसे तटभूमि समुद्र के वेग को रोकती है वैसे ही शल्य ने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को रोका॥ १३-१५॥ धर्मराज ने शल्य के मर्मस्थलों में बहुत से बाण मारे। शल्य भी युधिष्ठिर को चौसठ बाण मारकर ज़ोर से सिंहनाद करने लगे। सिंहनाद करनेवाले शल्य पर अत्यन्त कुपित होकर युधिष्ठिर ने दो क्षुर बाणों से उनकी ध्वजा और धनुष काट डाला। यह देखकर लोग ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगे। सेना सहित बाण बरसाते आते राजा द्रुपद को राजा बाह्लीक ने और उनकी सेना ने रोका। मदोन्मत्त महायूथ के अधिपति दो गजराजा के समान ये दोनों अपार सेना के स्वामी बुड्ढे राजा घोर युद्ध करने लगे॥ १६-१९॥ पूर्व समय में इन्द्र और अग्नि ने जिस प्रकार असुराधिप राजा बलि को बाणों से घायल किया था उसी प्रकार अवन्ति देश के राजपुत्र दोनों भाई विन्द और अनुविन्द मत्स्य-

ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः ।
चक्रे विबाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥
सुतसोमं तु विक्रान्तमायान्तं तं शरौघिणम् ।
द्रोणायाऽभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत् ॥ २४ ॥
सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः ।
विविंशतिं शरैर्भित्त्वा नाऽभ्यवर्तत दंशितः ॥ २५ ॥
अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः ।
षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद्यमसादनम् ॥ २६ ॥
श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं न्यवारयत् ॥ २७ ॥
तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ ।
पितॄणामर्थसिद्ध्यर्थं चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ २८ ॥
तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन्मार्गणैः समवारयत् ॥ २९ ॥
तं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः ।
सिंहलांगूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥
प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नरर्षभ ।
द्रोणायनिं द्रौपदेयाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३१ ॥
आर्जुनिं श्रुतकीर्तिं तु द्रौपदेयं महारथम् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं दौःशासनिरवारयत् ॥ ३२ ॥

राज विराट को बाणों से बेधने लगे। मत्स्य और केकय देश के योद्धा लोग परस्पर भिड़कर देवासुर-संग्राम की भाँति अत्यन्त घोर और अद्भुत युद्ध करने लगे। दोनों ओर की चतुरंगिणी सेना भिड़ गई॥२०। २१॥नकुल के पुत्र वीर शतानीक बाणों की वर्षा करते हुए द्रोणाचार्य के सम्मुख जा रहे थे। उनको वीर भूतकर्मा ने आगे बढ़ने से रोका। शतानीक ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीन तीक्ष्ण भल्ल बाणों से भूतकर्मा के दोनों हाथ काटकर सिर काट डाला। महावीर विविंशति ने आचार्य की ओर जानेवाले बल-विक्रमशाली सुतसोम को रोका। उन्होंने कुपित होकर सीधे निशाने पर पहुँचनेवाले पैने बाण बरसाकर अपने चाचा विविंशति के मर्मस्थलों को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया॥२२।२५॥महावीर भीमरथ ने पैने लोहमय बाण बरसाकर शाल्व को पीड़ित किया और उनके सारथी तथा रथ के घोड़ों को छः बाणों से मार गिराया। मोर-सदृश घोड़े जिसमें जुते हुए थे, ऐसे रथ पर बैठकर आते हुए महावीर श्रुतकर्मा को चित्रसेन के पुत्र ने आगे बढ़ने से रोका। हे राजेन्द्र! आपके पराक्रमी पोते, अपने-अपने पितृकुल के नाम और मान की रक्षा करने के लिए, एक दूसरे के प्राण लेने का यत्न करते हुए घोर संग्राम करने लगे॥२६।२८॥सिंहपुच्छ के चिह्न से युक्त ध्वजा से शोभित रथ पर बैठे हुए महावीर

तस्य कृष्णसमः कार्ष्णिस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः ।
धनुर्ध्वजं च सूतं च छित्त्वा द्रोणान्तिकं ययौ ॥ ३३ ॥
यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः ।
तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३४ ॥
स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्त्वा लक्ष्म च भारत ।
लक्ष्मणे शरजालानि विसृजन्बह्वशोभत ॥ ३५ ॥
विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम् ।
पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥ ३६ ॥
ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत् ।
विधूय तद्बाणजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३७ ॥
अङ्गदोऽभिमुखं वीरमुत्तमौजसमाहवे ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत् ॥ ३८ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रीतिवर्धनः ॥ ३९ ॥
दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ४० ॥
सदुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाऽभ्यताडयत् ।
तस्य तद्विबभौ वक्त्रं सनालमिव पङ्कजम् ॥ ४१ ॥
कर्णस्तु केकयान्भ्रातॄन्पञ्च लोहितकध्वजान् ।
द्रोणायाऽभिमुखं यातांञ्शरवर्षैरवारयत् ॥ ४२ ॥

अश्वत्थामा ने अपने पिता के गौरव और प्राणों की रक्षा करने के लिए बहुत से बाण बरसाकर राजपुत्र प्रतिविन्ध्य को रोका। महाबाहु प्रतिविन्ध्य भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर मर्मभेदी अनेक बाण मारकर उन्हें पीडित करने लगे। द्रौपदी के पुत्रगण, खेत में बीज बोने वाले किसान की तरह, अश्वत्थामा के ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे॥२९।३१॥ अर्जुन के पुत्र महाबाहु श्रुतकीर्ति जब युद्ध के लिए आचार्य की ओर आगे बढ़े तब दुःशासन के पुत्र ने उनको रोका। अर्जुन के तुल्य पराक्रमी श्रुतकीर्ति ने बहुत पैने तीन भल्ल बाणों से दुःशासन के पुत्र के धनुष, ध्वजा और सारथी के सिर को काट डाला और फिर आगे को प्रस्थान किया। हे राजेन्द्र! दोनों पक्ष के योद्धा जिन्हें प्रधान वीर समझते हैं, उन पटच्चर असुरों का संहार करनेवाले वीर को राजकुमार लक्ष्मण ने रोका। पटच्चरविनाशन वीर ने कुपित होकर लक्ष्मण के धनुष और ध्वजा को काट डाला और उन पर बाण बरसाना आरम्भ किया॥३२।३५॥ महाप्राज्ञ नवयुवक विकर्ण ने रणभूमि में द्रोण की ओर जाते हुए शिखण्डी को रोका। तब वे भी विकर्ण के ऊपर बाण बरसाने लगे। महाबाहु विकर्ण ने अनायास शिखण्डी के सब बाण काट डाले। महावीर उत्तमौजा आचार्य की ओर वेग से जा रहे थे, उन्हें महाबाहु अङ्गद ने बाण बरसाकर रोका। ये दोनों वीर क्रमशः अत्यन्त घोर

ते चैनं भृशसन्तप्ताः शरवर्षैरवाकिरन् ।
स च ताञ्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
नैवं कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसंवृताः ।
साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः ॥ ४४ ॥
पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च ह ।
नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन्प्रत्यवारयन् ॥ ४५ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् ।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथर्क्षमहिषर्षभैः ॥ ४६ ॥
क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तु भ्रातरौ सात्वतं युधि ।
द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततक्षतुः ॥ ४७ ॥
तयोस्तस्य च तद्युद्धमत्यद्भुतमिवाऽभवत् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ४८ ॥
राजानं तु तथाऽम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् ।
चेदिराजः शरानस्यन्क्रुद्धो द्रोणादवारयत् ॥ ४९ ॥
ततोऽम्बष्ठोऽस्थिभेदिन्या निरभिद्यच्छलाकया ।
स त्यक्त्वा सशरं चापं रथाद्भूमिमुपागमत् ॥ ५० ॥
वार्धक्षेमिं तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः ।
अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्बाणैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१ ॥

युद्ध करने लगे। उस महायुद्ध को देखकर दोनों पक्ष के योद्धा लोग परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥३६।३९॥महावीर दुर्मुख ने द्रोणाचार्य की ओर जाते हुए महारथी पुरुजित् को कङ्कदन्त बाण बरसाकर रोका। महारथी पुरुजित् ने कुपित होकर दुर्मुख की भौंहों के मध्य में एक नाराच बाण मारा, जिससे दुर्मुख का मुखमण्डल नालयुक्त कमल के समान शोभायमान हुआ॥४०।४१॥महारथी कर्ण ने आचार्य के सन्मुख जाते हुए लाल ध्वजावाले केकयदेशीय पाँचों भाइयों को बाण वर्षा करके रोका। वे कर्ण के बाणप्रहार से अत्यन्त पीड़ित होकर उन पर बाणों की वर्षा करने लगे। कर्ण ने भी बारम्बार बाण बरसाकर उनको अदृश्य सा कर दिया। इस प्रकार कर्ण और केकयदेश के पाचों भाई राजकुमार एक दूसरे के बाणों से घोड़े, सारथी, रथ और ध्वजा-सहित अदृश्य हो गये॥४२।४४॥हे महाराज! आपके तीनों पुत्रों—दुर्जय, जय और विजय—ने नील, काश्य और जयत्सेन इन तीन वीरों को रोका। जैसे सिंह, बाघ और चीते के साथ भालू, भैंसे और साँड़ का संग्राम हो वैसे ही आपके तीन पुत्रों के साथ उक्त तीनों वीरों का घोर युद्ध देखकर दर्शकगण परम सन्तुष्ट हुए। क्षेमधूर्ति और बृहन्त इन दोनों भाइयों ने आचार्य की ओर जाते हुए सात्वत को तीक्ष्ण बाण बरसाकर रोका। जैसे जङ्गल में सिंह के साथ दो मदोन्मत्त गजराजों का युद्ध हो वैसे ही सात्वत के साथ इन दोनों भाइयों का अद्भुत संग्राम होने लगा ॥४५।४८॥कुपित चेदिराज ने असंख्य बाण बरसाकर युद्धप्रिय अम्बष्ठराज को द्रोण के सन्मुख जाने से रोका। राजा अम्बष्ठराज ने अस्थिभेदिनी शलाका के द्वारा चेदिराज को घायल कर दिया। उस दारुण

युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ ।
ते युद्धासक्तमनसो नाऽन्यां बुबुधिरे क्रियाम् ॥ ५२ ॥
सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् ।
पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५३ ॥
स सौमदत्तेस्त्वरितश्चित्रेष्वसनकेतने ।
पुनः पताकां सूतं च च्छत्रं चाऽपातयद्रथात् ॥ ५४ ॥
अथाऽऽप्लुत्य रथात्तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त्त वरासिना ॥ ५५ ॥
रथं च स्वं समास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ।
स्वयं यच्छन्हयान्राजन्व्यधमत्पाण्डवीं चमूम् ॥ ५६ ॥
पाड्यमिन्द्रमिवाऽऽयान्तमसुरान्प्रति दुर्जयम् ।
समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७ ॥
गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोधनोपलैः ।
कडङ्गरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥ ५८ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
पांसुवाताग्निसलिलैर्भस्मलोष्टतृणद्रुमैः ॥ ५९ ॥
आतुदन्प्ररुजन्भञ्जन्निघ्नन्विद्रावयन्क्षिपन् ।
सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ६० ॥
तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।
राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुषः ॥ ६१ ॥

बाण के प्रहार से चेदिराज रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े । उनके हाथ से धनुष और बाण भी गिर पड़ा। शारद्वत कृपाचार्य ने क्षुद्रक बाणों से कुपित वार्द्धक्षेमि को आगे बढ़ने से रोका । हे गजेन्द्र ! विचित्र युद्ध में निपुण और समरप्रिय कृपाचार्य तथा वार्द्धक्षेमि के युद्ध को जो लोग देख रहे थे वे सब उसमें आसक्त-चित्त होकर युद्ध को देखने लगे । वे लोग चित्र-लिखित से रह गये॥४९।५२॥महारथी सौमदत्ति ने आचार्य के यश को बढ़ाते हुए महाराज मणिमान् को घेर लिया । उन्होंने बड़ी स्फूर्त्ति के साथ सौमदत्ति के धनुष, ध्वजा-पताका, छत्र को काटकर और सारथी को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया॥५३।५४॥ तब शत्रुदमन यूपकेतु बड़ी स्फूर्ति के साथ अपने रथ पर से कूद पड़े । उन्होंने तलवार के वार से मणिमान् के रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथी को नष्ट कर दिया। इसके पश्चात् यूपकेतु अपने रथ पर बैठकर, दूसरा धनुष लेकर, अपने हाथ से घोड़ों को भी हाँकने और तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की सेना को नष्ट करने लगे । इन्द्र जैसे देवासुर-युद्ध में असुरों को मारने के लिए दौड़े थे वैसे ही वेग से जाकर वृषसेन ने बाण-वर्षा से पाण्ड्यराज को रोका॥५५।५७॥महावीर घटोत्कच गदा, परिघ, खड्ग, पट्टिश, लगुड़, शिला, मूसल, मुद्गर, चक्र, भिंदिपाल, परशु, धूल, वायु, अग्नि, भस्म, कङ्कड़, तृण और वृक्ष आदि की वर्षा करके शत्रुसेना

तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ६२ ॥
एवं द्वन्द्वशतान्यासन्रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च सङ्कुले ॥ ६३ ॥
नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याऽभावभावे तु प्रसक्तानां यथाऽभवत् ॥ ६४ ॥
इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

को विह्वल करने, भगाने, पीड़ित और नष्ट करने लगा। इस प्रकार विजयी होकर वह द्रोणाचार्य की ओर बढ़ा॥५८।६०॥तब राक्षसश्रेष्ठ अलम्बुष भी अत्यन्त क्रोध से बहुत से अस्त्र-शस्त्र बरसाकर और नाना प्रकार के मायायुद्ध करके घटोत्कच को रोकने लगा। पूर्व समय में शम्बरासुर और इन्द्र का जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही घोर संग्राम दोनों राक्षस करने लगे॥६१।६२॥हे राजेन्द्र! इस प्रकार सैकड़ों-सहस्रों रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार योद्धा लोमहर्षण संग्राम करने लगे। हे महाराज! उस समय द्रोणाचार्य के वध के लिए जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही संग्राम पहले न कभी देखा गया और न सुना गया। उस समय रणभूमि में चारों ओर अनेक घोर विचित्र और रौद्र युद्ध होते हुए दिखाई पड़ने लगे॥६३।६५॥

—०—

द्रोणपर्व का पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

अथ षट्विंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः ॥ १ ॥
किमर्जुनश्चाऽप्यकरोत्संशप्तकबलं प्रति ।
संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३ ॥
स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः ।
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! सब योद्धा जब इस प्रकार रणभूमि में जाकर, परस्पर विभाग के अनुसार, द्वन्द्वयुद्ध करने लगे तब मेरे पक्ष के और पाण्डवों के पक्ष के वीरों ने कैसा युद्ध किया? उधर महावीर अर्जुन ने संशप्तकगण पर किस प्रकार आक्रमण किया और संशप्तकगण ने उनका किस प्रकार सामना किया?॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! सुनिए, दोनों सेनाओं के योद्धाओं ने जब इस प्रकार अपने-

स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चाऽन्वितः ।
अभिनत्कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष ॥ ५ ॥
ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् ।
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ॥ ६ ॥
विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः ।
व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ॥ ७ ॥
स तेषु विसृजन्बाणान्भीमो नागेष्वशोभत ।
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥ ८ ॥
ते भीमबाणाभिहताः संस्यूता विबभुर्गजाः ।
गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य व्योम्नि नानाबलाहकाः ॥ ९ ॥
तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम् ।
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्याच्छितैः शरैः ॥ १० ॥
ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः ।
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥ ११ ॥
स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ।
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव ॥ १२ ॥
तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम् ।
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः ॥ १३ ॥
दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः ॥ १४ ॥

अपने प्रतिद्वन्द्वी को छोड़कर युद्ध ठान दिया तब आपके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन स्वयं हाथियों की सेना साथ लेकर भीमसेन का सामना करने पहुँचे। जैसे हाथी पर हाथी या साँड पर साँड आक्रमण करता है वैसे ही राजा दुर्योधन ने भीमसेन पर आक्रमण किया। समरनिपुण असाधारण भुजबलसम्पन्न वीर भीमसेन क्रोध करके हाथियों की सेना पर झपटकर टूट पड़े और स्फूर्ति के साथ हाथियों को मारने, गिराने तथा भगाने लगे॥३।५॥पर्वताकार बड़े-बड़े हाथी भीमसेन के लोहमय बाणों के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर, मद-हीन होकर, इधर-उधर भागने लगे। मेघमण्डल जैसे आँधी के वेग से नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है वैसे ही वे हाथी भीमसेन के प्रहार से पीड़ित होकर भागने लगे। सूर्यदेव उदय होकर जैसे भूमण्डल पर अपनी किरणें फैलाते हैं वैसे ही भीमसेन हाथियों पर बाणों की वर्षा करने लगे। उनके बाणप्रहार से हाथियों के शरीर फट-फटकर रक्त से भीग गये। सूर्य की किरणों से लाल सन्ध्या-काल के आकाश में शोभायमान मेघों के समान वे हाथी दिखाई पड़ने लगे॥६।९॥भीमसेन को इस प्रकार हाथियों की सेना का नाश करते देखकर दुर्योधन अत्यन्त क्रोध से उन पर बाण चलाने लगे। महाबाहु भीमसेन के नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे। वे दुर्योधन के प्राण लेने के लिए उनको तीक्ष्ण बाण मारने लगे। भीम के बाणों से दुर्योधन का शरीर फट-फट

तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयत्कृशम् ॥ १५ ॥
तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद्धरणीतले ।
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाऽचलः ॥ १६ ॥
तस्याऽऽवर्जितनागस्य म्लेच्छस्याऽधः पतिष्यतः ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥
तस्मिन्निपतिते वीरे सम्प्राद्रवत सा चमूः ।
सम्भ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातीनवमृद्नती ॥ १८ ॥
तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ १९ ॥
येन नागेन मघवानजयद्दैत्यदानवान् ।
तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २० ॥
स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् ।
चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥ २१ ॥
व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम् ।
वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥ २२ ॥
पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत ।
जानन्नञ्जलिकावेधं नाऽपाक्रामत पाण्डवः ॥ २३ ॥
गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाऽताडयन्मुहुः ।
लालयामास तं नागं वधाकांक्षिणमव्ययम् ॥ २४ ॥

---

गया । वे क्रोध मे विह्वल होकर भीमसेन पर, सूर्य की किरणों के समान चमकीले, बाण चलाने लगे । महाबाहु भीमसेन ने क्रुद्ध होकर दो भल्ल बाणों से स्फूर्ति के साथ दुर्योधन की ध्वजा मे स्थित चिह्न जो मणिमय रत्नखचित नाग था उसे, और दुर्योधन के हाथ के धनुष को, काट डाला । तब दुर्योधन को भीमसेन के बल से अत्यन्त पीडित देखकर अङ्गराज हाथी पर बैठकर भीमसेन की ओर झपटे । महावीर भीमसेन ने अङ्गाधिपति के हाथी को मेघ की तरह गरजते आते देखकर उसके मस्तक पर तीक्ष्ण बाण मारे । भीमसेन का चलाया हुआ एक बाण हाथी को फाड़ता हुआ पृथ्वी में प्रवेश हो गया । वह हाथी वज्राघात से फटे हुए पर्वत की तरह पृथ्वी [illegible] पड़ा । उसके गिरते ही अङ्गाधिपति पृथ्वी पर [illegible] गिरते सँभल गये, किन्तु इसी मध्य में [illegible] स्फूर्ति के साथ एक भल्ल बाण से उनका [illegible] डाला । महावीर अङ्गराज की मृत्यु पर [illegible] चारों ओर भागने लगी । हाथी, घोड़े [illegible] योद्धा इधर उधर भाग खड़े हुए । उनके [illegible] गये सहस्रों पैदल सिपाही विना आई [illegible] ॥१४।१८॥ हे महाराज ! तब सेना [illegible] ओर भागने लगी तब प्राग्ज्योतिषपुर [illegible] अपना हाथी बढ़ाकर वेग से [illegible] वह हाथी इन्द्र के उस ऐरावत [illegible]

कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाऽभ्रमत् ।
नागायुतबलः श्रीमान्कालयानो वृकोदरम् ॥ २५ ॥
भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत् ।
भीमं करेणाऽवनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥ २६ ॥
ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत ।
करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्वा व्यमोचयत् ॥ २७ ॥
पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः ।
यावत्प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥ २८ ॥
भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो विनिःसृत्याऽपयाज्जवात् ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ॥ २९ ॥
अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ।
तेन नागेन सन्त्रस्ता पाण्डवानामनीकनी ॥ ३० ॥
सहसाऽभ्यद्रवद्राजन्यत्र तस्थौ वृकोदरः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ॥ ३१ ॥
भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् ।
तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परन्तपाः ॥ ३२ ॥
अवाकिरञ्छरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
सविघातं पृषत्कानामंकुशेन समाहरन् ॥ ३३ ॥
गजेन पाण्डुपञ्चालान्व्यधमत्पर्वतेश्वरः ।
तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥

था, जिस पर बैठकर इन्द्र ने दैत्य-दानवों को जीता था। क्रोध के मारे लाल-लाल नेत्र फाड़कर, दोनों पाँव उठाकर, सूँड़ सिकोड़कर वह गजराज भीमसेन की ओर इस प्रकार चला मानों उनको भस्म ही कर देगा। उसने उनके रथ और घोड़ों को चूर-चूर कर डाला॥१९।२२॥महावीर भीमसेन को अञ्जलिक वेध-विद्या प्रतीत थी। इससे वे पैदल हो जाने पर भी जहाँ के तहाँ खड़े रहे। जब हाथी समीप पहुँच गया तब भीमसेन झपटकर उस हाथी के ही तले छिप गये। मार डालने की घात में लगे हुए उस हाथी को वे हाथ के प्रहार से पीड़ित करके खिझाने लगे। वह हाथी, उन्हें पकड़ने के लिए, उनके पीछे कुम्हार के चाक की तरह चक्कर काटने लगा और भीमसेन उसी की आड़ में चारों ओर घूमने लगे॥२३।२५॥ इसके पश्चात् दस सहस्र मस्त हाथियों का बल रखने-वाले भीमसेन, उस हाथी की आड़ छोड़कर, सन्मुख आ गये। गजराज अवसर पाकर, सूँड़ से भीमसेन की गर्दन लपेटकर, दोनों घुटनों से उन्हें गिराकर मार डालने को तैयार हुआ। तब उन्होंने चटपट सूँड़ की लपेट से अपने को छुड़ा लिया। अब वे फिर उसी की ओट में छिपकर उसके आक्रमण की राह देखने लगे। इसके पश्चात् महाबली भीमसेन उस हाथी की आड़ से निकलकर वेग से दूसरी ओर चले गये॥२६।२९॥इसी समय सेना के सब लोग

तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्पते ।
ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाऽऽशुगामिना ।
तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥ ३६ ॥
सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।
प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्याऽपसृत्य च ॥ ३७ ॥
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्वा नागमपातयत् ।
तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ॥ ३८ ॥
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ।
व्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ।
स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतोवृतः ॥ ४० ॥
पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ।
मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ४१ ॥
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ।
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ॥ ४२ ॥
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ।
शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ॥ ४३ ॥

"हाय ! धिक्कार है हमें ! भीमसेन को गजराज ने मार डाला !" कह कहकर चिल्लाने लगे। इस चिल्लाहट से पाण्डवों की सेना ऐसी पीड़ित हुई कि सब लोग भागकर वहाँ पहुँचे जहाँ भीमसेन खड़े हुए थे ॥२९।३१॥ हे राजेन्द्र ! इधर राजा युधिष्ठिर भीमसेन को हाथी के आक्रमण से मरा हुआ जानकर बहुत ही शोकाकुल हुए। वे उसी समय धृष्टद्युम्न को साथ लेकर भगदत्त के सम्मुख पहुँचे और चारों ओर से भगदत्त को घेरकर उन पर सहस्र सहस्र अत्यन्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। भगदत्त ने अंकुश के द्वारा ही उन बाणों को व्यर्थ करके, हाथी को प्रहार से उत्तेजित करके, दम भर में पाण्डवों और पाञ्चालों की बहुत सी सेना नष्ट भ्रष्ट कर दी। हे राजेन्द्र ! हम लोगों ने रणभूमि में वृद्ध राजा भगदत्त और उनके हाथी का अद्भुत पराक्रम देखा, उसे देखकर हमें बड़ा ही विस्मय हुआ॥३१।३५॥इसी समय दशार्ण देश के नरेश शीघ्रगामी पार्श्वगामी मदमत्त हाथी पर बैठकर वेग के साथ राजा भगदत्त के सम्मुख युद्ध के लिए आये। पूर्व समय में भीमरूप, परदार और वृक्षों से शोभित पर्वत जैसे परस्पर टकराते थे वैसे ही वे दोनों वीर प्राणों का मोह छोड़कर घोर युद्ध करने लगे। प्राग्ज्योतिषपति महाराज भगदत्त के गजराज ने आगे बढ़कर, फिर पीछे हटकर, घूमकर बड़े वेग से दशार्णपति के हाथी की पसलियों में टक्कर मारकर उसे हटा दिया। इसी मध्य में भगदत्त ने सूर्य की किरण के समान चमकीले सात पैने तोमर अपने शत्रु दशार्णपति को और उनके हाथी को उस प्रहार से दशार्णपति का आसन विचलित हो उठा॥३५।३९॥ उधर धर्मराज युधिष्ठिर ने रथसेना साथ लेकर भगदत्त को चारों ओर से घेर लिया। हाथी पर बैठे महावीर

अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।
बृहतः सैन्धवानश्वान्समुत्थाप्याऽथ सारथिः ॥ ४४ ॥
तस्थौ सात्यकिमासाद्य सम्प्लुतस्तं रथं प्रति ।
स तु लब्ध्वाऽन्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ॥ ४५ ॥
निश्चक्राम ततः सर्वान्परिचिक्षेप पार्थिवान् ।
ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥ ४६ ॥
तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ।
ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥ ४७ ॥
ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ।
तेषां प्रद्रवतां भीमः पाञ्चालानामितस्ततः ॥ ४८ ॥
गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान्समजायत ।
भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ४९ ॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ।
तस्याऽभिद्रवतो वाहान्हस्तमुक्तेन वारिणा ॥ ५० ॥
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्तं पार्थमहरंस्ततः ।
ततस्तमभ्यात्तूर्णं रुचिपर्वाऽऽकृतीसुतः ॥ ५१ ॥
समभ्यञ्छरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसन्निभः ।
ततः स रुचिपर्वाणं शरेणाऽनतपर्वणा ॥ ५२ ॥
सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः ॥ ५३ ॥

भगदत्त उन रथों से घिरकर पर्वत के ऊपर जङ्गल में प्रज्वलित अग्नि के समान शोभायमान हुए। चारों ओर से मण्डल बाँधकर सब रथी भगदत्त के ऊपर बाणों की निरन्तर वर्षा करने लगे। परन्तु भगदत्त उनके मध्य में बेखटके डटे रहे। इसके उपरान्त युद्धदुर्मद प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त ने अपने हाथी को सात्यकि के रथ के पास पहुँचाया। गजराज ने सात्यकि के रथ को सूँड़ से लपेटकर दूर फेंक दिया, जिससे रथ के टुकड़े-टुकड़े हो गये। सात्यकि स्फूर्ति के साथ रथ से पृथ्वी पर कूदकर वहाँ से भाग खड़े हुए॥३९।४४॥उनका सारथी भी सिन्धु देश के, घोड़ों की रास छोड़कर उनके पीछे ही भाग गया। अब वह गजराज उस रथों के घेरे से बाहर निकलकर राजाओं को मारने, फेंकने और रथों को तोड़ने-फोड़ने लगा। उस शीघ्रगामी हाथी के आक्रमण से राजा लोग ऐसे व्याकुल और शङ्कित हो गये कि उन्हें उस एक हाथी के सैकड़ों रूप दिखाई देने लगे ॥४४।४६॥राजा भगदत्त जब अपने हाथी की सहायता से पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे तब सब सैनिक सिलसिला तोड़ करके इधर-उधर भागने लगे। उस समय हाथियों और घोड़ों के चिल्लाने का घोर आर्त्तनाद सुनाई पड़ने लगा॥४६।४९॥हे महाराज! तब महावीर भीमसेन फिर भगदत्त के सन्मुख आये। भगदत्त का हाथी

चोकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चाऽर्दयन्द्विपम् ।
त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ॥ ५४ ॥
सिंहनादेन महता नदन्तो जिघांसवः ।
ततः पार्ष्ण्यंकुशांगुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः ॥ ५५ ॥
प्रसारितकरः प्रायात्स्तब्धकर्णेक्षणोद्रुतम् ।
सोऽधिष्ठाय पदा वाहान्युयुत्सोः सूतमारुजत् ॥ ५६ ॥
युयुत्सुस्तु रथाद्राजन्नपाक्रामत्त्वरान्वितः ।
ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम् ॥ ५७ ॥
सिंहनादेन महता नदन्तो जिघांसवः ।
पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याऽऽप्लुतो रथम् ॥ ५८ ॥
स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः ।
बभौ रश्मीनिवाऽऽदित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥ ५९ ॥
तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥ ६० ॥
सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ६१ ॥
नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोऽरिशरार्दितः ।
परिचिक्षेप तान्नागः स रिपून्सव्यदक्षिणम् ॥ ६२ ॥
गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ।
आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ६३ ॥

---

सूँड से फेंके हुए मद से भीमसेन के वाहनों को भय-विह्वल करने लगा। भीमसेन के रथ के घोड़े रथ को लिये वेगपूर्वक भाग खड़े हुए। उस समय राजा कृती के पुत्र रुचिपर्वा रथ पर बैठकर बाण बरसाते हुए साक्षात् काल की तरह भीमसेन के पीछे दौड़ा॥४९।५२॥ पहाड़ी देश के राजा सुपर्वा ने नतपर्व तीक्ष्ण बाण मारकर रुचिपर्वा को मार गिराया। वीर रुचिपर्वा के मारे जाने पर महावीर अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु, ये सब उस हाथी को मार डालने के लिए भयानक सिंहनाद के साथ जलधारा की तरह निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उसे व्यथित करने लगे॥५३।५५॥ तब रणनिपुण महावीर भगदत्त ने पार्ष्णि, अंकुश और अंगूठे के प्रहार से उत्तेजित करके उस हाथी को आगे बढ़ाया। भगदत्त के द्वारा सञ्चालित वह भयानक हाथी सूँड़ फैलाकर, कानों और नेत्रों को संकुचित करके, बड़े वेग से चला। उसने आक्रमण करके युयुत्सु के सारथी और वाहनों को नष्ट कर दिया। महावीर युयुत्सु ने स्फूर्ति के साथ रथ से कूदकर अपनी जान बचाई। उनके भागने पर पाण्डवपक्ष के वीरगण अत्यन्त भयङ्कर सिंहनाद करते हुए तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से उस गजराज को घायल करने लगे॥५६।५८॥ हे राजेन्द्र! उस समय आपके पुत्र स्फूर्ति के साथ बड़े वेग से अभिमन्यु के रथ की ओर

क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।
बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ६४ ॥
स नागराजः प्रवरांकुशाहतः पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप ।
भयं तदा रिपुषु समादधद्भृशं वणिग्जनानां क्षुभितो यथार्णवः ॥ ६५ ॥
ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवैर्भयाद् द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः ।
क्षितिं वियद्द्यां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत्पार्थिवसंयुगे ततः ॥ ६६ ॥
स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम् ।
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥ ६७ ॥
भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।
तमेकनागं गणशो यथा गजान्समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ॥ ६८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

चले। हे राजेन्द्र ! अब महावीर भगदत्त हाथी के ऊपर से शत्रुओं पर बाण बरसाते हुए वैसे ही शोभायमान हुए जैसे अपनी किरणें फैलाते हुए सूर्यदेव उदय पर्वत पर शोभा को प्राप्त होते हैं। उधर अभिमन्यु ने बारह, युयुत्सु ने दस, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने और धृष्टकेतु ने तीन-तीन बाण मारकर उस गजराज को विह्वल और घायल कर दिया। इन वीरों ने बड़े यत्न और कौशल से उस हाथी को जो बाण मारे, उनसे वह सूर्य की किरणों से शोभित मेघ के समान जान पड़ा॥५८।६१॥इसके पश्चात् अंकुश से सञ्चालित वह भयङ्कर हाथी कुपित होकर अपने दाहने-बायें भाग की सेना को रौंदकर, सूँड़ से पटक-पटक कर, नष्ट करने लगा। चरवाहा जैसे बन में डण्डे से पशुओं को पीटता है वैसे ही वीर भगदत्त बाणों से पाण्डवों की सेना को बारम्बार ताड़ित करने लगे। बाज के आक्रमण से चिल्लाते हुए कौओं के समान पाण्डवों की सेना चिल्ला करके भाग गई। हुई॥६२।६४॥हे महाराज ! उस समय भगदत्त का मस्त हाथी अंकुश की चोट से उत्तेजित होकर परदार पर्वत की तरह बड़े वेग से रणभूमि में विचरने लगा। जहाज पर बैठे हुए सौदागर जैसे अपने आस-पास समुद्र में तूफान उठने वाली दारुण लहरें देखकर शङ्कित और व्याकुल होते हैं वैसे ही शत्रुपक्ष के योद्धा लोग उस गजराज को देखकर व्याकुल हो उठे। भयभीत होकर भागते हुए हाथी, घोड़े, रथी और पैदल आदि के कोलाहल से पृथ्वीमण्डल, आकाशमण्डल और सब दिशाओं के मण्डल गूँज उठे। जैसे पूर्व समय में दानवपति विरोचन ने सुरक्षित सुरसेना में प्रवेश होकर हलचल डाल दी थी वैसे ही हाथी सहित वीर भगदत्त ने शत्रुसेना के भीतर प्रवेश होकर हलचल मचा दी। धरती की धूल वायु के साथ आकाशमण्डल में छा गई। सब सेना उस अँधेरे से ढक गई। सैनिकों को वह एक ही हाथी, वेग से भ्रमण, करने के कारण, अनेक रूप सा प्रतीत होने लगा॥६५।६८॥

द्रोणपर्व का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच—यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रणे ॥ १ ॥
रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम् ।
भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥ २ ॥

यथा प्राग्जोतिषो राजा गजेन मधुसूदन ।
त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निःस्वनः ॥ ३ ॥
इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः ।
प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ४ ॥
स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽऽप्रतिगजो युधि ।
सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतवर्मा जितक्लमः ॥ ५ ॥
सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चाऽनघ ।
स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति ॥ ६ ॥
न चाऽऽवाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम् ।
त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्जोतिषाधिपः ॥ ७ ॥
दृप्तं संख्ये द्विपबलाद्वयसा चापि विस्मितम् ।
अथैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥ ८ ॥
वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः ।
दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥
तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः ।
संशप्तकाः समारोहन्सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥
दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्त्तानां महारथाः ।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चाऽनुगाः ॥ ११ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय ॥ २७ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे महाराज ! आप मुझसे अर्जुन के युद्धकौशल का वृत्तान्त पूछते हैं, सो मैं वर्णन करता हूँ, सुनिए । अर्जुन ने युद्धभूमि में भगदत्त की विविध क्रियाओं से उठनेवाली विकट धूल देखकर और सैनिकों का कोलाहल सुनकर वासुदेव से कहा— हे केशव ! महावीर भगदत्त न जाने अपने सूर्ती हाथी को लेकर युद्ध के मैदान में आये हैं । उसी से पीड़ित होकर सब सैनिक लोग चिल्ला रहे और भाग रहे हैं । महाराज भगदत्त का हाथी बड़ा विकट है और वे स्वयं भी इन्द्र के समान पराक्रमी हैं । हाथी पर से युद्ध करनेवाले जितने योद्धा पृथ्वी पर हैं, उन सबमें भगदत्त श्रेष्ठ हैं ॥१।४॥ उनके हाथी के बराबर कोई दूसरा हाथी नहीं है । वह हाथी लोह-मय कवच से सुरक्षित, कभी न थकनेवाला, अस्त्र-शस्त्र के प्रहार और अग्नि-स्पर्श को सहनेवाला है । उसे अस्त्र से नष्ट करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है । मेरी समझ में यह अकेला हाथी ही आज हमारी सेना को नष्ट कर देगा । मेरे और आपके अतिरिक्त और कोई भगदत्त तथा उनके हाथी को रोक नहीं सकता । इसलिए अब आप शीघ्रता के साथ मेरा रथ भगदत्त के सन्मुख ले चलिए । अपने हाथी के बल से और अपनी अवस्था तथा बाहुबल से अहङ्कारी भगदत्त को मैं आज स्वर्ग भेजकर इन्द्र का प्रिय अतिथि बनाऊँगा॥५।८॥हे राजेन्द्र ! अर्जुन के ये वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण ने रथ को भगदत्त की ओर हाँक दिया । [महावीर अर्जुन जब भगदत्त

दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष ।
आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥ १२ ॥
किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेद्येति चिन्तयन् ।
इह वा विनिवर्त्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥
तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह ।
अभवद्भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥
स सन्निवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः ।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥ १५ ॥
सा हि दुर्योधनस्याऽऽसीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः ।
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥
स तु दोलायमानोऽभूद् द्वैधीभावेन पाण्डवः ।
वधेन तु नराग्र्याणामकरोत्तां मृषा तदा ॥ १७ ॥
ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
असृजन्नर्जुने राजन्संशप्तकमहारथाः ॥ १८ ॥
नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः ।
न हया न रथो राजन्दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥
तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः ।
ततस्तान्प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ २० ॥
शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः ।
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चाऽपतन्क्षितौ ॥ २१ ॥

के साथ युद्ध करने के अभिप्राय से उधर चले ] तब महारथी त्रिगर्तदेशीय दस सहस्र और श्रीकृष्ण के अनुचर चार सहस्र, इस प्रकार चौदह सहस्र संशप्तकगण युद्ध के लिए ललकारते हुए अर्जुन के पीछे चले॥९।११॥इधर भगदत्त सब सेना का संहार कर रहे थे और उधर संशप्तकगण युद्ध के लिए ललकार रहे थे। इस दुहरे सङ्कट में पड़ने से अर्जुन का हृदय हिंडोले के समान दोनों ओर डोलने लगा। वे यह सोचकर बहुत व्याकुल हुए कि अब क्या करना उचित है। यहाँ से लौटकर संशप्तकगण से युद्ध करूँ, अथवा युधिष्ठिर को बचाने के लिए भगदत्त से जाकर भिड़ूँ ! हे महाराज ! बहुत देर सोचकर अन्त को वीर अर्जुन ने संशप्तकों को ही मारने का निश्चय किया। वे उन्हीं की ओर लौट पड़े॥१२।१५॥ अर्जुन का वध करने के लिए महावीर दुर्योधन और कर्ण ने ही सम्मति करके यह उपाय निकाला था कि एक ओर संशप्तकगण युद्ध करें और दूसरी ओर भगदत्त युद्ध करें। किन्तु वीर श्रेष्ठ अर्जुन ने पहले चिन्ता में पड़कर अन्त को संशप्तकवध का ही निश्चय करके उस कौशल को व्यर्थ कर दिया। उस समय महावीर संशप्तकगण पराक्रमी अर्जुन के ऊपर चारों ओर से तीक्ष्ण असंख्य बाण बरसाने लगे। उनके बाण सब दिशाओं में व्याप्त हो गये। उन बाणों के मध्य अर्जुन, श्रीकृष्ण, घोड़े और रथ सब अदृश्य हो गये। संशप्तक-

द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः ।
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः ॥ २२ ॥
विप्रविद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः ।
सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् ॥ २३ ॥
सर्ष्टिप्रासासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः ।
विच्छिन्नबाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना ॥ २४ ॥
बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष ।
सञ्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे ॥ २५ ॥
जज्वालाऽलङ्कृता सेना पत्रिभिः प्राणिभोजनैः ।
नानारूपैस्तदाऽमित्रान्क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥ २६ ॥
क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
धनञ्जयं भूतगणाः साधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ २७ ॥
दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥
कर्मैतत्पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च ।
दुष्करं समरे यत्ते कृतमद्येति मे मतिः ॥ २९ ॥
युगपच्चैव संग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतिता एव मे दृष्टाः संशप्तकमहारथाः ॥ ३० ॥
संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।
भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयन् ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संशप्तकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गण के उस अद्भुत पराक्रम को देखकर कृष्णचन्द्र विमुग्ध हो उठे । उन्हें इस प्रकार मोहित और पसीने से तर देखकर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा । उस ब्रह्मास्त्र से प्रायः सभी संशप्तकगण नष्टप्राय हो गये ॥ १६।२० ॥ सैकड़ों-सहस्रों बाण, धनुष, डोरियाँ, हाथ पैर, ध्वजाएँ, घोड़े, सारथी और रथी छिन्न भिन्न होकर पृथ्वी पर गिरने लगे । जिनके शरीर वृक्ष, पर्वत और मेघ के समान देख पड़ते थे ऐसे सहस्रों सुसज्जित, सवारों और महावतों से युक्त पीठवाले बड़े-बड़े हाथी अर्जुन के बाणों से नष्ट होकर पृथ्वी पर गिरने लगे । अर्जुन के बाणों से हाथियों की झूलें कट गईं, मस्तक फट गये और वे मरकर अपने सवारों सहित धरती पर धमाधम गिरने लगे । अर्जुन के भल्ल बाणों से कटे हुए और ऋष्टि, प्रास, खड्ग, मुद्गर, परशु आदि शस्त्रों से शोभित वीरों के हाथ पृथ्वी पर गिर गये ॥ २१।२४ ॥ बालसूर्य, कमल और चन्द्रमण्डल के समान योद्धाओं के मस्तक वीर अर्जुन के बाणों से कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे । महावीर अर्जुन कुपित होकर जब इस प्रकार शत्रुसेना का संहार करने लगे तब शत्रुपक्ष के योद्धा लोग उनके प्राणनाशक बाणों से अत्यन्त पीड़ित हुए । कमलवन को दलित करनेवाले गजराज की तरह महावीर अर्जुन की सेना

का संहार करते देखकर शत्रु-मित्र सब उनकी प्रशंसा करने लगे। महामति श्रीकृष्ण अर्जुन को इन्द्र के सदृश अद्भुत कर्म करते देखकर विस्मयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—हे धनञ्जय! आज समरभूमि में तुमने जैसा अद्भुत कार्य किया है वह, मेरी समझ में, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों के लिए भी दुष्कर है। तुमने एकसाथ सैंकड़ों-सहस्रों वीर संशप्तकों का संहार कर डाला, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। इस प्रकार बहुसंख्यक संशप्तकगण को विनष्ट करके महावीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से राजा भगदत्त की ओर रथ ले चलने के लिए कहा॥२५।३१॥

—०—

द्रोणपर्व का सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

सञ्जय उवाच—यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याऽश्वान्मनोजवान्।
सम्प्रैषीद्धेमसञ्छन्नान्द्रोणानीकाय सन्त्वरन्॥ १॥
तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान्भ्रातॄन्द्रोणतापितान्।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात्॥ २॥
ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयतेऽच्युत॥ ३॥
दीर्यते चोत्तरेणैव तत्सैन्यं मधुसूदन।
द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम्॥ ४॥
किं नु संशप्तकान्हन्मि स्वान्रक्षाम्यहितार्दितान्।
इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत्॥ ५॥
एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्त्तयत्।
येन त्रिगर्त्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत्॥ ६॥
ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः।
ध्वजं धनुश्चाऽस्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत॥ ७॥
त्रिगर्त्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः।
साश्वं ससूतं परितः पार्थः प्रैषीद्यमक्षयम्॥ ८॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय॥ २८॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महामति श्रीकृष्ण ने अर्जुन की इच्छा के अनुसार सुवर्णभूषित तेज घोड़ों को द्रोणाचार्य की सेना के सम्मुख चलाया। द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित अपने भाइयों की सहायता और रक्षा के लिए महारथी अर्जुन चले। इसी समय महावीर सुशर्मा अपने भाइयों के साथ अर्जुन से युद्ध करने के लिए उनके पीछे दौड़े॥१।२॥ तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे शत्रुदमन! वह देखिए, अपने भाइयों सहित सुशर्मा युद्ध के लिए मुझे ललकार रहा है। उधर उत्तर ओर आचार्य अपने तीक्ष्ण बाणों से हमारी सेना को मारकर भगा रहे हैं। संशप्तकगण ने इस प्रकार मेरे मन को दुहरे सङ्कट में डाल रक्खा है। अब आप ही विचार करके मुझसे कहिए कि इस समय मेरा क्या कर्तव्य है? [पहले

ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् ।
चिक्षेपाऽर्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥ ९ ॥
शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः ।
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्त्तयत् ॥ १० ॥
तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥
ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान् ।
आयाद्विनिघ्नन्कौरव्यान्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १२ ॥
तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
नाऽशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥ १३ ॥
संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः ।
सुपर्णपातवद्राजन्नायात्प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥
यत्तदाऽनामयज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् ।
धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम् ॥ १५ ॥
तदेव तव पुत्रस्य राजन्दुर्द्यूतदेविनः ।
कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६ ॥
तथा विक्षोभ्यमाणा सा पार्थेन तव वाहिनी ।
व्यशीर्यत महाराज नौरिवाऽऽसाद्य पर्वतम् ॥ १७ ॥
ततो दशसहस्राणि न्यवर्त्तन्त धनुष्मताम् ।
मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥

संशप्तकगण का संहार करूँ, या द्रोणाचार्य गुरु के बाणों से पीड़ित अपनी सेना की रक्षा करूँ ?॥३।५॥ श्रीकृष्ण ने अर्जुन के वचन सुनकर त्रिगर्तनरेश सुशर्मा की ओर रथ हाँक दिया। उस समय रणप्रिय अर्जुन ने सात बाणों से सुशर्मा को घायल करके उनकी ध्वजा और धनुष को काट डाला और फिर छः बाणों से उनके घोड़े, सारथी और भाई को मार डाला॥६।८॥ यह देखकर महावीर सुशर्मा ने क्रोध से विह्वल होकर अर्जुन के ऊपर भयानक सर्पाकार लोहमय शक्ति और श्रीकृष्ण के ऊपर तीक्ष्ण तोमर का प्रहार किया। अर्जुन ने तीन बाणों से उस शक्ति और तोमर को काट डाला और बाण-वर्षा से सुशर्मा को मूर्च्छित करके वे निरन्तर बाण छोड़ते हुए आगे बढ़े। कौरव-सेना के वीरों में से कोई भी उन्हें रोक नहीं सका॥९।११॥ हे महाराज! महारथी अर्जुन अपने बाणों से बड़े-बड़े वीरों को मारकर सूखे वन को जलानेवाली अग्नि के समान रणभूमि में आगे बढ़े। सैनिक लोग अर्जुन के अग्निस्पर्श-सदृश दारुण बाणों के वेग को सहने में असमर्थ हो उठे। महावीर अर्जुन अपने बाणों से सैनिकों का इस प्रकार संहार करके गरुड़ की तरह बड़े वेग से भगदत्त के सम्मुख चले॥१२।१४॥ उस समय युद्धविजयी अर्जुन कपट-द्यूत रचनेवाले दुरात्मा दुर्योधन के दोष से होनेवाले क्षत्रिय-संहार के लिए, पाण्डवों के लिए कल्याणप्रद और

व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः ।
आर्च्छत्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥
यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः ।
मृद्गीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नाच्चमूं तव ॥ २० ॥
तस्मिन्प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।
तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥
तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद्धनञ्जयः ।
स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥ २२ ॥
कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च ।
संग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३ ॥
ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४ ॥
स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः ।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत् ।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष ॥ २६ ॥
ततस्तु शरजालेन महताऽभ्यवकीर्य तौ ।
चोदयामास तं नागं वधायाऽच्युतपार्थयोः ॥ २७ ॥
तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥

शत्रुओं की आँखों से शोक के आँसू बहानेवाले, गाण्डीव धनुष को हाथ में लिये हुए थे। कौरव-सेना के योद्धा लोग अर्जुन के बाणों से विह्वल होकर और भागकर, पर्वत से टकराई हुई नाव की तरह, विपत्ति-ग्रस्त होने लगे॥१५।१७॥उस समय क्रूरमति दस सहस्र कौरव-सेना के योद्धा, जय-पराजय के लिए दृढ़ निश्चय करके, अर्जुन को युद्ध के लिए बेधड़क ललकारने लगे। सब प्रकार की विपत्तियों को सहनेवाले अर्जुन, जैसे कोई गजराज कमलवन में प्रवेश करके उसे दलमल डाले वैसे ही, शत्रु-सेना के भीतर प्रवेश होकर उसे नष्ट-भ्रष्ट करने लगे॥१८।२०॥ कौरवपक्ष के सैनिक लोग इस प्रकार जब अर्जुन के बाणों से मारे जाने लगे तब महारथी भगदत्त क्रुद्ध होकर, उसी गजराज पर बैठकर, अर्जुन की ओर वेग से चले। पुरुषसिंह अर्जुन ने रथ पर बैठकर उन पर आक्रमण किया। रथ और हाथी पर से उन दोनों वीरों का घोर संग्राम होने लगा। महावीर भगदत्त सुशिक्षित हाथी पर और महारथी अर्जुन सुसज्जित रथ पर बैठकर अपना-अपना कौशल दिखाते रणभूमि में विचरने लगे॥२१।२३॥महारथी भगदत्त मेघसदृश मत्त मातङ्ग के ऊपर से इन्द्र की भाँति अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। युद्धविद्या-विशारद अर्जुन ने भी अपने बाणों से मध्य राह में भगदत्त के बाणों को काट करके उन पर बाण

सम्प्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम् ।
सारोहं मृत्युसात्कर्तुं स्मरन्धर्मं धनञ्जयः ॥ २९ ॥
स तु नागो द्विपरथान्हयांश्चाऽऽमृद्य मारिष ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

बरसाने लगे। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त अनायास ही अर्जुन के बाणों को काटकर सिंहनाद करते हुए कई प्रकार के बाणों से अर्जुन और श्रीकृष्ण जी को पीड़ित करके उन्हें मार डालने की अभिलाषा से हाथी को आगे बढ़ाने लगे। महामति श्रीकृष्ण, यम के समान भयङ्कर भगदत्त के हाथी को आते देखकर, शीघ्र रथ को लिये उसके दक्षिण पार्श्व में हट गये। महावीर अर्जुन चाहते तो इस सुयोग में उस हाथी और उसके सवार भगदत्त को पीछे से मार डालते, किन्तु उन्होंने युद्ध के धर्म का विचार करके ऐसा नहीं किया। उस समय भगदत्त का भयानक हाथी कुपित होकर राह में पड़नेवाले असंख्य पैदलों, हाथियों, घोड़ों और रथों को रौंदने और तोड़ने-फोड़ने लगा। यह देखकर अर्जुन को बड़ा क्रोध चढ़ आया। उन्होंने उसे मार डाला॥२५।३०॥

—०—

द्रोणपर्व का अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच – तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः ।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच – प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ ।
मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥
तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो ।
गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ॥ ३ ॥
अथ कार्ष्णायसैर्बाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः ।
अविध्यद्देवकीपुत्रं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥
अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः ।
निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥ ५ ॥

उनतीसवाँ अध्याय ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय ! अर्जुन ने इस प्रकार कुपित होकर भगदत्त का क्या किया ? और भगदत्त ने ही उनका क्या किया ? इस वृत्तान्त का वर्णन विस्तार के साथ करो॥१॥सञ्जय ने कहा— हे महाराज ! महारथी अर्जुन और श्रीकृष्ण जब भगदत्त के सम्मुख पहुँचे तब सबने समझ लिया कि ये दोनों अब मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बच सकेंगे। महावीर भगदत्त हाथी पर बैठे बैठे श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे। वे अपना धनुष चढ़ाकर, कानों तक खींचकर, सुवर्ण-पुङ्ख-भूषित, शिला पर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये बाणों से श्रीकृष्ण के मर्मस्थलों को पीड़ा पहुँचाने लगे। भगदत्त के चलाये हुए अग्निस्पर्शी बाण श्रीकृष्ण के शरीर को भेदकर पृथ्वी में प्रवेश होने लगे॥२।

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा परिवारं निहत्य च ।
लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥
सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान्वै चतुर्दश ।
अप्रेषयत्सव्यसाची द्विधैकैकमथाऽच्छिनत् ॥ ७ ॥
ततो नागस्य तद्वर्म व्यधमत्पाकशासनिः ।
शरजालेन महता तद्व्यशीर्यत भूतले ॥ ८ ॥
शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमार्दितः ।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ९ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम् ।
व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥ १० ॥
ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्त्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः ।
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन्पर्वतेश्वरम् ॥ ११ ॥
सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः ।
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥ १२ ॥
व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ।
तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्त्तितम् ॥ १३ ॥
परिवृत्तं किरीटं तद्यमयन्नेव पाण्डवः ।
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥ १४ ॥
एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ।
अभ्यवर्षत्सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥ १५ ॥

४॥उस समय महारथी अर्जुन ने भगदत्त का धनुष काटकर उनकी रक्षा करनेवालों को मार डाला। अब वे उनके साथ खेल खेलने की तरह युद्ध करने लगे। रण-निपुण भगदत्त ने अर्जुन के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण चौदह तोमर चलाये। उनके चलाये हुए प्रत्येक तोमर के अर्जुन ने तीन-तीन टुकड़े कर डाले॥५।७॥ इसके पश्चात् भगदत्त के हाथी का कवच भी देखते ही देखते अपने बाणों से काट गिराया। अर्जुन के बाणों से कवच कट जाने पर उनके प्रहारों से वह महागजराज अत्यन्त-व्यथित हो उठा और जलधाराओं से स्नान किये हुए मेघहीन पर्वतराज की तरह शोभायमान हुआ। तब प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त ने श्रीकृष्ण को लोहमय सुवर्णदण्डभूषित शक्ति मारी। रणनिपुण अर्जुन ने उसी समय स्फूर्ति के साथ उस शक्ति को बाणों से दो जगह से काट डाला। इसके पश्चात् भगदत्त के छत्र और ध्वजा को काटकर उनके अङ्गों में दस बाण मारे॥८।११॥अर्जुन के पङ्खपत्र-शोभित तीक्ष्ण बाणों से बुरी तरह घायल होने के कारण भगदत्त को बड़ा क्रोध चढ़ आया। वे अर्जुन के मस्तक पर अमल्य तोमर फेंककर बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे। भगदत्त के बाणों से अर्जुन के सिर पर का किरीट मुकुट पलट गया। महावीर अर्जुन ने उस उलटे हुए किरीट को उचित रीति से रखकर भगदत्त से कहा—हे प्राग्ज्योतिषेश्वर!

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा तूणीरान्सन्निकृत्य च ।
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १६ ॥
विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् ।
अभिमन्त्र्याङ्कुशं क्रुद्धो व्यसृजत्पाण्डवोरसि ॥ १७ ॥
विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै ।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थं सञ्छाद्य केशवः ॥ १८ ॥
वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि ।
पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वर्तुकुसुमोत्कटा ॥ १९ ॥
ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा ।
तया पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥ २० ॥
शुशुभेऽभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसन्निभः ।
ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥ २१ ॥
अयुध्यमानस्तुरगान्संयन्ताऽस्मीति चाऽनघ ।
इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि ॥ २२ ॥
यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥ २३ ॥
सबाणः सधनुश्चाऽहं ससुरासुरमानुषान् ।
शक्तो लोकानिमाञ्जेतुं तच्चाऽपि विदितं तव ॥ २४ ॥
ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचाऽर्थवद्वचः ।
शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरावृत्तं यथाऽनघ ॥ २५ ॥

तुम अब इस समय सब लोगों को एक बार सदा के लिए अच्छी प्रकार देखलो; (क्योंकि अब तुम्हारी मृत्यु का समय आ गया है )॥१२।१४॥अर्जुन के इन वचनों को सुनकर महारथी भगदत्त अत्यन्त क्रोध में व्याकुल हो, चमकीला धनुष हाथ में लेकर, अर्जुन और श्रीकृष्ण के ऊपर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उस समय रणविशारद अर्जुन ने बड़ी स्फूर्ति से भगदत्त का धनुष और तरकस काटकर बहत्तर बाणों से उनके मर्मस्थलों को छेद डाला। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से मर्मस्थलों में अत्यन्त पीड़ित होने के कारण भगदत्त को बड़ा क्रोध हो आया। तब उन्होंने अर्जुन की छाती ताककर वैष्णव अस्त्र छोड़ा। महात्मा श्रीकृष्ण ने, अर्जुन की रक्षा करने के लिए, वह सर्वघाती अमोघ वैष्णवास्त्र अपनी छाती पर रोक लिया। [ श्रीकृष्ण की आड़ में आ जाने से अर्जुन बच गये। ] वह वैष्णवास्त्र श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में वैजयन्ती माला के रूप में स्थित हुआ॥१५।२१॥ उस समय महावीर अर्जुन ने अत्यन्त क्लेश पाकर श्रीकृष्ण से कहा—हे मधुसूदन! आपने प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा, केवल अर्जुन का रथ हाँकूँगा।' फिर इस समय आपने अपनी उस प्रतिज्ञा को क्यों तोड़ दिया? मैं यदि विपत्ति या प्राण-सङ्कट में पड़ा हुआ होता अथवा शत्रु का सामना करने में असमर्थ होता तो आप युद्ध कर सकते थे। किन्तु

चतुर्मूर्त्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः ।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥ २६ ॥
एका मूर्त्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता ।
अपरा पश्यति जगत्कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥ २७ ॥
अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकम् ॥ २८ ॥
याऽसौ वर्षसहस्रान्ते मूर्त्तिरुत्तिष्ठते मम ।
वरार्हेभ्यो वराञ्श्रेष्ठांस्तस्मिन्काले ददाति सा ॥ २९ ॥
तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३० ॥
देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ ३१ ॥
एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥ ३२ ॥
अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्षमे ।
नरकस्याऽभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्वधिष्यति ॥ ३३ ॥
अनेनाऽस्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ३४ ॥
तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी ।
स चाऽप्यासीद् दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३५ ॥

मेरे जीवित रहते युद्ध करना कदापि आपका कर्तव्य नहीं है। आपसे यह छिपा हुआ नहीं है कि गाण्डीव धनुष लेकर मैं देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सहित सब लोकों को परास्त कर सकता हूँ॥२२।२४॥तब श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! मैं तुमसे एक बहुत ही गुप्त प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो। मैंने लोकों का हित और रक्षा करने के लिए अपनी मूर्ति को चार अंशों में विभक्त किया है। उन चार मूर्तियों में एक मूर्ति पृथ्वी पर तपस्या करती है, दूसरी मूर्ति जगत् के उचित और अनुचित कर्मों का निरीक्षण करती है, तीसरी मूर्ति मनुष्यलोक में उत्पन्न होकर मनुष्यों के कार्य का साधन करती है और चौथी मूर्ति सहस्र वर्ष की निद्रा के सुख का अनुभव करती है॥२५।२८॥सहस्र वर्ष के पश्चात् वह चौथी मूर्ति जागकर वरदान के योग्य व्यक्तियों को श्रेष्ठ वर देती है। उस समय पृथ्वी ने, मेरे वरदान के समय को जानकर, अपने पुत्र नरकासुर के लिए मुझसे जो वर माँगा था, सो सुनो॥२९।३०॥पृथ्वी ने मुझसे कहा—हे नारायण ! आपके वर से मेरा पुत्र नरकासुर वैष्णव अस्त्र को प्राप्त करके दानव और दैत्य दोनों के हाथ से न मारा जा सके। मैंने कहा— हे पृथ्वी ! यह वैष्णव अस्त्र नरकासुर की रक्षा के लिए अमोघ हो। इसके प्रभाव से नरकासुर को कोई नहीं मार सकेगा तुम्हारा पुत्र इस अमोघ दिव्य अस्त्र से सुरक्षित रहने

तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम् ।
नाऽस्याऽवध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ३६ ॥
तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामितम् ।
विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥ ३७ ॥
वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् ।
यथाऽहं जघ्निवान्पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥ ३८ ॥
एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना ।
भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥ ३९ ॥
ततः पार्थो महाबाहुरसम्भ्रान्तो महामनाः ।
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥ ४० ॥
स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवाऽचलम् ।
अभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥ ४१ ॥
स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः ।
न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥ ४२ ॥
स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ ।
नदन्नार्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ४३ ॥
ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥ ४४ ॥
वलीसञ्छन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः ।
अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय बद्धपट्टो ह्यसौ नृपः ॥ ४५ ॥

के कारण सब लोकों के लिए दुराधर्ष और शत्रुसेना का संहार करने में समर्थ होगा॥३१।३४॥हे अर्जुन! पृथ्वी मुझसे यह वर पाकर चली गई। तभी से नरकासुर बड़ा ही दुर्द्धर्ष हो उठा। महावीर प्राग्ज्योतिषपति भगदत्त ने उसी नरकासुर से यह अमोघ वैष्णवास्त्र प्राप्त किया था। त्रिलोक में इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, वरुण आदि कोई ऐसा नहीं है, जिसका वध यह अस्त्र न कर सकता हो। इसी कारण मैंने अपनी प्रतिज्ञा की परवा न करके स्वयं इस अस्त्र के वेग को रोक लिया। देवद्वेषी महासुर भगदत्त इस समय उस वैष्णव अस्त्र से हीन हो गये हैं। अतएव जिस प्रकार मैंने नरकासुर को मारा था उसी प्रकार अब तुम इस दारुण शत्रु को नष्ट करो॥३५।३८॥महावीर अर्जुन ने यह सुनकर भगदत्त को मारने का निश्चय कर लिया। वे भगदत्त के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। अर्जुन ने धैर्य के साथ भगदत्त के हाथी को यमदण्ड-सदृश नाराच बाण मारा। सर्प जैसे बिल के भीतर प्रवेश होता है वैसे ही अर्जुन का चलाया हुआ वह वज्रसदृश नाराच बाण उस हाथी के मस्तक में प्रवेश हो गया॥३९।४१॥भगदत्त उस हाथी को बारम्बार अर्जुन की ओर चलाने लगे, किन्तु जैसे दरिद्री की स्त्री अपने पति की बातों पर ध्यान नहीं देती वैसे ही उस हाथी ने भी भगदत्त की चेष्टा पर ध्यान नहीं दिया। कुछ ही समय के पश्चात् उस हाथी का शरीर निश्चेष्ट

देववाक्यात्प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः ।
छिन्नमात्रेंऽशुके तस्मिन्रुद्धनेत्रो बभूव सः ॥ ४६ ॥
तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् ।
ततश्चन्द्रार्धबिम्बेन बाणेन नतपर्वणा ॥ ४७ ॥
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ।
स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥ ४८ ॥
शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह ।
शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम् ।
नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९ ॥
स हेममाली तपनीयभाण्डात्पपात नागाद्गिरिसन्निकाशात् ।
सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥ ५० ॥
निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे ।
ततोऽपरांस्तव जयकांक्षिणो नरान्बभञ्ज वायुर्बलवान्द्रुमानिव ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

हो गया और वह दाँतों के बल पृथ्वी पर गिरकर, चिल्ला-चिल्लाकर, मर गया॥४२।४३॥अर्जुनसे श्रीकृष्ण ने कहा कि इस राजा को वृद्ध अवस्था ने घेर रक्खा है। यह शूर है तो बड़ा बलवान् किन्तु इसकी पलकें इतनी लटक गई हैं कि आँखें खुली रखने के लिए इसने पलकों को पट्टी से बाँध रक्खा है॥४४।४५॥ यह सुनकर अर्जुन ने बाण से उस पट्टी को काट दिया; इससे भगदत्त की आखों पर पलकें गिर जाने के कारण वे कुछ भी देख न सके। अब अर्जुन ने अर्धचन्द्र बाण से भगदत्त का वक्ष स्थल फाड़ डाला। तब भगदत्त के हाथ से धनुष और बाण छूटकर गिर गये और उनका शरीर प्राणहीन होकर गिर पड़ा। सन्ताड़ित पद्म-नाल से जैसे पत्ते झड़ जाते हैं वैसे ही भगदत्त के मस्तक पर से बहुमूल्य पगड़ी गिर पड़ी॥४६।४९॥अच्छी प्रकार फूला हुआ कनेर का पेड़ जैसे उखड़कर पर्वत के ऊपर से गिर पड़े वैसे ही सुवर्णमाल्य-भूषित भगदत्त का शरीर सुवर्ण-भूषण-भूषित हाथी पर से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय महावीर अर्जुन इन्द्रतुल्य महाबली इन्द्र के सखा वीर भगदत्त को मारकर वैसे ही कौरव-सेना के वीरों का संहार करने लगे जैसे आँधी बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़ती और उखाड़ती चली जाती है॥५०।५१॥

द्रोणपर्व का उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्याय ॥ ३० ॥

सञ्जय उवाच — प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् ।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १ ॥

---

तीसवाँ अध्याय ॥ ३० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! अर्जुन इस प्रकार इन्द्र के प्रिय सखा भगदत्त को मारकर रणभूमि में घूमने लगे। उस समय वृषक और अचल नामवाले दो गान्धारराज-नन्दन अर्जुन को, सन्मुख आकर,

ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ । 
अर्दंतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २ ॥
तौ समेत्याऽर्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ । 
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३ ॥
वृषकस्य हयान्सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् । 
तिलशो व्यधमत्पार्थः सौवलस्य शितैः शरैः ॥ ४ ॥
ततोऽर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि । 
गान्धारानाकुलांश्चक्रे सौवलप्रमुखान्पुनः ॥ ५ ॥
ततः पञ्चशतान्वीरान्गान्धारानुद्यतायुधान् । 
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो वाणैर्धनञ्जयः ॥ ६ ॥
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवतीर्य महाभुजः । 
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७ ॥
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ । 
शरवर्षेण वीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
स्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ । 
भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रवलाविव ॥ ९ ॥
लब्धलक्षौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः । 
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा ॥ १० ॥
तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ । 
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणाऽर्जुनः ॥ ११ ॥

वाणवर्षा से पीड़ित करने लगे। कभी सन्मुख से और कभी पीछे से वे अर्जुन के ऊपर वेगगामी तीक्ष्ण वाण चलाने लगे, जिनसे उनका शरीर घायल हो गया॥१।३॥अर्जुन ने क्रुद्ध होकर क्षण भर में तीक्ष्ण वाणों से गान्धार देश के राजकुमार वृषक के रथ के सारथी और घोड़ों को मार डाला और उनके धनुष, ध्वजा, छत्र और रथ को छिन्न-भिन्न करके काट डाला। महारथी अर्जुन अनेक प्रकार के अस्त्रों और शस्त्रों से शकुनि आदि गान्धार देश के योद्धाओं को बारम्बार व्याकुल करने लगे। फिर अर्जुन ने कुपित होकर शस्त्र ताने हुए पाँच सौ गान्धारवीरों को क्षण भर में मार गिराया। वृषक बड़ी स्फूर्ति के साथ अपने बिना घोड़ा के रथ से कूदकर, भाई के रथ पर जाकर, दूसरा धनुष लेकर युद्ध करने लगे॥४।७॥वीर अर्जुन, एक ही रथ पर बैठे हुए, वृषक और अचल नाम के दोनों भाइयों को बारम्बार तीक्ष्ण वाण मारने लगे। पूर्व समय में जैसे वृत्रासुर और बलासुर ने इन्द्र पर प्रहार किये थे वैसे ही वे दोनों भाई अर्जुन को तीक्ष्ण वाणों से घेरने लगे। जैसे गर्मी और वर्षा ऋतु के दो-दो महीने ताप और जल के द्वारा मनुष्यों को अत्यन्त व्याकुल करते हैं वैसे ही वे दोनों वीर राजकुमार स्वयं प्रहारों से बचकर अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥८।१०॥इसके पश्चात् अर्जुन ने एक ही रथ पर बैठे हुए दोनों भाइयों को एक ही वाण से मार डाला।

तौ रथात्सिंहसङ्काशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ ।
राजन्सम्पेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२ ॥
तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद्बन्धुजनप्रियौ ।
यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ १४ ॥
निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
कृष्णौ सम्मोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥ १५ ॥
लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
गदापरिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥ १६ ॥
सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः ।
क्षुराः क्षुरप्रणालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः ॥ १७ ॥
चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च ।
प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चाऽर्जुनं प्रति ॥ १८ ॥
खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचित्रकाः ।
ऋक्षाः शालावृका गृध्राः कपयश्च सरीसृपाः ॥ १९ ॥
विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।
संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥ २० ॥
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥ २१ ॥

उसी समय वे सिंहतुल्य लाल-लाल नेत्रों वाले, एक ही रूप और आकार के, दोनों भाई मरकर रथ पर से गिर पड़े। अत्यन्त पवित्र वीर-यश को पृथ्वी पर सब ओर फैलाकर वे दोनों वीर स्वर्ग को सिधारे ॥११।१३॥ हे महाराज ! इसके पश्चात् आपके पुत्र-गण संग्राम से न हटनेवाले, बन्धुजनप्रिय, दोनों मातुलों को मरकर गिरते देखकर आँसू बहाने लगे। माया-निपुण शकुनि ने जब देखा कि उनके दोनों भाई मारे गये तब वे श्रीकृष्ण और अर्जुन को मोहित करने के लिए माया-युद्ध करने लगे। उस समय शकुनि की माया के प्रभाव से सब दिशाओं और विदिशाओं से अर्जुन के ऊपर लाठी, अयोगुड, पत्थर, शतघ्नी, गदा, बेलन, खड्ग, शूल, मुद्गर, पट्टिश, कम्पन, ऋष्टि, नखर, मुशल, परशु, क्षुर, क्षुरप्र, नालीक, वत्सदन्त, अस्थिसन्धि, चक्र, विशिख, प्रास और अन्यान्य बहुत से शस्त्रों की वर्षा होने लगी॥१४।१८॥ गधे, ऊँट, भैंसे, बाघ, सिंह, सृमर (एक प्रकार के मृग), चीते, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, वानर, सर्प आदि बहुत से जीव भूख से व्याकुल और क्रोध से अन्धे होकर अर्जुन की ओर दौड़ते दिखाई पड़ने लगे। तब दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले अर्जुन [अस्त्रों से अभिमन्त्रित] बाण चलाकर उन जीवों को नष्ट करने लगे। अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर भयानक चीत्कार करते हुए वे मर-मरकर यमपुर को जाने लगे॥१९।२१॥ अब बहुत

ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः ।
विरुवन्तो महारावान्विनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥
ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति ।
तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥ २३ ॥
तत्तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे ।
उत्तमास्त्रेण महता ज्यौतिषेणाऽर्जुनोऽवधीत् ॥ २४ ॥
हते तस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरासन्भयानकाः ।
अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथाऽर्जुनः ॥ २५ ॥
प्रायुंक्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोषितम् ।
एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ॥ २६ ॥
जघानाऽस्त्रबलेनाऽऽशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।
तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ॥ २७ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा ।
ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छ्रैष्ठ्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ॥ २८ ॥
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।
सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ २९ ॥
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवाऽऽसाद्य पर्वतम् ।
द्रोणमेवाऽन्वपद्यन्त केचित्तत्र नरर्षभाः ॥ ३० ॥
केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना ।
नाऽपश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसाऽऽवृते ॥ ३१ ॥

ही घना अँधेरा विस्तृत हो गया, जिसने अर्जुन के रथ को छिपा लिया। उस अँधेरे के भीतर से कठोर वाक्य कहकर अदृश्य जीव अर्जुन की भर्त्सना करने लगे। अर्जुन ने ज्योतिर्मय अस्त्र का प्रयोग करके तुरन्त ही उस भयङ्कर अँधेरे को दूर कर दिया। इसके पश्चात् भयानक जल के प्रवाह प्रकट हुए। अर्जुन ने वह जल सुखाने के लिए आदित्यास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के प्रभाव से प्राय सब जल सूख गया॥२३।२६॥इसी प्रकार महावीर अर्जुन ने हँसते हँसते अस्त्रविद्या के बल से शकुनि की प्रकट की हुई सब मायाओं को नष्ट कर दिया। तब शकुनि अर्जुन के बाणप्रहार से पीडित होकर, बड़े स्फूर्तिशाली घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर, कायरों की तरह रण छोड़कर भाग खड़े हुए॥२६।२८॥अब महाबाहु अर्जुन अपने हाथों की स्फूर्ति दिखाते हुए कौरव सेना पर बाण बरसाने लगे। जैसे गङ्गा का प्रवाह पर्वत से टकराकर दो धाराओं में बँट जाता है वैसे ही कौरव सेना अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर दो भागों में बँट गई। कुछ सेना आचार्य के समीप और कुछ सेना दुर्योधन के समीप चली गई। उस समय ऐसी धूल उड़ी कि अर्जुन को हम लोग देख नहीं पाते थे। केवल दक्षिण ओर निरन्तर गाण्डीव धनुष का घोर शब्द सुनाई पड़ रहा था। वह गाण्डीव का शब्द शङ्ख, दुन्दुभि और अन्य युद्ध के बाजों की

गाण्डीवस्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥ ३२ ॥
गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्याऽस्पृशद्दिवम् ।
ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥ ३३ ॥
सुयुद्धं चाऽर्जुनस्याऽऽसीदहं तु द्रोणमन्वियाम् ।
यौधिष्ठिराण्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥ ३४ ॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाऽभ्राणि मारुतः ॥ ३५ ॥
तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिदवारयन् ॥ ३६ ॥
ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम् ।
स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७ ॥
तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥ ३८ ॥
तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ३९ ॥
न च द्वितीयं व्यसृजत्कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
पृथगेकशरा रुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥ ४० ॥
हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः शराभिसृष्टैश्च हयैर्निपातितैः ।
तदाऽश्वगोमायुबलाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव तत् ॥ ४१ ॥

ध्वनि से मिलकर आकाश में गूँज उठा॥२८।३३॥ हे महाराज ! उस समय दक्षिण ओर घोर संग्राम होने लगा । मैं द्रोणाचार्य के साथ था । धर्मराज युधिष्ठिर के वीर योद्धा कौरवपक्ष की सेना का संहार करने लगे । वर्षाकाल में वायु जैसे मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है वैसे ही अर्जुन अपने बाणों के प्रहार से शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करने और भगाने लगे ॥३३।३५॥ जल बरसाते हुए इन्द्र के समान बाणवर्षा करनेवाले अर्जुन को आते देखकर कोई भी वीर उन्हें नहीं रोक सका । अर्जुन के बाणों की चोट से अत्यन्त व्यथित होकर कौरवपक्ष के वीर ऐसे भागे कि भागते समय अपने ही पक्ष के लोगों को रौंदते-कुचलते आर मारते हुए चले जाते थे । अर्जुन के चलाये हुए कङ्कपत्रशोभित और शरीरों को फाटनेवाले बाण टीड़ियों की तरह चारों ओर फैलने और गिरने लगे ॥३५।३८॥ सर्प जैसे बिलों में प्रवेश होते हैं वैसे ही वे रक्त पनैले बाण घोड़ों, हाथियों, पैदलों और रथी लोगों के शरीरों को फोड़कर पृथ्वी में प्रवेश होते हुए दिखाई देते थे । अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को दूसरा बाण नहीं मारते थे; एक ही बाण लगने से वे जीव अत्यन्त व्यथित और प्राणहीन होकर पृथ्वी पर लोटने लगते थे । मरे हुए मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों की लाशों से समरभूमि परिपूर्ण हो उठी । चारों ओर गीदड़ और कुत्ते कोला

पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः ।
स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्याय ॥ ३० ॥

हल कर रहे थे। इस प्रकार वह युद्धभूमि अत्यन्त भयानक और अद्भुत दिखाई पड़ने लगी। पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, मित्र मित्र को और स्वजन स्वजन को छोड़कर आत्मरक्षा के लिए यत्न कर रहा था। अधिक क्या कहें, लोग अपने-अपने वाहनों को भी छोड़कर भागे चले जा रहे थे॥३९,४२॥

द्रोणपर्व का तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

अथ एकत्रिंशोऽध्याय. ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।
चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः ॥ १ ॥
अनीकानां प्रभग्नानामवस्थानमपश्यताम् ।
दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच - तथाऽपि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशाम्पते ।
यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः ॥ ३ ॥
समुद्यतेषु चाऽस्त्रेषु सम्प्राप्ते च युधिष्ठिरे ।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत् ॥ ४ ॥
अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः ।
सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥ ५ ॥
द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समचोदयन् ।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून्सर्वानचोदयन् ॥ ६ ॥
द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति चाऽपरे ।
कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥ ७ ॥
यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् ।
तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ ८ ॥

इकतीसवाँ अध्याय ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! जिस समय कौरव सेना छिन्न भिन्न हो गई और तुम लोग रणभूमि छोड़कर भागने लगे उस समय तुम लोगों की क्या दशा हुई ? छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर भागती और शरणस्थान को न देखती हुई सेना को संभालना और एकत्र करना बहुत ही दुष्कर होता है। मेरे पक्ष के सेनापति ने यह कार्य कैसे किया ? तुम सब वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझ से कहो ॥१।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! साधारण सैनिक लोग जब वे सिलसिले भाग खड़े हुए तब भी महाराज दुर्योधन का प्रिय और अपने यश की रक्षा करने के निमित्त श्रेष्ठ वीरगण द्रोणाचार्य के पीछे चले। अस्त्र-शस्त्र तन गये, युधिष्ठिर अपने योद्धाओं के साथ युद्धभूमि में उपस्थित हुए और भयानक युद्ध होने

तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति ।
वीराः समासदन्वीरान्कुर्वन्तो भैरवं रवम् ॥ ९ ॥
अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः ।
अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥ १० ॥
ते त्वमर्षवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः ।
त्यक्त्वा प्राणान्न्यवर्त्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे ॥ ११ ॥
अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाऽभवत् ।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२ ॥
न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम् ।
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३ ॥
प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन्वीरावसादने ।
निवर्तता बलौघेन महता भारपीडिता ॥ १४ ॥
घूर्णतोऽपि बलौघस्य दिवं स्तब्ध्वेव निःस्वनः ।
अजातशत्रोस्तत्सैन्यमाविवेश सुभैरवः ॥ १५ ॥
समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्ना निशितैः शरैः ॥ १६ ॥
तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाऽद्भुतकर्मणा ।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥
तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा ।
नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः ॥ १८ ॥

लगा। उस समय आपके पक्ष के वीर योद्धा लोग निर्भय अद्भुत कर्म करके अपना पराक्रम प्रकट करने लगे। कौरवपक्ष के महापराक्रमी वीर अवसर पाकर भीमसेन, सात्यकि और धृष्टद्युम्न आदि पर आक्रमण करने लगे॥३।५॥क्रूरमति पाञ्चालगण "द्रोण को मारो, द्रोण को मारो' कहकर अपने पक्ष के लोगों को उत्तेजित करने लगे। वैसे ही आपके पुत्रगण "द्रोणाचार्य की रक्षा करो, द्रोणाचार्य की रक्षा करो" ऐसा कहकर अपने पक्ष के वीरों को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करते हुए प्रेरणा करने लगे। द्रोणाचार्य के जीवन को लेकर कौरवों और पाण्डवों में बाजी सी लग गई। पाण्डव लोग कहते थे कि द्रोणाचार्य को मारो और कौरव लोग कहते थे कि द्रोणाचार्य को न मारने पावें ॥६।७॥आचार्य द्रोण पाञ्चाल देश की रथ-सेना के जिस-जिस अंश को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न करने लगते थे उस-उस अंश की रक्षा करने के निमित्त वीर धृष्टद्युम्न वहीं पहुँच जाते थे। इस प्रकार सब सेना में उथल-पुथल मच गई और युद्ध ने भयानक रूप धारण कर लिया। वीर योद्धा लोग भयानक सिंहनाद करते हुए अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने लगे। पाण्डवों पर आक्रमण करना कौरवपक्ष के वीरों के लिए असम्भव सा हो उठा। कौरवों के दिये हुए कष्टों को स्मरण करके पाण्डव भयानक आक्रमण से शत्रुपक्ष की सेना को व्याकुल करने

ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम् ।
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १९ ॥
तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥
नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा ।
मयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाऽऽशु माम् ॥ २१ ॥
तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः ॥ २२ ॥
तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत ॥ २३ ॥
स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत् ।
द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत्पतत्रिवत् ॥ २४ ॥
तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
भल्लेनाऽपाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवाऽनघ ॥ २५ ॥
सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
प्रांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतद्भुवि ॥ २६ ॥
ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला ।
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥ २७ ॥

लगे॥८।१०॥ पाण्डव लोग कुपित होकर द्रोणाचार्य को मारने के लिए प्राणपण करके घोरतर संग्राम करने लगे। वह संग्राम पत्थर और लोहे की वर्षा के समान अत्यन्त भयङ्कर हो उठा। बड़े बूढ़े लोगों को भी, जिन्होंने पहले देवताओं और दानवों के घोर संग्राम देखे-सुने हैं, स्मरण नहीं आता कि कभी ऐसा भयङ्कर युद्ध हुआ था॥११।१३॥उस वीर-संहारकारी समर में सेना के बोझ से पृथ्वी अत्यन्त व्यथित होकर काँपने लगी। चारों ओर घूमते फिरते हुए कौरवपक्ष के सैनिकों का कोलाहल आकाशमण्डल में गूँजता हुआ पाण्डव-सेना में छा गया। पाण्डवपक्ष के सैनिकों को सन्मुख देखकर द्रोणाचार्य सुतीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न करने लगे। तब पाण्डव पक्ष के सेनापति धृष्टद्युम्न क्रोध से विह्वल होकर उनके सन्मुख आये और उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के उस अद्भुत समर को देखकर हम लोगों ने निश्चय कर लिया कि यह युद्ध अतुलनीय है॥१४।१८॥इसके पश्चात् अग्निसदृश तेजस्वी महाराज नील कौरव सेना को उसी प्रकार अपने बाणों से भस्म करने लगे जिस प्रकार से प्रज्वलित हुई अग्नि सूखी घास के ढेर को जलाती है। उनका धनुष ही ज्वाला था और बाण ही चिनगारियों के समान देख पड़ते थे। तब महाप्रतापी वीर अश्वत्थामा हँसते हुए नील के सन्मुख आकर कहने लगे—हे नील! इन बहुत से योद्धाओं को अपने बाणों की अग्नि में तुम व्यर्थ भस्म कर रहे हो। इन्हें मारने से क्या फल प्राप्त होगा? आओ, मुझ अकेले से ही युद्ध करो, शीघ्र ही क्रुद्ध होकर मुझ पर वार करो॥१९।२१॥हे महाराज! यह सुनकर महापराक्रमी और खिले हुए कमल के समान मुखवाले नील राजा ने कमल-वर्ण

अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः ।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष ॥ २८ ॥
दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली ।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

कमल-लोचन अश्वत्थामा को कई तीक्ष्ण बाण मारे। महाबली अश्वत्थामा ने तुरन्त ही तीन भल्ल बाणों से नील के धनुष, ध्वजा और छत्र के टुकड़े-टुकड़े, कर डाले। तब नील रथ से कूदकर ढाल तलवार लेकर अश्वत्थामा का सिर काटने के निमित्त पक्षी की भांति उनकी ओर झपटे। अश्वत्थामा ने भी हँसकर स्फूर्ति के साथ एक भल्ल बाण से नील का, सुन्दर नासिका से शोभित और मणिमय कुण्डलों से अलङ्कृत, मस्तक काट डाला॥२२।२५॥लम्बे,कमलवर्ण, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले, कमल-लोचन नील जब पृथ्वी पर मरकर गिर पड़े तब पाण्डवों की सेना बहुत ही व्यथित हो उठी। पाण्डवपक्ष के योद्धा और महारथी लोग उस समय इस चिन्ता से अधीर हो उठे कि इस समय हमारी रक्षा कौन करेगा। क्योंकि महावीर अर्जुन तो दक्षिण-रणभूमि में दूर पर, बचे हुए संशप्तकों और नारायणी सेना के वीरों से, संग्राम कर रहे हैं। फिर वे कैसे हमारी रक्षा कर सकते हैं॥२६।२९॥

द्रोणपर्व का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

सञ्जय उवाच—प्रतिघातं तु सैन्यस्य नाऽमृष्यत वृकोदरः ।
सोऽभ्याहनद्गुरुं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः ॥ १ ॥
तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः ।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्मण्याशु जघान ह ॥ २ ॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत् ।
कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ ३ ॥
षड्भिर्दुर्योधनो राजा तत एनमथाऽकिरत् ।
भीमसेनोऽपि तान्सर्वान्प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥ ४ ॥
द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः ॥ ५ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय ॥ ३२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! इसके उपरान्त महावीर भीमसेन इस प्रकार अपनी सेना का संहार होना न देख सकने के कारण आगे बढ़े। उन्होंने क्रुद्ध होकर बाह्लीक को साठ और कर्ण को दस बाण मारे। द्रोणाचार्य ने भीमसेन के प्राण लेने के लिए उनके मर्मस्थलों में निरन्तर तीक्ष्ण धारवाले छब्बीस बाण मारे। कर्ण ने बारह, अश्वत्थामा ने सात और दुर्योधन ने छः तीक्ष्ण बाण भीमसेन को मारे॥१।४॥तब भीम ने कुपित होकर स्फूर्ति दिखाते हुए द्रोणाचार्य को पचास, कर्ण को दस, दुर्योधन को बारह और अश्वत्थामा को आठ बाण मारकर सिंहनाद किया। इस प्रकार वे अकेले ही उनके

आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्त्तत तान्रणे ।
तस्मिन्सन्त्यजति प्राणान्मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६ ॥
अजातशत्रुस्तान्योधान्भीमं त्रातेत्यचोदयत् ।
ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ॥ ७ ॥
युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ॥ ८ ॥
महेष्वासवरैर्गुप्ता द्रोणानीकं बिभित्सवः ।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥ ९ ॥
तान्प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
महारथानतिबलान्वीरान्समरयोधिनः ॥ १० ॥
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान्पाण्डवा ययुः ।
सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान् ॥ ११ ॥
आसीच्छक्त्यसिसम्पातो युद्धमासीत्परश्वधैः ।
प्रकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम् ॥ १२ ॥
कुञ्जराणां च सम्पाते युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
अपतत्कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः ॥ १३ ॥
नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष ।
तत्राऽन्यस्य च सम्मर्दे पतितस्य विवर्मणः ॥ १४ ॥
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ।
अपरांश्चाऽपरे मृद्नन्वारणाः पतितान्नरान् ॥ १५ ॥

साथ संग्राम करने लगे। वह युद्धभूमि उस समय महाभयानक हो उठी। उस समय वहाँ मृत्यु बहुत ही सुलभ हो रही थी। धर्मराज युधिष्ठिर ने भीमसेन की रक्षा करने के निमित्त कई वीर योद्धाओं को भेजा ॥४।७॥ नकुल, सहदेव और सात्यकि आदि योद्धा सहायता करने के निमित्त भीमसेन के समीप पहुँचे। भीमसेन आदि सब वीर मिलकर क्रोध के साथ आगे बढ़े और द्रोणाचार्य की सेना को मारने का उद्योग करने लगे। महारथी द्रोणाचार्य ने भी उन महाबली वीरों का अकेले ही सामना किया॥७।१०॥ उस समय कौरव लोग, राज्य की आशा और मृत्यु का भय छोड़कर, पाण्डवों के सम्मुख आये। हाथी का सवार हाथी के सवार को, रथी रथी को और घुड़सवार घुड़सवार को मारकर गिराने लगा। वीर लोग शक्ति, खड्ग और परशु आदि शस्त्रों के द्वारा परस्पर घोर प्रहार करने लगे। किसी-किसी का सिर नीचे हो गया और वह हाथी या घोड़े की पीठ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। कोई बाण लगने से मरकर रथ से धरती पर आ रहा। किसी शूर का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया और वह चेष्टारहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, इसी मध्य में एक हाथी उसकी छाती पर होकर चला गया, जिससे उसकी छाती और मस्तक चूर-चूर हो गया। इसी प्रकार अनेक प्रकार के हाथी इधर-उधर भागकर बहुत से जीवित, घायल, अधमरे और मरे हुए लोगों को रौंदने

विषाणैश्चाऽवनिं गत्वा व्यभिन्दन्रथिनो बहून् ।
नरान्त्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंश्रयैः ॥ १६ ॥
बभ्रमुः समरे नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् ।
कार्ष्णायसतनुत्राणान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥ १७ ॥
पतितान्पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव ।
गृध्रपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥ १८ ॥
ह्रीमन्तः कालसम्पर्कात्सुदुःखान्यनुशेरते ।
हन्ति स्माऽत्र पिता पुत्रं रथेनाऽभ्येत्य संयुगे ॥ १९ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्त्तत ।
रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम् ॥ २० ॥
युगार्द्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ।
सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
गजेनाऽऽक्षिप्य बलिना रथः सञ्चूर्णितः क्षितौ ।
रथिना ताडितो नागो नाराचेनाऽपतत्क्षितौ ॥ २२ ॥
सारोहश्चाऽपतद्वाजी गजेनाऽभ्यहतो भृशम् ।
निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्तत सुदारुणम् ॥ २३ ॥
हा तात हा पुत्र सखे क्वाऽसि तिष्ठ क्व धावसि ।
प्रहराऽहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ॥ २४ ॥
इत्येवमुच्चरन्ति स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ।
नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २५ ॥

लगे॥११।१५॥कुछ हाथी बाणों के प्रहार से चुटियल होकर धरती पर गिर पड़े और अपने बड़े-बड़े दाँतों से बहुत से गिरे हुए रथी लोगों के शरीरों को फाड़ने लगे। कुछ हाथी दाँतों में लगे हुए नाराच बाणों से सैंकड़ों मनुष्यों को घायल करते हुए इधर-उधर विचरने लगे। हाथियों के दल इधर-उधर भागकर गिरे हुए घोड़ों, रथों, हाथियों और कवचधारी पैदलों को — मोटे नरकुल के वन की तरह — पाँव से कुचलते और रौंदते हुए चले जाते थे। अपनी बात पर दृढ़ राजा लोग काल के वश होकर गिद्धों के पङ्खों की बिछी हुई अत्यन्त क्लेशकर मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे॥१५।१९॥उस समय मर्यादा तोड़कर भयानक युद्ध हो रहा था। मोहवश पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मार रहा था। चारों ओर रथों के टूटे हुए धुरे, कटे हुए धनुष, ध्वजा और छत्र आदि का गिर-गिरकर ढेर होने लगा। कोई घोड़ा,जुएँ का आधा अंश कट जाने पर, बड़े वेग से भाग खड़ा हुआ। तलवार की मूठ पकड़े हुए हाथ और कुण्डल-मण्डित मुण्ड कट-कटकर गिरने लगे। महापराक्रमी हाथी बिगड़ खड़े हुए और रथों को खींच-खींचकर तोड़ने-फोड़ने लगे। किसी-किसी स्थान पर हाथी के आक्रमण से घोड़े घायल हो-होकर अपने सवारों सहित धरती पर गिर रहे थे। इस प्रकार मर्यादा-हीन अत्यन्त भीषण संग्राम हो रहा था॥२०।२३॥ 'हाय तात! हाय पुत्र! हाय

उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरून्कश्मलमाविशत् ।
चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥ २६ ॥
अतीतेषुपथे काले जहार गदया शिरः ।
आसीत्केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् ॥ २७ ॥
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ।
तत्राऽच्छिद्यत शूरस्य सखड्गो बाहुरुद्यतः ॥ २८ ॥
सधनुश्चाऽपरस्यापि सशरः सांकुशस्तथा ।
आक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथाऽन्यो विमुखोऽद्रवत् ॥ २९ ॥
अन्यः प्राप्तस्य चाऽन्यस्य शिरः कायादपाहरत् ।
सशब्दमद्रवच्चाऽन्यः शब्दादन्योऽत्रसद्भृशम् ॥ ३० ॥
स्वानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः ।
गिरिशृङ्गोपमश्चाऽत्र नाराचेन निपातितः ॥ ३१ ॥
मातङ्गो न्यपतद्भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ।
तथैव रथिनं नागः क्षरन्गिरिरिवाऽरुजन् ॥ ३२ ॥
अभ्यतिष्ठत्पदा भूमौ सहाश्वं सहसारथिम् ।
शूरान्प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान्रुधिरोक्षितान् ॥ ३३ ॥
बहूनप्याविशन्मोहो भीरून्हृदयदुर्बलान् ।
सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३४ ॥

मित्र ! तुम कहाँ हो ! कहां भागे जा रहे हो ! इसे मारो ! उसे इस स्थान पर ले आओ ! इस व्यक्ति को मार डालो !"—इस प्रकार की और अन्यान्य प्रकार की अनेक बातें चारों ओर सुनाई पड़ रही थीं। हास्य, सिंहनाद, शङ्खनाद, आर्तनाद और गर्जनशब्द चारों ओर उठकर उस रणभूमि को भयानक बना रहे थे। मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से रक्त का प्रवाह बह चला, जिससे पृथ्वी की उठी हुई धूल बैठ गई। डरपोक मनुष्य उस दृश्य को देख-कर भयभीत हो गये। किसी वीर के रथ का पहिया शत्रु के रथ के पहिये में फँस गया जिससे, अन्य अस्त्र मारने का अवसर न रहने के कारण, उसने गदाप्रहार करके शत्रु का सिर चूर्ण कर डाला। उस निराश्रय संग्राम में आश्रयप्राथी वीर परस्पर केशा-कर्षण, घूँसेबाजी और नख दन्त प्रहार आदि करके युद्ध करने लगे। किसी वीर ने तलवार तानने के लिए हाथ उठाया, इसी समय शत्रु ने उस खड्ग-सहित हाथ के टुकड़े टुकड़े करके गिरा दिये। किसी-किसी के धनुष-बाण-अंकुश आदि शस्त्रों से शोभित हाथ छिन्न भिन्न होने लगे। कोई किसी के प्रति अपने हार्दिक विद्वेष को प्रकट करने लगा। किसी योद्धा ने समर से भागकर जान बचाई और किसी ने अपने समकक्ष योद्धा का सिर काट डाला। कोई आर्तनाद करता हुआ बड़े वेग से भाग खड़ा हुआ। कोई अत्यन्त भयविह्वल होकर चिल्लाने लगा। कोई तीक्ष्ण बाणों से शत्रु को और कोई अपने ही पक्ष के योद्धा को मार रहा था॥२४।३१॥पर्वतशिखरतुल्य कोई गजराज बाण की चोट खाकर वर्षाकाल के नदी के फटे हुए कगारे के समान गिर पड़ा। झरने से युक्त पर्वत के समान मदमत्त अन्य एक हाथी रथी, घोड़े और

सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्त्तत ।
ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥ ३५ ॥
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् ।
कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥ ३६ ॥
सरो हंसा इवाऽऽपेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ।
गृह्णीताऽऽद्रवताऽन्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ॥ ३७ ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ।
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ॥ ३८ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैतान्यवारयन् ।
ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवारा दुरासदाः ॥ ३९ ॥
शरार्त्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विसृजञ्शतशः शरान् ॥ ४० ॥
चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत्कदनं महत् ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ॥ ४१ ॥
वज्रसंह्लादसङ्काशस्त्रासयन्मानवान्बहून् ।
एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान्बहून् ॥ ४२ ॥
अभ्यायात्तत्र यत्राऽसौ द्रोणः पाण्डून्प्रमर्दति ।
ताञ्शरौघान्महावर्त्ताञ्शोणितोदान्महाह्रदान् ॥ ४३ ॥

सारथी को पीड़ित करता हुआ खड़ा था। डरपोक दुर्बल हृदयवाले लोग रक्त से तर महावीरों को मार-काट करते देखकर मोह को प्राप्त और मूर्च्छित होने लगे। सभी लोग उद्विग्न हो रहे थे। ऐसा अँधेरा था कि कुछ भी नहीं प्रतीत पड़ता था। कोई किसी को नहीं पहचानता था। सैनिकों की दौड़-धूप से उठी हुई धूल आकाशमण्डल में छा गई। समर में कोई नियम नहीं रहा॥३१।३५॥उधर पाण्डवपक्ष के सेनापति धृष्टद्युम्न सदा युद्ध का उत्साह रखनेवाले पाण्डवों और अन्य वीरों को "यही ठीक अवसर है" कहकर उत्तेजित करने लगे। बाहुबलसम्पन्न पाण्डव-गण सेनापति की आज्ञा के अनुसार शत्रुसेना का संहार करते हुए, राजहंस जैसे सरोवर में विचरते हैं वैसे ही, रणभूमि में द्रोणाचार्य की ओर जा रहे थे। आचार्य द्रोण के रथ के सन्मुख "उसे पकड़ो; भागो नहीं; शङ्का न करो; उसे मार डालो" इत्यादि भयङ्कर शब्द सुन पड़ते थे॥३५।३८॥उधर से द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, शल्य, अवन्ति-देशीय विन्द और अनुविन्द आदि वीर योद्धा लोग शत्रुपक्ष के वीरों को रोकने लगे। इधर अत्यन्त कुपित, दुर्द्धर्ष और दुर्निवार्य पाञ्चालगण और पाण्डवगण शत्रुओं के बाणप्रहार से अत्यन्त पीड़ित होकर वीर आर्यों के धर्म का विचार करके द्रोणाचार्य के सन्मुख समर में डटे रहे। इसके उपरान्त क्रोध से विह्वल होकर वीरश्रेष्ठ आचार्य सहस्रों बाण बरसाकर चेदि, पाञ्चाल और पाण्डवगण को अत्यन्त पीड़ित करने लगे। उनकी प्रत्यञ्चा की, वज्रपात के शब्द के समान मनुष्यों को भयविह्वल बना देनेवाली- ध्वनि और ताल-ध्वनि चारों ओर सुनाई पड़ने लगी॥३८।४१॥ हे महाराज! द्रोणाचार्य इस प्रकार पाञ्चालों और पाण्डवों

तीर्णः संशप्तकान्हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।
तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥ ४४ ॥
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ।
संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्याऽस्त्रगभस्तिभिः ॥ ४५ ॥
स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् ।
प्रददाह कुरून्सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ॥ ४६ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ।
तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥ ४७ ॥
ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः ।
केचिदार्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८ ॥
पार्थबाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः ।
तेषामुत्पतितान्कांश्चित्पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥ ४९ ॥
न जघानाऽर्जुनो योधान्योधव्रतमनुस्मरन् ।
ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥ ५० ॥
कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः ।
तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम् ॥ ५१ ॥
मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम् ।
स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२ ॥
प्रादुश्चक्रे तदाऽऽग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ५३ ॥

के दल का विनाश कर ही रहे थे इसी समय महावीर अर्जुन संशप्तकगण को हराकर, रुधिर रूप जल और बाण-समूह रूप आवर्त से युक्त भयानक रणकुण्ड में उत्तीर्ण होकर, वहाँ पर आ गये। हम लोगों ने महायशस्वी सूर्यतुल्य अर्जुन की वानरचिह्नयुक्त ध्वजा देखी॥४२।४५॥पाण्डवदल के मध्यवर्ती, युगान्तकाल के सूर्य के समान प्रचण्ड, महावीर अर्जुन अस्त्ररूप किरणों से संशप्तकसैन्यसागर को सुखाकर कौरव-सेना को तपाने और पीड़ित करने लगे। जैसे प्रलयकाल में धूमकेतु उदय होकर सब प्राणियों को भयाकुल और भस्म करता है वैसे ही अर्जुन भी अस्त्रतेज से वीरों को जलाने लगे। हाथी, घोड़े, रथ आदि पर बैठे हुए वीरगण अर्जुन के बाणों से मरकर गिरने लगे। उनके अङ्ग छिन्न-भिन्न और केश बिखरे हुए थे। कोई आर्तनाद और कोई चीत्कार करने लगा। कई एक लोग अर्जुन के बाणों से तत्काल ही मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥४५।४८॥महावीर अर्जुन योद्धाओं के वीर-धर्म का विचार करके गिरे-पड़े और भागे हुए शत्रुओं को नहीं मारते थे। कौरवपक्ष के प्रायः सभी लोग विच्छिन्न और समर से विमुख होकर हाहाकार करने और "हा कर्ण! हा कर्ण!" चिल्लाने लगे॥४८।५२॥ शरणार्थी वीरों का रोना-चिल्लाना सुनकर "भयभीत होओ नहीं" कहकर कर्ण ने अर्जुन का सामना किया। उन्होंने आते ही अर्जुन के ऊपर आग्नेय अस्त्र छोड़ा।

शरौघाञ्शरजालेन विदुधाव धनञ्जयः ।
तथैवाऽऽधिरथिस्तस्य बाणाञ्ज्वलिततेजसः ॥ ५४ ॥
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद्विसृजञ्शरान् ।
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ५५ ॥
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥ ५६ ॥
तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ॥ ५७ ॥
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवाऽनदन् ।
ता भुजाग्रैर्महावेगा निसृष्टा भुजगोपमाः ॥ ५८ ॥
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति ।
ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ५९ ॥
ननाद बलवान्कर्णः पार्थाय विसृजञ्शरान् ।
अर्जुनश्चापि राधेयं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ६० ॥
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः ।
ततः शत्रुञ्जयं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ॥ ६१ ॥
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् ।
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ॥ ६२ ॥
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ।
ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥ ६३ ॥

॥५१।५३॥चमचमाते धनुष को घुमाकर तीक्ष्ण बाण बरसानेवाले कर्ण के बाणों को अर्जुन ने अपने बाणों से निष्फल करना आरम्भ किया। कर्ण भी अपने बाणों से अर्जुन के बाणों को रोकते और बाण-वर्षा करते हुए सिंहनाद करने लगे। इसी मध्य में धृष्टद्युम्न, भीमसेन और सात्यकि ने एक साथ कर्ण को तीन तीन बाण मारे॥५३।५६॥कर्ण ने अर्जुन के ऊपर बाण बरसाकर, उनके बाणों को व्यर्थ करके, तीन बाणों से धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकि के धनुष काट डाले। तब उक्त तीनों वीर, धनुष कट जाने से, विषहीन सर्प के समान हो गये। वे अपने-अपने रथ पर से कर्ण के ऊपर शक्ति चला करके सिंहनाद करने लगे। वे विषैले नाग के समान प्रज्वलित अग्नि-शिखा सी शक्तियाँ बड़े वेग से कर्ण की ओर चलीं। महावीर स्फूर्तिशाली कर्ण ने तीन तीन बाणों से मार्ग में ही प्रत्येक शक्ति के तीन तीन टुकड़े कर डाले॥५६।५९॥फिर वे अर्जुन के ऊपर बाण बरसाकर सिंहनाद करने लगे। महावीर अर्जुन ने भी कर्ण को सात बाण मारकर अत्यन्त तीक्ष्ण भयानक बाणों से कर्ण के छोटे भाई को मार डाला। उसके पश्चात् छ बाणों से शत्रुञ्जय को मारकर एक भल्ल बाण से विपाट का सिर काट गिराया। इस प्रकार कर्ण के तीनों भाइयों को, कर्ण और दुर्योधन आदि के सन्मुख ही, अकेले ही अर्जुन ने मार डाला॥५९।६३॥अब महावेगशाली

वरासिना कर्णपक्षाञ्जघान दश पञ्च च ।
पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ॥ ६४ ॥
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः ।
धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चाऽऽदाय भास्वरम् ॥ ६५ ॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधम् ।
ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम् ॥ ६६ ॥
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन्रणे ।
शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥ ६७ ॥
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवाऽनदत् ।
भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां छित्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८ ॥
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽपर्यत् ।
ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ॥ ६९ ॥
निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात् ।
पत्त्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोऽपरे ॥ ७० ॥
कर्णमेवाऽभ्यधावन्त त्रास्यमानाः प्रहारिणः ।
धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ॥ ७१ ॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे ।
एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥ ७२ ॥
तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद्रणः ।
पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ ७३ ॥

भीमसेन ने रथ से उतरकर, पक्षिराज गरुड की तरह झपटकर, खड्ग के प्रहार से कर्ण के पक्ष के पन्द्रह वीरों को देखते ही देखते मार डाला। फिर रथ पर बैठकर दूसरा धनुष हाथ में लेकर दस बाण कर्ण को, पाँच बाण कर्ण के सारथी को और घोड़ों को भी उन्होंने मारे। महाबली धृष्टद्युम्न ने भी पहले ढाल-तलवार लेकर चन्द्रवर्मा और निषध देश के राजा बृहत्क्षत्र का सिर काट डाला और फिर रथ पर बैठकर, दूसरा धनुष लेकर, सिंहनादपूर्वक वीर कर्ण को इक्कीस बाण मारे॥६३।६७॥सात्यकि ने भी दूसरा धनुष लेकर सिंहनाद करके चौंसठ बाणों से कर्ण को घायल किया। फिर दो भल्ल बाणों से उनका धनुष काट डाला। इसके पश्चात् उनके दोनों हाथों में और वक्षःस्थल में तीन बाण मारे। तब राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य और जयद्रथ ने आकर सात्यकि-रूप महासागर में डूबते हुए कर्ण का उद्धार किया। कर्ण के साथ के सैंकड़ों पैदल, घोड़े, हाथी और रथी योद्धा अत्यन्त भयविह्वल होकर उन्हीं के पीछे भाग खड़े हुए॥६७।७१॥इधर धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल और सहदेव सात्यकि की सहायता करने लगे। हे महाराज! इस प्रकार आपके और पाण्डवपक्ष के वीरगण परस्पर विनाश के लिए घोरतर संग्राम करने लगे। वे सब लोग प्राणपण से युद्ध कर रहे थे। पैदल, रथी, हाथियों और घोड़ों के

रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः ।
अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ॥ ७४ ॥
संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः ।
एवं सुकलिलं युद्धमासीत्क्रव्यादहर्षणम् ॥
महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ७५ ॥
ततो हता नररथवाजिकुञ्जरैरनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः ।
गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥ ७६ ॥
रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।
निरस्तजिह्वा दशनेक्षणाः क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७ ॥
तथाऽपरैर्बहुकरणैर्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।
विपोथिता हयगजपादताडिता भृशाकुला रथमुखनेमिभिः क्षताः ॥ ७८ ॥
प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां जनक्षये वर्तति तत्र दारुणे ।
महाबलास्ते कुपिताः परस्परं निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७९ ॥
ततो बले भृशलुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसम्प्लुते ।
दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिविराय भारत ॥ ८० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वितीयदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥
समाप्तं च संशप्तकवधपर्व ।

सवार परस्पर भिड़ रहे थे । कहीं पर हाथी के सवार रथियों और पैदलों के साथ, कहीं पर घुड़सवार के साथ घुड़सवार, कहीं हाथी के सवार से हाथी के सवार, कहीं रथी के साथ रथी और कहीं पैदल के साथ पैदल घोर युद्ध कर रहे थे । वह संग्राम मांसाहारी पशु पक्षियों के आनन्द को बढ़ानेवाला और यमपुरी को बसानेवाला था॥७१।७५॥मनुष्यों रथों, हाथियों और घोड़ों के द्वारा असंख्य मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़े नष्ट भ्रष्ट हो रहे थे। कहीं पर हाथी ने हाथी को,कहीं रथी ने रथी को,कहीं घोड़े ने घोड़े को, कहीं पैदल ने पैदल को, कहीं रथी ने हाथी को, कहीं हाथी ने घोड़े को और कहीं घोड़े ने मनुष्य को मार डाला । किसी की जीभ कट गई, किसी के दाँत टूट गये, किसी के नेत्र निकल पड़े, किसी का कवच टूट गया और किसी के आभूषण गिर पड़े । इस प्रकार चारों ओर मृत्यु का साम्राज्य देख पड़ता था। भयानक स्वरूपवाले बड़े बड़े हाथी अनेक शस्त्रधारी शत्रुओं के प्रहार से मारे गये। हाथियों के पाँवों से, घोड़ों की टापों से और रथों के पहियों से रौंदी गई, क्षत विक्षत और नष्ट होती हुई सब सेना अत्यन्त व्याकुल हो उठी । इस प्रकार मांसाहारी पशु पक्षी और राक्षस आदि के लिए आह्लादजनक, अत्यन्त भयानक, लोकक्षयकारी संग्राम उपस्थित होने पर महाबली वीरगण क्रोधविह्वल होकर बलपूर्वक एक दूसरे को मारते और मरते हुए रणभूमि में विचरने लगे । हे महाराज ! दोनों ओर की सेना इस प्रकार रुधिर से तर और छिन्न भिन्न हो गई । थके हुए वीरगण एक दूसरे का मुख ताकने लगे । इसी मध्य में सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच गये । तब दोनों पक्ष की सेनाएँ युद्ध बन्द करके धीरे-धीरे अपने अपने शिविर में विश्राम करने के लिए चली गईं॥७६।८०॥

—o—

द्रोणपर्व का बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३३ ॥

सञ्जय उवाच – पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनाऽमितौजसा ।
द्रोणे च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः ।
रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥ २ ॥
अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्मते ।
लब्धलक्षैः शरैर्भिन्ना भृशावहसिता रणे ॥ ३ ॥
श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्याऽमितान्गुणान् ।
केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ४ ॥
अभिशस्ता इवाऽभूवन्ध्यानमूकत्वमास्थिताः ।
ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥
प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः ।
शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ६ ॥
नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम ।
तथा हि नाऽग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥
इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुः प्राप्तो रणे रिपुः ।
जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥
वरं दत्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि ।
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्याऽऽर्याः कथञ्चन ॥ ९ ॥

तेंतीसवाँ अध्याय ॥ ३३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! महातेजस्वी अर्जुन के पराक्रम से जब हमारी सेना भाग खड़ी हुई, द्रोणाचार्य का अभिप्राय पूर्ण नहीं हुआ और राजा युधिष्ठिर सुरक्षित ही रहे तब समर में जीते गये, कवच हीन, धूलिधूसरित कौरव-वीर समरविजयी शत्रुओं के अचूक बाणों से घायल और उद्विग्न होकर इधर-उधर देखने लगे। शत्रुपक्ष के वीर उनकी हँसी उड़ाने लगे। इसके पश्चात् आचार्य की अनुमति से कौरवों ने युद्ध बन्द कर दिया। लोग अर्जुन के पराक्रम और गुणों की प्रशंसा करने लगे। कुछ लोग अर्जुन और श्रीकृष्ण की मित्रता की प्रशंसा कर रहे थे। उस समय कौरवगण सन्नाटे में आकर शान्त हो गये॥१।५॥प्रातःकाल हो जाने पर राजा दुर्योधन शत्रुपक्ष की उन्नति और विजय देखकर अत्यन्त कुपित और व्याकुल हो सब योद्धाओं के सन्मुख प्रणयकोप, अभिमान और पाण्डवों के प्रति शत्रुभाव के साथ द्रोणाचार्य से यों कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! हम लोग अवश्य ही आपके शत्रुपक्ष में हैं; क्योंकि आपने युधिष्ठिर को सन्मुख पाकर भी नहीं पकड़ा। आप जिसे पकड़ना चाहें, वह यदि आपके समीप भी आ जाय तो चाहे देवगण के साथ मिलकर भी पाण्डव उसकी रक्षा करें किन्तु उसे बचा नहीं सकते, आपके हाथ से उसका छुटकारा नहीं हो सकता। आपने पहले प्रसन्न होकर मुझे वर दिया है, तो फिर अब

ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन्भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम् ।
नाऽर्हसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ १० ॥
ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
नाऽलं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ ११ ॥
विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथाऽर्जुनः ।
तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यम्बकात्प्रभोः ॥ १२ ॥
सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
अद्यैकं प्रवरं कञ्चित्पातयिष्ये महारथम् ॥ १३ ॥
तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि ।
योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥ १४ ॥
न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किञ्चन ।
तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १५ ॥
द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः ।
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १६ ॥
ततोऽर्जुनस्याऽथ परैः सार्धं समभवद्रणः ।
तादृशो यादृशो नाऽन्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित्॥ १७ ॥
तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन्व्यरोचत ।
चरन्मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १८ ॥
तं चाऽभिमन्युर्वचनात्पितुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
विभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १९ ॥

क्यों नहीं उसे पूर्ण करते ? आर्य पुरुष अपने भक्त को कभी निराश नहीं करते॥५।९॥दुर्योधन के ये वचन सुनकर द्रोणाचार्य जी क्रुद्ध होकर कहने लगे — हे दुर्योधन ! मैं सदैव तुम्हारा भला करने की चेष्टा करता रहता हूँ, फिर भी तुम ऐसी बातें कह रहे हो ! मेरे बारे में तुम्हारा ऐसा विचार करना उचित नहीं है। देखो, अर्जुन के द्वारा रक्षित रहने पर महाराज युधिष्ठिर को पकड़ना सर्वथा असम्भव है । अर्जुन के समीप रहने पर दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि सब मिलकर भी युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकते । जहाँ विश्व के विधाता स्वयं वासुदेव सहायक रूप से विराजमान हैं और महापराक्रमी अर्जुन सेनापति हैं, वहाँ अतिरिक्त महाप्रभु शङ्कर के और किसी का बल कुछ काम नहीं कर सकता॥१०।१२॥अस्तु, मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ कि आज पाण्डवपक्ष के किसी एक श्रेष्ठ महारथी योद्धा को मारूँगा; मेरी यह बात मिथ्या नहीं हो सकती । हे दुर्योधन ! आज मैं चक्रव्यूह की रचना करूँगा । इस व्यूह को देवता भी नहीं तोड़ सकते । तुम आज फिर किसी उपाय से अर्जुन को युधिष्ठिर के पास से दूर हटाने का उपाय करो । युद्ध की ऐसी कोई बात नहीं जिसे अर्जुन जानते न हों, या कर सकते न हों । अर्जुन ने इधर-उधर घूमकर, अनेक स्थानों से, युद्ध के सम्बन्ध की सब प्रकार की जानकारी प्राप्त कर ली

स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान्सहस्रशः ।
षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशङ्गतः ॥ २० ॥
सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान्परन्तपः ।
वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्शिताः ।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाऽप्राप्तयौवनम् ।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २२ ॥
दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः ।
यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥ २३ ॥
बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् ।
कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि गावल्गणे कथम् ॥ २४ ॥
बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणाऽमितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् ।
तत्ते कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन्समाहितः ॥ २६ ॥
विक्रीडितं कुमारेण यथाऽनीकं बिभित्सता ।
आरुग्णाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि विप्लवे ॥ २७ ॥

है॥१३।१५॥ महावीर द्रोणाचार्य के यों कहने पर शेष संशप्तकगण फिर महारथी अर्जुन को युद्ध के लिए, युद्धभूमि के दक्षिण भाग में, ललकारने लगे। इसके पश्चात् संशप्तकगण के साथ अर्जुन का भयानक संग्राम होने लगा। ऐसा युद्ध कभी किसी ने देखा-सुना न होगा। इधर द्रोणाचार्य ने बड़े यत्न के साथ चक्रव्यूह बनाया। मध्याह्न में तपनेवाले सूर्य के समान वह व्यूह नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाला था॥१६।१८॥ उधर वीर कुमार अभिमन्यु, धर्मराज युधिष्ठिर की अनुमति के अनुसार, घूम-फिरकर उस दुर्भेद्य चक्रव्यूह को बारम्बार तोड़ने लगे। उसके पश्चात् उन्होंने अपना दुष्कर कार्य करते हुए सहस्रों वीरों का संहार किया। फिर एक साथ छः महारथी वीरों से अकेले युद्ध करके अन्त को, शस्त्र-हीन असहाय अवस्था में, दुःशासन के पुत्र के हाथों वे मारे गये। इस घटना से हमारे पक्ष के लोगों को बड़ा ही सन्तोष और आनन्द हुआ। पाण्डव लोग और उनके पक्ष के सब लोग अभिमन्यु की मृत्यु के शोक से बहुत ही अधीर हो उठे। इसके उपरान्त हम लोगों ने विश्राम के लिए युद्ध बन्द कर दिया॥१९।२१॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! अर्जुन का पुत्र महावीर अभिमन्यु तो अभी पूर्ण रीति से युवा अवस्था में प्राप्त भी नहीं हुआ था। उस होनहार बालक के मारे जाने का समाचार सुनकर मेरा हृदय शोक से फटा सा जाता है! राज्य की इच्छा रखनेवाले वीरों ने जिस क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उस बालक के ऊपर अस्त्र-शस्त्र चलाये, वह क्षत्रिय-धर्म बड़ा ही दारुण है! पूर्व पुरुषों ने क्षत्रिय धर्म को ऐसा घोर बनाया है! मेरे पक्ष के वीरों ने अत्यन्त सुखी और निःशङ्क होकर रण में विचरनेवाले वीर अभिमन्यु को किस प्रकार मारा? पुरुषसिंह अभिमन्यु ने महारथियों की सेना को नष्ट करने के लिए जिस प्रकार रणभूमि में विचरण

दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे ।
वनौकसामिवाऽरण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् ॥ २८ ॥

*इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३३ ॥*

किया और जिस प्रकार युद्ध में अपना प्रशंसनीय पराक्रम प्रकट किया, सो सब मेरे आगे वर्णन करो ॥२२।२५॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप मुझ से जो वृत्तान्त पूछ रहे हैं, सो मैं विस्तार के साथ वर्णन करता हूँ, उसे सुनिए । शत्रुसेना का संहार करने के लिए वीर अभिमन्यु जिस प्रकार संग्रामभूमि में विचरते रहे, जिस प्रकार हमारे पक्ष के विजयाभिलाषी दुर्निवार दुर्द्धर्ष वीरगण उनके प्रहार से क्षत विक्षत हुए, सो सब सुनिए । जिस प्रकार आपके पक्ष के योद्धा लोग वीर अभिमन्यु के पराक्रम और प्रहार से तृण गुल्म वृक्ष पूर्ण वन में दावानल से घिरे हुए वनवासी जीव जन्तुओं के समान भय से विह्वल और उद्विग्न हो उठे, सो सब मैं आपके आगे विस्तार के साथ कहता हूँ, मन लगाकर सुनिए॥२६।२८॥

द्रोणपर्व का तेतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच—समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः ।
सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥ १ ॥
सत्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया ।
नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् ॥ २ ॥
सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः ।
सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
युगान्ते चाऽन्तको राजञ्जामदग्न्यश्च वीर्यवान् ।
रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥ ४ ॥
प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।
उपमां नाऽधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥ ५ ॥
गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः ।
नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि षट् ॥ ६ ॥

चौतीसवाँ अध्याय ॥ ३४ ॥

सञ्जय कहते हैं हे महाराज ! श्रीकृष्ण सहित पाँचों पाण्डव ऐसे हैं कि सब देवता भी उनको नहीं परास्त कर सकते । वे सदा समर में उद्योग के साथ अद्भुत कर्म करनेवाले, कर्मों से अपनी श्रमशीलता और कष्टसहिष्णुता प्रकट करनेवाले हैं । हे महाराज ! उत्तम कर्म, कुल, बुद्धि, कीर्ति, यश, श्री आदि की विशेषताओं में इस त्रिभुवन में महात्मा कृष्ण के समान कोई पुरुष न हुआ है और न होगा । राजा युधिष्ठिर भी सत्य, धर्म, तप, दान, ब्राह्मणभक्ति आदि सद्गुणों के कारण देवभाव को प्राप्त कर चुके हुए हैं॥१।३॥ लोग ऐसा कहते हैं कि प्रलय के समय का अन्तकारी यमराज, यशस्वी परशुराम और रणभूमि में उपस्थित भीमसेन, ये तीनों एक से भयङ्कर हैं । प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करने में बड़े निपुण गाण्डीवधन्वा अर्जुन के समकक्ष वीर अजेय योद्धा मुझको पृथ्वी भर में नहीं देख पड़ता । नकुल में गुरुभक्ति, सम्मति को

श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्यरूपपराक्रमैः ।
सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाऽश्विनोः ॥ ७ ॥
ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसञ्चयाः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥
धनञ्जयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात्सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच— अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच— स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम् ।
महान्तं बन्धुनाशं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥
चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाऽभिकल्पितः ।
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १३ ॥
आरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
सङ्घातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत्तदा ॥ १४ ॥
कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ।
रक्ताम्बरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥ १५ ॥
सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः ॥ १६ ॥

---

गुप्त रखना, विनय, इन्द्रियदमन, अनुकरण निपुणता या सौन्दर्य और शूरता, ये छः श्रेष्ठ गुण सदा अखण्ड रूप से उनमें वर्तमान हैं॥४।६॥सहदेव भी शास्त्रज्ञान, गाम्भीर्य, मधुर भाषण, सत्य, रूप और पराक्रम में देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारों के तुल्य हैं। हे राजेन्द्र ! वासुदेव में और पाँचों पाण्डवों में जो पूर्वोक्त गुण अलग-अलग उपस्थित हैं, उन सभी श्रेष्ठ गुणों का समावेश अकेले अभिमन्यु में देखा जाता था। राजा युधिष्ठिर का धैर्य, श्रीकृष्ण जी का स्वभाव (चरित), भीमसेन का पराक्रम, अर्जुन का रूप और विक्रम, नकुल की नम्रता और सहदेव का शास्त्रज्ञान, ये सब बातें वीर अभिमन्यु में देखी पड़ती थीं॥७।१०॥धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! वही रणदुर्जय अभिमन्यु किस प्रकार युद्ध के मैदान में मारा गया ? मैं सब वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ॥११॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप दुस्सह शोक को रोककर सँभलकर बैठिए। मैं आपके सुहृदों की मृत्यु का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए। आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह बना करके उसके मध्य में इन्द्रसदृश नरेशों को स्थापित किया। उस व्यूह के द्वार पर सूर्य के समान तेजस्वी राजपुत्रगण खड़े किये गये। सब राजा और राजपुत्र मिलकर उस व्यूह की रक्षा करने लगे॥१२।१४॥सब की लाल वर्दी ... थी और ध्वजाओं के दण्ड सुवर्णशोभित थे। वे सोना सुवर्ण-मणि-मण्डित

सहिताः पर्यधावन्त कार्ष्णिं प्रति युयुत्सवः ।
तेषां दशसहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥ १७ ॥
पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ॥ १८ ॥
अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रताः ।
दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः ।
देवराजोपमः श्रीमाञ्श्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥ २० ॥
चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायकः ॥ २१ ॥
सिन्धुराजस्तथाऽतिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाऽचलः ।
सिंधुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः ॥ २२ ॥
सुतास्तव महाराज त्रिंशत्त्रिदशसन्निभाः ।
गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३ ॥
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४ ॥
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि चक्रव्यूहनिर्माणे चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

मालाएँ पहने, शरीरों में चन्दन-अगुरु लगाये, लाल आभूषण और महीन रेशमी लाल वस्त्र पहने, पुष्प मालाओं से अलकृत और मरने-मारने के लिए दृढ प्रतिज्ञा किये हुए थे। ऐसे दस सहस्र राजपुत्र एकत्र होकर सग्राम करने के विचार से अभिमन्यु पर आक्रमण करने को आगे बढ़े॥१५।१८॥वे सब परस्पर समान रूप से सुख दु ख का अनुभव करनेवाले, समान साहस से परिपूर्ण, एक दूसरे के हित मे निरत और सग्राम में एक दूसरे से बढकर काम करने की स्पर्धा रखनेवाले वीर आपके पौत्र प्रियदर्शन लक्ष्मण को आगे करके स्थित हुए। श्वेत छत्र और चामरों की शोभा से उदय हो रहे सूर्य के सदश जान पडने-वाले इन्द्रतुल्य श्रीमान् राजा दुर्योधन महावीर कर्ण, कृपाचार्य और दु शासन आदि महारथियों के साथ उस सेना के मध्य में विराजमान हुए। उस सेना के अग्रभाग में सेनापति द्रोणाचार्य थे। सिन्धु देश के स्वामी वीर जयद्रथ उस सेना के मध्य में स्थिर सुमेरु पर्वत के समान देख पड़ते थे॥१८।२२॥आपके देव-तुल्य तीस कुमार, अश्वत्थामा के साथ, वीर जयद्रथ के समीप स्थित थे। द्यूतक्रीडा में निपुण गान्धारराज शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा आदि महारथी भी जयद्रथ के समीप अपने अपने रथों पर विराजमान थे। इस प्रकार व्यूहरचना के उपरान्त दोनों पक्षके योद्धा जीवन का मोह छोड़कर भयानक युद्ध करने लगे॥२२।२५॥

द्रोणपर्व का चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥



अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सञ्जय उवाच—तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् ।
पार्थाः समभ्यवर्त्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः ॥ २ ॥
आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् ।
चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥ ३ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः ॥ ४ ॥
द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् ।
केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥
एते चाऽन्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
समभ्यधावन्सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ६ ॥
समीपे वर्त्तमानांस्तान्भारद्वाजोऽतिवीर्यवान् ।
असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत् ॥ ७ ॥
महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम् ।
द्रोणं ते नाऽभ्यवर्त्तन्त वेलामिव जलाशयाः ॥ ८ ॥
पीड्यमानाः शरै राजन्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ ९ ॥
तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम् ।
यदेनं नाऽभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ॥ १० ॥

पैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३५ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य के द्वारा सुरक्षित और दुर्द्धर्ष उस कौरव सेना से युद्ध करने के लिए भीमसेन आदि पाण्डवपक्ष के योद्धा आगे बढ़े । भीमसेन, नकुल-सहदेव आदि पाण्डव, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तिभोज, राजा द्रुपद, वीर अभिमन्यु, शिखण्डी, उत्तमौजा, राजा विराट, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, चेदिपति शिशुपाल-नन्दन, क्षत्रधर्मा, बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, घटोत्कच, युधामन्यु, महाबलशाली कैकेय देश के पाँचों राजकुमार, सैकड़ों-सहस्रों सृञ्जयगण और अन्यान्य युद्धप्रिय अस्त्रनिपुण वीरगण, युद्ध की अभिलाषा से, एकाएक द्रोणाचार्य की ओर चले॥१।६॥महाबलशाली द्रोणाचार्य भी स्थिर भाव से निकट आते हुए वीरों को बाणों की वर्षा करके रोकने लगे॥७॥प्रबल जलप्रवाह जैसे दुर्भेद्य पर्वत को लाँघकर आगे नहीं जा सकता, अथवा समुद्र जैसे अपनी तटभूमि को लाँघ नहीं सकता वैसे ही पाण्डव पक्ष के वीरगण द्रोणाचार्य को लाँघकर आगे नहीं जा सकते थे । वे और सृञ्जयगण द्रोणाचार्य के चलाये हुए बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर उनके सम्मुख नहीं ठहर सके । उस समय हम लोगों ने आश्चर्य के

तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥ ११ ॥
अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।
अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत् ॥ १२ ॥
वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चाऽमितौजसम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥ १३ ॥
एत्य नो नाऽर्जुनो गर्हेद्यथा तात तथा कुरु ।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथञ्चन ॥ १४ ॥
त्वं वाऽर्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात्प्रद्युम्न एव वा ।
चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १५ ॥
अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि ।
पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥ १६ ॥
धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् ।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥ १७ ॥

अभिमन्युरुवाच—द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि ।
पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥ १८ ॥
उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने ।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्याञ्चिदापदि ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
वयं त्वाऽनुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि ॥ २० ॥

साथ द्रोणाचार्य का अद्भुत बाहुबल देखा॥८।१०॥ उस समय राजा युधिष्ठिर कुपित द्रोण को, काल के समान आते हुए देखकर, रोकने के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगे। युधिष्ठिर ने यह सोचकर कि द्रोण को रोकने की शक्ति और किसी में नहीं है, अर्जुन और वासुदेव के समान बलवीर्यसम्पन्न अभिमन्यु को वह कठिन कार्य सौंपने के अभिप्राय से उनसे कहा॥११।१३॥हे बेटा! मेरी समझ में यह नहीं आता कि हम लोग इस दुर्भेद्य चक्रव्यूह को किस प्रकार तोड़ सकेंगे। अब तुम्हीं ऐसा उपाय करो कि अर्जुन आकर हम लोगों की निन्दा न करें। तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न इन चार मनुष्यों के अतिरिक्त इस चक्रव्यूह को तोड़नेवाला और कोई नहीं देख पड़ता। इस समय तुम्हारे पितृपक्ष और मातुलपक्ष के सब लोग तथा सैनिकगण तुमसे वर माँगते हैं। तुम इन्हें वरदान दो। तुम अस्त्र-शस्त्र लेकर शीघ्र द्रोणाचार्य की सेना का संहार करो, नहीं तो संग्राम से लौटकर अर्जुन हम लोगों की अवश्य निन्दा करेंगे ॥१४।१७॥अभिमन्यु ने कहा—हे महात्मन्! मैं अपने पितृकुल के विजयी होने की अभिलाषा से शीघ्र ही द्रोणाचार्य के इस सुरक्षित सुदृढ़ भयानक सैन्यसागर में प्रवेश करूँगा। हे आर्य! मुझे पिता ने इस व्यूह में प्रवेश होकर शत्रु सेना को नष्ट करने का उपाय तो बता दिया है, किन्तु यदि कोई आपत्ति आ पड़ी तो

धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे ।
प्रणिधायाऽनुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः ॥ २१ ॥

भीम उवाच—अहं त्वाऽनुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ।
पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥ २२ ॥
सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः ।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान्वरान् ॥ २३ ॥

अभिमन्युरुवाच--अहमेतत्प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं जातवेदसम् ॥ २४ ॥
तत्कर्माऽद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः ।
मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्याति पितुश्च मे ॥ २५ ॥
शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि सङ्घशः ।
द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विपत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥
नाऽहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया ।
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाऽद्य मुच्यते ॥ २७ ॥
यदि चैकरथेनाऽहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् ।
न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् ।
यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥ २९ ॥
रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैर्महाबलैः ।
साध्यरुद्रमरुत्तुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥ ३० ॥

मैं इस व्यूह के भीतर से बाहर नहीं निकल सकता ॥१७।१९॥राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे बेटा ! तुम इस व्यूह को तोड़कर हमारे लिए भीतर जाने का द्वार बना दो । तुम जब भीतर प्रवेश होओगे तो हम लोग भी तुम्हारे पीछे चलेंगे । तुम युद्ध में अर्जुन के सदृश हो । हम लोग सब ओर से तुम्हारी रक्षा करते हुए तुम्हारे पीछे ही रहेंगे॥२०।२१॥भीमसेन ने कहा—हे वत्स ! मैं, धृष्टद्युम्न सात्यकि, पाञ्चालगण, कैकेयगण, मत्स्यगण और सब प्रभद्रकगण तुम्हारे पीछे चलेंगे । तुम एक बार व्यूह को तोड़ दोगे तो फिर हम लोग उसमें प्रवेश करके शत्रुपक्ष के वीरों को चुन-चुनकर मारेंगे॥२२।२३॥अभिमन्यु ने कहा—

जैसे पतङ्ग जलती हुई अग्नि में प्रवेश करता है वैसे ही मैं कुपित होकर दुर्द्धर्ष द्रोणाचार्य की सेना के भीतर अवश्य प्रवेश करूँगा । आज मैं पितृपक्ष और मातृपक्ष के लिए हितकर और यशस्कर कार्य करूँगा, अपने मामा और पिता का प्रिय अवश्य ही करूँगा । इस समय सब प्राणि एक बालक के हाथ से शत्रुओं को नष्ट होते देखेंगे । यदि आज समर में मेरे सन्मुख आकर कोई पुरुष जीवित बच जाय तो मैं माता सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ और अर्जुन का पुत्र नहीं । यदि मैं आज समरक्षेत्र में एक ही रथ पर बैठकर सम्पूर्ण क्षत्रिमण्डल के आठ आठ टुकड़े न कर मरा तो अर्जुन का पुत्र नहीं । यदि मैं

सञ्जय उवाच—**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् ॥ ३१ ॥**
**सुमित्राऽश्वान्रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय ॥ ३२ ॥**

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युप्रतिज्ञायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अकेला ही सब क्षत्रियों के धुर्रे न उड़ा दूँ तो मैं अर्जुन का बेटा नहीं॥२४।२८॥राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे अभिमन्यु ! तुम आज साध्य, रुद्र, मरुद्गण, वसुगण और आदित्यगण के समान पराक्रमी महावीरों के द्वारा सुरक्षित और दुर्द्धर्ष द्रोणाचार्य के सेनाव्यूह को तोड़ने का उत्साह प्रकट कर रहे हो, तुम धन्य हो। तुम्हारा बल बढ़े। सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर अभिमन्यु बारम्बार अपने सारथी से कहने लगे कि हे सुमित्र ! शीघ्र ही मेरे रथ को द्रोणाचार्य की सेना के सन्मुख ले चलो॥२८।३२॥

—०—

द्रोणपर्व का पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच—**सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।**
**अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥**
**तेन सञ्चोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः ।**
**प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥**
**अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः ।**
**सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥**
**आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः ।**
**अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चाऽयुद्धविशारदः ॥ ४ ॥**
**ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत् ।**
**सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥**
**ऐरावतगतं शक्रं सहाऽमरगणैरहम् ।**
**अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् ।**
**योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६ ॥**
**न ममैतद् द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् ।**
**अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥ ७ ॥**

छत्तीसवाँ अध्याय ॥ ३६ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर अभिमन्यु जब सारथी से बारम्बार "चलो, चलो" कहने लगे तब सारथी ने कहा—हे आयुष्मन् ! इसमें सन्देह नहीं है कि पाण्डवों ने आपको यह बहुत भारी कार्य सौंप दिया है। पर मेरी प्रार्थना यह है कि आप पहले क्षण भर इस बारे में विचार कर लीजिए कि यह कार्य आपके योग्य है या नहीं, फिर युद्ध में प्रवृत्त हूजिए॥१।३॥आचार्य द्रोण कार्यनिपुण और अस्त्र-विद्या में निपुण हैं। आप अभी बालक और सुख में पले हुए हैं और ये बल-

पितरं चाऽर्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति ।
अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८ ॥
याहीत्येवाऽब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् ।
ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ॥ ९ ॥
नाऽतिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ।
ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥ १० ॥
द्रोणमभ्यद्रवन्राजन्महावेगपराक्रमम् ।
तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥
स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्माऽऽर्जुनिरर्जुनाद्वरः ।
युयुत्सया द्रोणमुखान्महारथान्समासदत्सिंहशिशुर्यथा द्विपान्॥ १२ ॥
ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
आसीद्गाङ्ग इवाऽऽवर्तो मुहूर्तमुदधाविव ॥ १३ ॥
शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १४ ॥
प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥
तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसङ्घान्महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ १६ ॥

वान् तथा युद्धनिपुण है॥४॥यह सुनकर अभिमन्यु ने हँसते-हँसते कहा—हे सारथी ! क्षत्रियों की और द्रोणाचार्य की बात तो जाने दो, मैं देवगण सहित ऐरावत पर चढ़े हुए इन्द्र और सब प्राणियों के वन्दनीय साक्षात् शङ्कर से भी रणभूमि में लोहा ले सकता हूँ । फिर इन क्षत्रियों के साथ युद्ध करने में मुझे क्या शङ्का हो सकती है ? आज यह सारी शत्रु-सेना मेरे सोलहवें अंश के समान भी नहीं है । औरों की बात तो जाने दो, मैं अपने मामा साक्षात् विश्व-विजयी कृष्णचन्द्र और पिता अर्जुन से भी युद्ध करने को तैयार हूँ । मुझे किञ्चितमात्र भी भय नहीं है ॥५।८॥हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सारथी के वचनों की उपेक्षा करके अभिमन्यु बारम्बार यही कहने लगे कि हे सूत ! देरी मत करो, शीघ्र मुझे द्रोणाचार्य की सेना के निकट ले चलो । सारथी ने व्याकुल मन से तीन-तीन वर्ष की अवस्था के, सुवर्णभूषित, अभिमन्यु के रथ के घोड़ों को द्रोणाचार्य की सेना की ओर हाँका । वे वायु के समान वेग से चलनेवाले घोड़े, सारथी के द्वारा हाँके जाने पर, शीघ्रता के साथ द्रोणाचार्य की सेना की ओर चले॥८।११॥ कौरवगण अभिमन्यु को अपनी ओर आते देखकर, द्रोणाचार्य को आगे करके, उन्हें रोकने के विचार से शीघ्रता से आगे बढ़े । इधर पाण्डवपक्ष के योद्धा भी अभिमन्यु के पीछे-पीछे चले । जैसे सिंह का बच्चा झपटकर हाथियों के झुण्ड पर पहुँचता है वैसे ही कर्णिकाराचिह्नयुक्त ध्वजा के सुवर्णमय दण्ड से शोभित

नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्कुष्टगर्जितैः ।
हुङ्कारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥
घोरैर्हलहलाशब्दैर्मागास्तिष्ठेहि मामिति ।
असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
बृंहितैः सिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि ।
सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥
तेषामाततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥
ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥
ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः ।
सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाऽध्वरे ॥ २२ ॥
बद्धगोधांगुलित्राणान्सशरासनसायकान् ।
सासिचर्माङ्कुशाभीषून्सतोमरपरश्वधान् ॥ २३ ॥
सगदायोगुडप्रासान्सर्ष्टितोमरपट्टिशान् ।
सभिन्दिपालपरिघान्सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥
सप्रतोदमहाशङ्खान्सकुन्तान्सकचग्रहान् ।
समुद्गरक्षेपणीयान्सपाशपरिघोपलान् ॥ २५ ॥

रथ पर बैठे हुए, सुवर्णरत्नमय कवच से अलङ्कृत, अर्जुन से भी श्रेष्ठ वीर अभिमन्यु युद्ध के लिए द्रोणाचार्य आदि वीर महारथियों के सन्मुख पहुँचे। व्यूह की रक्षा के लिए यत्नशील कौरवगण उत्साहित होकर अभिमन्यु के ऊपर प्रहार करने लगे। नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा का भँवर जैसे समुद्र के जल में प्रवेश हो करके क्षण भर तुमुल भाव धारण करता है वैसे ही परस्पर प्रहार करते हुए वीरगण घमासान युद्ध करने लगे॥१२। १४॥इसी अवसर में महाबलशाली अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य के सन्मुख ही उस व्यूह को तोड़कर उसके भीतर प्रवेश किया। चतुरङ्गिणी सेना ने महावीर अभिमन्यु को शत्रुसेना के भीतर प्रवेश वीरों का संहार करते देख प्रसन्नतापूर्वक उत्साह के साथ उनको चारों ओर से घेर लिया। वीरगण अनेक प्रकार के बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगे। कोई खम ठोकता था, कोई गम्भीर स्वर से गरज रहा था और कोई हुंकार कर रहा था। कहीं पर कोई वीर शत्रु से कह रहा था कि ठहर तो जा, ठहर तो जा। कहीं पर भीषण कोलाहल सुनाई पड़ रहा था। कहीं कोई यह कह रहा था कि भागना नहीं, कोई कहता था कि मेरे सन्मुख आओ। कोई कहता था कि ठहर जाओ। कोई कहता था कि यह मैं खड़ा हूँ, आओ, युद्ध करो। वीरगण बारंबार इसी प्रकार के वाक्य उच्चारण कर रहे थे। हाथी चिंघार रहे थे, घोड़े हिनहिना रहे थे। आभूषणों की खनखनाहट और झनझनाहट हो रही थी। हँसने का, धनुष का, हाथों का और रथों के पहियों का शब्द ऐसा हो रहा था कि उससे पृथ्वीमण्डल गूँज उठा। हे महाराज! इस प्रकार सब लोग अभिमन्यु की ओर चले॥१५।१९॥महाबली वीर स्फूर्तिशाली और मर्मज्ञ अभिमन्यु ने मर्मभेदी बाणों से उन

सकेयूराङ्गदान्बाहून्हृद्यगन्धानुलेपनान् ।
सञ्छिच्छेदाऽऽर्जुनिस्तूर्णं त्वदीयानां सहस्रशः ॥ २६ ॥
तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः ।
पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥ २७ ॥
सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः ।
सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रोधात्क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥
सचारुमुकुटोष्णीषैर्मणिरत्नविभूषितैः ।
विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥ २९ ॥
हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
द्विषच्छिरोभिः पृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः ॥ ३० ॥
गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्रथान् ।
वीषामुखान्वित्रिवेणून्न्यस्तदण्डकबन्धरान् ॥ ३१ ॥
विजङ्घाकूबरांस्तत्र विनेमिदशनानपि ।
विचक्रोपस्करोपस्थान्भग्नोपकरणानपि ॥ ३२ ॥
प्रपातितोपस्तरणान्हतयोधान्सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥
पुनर्द्विपान्द्विपारोहान्वैजयन्त्यंकुशध्वजान् ।
तूणान्वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयांश्च सकम्बलान् ॥ ३४ ॥
घण्टाः शुण्डाविषाणाग्रान्छत्रमालाः पदानुगान् ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५ ॥

शत्रुपक्ष के योद्धाओं को मारना आरम्भ कर दिया। पतङ्ग जैसे अग्नि में जल मरते हैं वैसे ही वे कौरवपक्ष के वीर सैनिक अनेक चिह्न से युक्त तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पीड़ित और विवश होकर मरने और गिरने लगे। उस समय वह रणभूमि कुशों से बिछी हुई यज्ञवेदी के समान शत्रुओं के कटे हुए अङ्गों से व्याप्त हो गई ॥२०।२२॥ अभिमन्यु ने उन लोगों के— गोह के चमड़े के बने अँगुलित्रों से शोभित, धनुष, बाण, ढाल, तलवार, अङ्कुश, अभीषु, तोमर, परश्वध, गदा, लगुड़, प्रास, ऋष्टि, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, शक्ति, कम्पन, प्रतोद, शङ्ख, कुन्त, कचग्रह, मुद्गर, क्षेपणी, पाश, उपल आदि विविध शस्त्रों से युक्त, केयूर, अङ्गद आदि आभूषणों से अलङ्कृत और मनोहर चन्दन अङ्गराग आदि से चर्चित—हाथों को सहस्रों की संख्या में काट-काट कर ढेर लगा दिया ॥२३।२६॥ वे रुधिर-सिक्त विशाल भुजाएँ गरुड़ के काटे हुए पाँच सिर के नागों के समान फड़कती हुई शोभित हो रही थीं। महावीर अभिमन्यु ने शत्रुओं के मस्तकों से पृथ्वीमण्डल को पाट दिया। वे मस्तक मनोहर नासिका, मुख और केशों से शोभित थे, वे रमणीय कुण्डल माला मुकुट पगड़ी और मणि-रत्न आदि से विभूषित थे; वे कमल कुसुम से सुहावने और चन्द्र तथा सूर्य के सदृश प्रभापूर्ण थे; वे व्रणविहीन और पवित्र सुगन्ध से युक्त थे। वे शत्रुओं के मस्तक क्रोध के मारे दाँतों से ओठ चबाते हुए ही काट डाले

वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजानथ वाह्लिकान् ।
स्थिरवालधिकर्णाक्षाञ्जवनान्साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥
आरूढाञ्शिक्षितैर्योधैः शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभिः ।
विध्वस्तचामरमुखान्विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥ ३७ ॥
निरस्तजिह्वानयनान्निष्कीर्णान्त्रयकृद्धनान् ।
हतारोहांश्छिन्नघण्टान्क्रव्यादगणमोदकान् ॥ ३८ ॥
निकृत्तचर्मकवचाञ्शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।
निपातयन्नश्ववरांस्तावकान्स व्यरोचत ॥ ३९ ॥
एको विष्णुरिवाऽचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तथा निर्मथितं तेन त्र्यङ्गं तव बलं महत् ॥ ४० ॥
यथाऽसुरबलं घोरं त्र्यम्बकेन महौजसा ।
कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ॥ ४१ ॥
अभिनच्च पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः ।
एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥ ४२ ॥
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवाऽऽसुरीं चमूम् ।
त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ४३ ॥
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४४ ॥

गये थे और वे जीवित अवस्था में हित के प्रिय वचन कहनेवाले थे॥२७।२०॥गन्धर्वनगर के समान जो विशाल रथ सुसज्जित थे उन्हें अभिमन्यु ने अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर डाला। उनके धुरे कट गये, त्रिवेणु दण्ड और जुँआ आदि सब अङ्ग पृथक्-पृथक् हो गये। उनके जङ्घा, कूबर, पहिये, आरे, आसन और अन्य सब वस्तुएँ अस्तव्यस्त और नष्ट-भ्रष्ट हो गये। इस प्रकार के बहुमूल्य रथों को अभिमन्यु ने खण्ड-खण्ड कर डाला॥२१।२३॥उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणों से पताका, अंकुश, ध्वजा आदि से शोभित हाथियों को, कवच और तर्कस आदि से अलङ्कृत उनके सवारों को और उनके चरणरक्षकों को मार-मारकर गिराना आरम्भ कर दिया। उनकी गर्दनों, बन्धनरज्जु, कम्बल, घण्टा, छत्र, माला, सूँड़ और दाँत आदि को काट डाला। वनायु देश के, काम्बोज देश के, वाह्लीक देश के और पहाड़ी घोड़े बड़े वेग से चलनेवाले थे; उनके नेत्र, कान, पूँछ आदि अङ्ग चञ्चल नहीं थे; उन पर शक्ति, ऋष्टि और प्रास आदि शस्त्रों से युद्ध करनेवाले सुशिक्षित योद्धा सवार थे। वे घोड़े अभिमन्यु के बाणों से मर-मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे॥३४।३७॥उनके चामर और कलँगी आदि वस्तुएँ कट गईं, नेत्र और जीभें निकल आईं, पेट फट गये, आँतें बाहर निकल आईं, प्लीहा निकल पड़ी, गले की घण्टियाँ टूटकर गिर पड़ीं और उनके सवार मर गये। घोड़ों के कवच कट गये थे और वे मल मूत्र और रक्त से सने हुए थे। इस प्रकार घोड़े मर-मरकर मांसाहारी जीवों के आनन्द को बढ़ाने लगे॥३७।३९॥जैसे भगवान् शङ्कर ने दुर्द्धर्ष असुर-सेना का संहार किया था वैसे ही विष्णुसदृश प्रभावशाली अभिमन्यु ऐसा दुष्कर कर्म करके कौरवपक्ष की चतुरङ्गिणी सेना का संहार करने

गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः ।
हतान्पुत्रान्पितॄन्भ्रातॄन्बन्धून्सम्बन्धिनस्तथा ॥ ४५ ॥
प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ४६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

लगे। वीर अभिमन्यु शत्रुओं के लिए असह्य पराक्रम प्रकट करके चारों ओर आपकी सेना के पैदल योद्धाओं को मारने लगे। हे राजेन्द्र ! आपके पुत्रों और उनके पक्ष के वीरों ने जब देखा कि अकेले अभिमन्यु तीक्ष्ण बाणों से उसी प्रकार शत्रुसेना का संहार कर रहे हैं जिस प्रकार स्कन्द ने असुरों की भारी सेना का नाश किया था, तब वे व्याकुल होकर चञ्चल दृष्टि से इधर-उधर ताकने लगे। उनके मुख सूख गये, पसीना बहने लगा और रोंगटे खड़े हो गये। जय का उत्साह जाता रहा और वे भागने के लिए उत्साहित होकर प्राण बचाने की इच्छा से परस्पर नाम-गोत्र आदि का उच्चारण करके एक दूसरे को भगाने के लिए पुकारने लगे ॥४३।४४॥ हे महाराज ! अधिकांश लोग मारे गये अपने पुत्र, पिता, भाई, बन्धु, सम्बन्धी आदि को वहीं छोड़कर, घोड़े-हाथी आदि अपनी सवारियों को शीघ्रता से हाँककर, वीर अभिमन्यु के आगे से भाग खड़े हुए॥४५।४६॥

—०—

द्रोणपर्व का छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सञ्जय उवाच—तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽमितौजसा ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥
ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान्परीप्सध्वं नराधिपम् ॥ २ ॥
पुराऽभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥
ततः कृतज्ञा बलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।
त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिवव्रुस्तवाऽऽत्मजम् ॥ ४ ॥
द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः ।
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ५ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३७ ॥

सञ्जय कहते हैं - हे महाराज ! राजा दुर्योधन ने जब महापराक्रमी अभिमन्यु के बाणों से अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते और भागते हुए देखा तब वे अत्यन्त ही कुपित होकर, स्वयं अभिमन्यु से युद्ध करने के लिए चले। महारथी द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को अभिमन्यु के समीप जाते देखकर कहा—हे वीरो ! तुम लोग शीघ्र राजा दुर्योधन के साथ जाओ। वीर अभिमन्यु हमारे सम्मुख ही कौरव-सेना के वीरों का संहार कर रहे हैं। तुम लोग इसी समय अभिमन्यु को रोकने के लिए जाओ; भयभीत होओ नहीं, दुर्योधन की रक्षा करो॥१।३॥ हे राजेन्द्र ! तब महाबलशाली रणविजयी अस्त्रज्ञानसम्पन्न वीर लोग दुर्योधन की सहायता करने के लिए आगे बढ़े। आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, बृहद्बल, शल्य, भूरि,

पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्शरान् ।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥
संमोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।
आस्याद्ग्रासमिवाऽऽक्षिप्तं ममृषे नाऽर्जुनात्मजः ॥ ७ ॥
ताञ्शरौघेण महता साश्वसूतान्महारथान् ।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ८ ॥
तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवाऽऽमिषैषिणः ।
नाऽमृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ ९ ॥
त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि संघशः ॥ १० ॥
तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः ।
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ११ ॥
ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः ।
परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥ १२ ॥
समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम् ।
दधारैकोऽर्जुनिर्बाणैर्वेलेव भरतर्षभ ॥ १३ ॥
शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
अभिमन्योः परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ १४ ॥
तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयङ्करे ।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा, शल, पौरव, वृषसेन आदि वीर योद्धा लोग निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे॥४।६॥ इन वीरों ने बाणों की वर्षा से वीर अभिमन्यु को रोककर और मोहित सा करके दुर्योधन को बचा लिया। अपने मुख से छीने हुए कौर की भांति दुर्योधन का हाथ से निकल जाना अभिमन्यु से नहीं सहा गया। वे बाणवर्षा से घोड़ों और सारथी सहित उन महारथियों को विमुख करके घोर सिंहनाद करने लगे। द्रोण आदि महारथी, मास के लिए गरजते हुए सिंह के समान, अभिमन्यु के पराक्रम और सिंहनाद को नहीं सह सके॥७।९॥तब उन महारथियों ने चारों ओर से रथों के मध्य अभिमन्यु को घेरकर उन पर अनेक चिह्नयुक्त तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। महापराक्रमी अभिमन्यु ने आकाश में ही उन बाणों को अपने बाणों से काट डाला और फिर अपने तीक्ष्ण बाणों से उन वीरों को घायल किया। अभिमन्यु का यह कार्य देखकर दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब द्रोण आदि महारथियों ने क्रोध के वश होकर, समर से विमुख न होनेवाले, अभिमन्यु को मारने के लिए विषधर सदृश बाणों से छिपा सा दिया॥१०।१२॥वीर अभिमन्यु ने अकेले ही तटभूमि के समान स्थिर रहकर, समुद्र के सदृश क्षोभ को प्राप्त, उस विशाल सेना को रोका। इस प्रकार परस्पर संहार करने में प्रवृत्त दोनों पक्ष के वीरों में से कोई भी समरभूमि से पीठे नहीं हटता

दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६ ॥
विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ।
बृहद्बलस्तथाऽष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८ ॥
स तु तान्प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवाऽऽत्मजैः ।
विदर्शयन्वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥ २० ॥
गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः ।
दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ॥ २१ ॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
तस्याऽभिमन्युर्दशभिर्हयान्सूतं ध्वजं शरैः ॥ २२ ॥
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत् ।
ततस्तस्मिन्हते वीरे सौभद्रेणाऽश्मकेश्वरे ॥ २३ ॥
संचचाल बलं सर्वं पलायनपरायणम् ।
ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः ॥ २४ ॥
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः ।
वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५ ॥

---

था॥१३।१४॥उस समय दुःसह ने नव, दुःशासन ने बारह, कृपाचार्य ने तीन, द्रोणाचार्य ने सत्रह, विविंशति ने सत्तर, कृतवर्मा ने सात, बृहद्बल ने आठ, अश्वत्थामा ने सात, भूरिश्रवा ने तीन, शल्य ने छ, शकुनि ने दो बाण और दुर्योधन ने तीन बाण अभिमन्यु को एक साथ मारे॥१५।१८॥महाप्रतापी अभिमन्यु ने उन बाणों को सह लिया और फिर नाना नृत्य करते करते तीन तीन बाण इन सब वीरों को मारे। राजा दुर्योधन आदि वीरों ने अभिमन्यु को इस प्रकार भय दिखाया तथापि वे न तो भयभीत ही हुए और न विचलित ही हुए। अभिमन्यु ने अत्यन्त कुपित होकर बाणविद्या की शक्ति दिखा दी। गरुड और वायु के समान वेग से चलनेवाले और सारथी के इच्छानुसार जानेवाले घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर आते हुए अश्मकेश्वर को उन्होंने रोका। अश्मकेश्वर ने अभिमन्यु के सन्मुख आकर "ठहर जा ठहर जा" कहकर उनको दस बाण मारे। महावीर अभिमन्यु ने हँसते हँसते दस बाणों से उनके सारथी, रथ के घोड़ों, ध्वजा, दोनों बाहुओं, धनुष और मस्तक को काटकर गिरा दिया॥१९।२३॥ यह देखकर अश्मकेश्वर की सारी सेना भाग खड़ी हुई। तब कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति, वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और दुर्योधन आदि योद्धा कुपित

वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः ।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः ।
शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥ २७ ॥
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाऽऽशुगः ।
प्राविशद्धरणीं वेगाद्वल्मीकमिव पन्नगः ॥ २८ ॥
स तेनाऽतिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ।
सञ्चचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥ २९ ॥
तथाऽन्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ ३० ॥
कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ॥ ३१ ॥
स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्मजात्मजः ।
विचरन्ददृशे सैन्ये पाशहस्त इवाऽन्तकः ॥ ३२ ॥
शल्यं च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् ।
उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥ ३३ ॥
ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
शल्यो राजन्रथोपस्थे निषसाद मुमोह च ॥ ३४ ॥
तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥

होकर अकेले ही अभिमन्यु के ऊपर बाण बरसाने लगे॥२३।२६॥महापराक्रमी अभिमन्यु ने इन लोगों के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर कर्ण के ऊपर, कवच और देह को भेदनेवाला,एक महाभयानक बाण छोड़ा। वह बाण कर्ण के कवच को तोड़कर पृथ्वी में वैसे ही प्रवेश हो गया जैसे बिल में सर्प प्रवेश होता है। महावीर कर्ण उस दारुण प्रहार से अत्यन्त व्यथित और विह्वल होकर, भूकम्प के समय पर्वत के समान कम्पित हो उठे॥२७।२९॥अब अभिमन्यु ने अत्यन्त कुपित होकर अन्य तीन तीक्ष्ण बाणों से दीर्घलोचन, सुषेण और कुण्डभेदी को घायल कर दिया। तब महावीर कर्ण ने अभिमन्यु को पचीस नाराच बाण मारे। साथ ही अश्वत्थामा ने बीस और कृतवर्मा ने सात बाण मारे। सब सैनिकों ने देखा कि अभिमन्यु के शरीर भर में बाण लगे हैं और वे पाश हाथ में लिये यमराज के समान युद्धभूमि में विचर रहे हैं॥३०।३२॥निकटवर्ती शल्य को बाणों से अदृश्य करके सम्पूर्ण कौरव-सेना को विभीषिका दिखाते हुए महाप्रतापी अभिमन्यु सिंहनाद करने लगे। उनके मर्मभेदी बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर शल्य रथ पर बैठ गये और अचेत हो गये॥३३।३५॥हे राजेन्द्र ! आपके पक्षके सैनिकगण शल्य को बाणप्रहार से पीड़ित देख, सिंह-पीड़ित मृगों के समान, द्रोणाचार्य के सम्मुख ही भाग खड़े हुए। उस समय देवता, चारण, सिद्ध,

संप्रेक्ष्य तं महाबाहुं रुक्मपुङ्खैः समावृतम् ।
त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३६ ॥
स तु रणयशसाऽभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्धयक्षसङ्घैः।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घैरतिविबभौ हुतभुग्यथाऽऽज्यसिक्तः॥ ३७ ॥
इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

पितृगण और पृथ्वीतल के सब प्राणी अभिमन्यु के युद्ध-कौशल और अस्त्र-शिक्षा की प्रशंसा करने लगे। हवन-कुण्ड में स्थित और आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान वीर अभिमन्यु परम शोभा को प्राप्त हुए॥ ३६।३७॥

द्रोणपर्व का सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः ।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् ।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥ २ ॥
मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽऽशुगै रणे ।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन्बाणान्समभ्ययात् ॥ ३ ॥
स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम् ।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
तस्याऽर्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान् ।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ ५ ॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः ।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ॥ ६ ॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन ।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ॥ ७ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय ॥ ३८ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! वीर अभिमन्यु जब इस प्रकार शत्रुपक्ष के महाधनुर्द्धर वीरों को विमर्दित करने लगे तब मेरे पक्ष के किन-किन वीरों ने उनको रोका"॥ १॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! वीर अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य के बाहु-बल से सुरक्षित रथ-सेना को पार करने की अभिलाषा से जिस प्रकार युद्धक्रीडा की, सो सुनिए। शल्य के छोटे भाई ने जब अपने बड़े भाई को अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त व्यथित देखा तब वे क्रोध के मारे बाण बरसाते हुए अभिमन्यु की ओर दौड़े। उन्होंने अभिमन्यु को और उनके सारथी तथा घोड़ों को दस बाण मारकर सिंहनाद करते हुए ललकारा॥ २।४॥स्फूर्तिशाली महावीर अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाण चलाकर एक साथ उनके मस्तक, हाथों, पावों, रथ के चारों घोड़ों, छत्र, ध्वजा, पताका और त्रिवेणु, तल्प, चक्र, युग, तूणीर, अनुकर्ष और रथ की अन्यान्य सामग्री को तथा दो

वायुनेव महाशैलः सम्भग्नोऽमिततेजसा ।
अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन्सर्वतो दिशः ॥ ८ ॥
आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः ।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ९ ॥
शल्यभ्रातर्यथाऽऽरुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः ।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ १० ॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
रथैरश्वैर्गजैश्चाऽन्ये पद्भिश्चाऽन्ये बलोत्कटाः ॥ ११ ॥
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च ।
हुङ्कारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥ १२ ॥
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् ।
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन्मोक्ष्यसे जीवितादिति ॥ १३ ॥
तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव ।
यो योऽस्मै प्राहरत्पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १४ ॥
सन्दर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च ।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥ १५ ॥
वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् ।
अदर्शयत तत्कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥ १६ ॥
दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः ।
सन्दधद्विसृजंश्चेषून्निर्विशेषमदृश्यत ॥ १७ ॥

चक्ररक्षकों और सारथी का मस्तक काट डाला। उस समय अभिमन्यु को कोई नेत्र तक उठाकर भी नहीं देख सकता था। महावीर शल्य के भाई के वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। आँधी से नष्ट किये गये पर्वत की भाँति जब उन्हें अभिमन्यु ने मार डाला तब सब सेना चारों ओर भागने लगी॥५।८॥दर्शक लोग अभिमन्यु के इस अलौकिक कार्य को देखकर वाह-वाह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। शल्य के छोटे भाई के मारे जाने पर उनके साथ की सेना के वीर योद्धा लोग कुपित होकर अभिमन्यु को अपने कुल, नाम और निवासस्थान का परिचय देते हुए बहुत से अस्त्र-शस्त्र तानकर उन पर आक्रमण करने के लिए दौड़े। उन वीरों में से कुछ लोग रथों पर, कुछ लोग घोड़ों पर और कुछ लोग हाथियों पर सवार थे। कुछ लोग पैदल ही थे। बाणों के चलने का शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट, हुङ्कार, सिंहनाद, प्रत्यञ्चा का शब्द, ताल-ध्वनि और घोर गर्जन चारों ओर छा गया। "आज तुम जीते जी हमारे हाथ से छुटकारा नहीं पा सकते!" यह कहते हुए शत्रुसेना के वीर अभिमन्यु के आगे गरजने लगे॥९।१३॥उन लोगों के ये वचन सुनकर अभिमन्यु ने हँसते हँसते उन सब पर प्रहार किये। जिसने उन पर पहले प्रहार किया उसको पहले और जिसने पीछे प्रहार किया उसको पीछे, उसी क्रम से,

चापमण्डलमेवाऽस्य विस्फुरद्दिक्ष्वदृश्यत ।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १८ ॥
ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः ।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥ १९ ॥
ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत्प्रियदर्शनः ।
संमिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाऽप्ययुध्यत ॥ २० ॥
मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत ।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्शरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥
शरान्विचित्रान्सुबहून्रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥
क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः ।
नाराचैरर्द्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः ।
ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

वीर अभिमन्यु ने घायल किया। इस प्रकार विचित्र कौशल और स्फूर्ति दिखाते हुए वीर अभिमन्यु कोमल भाव से युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने पिता अर्जुन से और कृष्णचन्द्र से जो विचित्र अस्त्र प्राप्त किये थे उनका प्रयोग, उन्हीं की तरह, करना आरम्भ किया ॥१४।१६॥ युद्ध के समय किसी को यह नहीं देख पड़ता था कि अभिमन्यु किस समय बाण निकालते हैं, किस समय धनुष पर चढ़ाते हैं और किस समय छोड़ते हैं। अभिमन्यु का मण्डलाकार घूमता हुआ धनुष चारों ओर शरद् ऋतु के सूर्य के मण्डल के समान देख पड़ रहा था। उनकी प्रत्यञ्चा का शब्द और तलध्वनि, वर्षाकाल के मेघमण्डल से निकले हुए, वज्र के शब्द के समान सुनाई पड़ रही थी॥१७।१९॥ ह्रीमान्, असहनशील, मानी, प्रियदर्शन अभिमन्यु वीरों का सम्मान करने के लिए बाणों और अस्त्रों के द्वारा उनसे युद्ध करने लगे। इसके पश्चात् वर्षाकाल व्यतीत हो जाने पर जैसे सूर्यदेव प्रचण्ड रूप धारण करते हैं वैसे ही महावीर अभिमन्यु पहले कोमल युद्ध करके क्रमशः प्रचण्ड युद्ध करने लगे। वे सूर्यकिरण के समान तीक्ष्ण, सुवर्णपुङ्खयुक्त, विचित्र बाणों को बरसाने लगे। सहस्रों क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, अर्धचन्द्र, नाराच, भल्ल और अञ्जलिक आदि अनेक प्रकार के बाणों से द्रोणाचार्य के सम्मुख ही उनकी रथ-सेना को छिन्न भिन्न करने लगे। कौरव-सेना इस प्रकार अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर युद्ध मे भागने लगी॥२०।२४॥

द्रोणपर्व का अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्याय. ॥ ३९. ॥

धृतराष्ट्र उवाच —द्वैधीभवति मे चित्तं भिया तुष्टया च सञ्जय ।
मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥

विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः ।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवाऽसुरैः सह ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम् ।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत्तुमुलो रणः ॥ ३ ॥
अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिन्दमान् ।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४ ॥
द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम् ।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥
नानानृपान्नृपसुतान्सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत्सर्वांश्चरन्बाणैः समार्पयत् ॥ ६ ॥
निघ्नन्नमित्रान्सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥
तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्याऽमितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥
अथाऽब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥
घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥

---

उनतालीसवाँ अध्याय ॥ ३९ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महारथी अभिमन्यु के पराक्रम से अपने पुत्र की सेना के नष्ट और विमुख होने का समाचार सुनकर मुझे शोक भी हो रहा है और सन्तोष भी हो रहा है । अब तुम, असुरों के साथ स्कन्द भगवान् के युद्ध के समान, कौरव सेना के साथ अभिमन्यु के युद्ध का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहो॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महावीर अभिमन्यु ने अकेले ही जिस प्रकार बहुत से योद्धाओं के साथ घोर युद्ध किया, सो सब मैं विस्तार के साथ आपके सन्मुख वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनिए । महापराक्रमी अभिमन्यु उत्साह के साथ रथ पर बैठकर युद्ध का उत्साह रखनेवाले शत्रु-नाशन कौरवपक्ष के वीरों पर बाणों की वर्षा करने लगे अभिमन्यु घुमाई जानेवाली जलती हुई लकड़ी की भाँति घूमकर द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा, भोज-राज, बृहद्बल, दुर्योधन, भूरिश्रवा, शकुनि और अन्या-न्य बहुत से राजाओं, राजपुत्रों और सैनिकों को बड़ी स्फूर्त्ति के साथ अपने बाणों से पीड़ित करने लगे ॥३।६॥उस समय वे इतनी शीघ्रता से विचर रहे थे कि शत्रुपक्ष के लोगों को जान पड़ता था कि अनेक मूर्त्तियाँ धारण किये वे चारों ओर उपस्थित हैं । हे राजेन्द्र ! महातेजस्वी अभिमन्यु को इस प्रकार असाधारण रणकौशल दिखाते देखकर कौरव-सेना के लोग काँप उठे॥७।८॥इसी समय महारथी प्रतापी द्रोणाचार्य अभिमन्यु के असाधारण रणकौशल को देखकर, प्रसन्न होकर दुर्योधन के मर्मस्थल को चोट

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन्सुहृदः सर्वान्राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बन्धून्सम्बन्धिनश्चाऽन्यान्मध्यस्थान्सुहृदस्तथा ॥ १२ ॥
नाऽस्य युद्धे समं मन्ये कश्चिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन्हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥
द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवाऽऽत्मजः ।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥
अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथाऽन्यान्महारथान् ॥ १५ ॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नाऽयं हन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥
न ह्यस्य समरे युद्ध्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।
किमङ्ग पुनरेवाऽन्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥
अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥
संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥ १९ ॥
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥

पहुँचाते हुए, कृपाचार्य से कहने लगे—हे आचार्य! यह देखो, पाण्डवों के प्रसिद्ध पुत्र महावीर अभिमन्यु धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन तथा अन्यान्य बन्धु-बान्धव, सम्बन्धी और मध्यस्थ लोगों को सन्तुष्ट करके जा रहे हैं। मेरी सम्मति में इस समय इस बालक के समान समरनिपुण धनुर्द्धर योद्धा यहाँ पर दूसरा नहीं है। यह महावीर चाहे तो सहज ही सम्पूर्ण कौरव-सेना का नाश कर सकता है; किन्तु न-जाने वह ऐसा क्यों नहीं करता!॥१०।१३॥आचार्य के वचन सुनकर दुर्योधन ने अभिमन्यु पर क्रुद्ध हो द्रोणाचार्य की ओर देखकर कर्ण, बाह्लीक, दुःशासन, शल्य और अन्य अपने अनुयायियों से कहा—हे सुहृदो! देखो, सब क्षत्रियों के गुरु और ब्रह्मवेत्ताओं के शिरोमणि आचार्य ममता और मोह के वश होकर ही अर्जुन के पुत्र को मारना नहीं चाहते॥१४।१६॥ मैं सत्य कहता हूँ, आचार्य यदि शत्रु को मारने के लिए उद्यत होकर तत्परता के साथ युद्ध करें तो मनुष्य की कौन कहे, यमराज भी बच नहीं सकते। किन्तु अर्जुन इनके प्रिय शिष्य हैं। शिष्य, पुत्र और उनकी सन्तान को धर्मात्मा लोग स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, इसी लिए आचार्यजी अभिमन्यु की रक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार आचार्य के द्वारा रक्षित होने के कारण ही अभिमन्यु अपने को वीर्यशाली समझ रहा है। अतएव अब तुम लोग मिलकर इस पौरुषाभिमानी बालक को

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत्कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥
अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥ २२ ॥
ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
उत्क्रुश्य चाऽब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥
श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥ २४ ॥
तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥
तस्मादस्मिन्हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥ २६ ॥
एवमुक्त्वाऽनदद्राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात्क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥
तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिन्दमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ २८ ॥
दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥
तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुद्ध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥

---

शीघ्र ही मार डालो ॥१७।१९॥दुर्योधन के ये वचन सुनकर सब वीर योद्धा लोग क्रोधपूर्वक अभिमन्यु को मारने के विचार से शीघ्रता के साथ द्रोणाचार्य के सम्मुख ही अभिमन्यु की ओर दौड़े। उस समय दुःशासन ने दुर्योधन से गर्व के साथ कहा—हे राजेन्द्र ! राहु जैसे सूर्य को ग्रस लेता है वैसे ही मैं इस समय सम्पूर्ण पाञ्चालों और पाण्डवों के सम्मुख ही अभिमन्यु को मार डालूँगा। इसके पश्चात् अभिमानी अर्जुन और कृष्ण दोनों मेरे हाथ से अभिमन्यु के मृत्यु को प्राप्त हो जाने का समाचार पाकर अवश्य ही अपने प्राण दे देंगे॥२०।२४॥फिर कृष्ण और अर्जुन की मृत्यु की सूचना सुनकर पाण्डु के अन्य क्षेत्रज पुत्र और उनके बन्धु बान्धव, कायरों की तरह, शक्तिहीन और शोकाकुल होकर निःसन्देह एक ही दिन में मृत्यु को प्राप्त हो जायँगे। हे महाराज ! इस प्रकार एक अभिमन्यु के नष्ट होने से ही आपके सब शत्रुओं का नाश हो जायगा। अतएव आप मेरे मङ्गल और विजय की कामना कीजिए। मैं अकेला ही आपके शत्रुओं का संहार किये डालता हूँ। हे महाराज ! आपके पुत्र दुःशासन ने यों कहकर ऊँचे स्वर से सिंहनाद किया। वे अत्यन्त कुपित होकर अभिमन्यु के सम्मुख पहुँचकर उन पर बाणवर्षा करने लगे॥२५।२७॥महारथी अभिमन्यु ने भी उनको छब्बीस बाण मारे। महापराक्रमी दुःशासन क्रुद्ध होकर मदमत्त

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रुर्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

गजराज की भाँति अभिमन्यु के साथ घोर संग्राम करने लगे। इसके उपरान्त रथ-शिक्षा में निपुण दोनों वीर दाहने-बाँये विचित्र मण्डलाकार गतियों से रथ घुमाते हुए एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। उस समय सैनिक लोग चारों ओर पणव, मृदङ्ग, दुन्दुभि, क्रकच, महानक, भेरी, झर्झर और शङ्ख बजाते हुए घोर सिंहनाद करने लगे॥२८।३१॥

—०—

द्रोणपर्व का उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच — शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन्धीमान्दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥
यत्सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्याऽऽत्मनो बलम् ॥ ४ ॥
तत्त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।
परवित्तापहारस्य क्रोधस्याऽप्रशमस्य च ॥ ५ ॥
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्याऽत्याहितस्य च ।
पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ॥ ६ ॥
तत्त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद्वै महात्मनाम् ।
स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७ ॥
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
अद्याऽहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥

चालीसवाँ अध्याय ॥ ४० ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! यद्यपि वीर अभिमन्यु के सब अङ्ग कट-फट गये थे तथापि वे धैर्य के साथ अपने शत्रु दुःशासन से कहने लगे—हे निष्फल क्रोध करनेवाले अधर्मी वीराभिमानी पुरुष ! बड़ी बात जो आज समर-भूमि में यह है कि तुम मेरी आँखों के आगे आ गये ॥१।२॥ तुमने जो मेरी सभा में महाराज धृतराष्ट्र के सन्मुख कटुवचन कहकर धर्मराज को कुपित किया था और शकुनि-कल्पित कपट-द्यूत में अपने बाहुबल के मद से मत्त होकर महावीर भीमसेन को जो कुवाक्य कहे थे, उसका परिणाम आज तुमको मिलेगा। रे दुर्बुद्धि कौरव ! आज अभी बहुत ही शीघ्र तुमको पराई सम्पत्ति हड़प कर

अमर्पितायाः कृष्णायाः कांक्षितस्य च मे पितुः ।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥ ९ ॥
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्यदि नोत्सृजसे रणम् ।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥
सन्दधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ।
तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥
शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः ।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाऽविशन्महत् ।
सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ।
पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥
पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथाऽनदन् ।
वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः ।
अपश्यन्स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥
अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥

जाने को, क्रोध, अशान्ति, लोभ, अज्ञान, द्रोह, अति साहस का और मेरे उग्रधनुर्धर पिता और चाचा के राज्यहरण का उग्र प्रतिफल प्राप्त होगा॥३।७॥मैं समर में सब सेना के सन्मुख ही तुमको अपने बाणों से मारकर अमर्षणशील द्रौपदी और भीमसेन के ऋण से मुक्त हो जाऊँगा; अपने पिता की इच्छा पूर्ण करूँगा और तुम्हें वीर पाण्डवों को कुपित करने का और सम्पूर्ण अधर्म का फल भोगना पड़ेगा। यदि तुम युद्ध छोड़कर मेरे सन्मुख से भाग न गये तो आज किसी प्रकार जीते नहीं बच सकते। हे महाराज! अभिमन्यु ने इस प्रकार भर्त्सना करके दुःशासन को अग्नि के समान तेजःपुञ्ज और वायु के सदृश शीघ्रगामी एक दारुण बाण मारा। अभिमन्यु के धनुष से छूटा हुआ वह बाण दुःशासन के जत्रुस्थान को भेदकर पुङ्ख सहित पृथ्वी के भीतर वैसे ही प्रवेश हो गया जैसे सर्प बिल के भीतर प्रवेश हो जाता है॥८।१२॥फिर वीर अभिमन्यु ने धनुष को कान तक खींचकर अत्यन्त तीक्ष्ण पचीस बाण दुःशासन को मारे। वीर दुःशासन अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त घायल और व्यथित होकर मूर्च्छित हो रथ पर गिर पड़े। उस समय सारथी उन्हें अचेत देखकर उनका रथ समरभूमि से शीघ्र ही हटा ले गया॥१२।१५॥यह देखकर पाण्डवगण, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, पाञ्चालगण, कैकेयगण और राजा विराट सभी अभिमन्यु की प्रशंसा

धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृञ्जयाः ।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं विभित्सवः ।
ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥
जयमाकांक्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयङ्करे ॥ २२ ॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।
पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशङ्गतम् ॥ २३ ॥
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं निघ्नन्तं शात्रवान्रणे ।
अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥ २४ ॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।
ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत्तव ।
तस्य चाऽनुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ २६ ॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।
अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥
अविध्यत्त्वरितो राजन्द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः ।
तं तथा नाऽशकत्कश्चिद् द्रोणाद्वारयितुं रथी ॥ २८ ॥

---

और घोर सिंहनाद करने लगे। पाण्डवपक्ष के सैनिक सन्तुष्ट होकर युद्धभूमि में अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे और प्रधान शत्रु दुःशासन को हरानेवाले कुमार अभिमन्यु का पराक्रम देखकर बड़े ही चकित हुए। धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों की मूर्तियों के चिह्न से अलङ्कृत ध्वजाओंवाले रथों पर बैठे हुए द्रौपदी के पाँचों पुत्र, पराक्रमी सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकयराजकुमार, धृष्टकेतु, मत्स्य देश के योद्धा, पाञ्चाल देश के सैनिक और सृञ्जय-गण युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के साथ द्रोणाचार्य की सेना को छिन्न-भिन्न करने के लिए बड़े वेग के साथ समरभूमि में आगे बढ़े। इस समय समान से कभी न हटनेवाले और विजय की इच्छा रखनेवाले दोनों पक्षों के वीर तुमुल युद्ध करने लगे॥१५।२२॥इस प्रकार भयानक समर उपस्थित होने पर राजा दुर्यो-धन ने वीरवर कर्ण से कहा—हे अङ्गराज! देखो, वह सूर्य के समान तेजस्वी प्रतापी वीर दुःशासन रणभूमि में शत्रु-सेना का संहार करके अन्त को अभिमन्यु के वश हो रहे हैं और पाण्डवगण महाराज सिंह की तरह क्रुद्ध होकर अभिमन्यु की रक्षा करने के लिए वेग से युद्धभूमि में चले आ रहे हैं॥२३।२५॥हे राजेन्द्र! तब दुर्योधन के परम हितैषी वीर कर्ण ने कुपित होकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से अभि-मन्यु को घायल किया और उनके अनुगामी [illegible]

आरुजन्तं रथव्रातान्वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।
ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ।
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ।
स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनाऽस्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
समरेऽमरसङ्काशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।
ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३३ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साऽश्वमाशु स्मयन्निव ।
कर्णोऽपि चाऽस्य चिक्षेप बाणान्सन्नतपर्वणः ॥ ३४ ॥
असम्भ्रान्तश्च तान्सर्वानगृह्णात्फाल्गुनात्मजः ।
ततो मुहूर्तात्कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
स ध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।
ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
सौभद्रमभ्ययात्तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।
तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुऽचरा जनाः ।
वादित्राणि च सञ्जघ्नुः सौभद्रं चाऽपि तुष्टुवुः ॥ ३७ ॥

*इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥*

वीरों को भी वे तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। आचार्य के सम्मुख जाने की इच्छा रखनेवाले महावीर अभिमन्यु ने स्फूर्ति के साथ कर्ण को तिहत्तर तीक्ष्ण बाण मारे और फिर कौरवपक्ष के श्रेष्ठ रथियों को भी वे शस्त्रप्रहार से व्यथित करने लगे। किन्तु कौरव-सेना का कोई भी योद्धा उस समय महावीर अभिमन्यु को द्रोणाचार्य के सम्मुख जाने से रोक नहीं सका॥२५।२९॥उस समय सब योद्धाओं की अपेक्षा अभिमानी, विजयाभिलाषी, परशुराम के शिष्य, महावीर कर्ण सैंकड़ों श्रेष्ठ बाणों और शस्त्रों से अभिमन्यु को पीड़ित करने लगे; किन्तु महापराक्रमी देवतुल्य अभिमन्यु उससे तनिक भी व्यथित नहीं हुए। वे शिला पर पैने किये गये आनतपर्व बहुत से भल्ल बाणों से वीरों के धनुष काटकर बलपूर्वक कर्ण के ऊपर निरन्तर सैंकड़ों बाण छोड़ने लगे। अभिमन्यु के धनुष से छूटे हुए उन सर्प-सदृश बाणों ने कर्ण के छत्र, ध्वजा, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर दिया॥३०। ३४॥तब महावीर कर्ण ने अभिमन्यु को बाण मारे। उन्होंने अनायास ही उन बाणों के प्रहार को सह लिया और क्षण भर में देखते ही देखते एक ही बाण से कर्ण की ध्वजा और धनुष आदि काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये। उस समय कर्ण के भाई, अपने भाई की दशा देखकर, सुदृढ़ धनुष लेकर अभिमन्यु पर आक्रमण करने को दौड़े। कर्ण की दुर्दशा देखकर अनु

चरों सहित पाण्डवगण ज़ोर से सिंहनाद करने,बाजे | बजाने और अभिमन्यु की प्रशंसा करनेलगे॥३४।३७॥

द्रोणपर्व का चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच—सोऽतिगर्जन्धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥
सोऽविध्यद्दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम् ।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साऽश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥
पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
दृष्ट्वाऽर्पितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन् ॥ ३ ॥
तस्याऽभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा ।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात्प्रापतद्भुवि ॥ ४ ॥
कर्णिकारमिवाऽऽधूतं वातेनाऽऽपतितं नगात् ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन्कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः ।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाऽभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥
ततस्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत् ।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा महारथः ॥ ७ ॥
कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना ।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८ ॥
शलभैरिव चाऽऽकाशे धाराभिरिव चाऽऽवृते ।
अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ९ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय ॥ ४१ ॥

सञ्जय कहते हैं हे राजेन्द्र ! कर्ण के भाई ने बार-बार गरजकर और धनुष की डोरी खींचकर स्फूर्ति के साथ अभिमन्यु और कर्ण के रथों के मध्य में आकर दस बाण छोड़े, जिनसे अभिमन्यु का सारथी और घोड़े घायल हो गये और छत्र तथा ध्वजा जर्जर हो गई । महावीर अभिमन्यु को, अपने पिता और पितामह के समान अलौकिक कार्य करके, अन्त में कर्ण के भाई के बाणों से पीड़ित होते देखकर कौरव-गण अत्यन्त सन्तुष्ट हुए॥१।३॥अब महावीर अभिमन्यु ने दर्प के साथ एक बाण मारकर कर्ण के भाई का सिर काटकर गिरा दिया । अभिमन्यु के बाण से निहत भाई को, वायुवेग के द्वारा जड़ से उखड़कर पर्वत से गिरनेवाले कर्णिकार वृक्ष की तरह, रथ से पृथ्वी पर गिरते देखकर वीर कर्ण बहुत ही व्यथित हुए॥४।६॥कर्ण को इस प्रकार रण से विमुख करके वीर अभिमन्यु कङ्कपत्रशोभित असंख्य बाणों की वर्षा करते हुए अन्य वीरों की ओर चले और क्रोध के साथ उस विस्तृत चतुरङ्गिणी कौरव-सेना को छिन्न-भिन्न करने लगे । अभिमन्यु के बाणों से विद्ध और व्यथित होकर वीर कर्ण बड़े वेग से रणभूमि से हट गये।

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः ।
अन्यत्र सैन्धवाद्राजन्न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥
सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माय पुरुषर्षभः ।
शीघ्रमभ्यपतत्सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥
स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्यं भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रववर्तत ॥ १२ ॥
रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः ।
सम्प्रविश्याऽकरोद्भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥
सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः ।
स्वानेवाऽभिमुखान्घ्नन्तः प्राद्रवञ्जीवितार्थिनः ॥ १४ ॥
ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः ।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुन्धराम् ॥ १५ ॥
सायुधाः सांगुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥
शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन्सहस्रशः ॥ १७ ॥
सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पातितैर्युगैः ॥ १८ ॥
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः ।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९ ॥

यह देखकर सब सेना विशृङ्खल होकर प्राण लेकर इधर-उधर भागने लगी॥६।८॥अभिमन्यु के, जलधारा और टीड़ीदल के समान, असंख्य बाणों से आकाश-मण्डल व्याप्त हो गया। बाणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख पड़ता था। कौरवपक्ष की सेना अभिमन्यु के तीक्ष्ण बाणों से जर्जर होकर भाग खड़ी हुई। केवल पराक्रमी योद्धा सिन्धुराज जयद्रथ अपने स्थान से नहीं हटे॥९।१०॥तब महावीर अभिमन्यु शङ्ख बजाते हुए कौरव-सेना में प्रवेश होकर सूखी घास को जलानेवाली प्रचण्ड अग्नि के समान बाणों की अग्नि से शत्रु-सेना को भस्म करने लगे। उन्होंने क्षण भर में असंख्य रथियों, हाथियों, घोड़ों, हाथी-घोड़ों के सवारों और पैदल योद्धाओं को छिन्न भिन्न करके पृथ्वी को कबन्धों और लाशों से व्याप्त कर दिया॥११।१३॥ कौरवपक्ष के सैनिक लोग अभिमन्यु के बाण-प्रहार से अत्यन्त व्याकुल और पीड़ित होकर प्राणरक्षा के लिए बड़े वेग से चारों ओर भागे और ऐसे व्याकुल हुए कि अपने ही दल के लोगों को मारने लगे। अभिमन्यु के चलाये हुए निम्न विपाठ नाम के बाण रथों, हाथियों और घोड़ों को नष्ट करके पृथ्वीतल में गिरने लगे। शस्त्र, अंगुलित्राण, गदा और अङ्गद आदि सुवर्ण के अलङ्कारों से अलङ्कृत सहस्रों कटी हुई भुजाएँ, असंख्य बाण, धनुष, खड्ग, मनुष्यों के शरीर और माला तथा कुण्डल आदि से शोभित सिर पृथ्वी पर बिछ

निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनाऽऽसीत्सुदारुणा ॥ २० ॥
वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥ २१ ॥
स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
सौभद्रश्चाऽऽद्रवत्सेनां घ्नन्वराश्वरथद्विपान् ॥ २२ ॥
कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्ये भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥
विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चाऽपि भारत ।
तं तदा नाऽनुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥ २४ ॥
आददानं गजाश्वानां नृणां चाऽऽयूंपि भारत ।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यन्दिने यथा ॥ २५ ॥
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान् ।
स वासवसमः संख्ये वासवस्याऽऽत्मजात्मजः ॥
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्याय. ॥ ४१ ॥

गये ॥१४।१७॥ढेर के ढेर रथों के टूटकर गिरे हुए दिव्याभरणभूषित आसन, ईशादण्ड, अक्ष, चक्र, युग, शक्ति, धनुष, ध्वजा, ढाल, तलवार, बाण, असंख्य मृत क्षत्रियों की लाशें, मरे हुए हाथी और घोड़े गिरने के कारण वह रणभूमि क्षण भर में अगम्य और बड़ी भयङ्कर सी हो उठी॥१८।२०॥मारे जाते हुए और घायल राजपुत्रों तथा क्षत्रियों के आर्तनाद की ऐसी घोर प्रतिध्वनि उठी कि उसे सुनकर कायरों के कलेजे काँप उठे। उस समय महावीर अभिमन्यु अस-ख्य शत्रुसेना, रथ, घोड़े और हाथी आदि का संहार करके कौरव सेना के भीतर प्रवेश होकर अग्नि जैसे सूखे हुए जङ्गल को जलाती है वैसे ही शत्रुओं को नष्ट करते हुए इधर-उधर परिभ्रमण करने लगे॥२१। २३॥सेना के इधर-उधर भागने से ऐसी धूल उड़ी कि उसके मारे हम लोग असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के मध्य में उन प्राणनाशक पराक्रमी अभिमन्यु को देख नहीं पाते थे। किन्तु क्षण भर के पश्चात् ही महावीर अभिमन्यु मध्याह्नकाल के सूर्य के समान, अपने प्रताप से, शत्रुओं को तपाते हुए उस असंख्य सेना के मध्य प्रकट होकर बहुत ही शोभयमान हुए॥२४।२६॥

द्रोणपर्व का इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम् ।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥
गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः ।
अपि यौधिष्ठिरात्सैन्यात्कश्चिदन्वपतद्बली ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ ३ ॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाऽभ्यपतन्रणे ।
तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥ ४ ॥
अभ्यद्रवन्परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥ ५ ॥
ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलम् ।
जामाता तव तेजस्वी संस्तंभयिषुराद्रवत् ॥ ६ ॥
सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः ।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान्सहसैन्यानवारयत् ॥ ७ ॥
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत्प्रवणादिव कुञ्जरः ॥ ८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाऽऽहितम् ।
यदेकः पाण्डवान्क्रुद्धान्पुत्रप्रेप्सूनवारयत् ॥ ९ ॥
अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे ।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाऽग्र्यं महात्मनः ॥ १० ॥
किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो ततः ।
सिन्धुराजो हि येनैकः पाण्डवान्समवारयत् ॥ ११ ॥
सञ्जय उवाच—द्रौपदीहरणे यत्तद्भीमसेनेन निर्जितः ।
मानात्स तप्तवान्राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥ १२ ॥

बयालीसवाँ अध्याय ॥ ४२ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने पूछा हे सञ्जय ! अत्यन्त सुखी, बाहुबल का अहङ्कार रखनेवाले, रणनिपुण अभिमन्यु ने तीन तीन वर्ष के बहुमूल्य घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर प्राणपण से युद्ध करने के लिए जब समरसागर में प्रवेश किया तब पाण्डवसेना का कौन-कौन वीर उनके साथ गया?॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, शिखण्डी, मत्स्यदेश के वीर, सात्यकि, विराट, द्रुपद, कैकेय और धृतकेतु आदि अभिमन्यु के आत्मीयस्वजन लोग उनकी रक्षा करने के लिए उनके साथ साथ युद्ध के मैदान में चले। कौरव-सेना के योद्धा लोग पाण्डव-पक्ष के वीरों को युद्धभूमि में आते देखकर वहाँ से भाग गये॥३।५॥ तब उग्र धनुष धारण करनेवाले महातेजस्वी आपके दामाद जयद्रथ, कौरव सेना को स्थिर और युद्ध के लिए उत्साहित करने की इच्छा से, दिव्य अस्त्र का प्रयोग करते हुए पुत्रवत्सल पाण्डवों को रोककर मत्त गजराज की भाँति युद्धभूमि में परिभ्रमण करने लगे। जयद्रथ को जीतकर व्यूह के भीतर प्रवेश होना पाण्डवों और उनके पक्ष के वीरों के लिए अशक्य हो गया॥५।८॥धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महाबाहु जयद्रथ ने अकेले ही, मेरे पुत्रों के हित की इच्छा से, क्रोधी बली पाण्डवों को व्यूह के

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सः ।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ॥ १३ ॥
देवमाराधयच्छर्वं गृणन्ब्रह्म सनातनम् ।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥ १४ ॥
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाऽऽह हरः सिन्धुपतेः सुतम् ।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १५ ॥
एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥
पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान् ।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥ १७ ॥
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाऽब्रवीत् ।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ १८ ॥
वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान् ।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाऽबुध्यत पार्थिवः ॥ १९ ॥
स तेन वरदानेन दिव्येनाऽस्त्रबलेन च ।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥
तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान्भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम् ।
उत्क्रुश्याऽभ्यद्रवन्राजन्येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

बाहर ही रोककर बड़ा भारी कार्य किया। मुझे जयद्रथ का बल-वीर्य बहुत ही अद्भुत जान पड़ता है। तुम उनके युद्ध के वृत्तान्त का वर्णन विस्तरपूर्वक करो। सिन्धुराज जयद्रथ ने कौन सा दान, हवन, यज्ञ या तप किया था, जिसके प्रभाव से वे अकेले ही क्रोधान्ध पाण्डवों को युद्ध में परास्त कर सके ॥१।११॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! जयद्रथ ने जब द्रौपदी को हर ले जाने की कुचेष्टा की थी तब भीमसेन ने उन्हें परास्त किया था। उस अपमान से कुपित होकर जयद्रथ ने इन्द्रियों को विषयों से रोक करके, भूख-प्यास धूप-वर्षा आदि के कष्ट सहकर, घोर तपस्या और वेदपाठपूर्वक वर की प्राप्ति के लिए महादेव की आराधना की ॥१२। १४॥ भक्तवत्सल भवानीपति ने जयद्रथ पर दया करके उनसे स्वप्न में कहा—हे जयद्रथ ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा के अनुसार वरदान माँग लो। तब जयद्रथ ने प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—हे महादेव ! मैं आपके वरदान के प्रभाव से अकेला ही रथ पर बैठकर महाबलशाली पाँचों पाण्डवों को परास्त कर सकूँ ॥१५।१७॥ शङ्कर ने कहा—हे सिन्धुराज ! मैं वर देता हूँ कि तुम अर्जुन के अतिरिक्त सब पाण्डवों को [एक दिन] युद्ध में परास्त कर सकोगे। हे राजेन्द्र ! महादेव के ये वचन सुनकर "बहुत अच्छा" कहकर

जयद्रथ जाग पड़े। वीर जयद्रथ ने शङ्कर के उसी वरदान के प्रभाव से ही और दिव्य अस्त्रों के बल से ही उस दिन अकेले ही पाण्डवों को परास्त किया [और व्यूह के भीतर नहीं जाने दिया]॥१८।२०॥ हे महाराज! उस समय जयद्रथ के ज्या-निर्घोष और तलध्वनि को सुनकर शत्रुपक्ष के क्षत्रिय भयविह्वल और कौरवपक्ष के वीर प्रसन्न तथा उत्साहित हो उठे। कौरवपक्ष के वीरगण व्यूह की रक्षा का भार जयद्रथ को सौंपकर, साहस के साथ धनुष चढ़ाकर, राजा युधिष्ठिर की सेना के सम्मुख चले॥२१।२२॥

द्रोणपर्व का बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच—यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम्। 
शृणु तत्सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १ ॥
तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः। 
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥
गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम्। 
तस्याऽभ्यशोभयत्केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥
श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च। 
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाऽम्बरे ॥ ४ ॥
मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तमयस्मयम्। 
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवाऽऽवृतम् ॥ ५ ॥
स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान्बहून्। 
तत्खण्डं पूरयामास यद्व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥
स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम्। 
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम्। 
केकयान्पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

---

तैतालीसवाँ अध्याय ॥ ४३ ॥

सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र! आप मुझसे सिन्धुराज जयद्रथ के पराक्रम के बारे में पूछ रहे हैं, इसलिए जिस प्रकार जयद्रथ ने पाण्डवों से युद्ध किया और उन्हें आगे बढ़ने से रोका वह सब वृत्तान्त मैं कहता हूँ; सुनिए। गन्धर्वनगर के सदृश, विविध अलङ्कारों से अलंकृत, स्फूर्तिशाली और सारथी के आज्ञाधीन सिन्धु देश के बड़े डील-डौलवाले घोड़ों से युक्त, रथ पर चढ़कर वीर जयद्रथ मोर्चे के समीप पहुँचे। उनके रथ के ऊपरी भाग में चाँदी का बना हुआ वराहचिह्न ध्वजा के ऊपर शोभायमान था॥१।३॥वे श्वेत छत्र, पताका और चामर आदि राजकीय चिह्नों से आकाशमण्डल में स्थित चन्द्रमा के समान शोभा को प्राप्त हुए। हीरे, मोती, मणि, स्वर्ण आदि से भूषित लोहमय उनके रथ का वरूथ ( रथवेष्टन ) ज्योतिष्कमण्डली से आवृत आकाश के समान जान पड़ता था। इसके पश्चात् वीर जयद्रथ ने धनुष चढ़ाकर बहुत से बाण बरसाये और अभिमन्यु ने व्यूह के जिस स्थान को अपने शस्त्रों की वर्षा से रहित करके

युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ९ ॥
अथाऽस्य शितपीतेन भल्लेनाऽऽदिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन्राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवाऽन्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः॥ ११ ॥
तत्तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥
सोऽन्यदादाय बलवान्सज्जं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्याऽपातयत्केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३ ॥
स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥
ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत्कर्म प्रेक्ष्याऽश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥
संक्रुद्धान्पाण्डवानेको यद्धाराऽस्त्रतेजसा ।
तत्तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाऽभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥
सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥
यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चाऽन्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥ १८ ॥

राह कर ली थी उस स्थान को फिर सेना के द्वारा पूर्ण कर दिया॥४।६॥जयद्रथ ने सात्यकि को तीन, भीमसेन को आठ, धृष्टद्युम्न को साठ, विराट राजा को दस, राजा द्रुपद को पाँच, शिखण्डी को दस, युधिष्ठिर को सत्तर, कैकेयगण को पचीस बाण और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को तीन-तीन बाण मारकर अन्यान्य वीरों को असंख्य बाणों से पीड़ित करना आरम्भ किया। जयद्रथ की यह अद्भुत स्फूर्ति देख कर लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥७।९॥महाप्रतापी युधिष्ठिर ने हँसते-हँसते तीक्ष्ण भल्ल बाण से जयद्रथ का धनुष काट डाला। उन्होंने क्षण भर में दूसरा धनुष लेकर धर्मराज को दस बाण और अन्य वीरों को तीन-तीन बाण मारे। तब महावीर भीमसेन ने जयद्रथ की स्फूर्ति देखकर शीघ्रता के साथ तीन-तीन भल्ल बाणों से उनका धनुष, ध्वजा और छत्र आदि काट डाले॥१०।१२॥पराक्रमी सिन्धुराज ने उसी क्षण अन्य धनुष पर डोरी चढ़ाकर भीमसेन की ध्वजा, धनुष और घोड़ों को नष्ट कर दिया। महाबाहु भीमसेन उस बिना घोड़ों के रथ से उतरकर सात्यकि के रथ पर चले गये। उस समय ऐसा जान पड़ा कि सिंह पर्वत के ऊपर चढ़ रहा है। हे राजेन्द्र! आपके सैनिकगण जयद्रथ के इस कार्य को देखकर अत्यन्त आह्लाद के साथ ऊँचे स्वर से उनको शाबाशी देने लगे॥१३।१५॥वीर सिन्धुराज ने अकेले ही क्रोध-

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तत्राऽहितः ।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

विह्वल पाण्डवों को अपने बाहुबल और अस्त्र-शस्त्र के प्रभाव से रोक लिया, यह देखकर सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। पहले महावीर अभिमन्यु ने अपने पक्ष के योद्धाओं को साथ ले, कौरव पक्ष के असंख्य हाथियों को मारकर, पाण्डवों को व्यूह के भीतर जाने का जो मार्ग दिखलाया था वह मार्ग जयद्रथ ने इस समय अपने कौशल और शिव के वरदान के प्रभाव से बन्द कर दिया। मत्स्य, पाञ्चाल, कैकेय और पाण्डवगण बड़े यत्न से युद्ध करते-करते जयद्रथ के समीप पहुँचे; किन्तु जयद्रथ के प्रभाव और पराक्रम को किसी प्रकार न सह सकने के कारण कुछ नहीं कर सके। उस समय पाण्डवपक्ष के वीरों ने द्रोणाचार्य की सेना के व्यूह को तोड़ने की जितनी चेष्टाएँ कीं, उन्हें जयद्रथ ने अनायास ही विफल कर दिया॥१६।१९॥

द्रोणपर्व का तेंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सञ्जय उवाच—सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥
प्रविश्याऽथाऽऽर्जुनिः सेनां सत्यसन्धो दुरासदः ।
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥
तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।
यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥
तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत ।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥
रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽऽर्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥
तस्य विव्याध बलवाञ्शरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥

चवालीसवाँ अध्याय ॥ ४४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! जयद्रथ ने जय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले पाण्डवों को जब इस प्रकार बाहर ही रोक दिया तब दोनों पक्ष के वीर भयानक संग्राम करने लगे। महातेजस्वी अभिमन्यु शत्रुसेना के भीतर प्रवेश करके वैसे ही शत्रुसेना को मथने लगे जैसे कोई बड़ा भारी मच्छ समुद्र के जल को मथता है। उस समय कौरवपक्ष के वीरगण प्रधानता के अनुसार अभिमन्यु पर आक्रमण करने के लिए उनकी ओर चले॥१।३॥अभिमन्यु के साथ कौरवों का भयानक युद्ध होने लगा। कौरव निरन्तर बाणवर्षा करने लगे। उन्होंने रथों के मध्य में अभिमन्यु को घेर लिया। अभिमन्यु ने कुपित होकर कई बाण कर्णनन्दन वृषसेन को मारे, उनके सारथी को मार डाला, धनुष काट डाला और उनके रथ के घोड़ों को भी घायल कर डाला। वायुवेगगामी घोड़े सहसा अचेत वृषसेन को युद्धस्थल से लेकर भाग

तेनाऽन्तरेणाऽभिमन्योर्यन्ताऽपासारयद्रथम् ।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधुसाध्विति चुक्रुशुः ॥ ७ ॥
तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥
सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥
तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥
वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥
विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्याऽरिभिः सह ॥ १२ ॥
तेषां शरान्सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३ ॥
सखड्गाः सांगुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः ।
अपश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाभुजैः ।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥

खड़े हुए॥४।६॥इसी मध्य में अभिमन्यु के रथ को
लेकर उनका सारथी भी अन्यत्र चला गया। महारथी
वीर लोग अभिमन्यु का पराक्रम देखकर प्रसन्नता-
पूर्वक 'साधु-साधु' कहकर बड़ा कोलाहल करने लगे।
कुपित सिंह के समान झपटकर बाणों से शत्रुसेना
का विनाश करते हुए अभिमन्यु को आगे बढ़ते देख
शीघ्रता के साथ वीर वसातीय उनके सम्मुख पहुँचे।
वसातीय ने स्फूर्ति के साथ सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण साठ
बाण अभिमन्यु को मारकर कहा — हे वीर कुमार !
मेरे उपस्थित रहते तुम कदापि समर में जीते-जी छुट-
कारा नहीं प्राप्त कर सकते॥७।९॥तब अभिमन्यु ने
अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से लोह-कवचधारी वीर

वसातीय का वक्षःस्थल चीर डाला।वसातीय मरकर रथ
से पृथ्वी पर गिर पड़े। उनकी मृत्यु देखकर कौरवपक्ष के
वीरगण अपने-अपने अनेकानेक प्रकार के धनुष चढ़ा-
चढ़ाकर दौड़े। उन्होंने अभिमन्यु को, मार डालने के
विचार से, चारों ओर से घेर लिया।उस समय युद्ध बहुत
ही भयानक हो उठा॥१०।१२॥महावीर अभिमन्यु ने
क्रोध से विह्वल होकर उनके धनुष, बाण आदि अस्त्र-
शस्त्र,कलेवर और माल्यमण्डित तथा कुण्डलों से अलंकृत
मस्तक काटना आरम्भ कर दिया। इधर-उधर चारों
ओर खड्ग, अंगुलित्राण, पट्टिश और परश्वध आदि
से युक्त और सुवर्ण के अलङ्कारों से अलंकृत कटे हुए
हाथ पड़े हुए थे। उस समय रणभूमि माला, आभू-

अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः ।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाऽभवन्मही ॥ १७ ॥
निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥
दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥
काञ्चनं यद्यदस्याऽऽसीद्वर्म चाऽऽभरणानि च ।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥
तं तदा नाऽशकत्कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम् ।
आददानं शरैर्योधान्मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पण, वस्त्र, ध्वजादण्ड, ढाल, तलवार, हार, मुकुट, छत्र, चामर, आसन, ईशादण्ड, रथों के जुएँ, टूटे हुए पहिये, युग, अनुकर्ष, पताका, घोड़े, सारथि, टूटे हुए रथ तथा मरे हुए हाथियों-घोड़ों से परिपूर्ण हो उठी॥१३।१७॥समरभूमि उस समय विजयाभिलाषी महाबली पराक्रमी अनेक देशों के राजाओं की लाशों से परिपूर्ण और इसी से भयङ्कर दिखाई पड़ने लगी। अभिमन्यु क्रुद्ध होकर शत्रुसेना को विदीर्ण करते हुए इधर-उधर परिभ्रमण करने लगे। उस समय अभिमन्यु को कोई देख नहीं सकता था; क्योंकि वे स्फूर्ति के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान जा रहे थे। हे महाराज! हम लोग केवल अभिमन्यु का सुवर्ण-मण्डित कवच, आभूषण, मण्डलाकार धनुष और बाण ही देख पाते थे। सूर्य जैसे किरणों से सब लोकों को ढक लेते हैं वैसे ही तेजस्वी अभिमन्यु अपने बाणों से वीरों को व्याप्त करते हुए देख पड़ते थे। सेना के मध्य में स्थित, सूर्य के समान तप रहे, अभिमन्यु को उस समय कोई स्थिर दृष्टि से देख भी नहीं सकता था॥१८।२१॥

द्रोणपर्व का चवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सञ्जय उवाच—आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः ।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान्काल इवाऽऽगते ॥ १ ॥
स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली ।
अभिमन्युस्तदाऽनीकं लोडयन्समदृश्यत ॥ २ ॥
प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः ।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥ ३ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! जैसे प्रलयकाल आ जाने पर काल सब प्राणियों के जीवन का संहार करता है वैसे ही इन्द्र-सदृश पराक्रमी अभिमन्यु बड़े-बड़े योद्धाओं को मारने लगे। उस समय शत्रुसेना को विदलित करते हुए अभिमन्यु की अपूर्व शोभा हुई। व्याघ्र जैसे झपटकर मृग को पकड़ लेवैसे ही

सत्यश्रवसि चाऽऽक्षिते त्वरमाणा महारथाः ।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः ।
स्पर्धमाना समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥
क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्राह तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवाऽर्णवे ॥ ६ ॥
ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्त्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥
महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवाऽर्णवे ॥ ८ ॥
अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन्सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥
एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥
सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विध्वा वक्षस्यथाऽनदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥
स तस्येष्वसनं छित्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥

अभिमन्यु ने शत्रुसेना के व्यूह में प्रवेश करके सत्यश्रवा को पकड़ लिया और पृथ्वी पर उनको खींचना आरम्भ किया॥१।३॥तब कौरवपक्ष के सब योद्धा अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़े वेग से अभिमन्यु के समीप पहुँचे और "मैं पहले उसे मारूँगा, मैं पहले वार करूँगा" कहकर वे अभिमन्यु को मारने के लिए उद्यत हुए। समुद्र के भीतर तिमि नाम का मत्स्य जैसे छोटी मछलियों को निगल लेता है वैसे ही कुमार अभिमन्यु उन क्षत्रियों और सुभटों को मार-मारकर गिराने लगे॥४।६॥जैसे सब नदियाँ समुद्र में जाकर समा जाती हैं वैसे ही युद्ध से मुख न मोड़नेवाले अपराजित अभिमन्यु के समीप पहुँचकर कोई भी जीवित नहीं लौटता था। उस समय कौरवपक्ष के सैनिक लोग उसी प्रकार अत्यन्त भयविह्वल होकर काँपने लगे जिस प्रकार महाग्राह से पकड़ा गया मनुष्य काँपता है और तूफान के भयङ्कर वेग से क्षोभ को प्राप्त समुद्र के मध्य में डूबती हुई नाव डगमगाती है ॥७।८॥अब पराक्रमी निर्भय मद्रराज शल्य के पुत्र वीर रुक्मरथ ने भागती हुई सेना को धैर्य देकर उत्तेजित करते हुए कहा—हे वीर क्षत्रियो! सैनिक लोगो! भयभीत होओ नहीं। क्यों भागते हो? मेरे जीते जी अभिमन्यु तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते। मैं निःसन्देह इन्हें जीते-जी ही पकड़ लूँगा। सुसज्जित सुवर्णमण्डित रथ पर बैठे हुए रुक्मरथ बड़े वेग से अभिमन्यु के

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥
संग्रामदुर्मदा राजन्राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १६ ॥
शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥
छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८ ॥
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥
ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥
स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवाऽर्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद्रथमायां च भारत ॥ २१ ॥
अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनाऽमोहयताऽहितान् ॥ २२ ॥
एकधा शतधा राजन्दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत्संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥

सम्मुख पहुँचे । उन्होंने अभिमन्यु के हृदय में और दाहनी तथा बाईं भुजा में तीन-तीन बाण मारकर घोर सिंहनाद किया॥९।१२॥अभिमन्यु ने उसी समय उनका धनुष, दोनों हाथ और सुन्दर नयन-नाक तथा भृकुटि से शोभित सिर बाणों से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया । रण-दुर्मद शल्य-पुत्र के प्रिय राजकुमारगण सुवर्णखचित ध्वजा से शोभित रथों पर बैठे हुए थे । उन्होंने जब रुक्मरथ की मृत्यु देखी तब कुपित होकर, ताल-प्रमाण सुदृढ धनुष तान-तानकर, चारों ओर से अकेले अभिमन्यु को घेर लिया। शस्त्र-विद्या में सुशिक्षित, तरुण, अत्यन्त असहनशील वीरों ने घेरकर अपने बाणों से अभिमन्यु को छा लिया॥१३।

१६॥यह देखकर राजा दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया कि अब अभिमन्यु जीते नहीं बच सकते । राजपुत्रों ने अनेक प्रकार के चिह्नों से युक्त सुवर्णपुङ्ख-शोभित बाणों से क्षण भर में अभिमन्यु को छिपा सा दिया । हमें उनका रथ, ध्वजदण्ड और सारथी, सब टीड़ीदल से घिरे हुए खेत की तरह देख पड़ते थे॥१७।२०॥उस समय अंकुश की चोट खाये हुए हाथी की भाँति अत्यन्त घायल और इसी से क्रुद्ध होकर अभिमन्यु ने गान्धर्व अस्त्र का प्रयोग करके माया प्रकट की । महावीर अर्जुन ने घोर तप करके तुम्बुरु आदि गन्धर्वों से वह अद्भुत दिव्य अस्त्र प्राप्त किया था ।उस अस्त्र का प्रयोग करते ही शत्रुसेना मोहित

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परन्तपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥
प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेपिता निशितैः शरैः ।
राजन्प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥
धनूंष्यश्वान्नियन्तृंश्च ध्वजान्बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ २६ ॥
चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत्सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥
क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्सुकुमारान्सुखोचितान् ।
एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥
रथिनः कुञ्जरानश्वान्पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात्तममर्षितः ॥ २९ ॥
तयोः क्षणमिवाऽऽपूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाऽभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

हो गई। अभिमन्यु ने स्फूर्त्ति के साथ गन्धर्व अस्त्र छोड़कर ऐसा अद्भुत कौशल दिखलाया कि बड़े बड़े योद्धा चकित रह गये। वे अलातचक्र की भांति कभी एक, कभी सौ और कभी सहस्र रूप धारण किये हुए से देख पड़ते थे॥२१।२३॥फिर उन्होंने रथसञ्चालन-कला और अस्त्र-माया के द्वारा राजाओं को मोहाभिभूत करके उनके शरीरों के टुकड़े टुकड़े करना प्रारम्भ किया। सान पर रक्खे गये पैने बाणों के प्रहार से वीरों के प्राण निकलकर परलोक सिधारते और मृत शरीर पृथ्वी पर गिरते जाते थे। इसके पश्चात् अभिमन्यु ने तीक्ष्ण धारवाले बाणों से कुछ राजकुमारों के धनुष, रथ के घोड़े, सारथी, ध्वजा, अङ्गदादि आभूषणों से शोभित बाहु और सिर काटना प्रारम्भ कर दिया॥२४।२६॥जैसे पाँच वर्ष के पुराने फलयुक्त आम के पेड़ टूट-टूटकर गिरते हैं वैसे ही एक सौ राजकुमारों को अभिमन्यु ने बाणों से मार गिराया। उस समय एकमात्र अभिमन्यु के पराक्रम से क्रुद्ध सर्प सदृश, सुखभोग के योग्य, एक सौ जवान और शूर राजकुमारों की मृत्यु होते देखकर राजा दुर्योधन बहुत ही भयभीत हो गये। अभिमन्यु को रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सेना का संहार करते देखकर, क्रोधान्ध होकर, स्वयं दुर्योधन शीघ्रता के साथ उनके सम्मुख पहुँचे। उन दोनों वीरों का असम्पूर्ण अद्भुत युद्ध कुछ समय तक बहुत ही भयङ्कर होता रहा। इतने में ही वीर अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त पीड़ित और व्यथित होकर राजा दुर्योधन वहाँसे हट गये॥२७।३०॥

द्रोणपर्व का पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥

अश्रद्धेयमिवाऽऽश्चर्यं सौभद्रस्याऽथ विक्रमम् ।
किन्तु नाऽस्त्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥
दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥
हतान्भ्रातॄन्पितॄन्पुत्रान्सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य सञ्जग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५ ॥
तान्प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः ।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माऽथ सौबलः ॥ ६ ॥
अभ्यधावन्सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम् ।
ते तु पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥
एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः ।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥
तमन्वगेवाऽस्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्त्तत ।
अनुदुर्योधनं चाऽन्ये न्यवर्त्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥
तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाऽम्बुभिः ।
स तु तान्प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाऽम्बुदान् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! तुम बहुतों के साथ एक के संग्राम करने और बराबर विजयी होने की बात बारम्बार कह रहे हो । मुझे तो इस समय अभिमन्यु का ऐसा पराक्रम और बाहुबल विश्वास के अयोग्य और अत्यन्त अद्भुत प्रतीत हो रहा है । किन्तु वास्तव में यह है कि जिनका एकमात्र अवलम्बन धर्म ही है, उनका ऐसा अद्भुत पराक्रम होना कुछ असम्भव नहीं है । चाहे जो हो, अब यह बताओ कि उन एक सौ राजकुमारों की मृत्यु और दुर्योधन के विमुख होने पर मेरी सेना की क्या अवस्था हुई ? उसने किस प्रकार अभिमन्यु का सामना किया॥१।३॥सञ्जय ने कहा – हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के महारथियों के मुख सूख गये, दृष्टि चञ्चल हो उठी, रोंगटे खड़े हो गये और बराबर पसीना बह चला । उस समय उनके मन में विजयी होने का उत्साह किञ्चित्मात्र भी नहीं रहा । सब लोग भागने का निश्चय करके मरे हुए भाई, पिता, पुत्र, मित्र, सुहृद्, सम्बन्धी, भाई बन्धु आदि को छोड़ छोड़कर अपने हाथी घोड़े आदि को शीघ्रता से हाँककर इधर-उधर भागने लगे । उधर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि अपनी सेना को छिन्न-भिन्न देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, अभिमन्यु पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े । किन्तु वीर अभिमन्यु ने इन सभी वीरों को एक-एक करके युद्ध से विमुख सा कर दिया॥४।७॥तब तेजस्वी,राजकुमार लक्ष्मण बालस्वभाव और अभिमान के कारण निर्भय चित्त से अभिमन्यु के सन्मुख पहुँचे। पुत्र-स्नेहके कारण उनकी सहायता और रक्षा के लिए राजा दुर्योधन भी उनके पीछे पहुँचे । अन्यान्य महारथी वीर योद्धा भी राजा दुर्योधन के साथ चले । मेघ-

पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥
लक्ष्मणेन तु सङ्गम्य सौभद्रः परवीरहा ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ १३ ॥
संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहतइवोरगः ।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥
सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि ।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बवर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभम् ॥ १६ ॥
स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम् ॥ १७ ॥
लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥ १९ ॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ।
तांस्तु विध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चाऽऽर्जुनिः ॥ २० ॥

---

मण्डल जैसे पर्वत पर जल बरसाता है वैसे ही वे सब वीर अभिमन्यु के ऊपर बाण बरसाने लगे। वायु जैसे मेघों को तितर-बितर कर देती है वैसे ही अभिमन्यु भी उस विशाल सेना को और उन वीरों को उन्म थित करने लगे॥८।१०॥इसके उपरान्त जैसे मतवाला हाथी अन्य हाथियों से जाकर भिड़ता है वैसे ही वीर अभिमन्यु भी — अपने पिता के साथ उपस्थित, धनुष ताने हुए, अत्यन्त दुर्द्धर्ष, कुबेर के पुत्र के समान सुन्दर और प्रियदर्शन लक्ष्मण के समीप पहुँचे। लक्ष्मण ने अभिमन्यु के वक्ष स्थल और दोनों भुजाओं में अनेक तीक्ष्ण बाण मारे। दण्ड की चोट खाकर कुपित विषैले सर्प के समान अत्यन्त क्रुद्ध वीर अभिमन्यु ने आपके पोते लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! मैं तुमको अभी यमपुरी भेजता हूँ। इसलिए तुम अच्छी तरह इस लोक को एक बार देख लो। मैं तुमको तुम्हारे भाई-बन्धुओं के सम्मुख ही काल के गाल में पहुँचाता हूँ॥११।१५॥हे महाराज! इतना कहकर वीर अभिमन्यु ने उसी समय केंचुल छोड़े हुए सर्प के समान चमकीला और भयानक भल्ल बाण निकालकर उससे लक्ष्मण का, सुन्दर नासिका भ्रुकुटी केश और कुण्डलों से शोभित, सिर काट डाला॥१६।१७॥लक्ष्मण की मृत्यु देखकर सब वीरगण हाहाकार करने लगे। क्रोध और शोक से अधीर होकर राजा दुर्योधन ऊँचे स्वर से पुकारकर सब राजाओं से कहने लगे—?

वेगेनाऽभ्यपतत्क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम् ।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥ २१ ॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।
तत्प्रसक्तमिवाऽत्यर्थं युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ २२ ॥
ततस्तत्कुञ्जरानीकं व्यधमद्धृष्टमार्जुनिः ।
यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे ॥ २३ ॥
ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
अथेतरे सन्निवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥
परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ।
तान्निवार्याऽऽर्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथाऽर्दयत् ॥ २५ ॥
शरौघेणाऽप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ।
सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाऽश्वान्न्यपातयत् ।
कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चाऽस्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन्हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥ २७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणवधे षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४६ ॥

क्षत्रियो ! तुम लोग मिलकर शीघ्र ही इस दुष्ट बालक अभिमन्यु को मार डालो । तब कुपित होकर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा, इन छ महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया । अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाणों से इन छहों वीरों को घायल करके हटा दिया । फिर उन्होंने बड़े वेग से सिन्धुराज जयद्रथ की सेना के भीतर प्रवेश किया॥१८।२१॥कलिङ्गदेश के योद्धा, निषादगण और पराक्रमी क्राथनन्दन उन सबने हाथियों का दल आगे करके अभिमन्यु की राह रोक दी । तब दोनों ओर से अत्यन्त भीषण संग्राम होने लगा । महाबाहु अभिमन्यु ने बहुत ही दुर्भेद्य दुर्द्धर्ष हाथियों की सेना को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ कर दिया । उस समय ऐसा जान पड़ने लगा मानों प्रचण्ड आँधी आकाश-मण्डल में बड़े वेग से मेघों को तितर बितर कर रही है । क्राथनन्दन ने बाणवर्षा से अभिमन्यु को रोकने का बड़ा यत्न किया । इसी समय द्रोणाचार्य आदि छहों महारथी फिर जाकर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हुए अभिमन्यु से युद्ध करने लगे॥२१।२५॥अभिमन्यु ने अपने बाणों के असह्य प्रहारों से उक्त छहों वीरों को विमुख सा करके क्राथनन्दन को बहुत ही पीड़ित किया और फिर अनेक प्रकार के बाणों से उनका छत्र और ध्वजा काट डाली, सारथी और घोड़ों को मार डाला तथा धनुष, बाण और बाजूबंद समेत उनकी भुजाएँ काट डालीं । इसके उपरान्त श्रेष्ठ कुल, शील, ज्ञान, वीर्य और कीर्ति से युक्त, अस्त्रबलसम्पन्न क्राथनन्दन को मार गिराया । यह देखकर प्राय अन्य सब वीरगण भयविह्वल होकर समर से हट गये॥२५।२७॥

द्रोणपर्व का छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।

कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १ ॥
आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाऽऽकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान्निशितैः शरैः ।
अकरोत्पार्थिवान्सर्वान्विमुखान्पाण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥
तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च सबृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥
सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद्रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यद्विंशत्या च बृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥
स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विपतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ १० ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४७ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अपने कुल के अनुरूप अद्भुत कार्य करनेवाले, व्यूह के भीतर प्रवेश हुए-हुए, नवयुवक, अपराजित, संग्राम से कभी भी विमुख न होनेवाले अभिमन्यु को तीन वर्ष के, बलशाली, श्रेष्ठ जाति और देश के घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ कर जैसे आकाशमण्डल में सूर्य भ्रमण करते हैं वैसे ही रणभूमि में भ्रमण करते देखकर किन-किन रथियों ने उनका सामना किया ॥ १।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अभिमन्यु ने व्यूह के भीतर जा करके आपके पक्ष के राजाओं और सैनिकों को जब तीक्ष्ण बाण मारकर रण से हटा दिया तब कुपित होकर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा इन छः महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया । सिन्धुराज जयद्रथ को द्वार-रक्षा का भार सौंपा गया था, इसी लिए अवशिष्ट सैनिक लोग धर्मराज युधिष्ठिर की सेना को रोकने के लिए उधर चले॥३।५॥ अन्यान्य वीर भी ताल के प्रमाण बड़े-बड़े धनुष चढ़ाकर अभिमन्यु के ऊपर निरन्तर पैने बाण छोड़ने लगे । अभिमन्यु ने उन रणविद्या-विशारद और सब विद्याओं में निपुण वीरों को अपने रणकौशल से आश्चर्य में डाल दिया और बाणवर्षा करके विकल कर दिया । उन्होंने द्रोणाचार्य को पचास, बृहद्बल को बीस, कृतवर्मा को अस्सी, कृपाचार्य को साठ और अश्वत्थामा को कानों तक खींचकर सुवर्ण-

पातयित्वा कृपस्याऽश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यस्तनान्तरे ॥ ११ ॥
ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्द्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्बली ॥ १२ ॥
तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥
स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥
षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाऽकम्पयद्विध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥
स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥
तस्मिन्द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाऽष्टौ च परीप्सन्पितरं रणे ॥ १७ ॥
कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान्कृतवर्मा च विंशतिम् ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत्कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥
तांस्तु प्रत्यवधीत्सर्वान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥
तं कोसलानामधिपः कर्णिनाऽताडयद्धृदि ।
स तस्याऽश्वान्ध्वजं चापं सूतं चाऽपातयत्क्षितौ ॥ २० ॥

पुङ्खयुक्त वेगशाली दस बाण मारे॥६।९॥फिर शत्रुदल के मध्य में बड़ी स्फूर्ति के साथ पीले रङ्ग के, पैने, कर्णी नाम के कई एक विकट बाण वीर कर्ण के कान में मारे । इसके उपरान्त कृपाचार्य के पार्श्वरक्षक दोनों सारथियों को और घोड़ों को मारकर, उनके वक्षःस्थल में दारुण दस बाण मारकर, उन्हें विह्वल कर दिया॥१०।११॥फिर आपके पुत्र और अन्य वीरों के सम्मुख ही अभिमन्यु ने कौरवकुल की कीर्ति को बढ़ानेवाले वृन्दारक नाम के महावीर को मार डाला। अभिमन्यु को इस प्रकार निर्भय भाव से कौरवपक्ष के प्रधान-प्रधान वीरों का संहार करते देखकर अश्वत्थामा ने उनको पचीस क्षुद्रक नाम के तीक्ष्ण बाण मारे । अभिमन्यु ने भी आपके पुत्रों के सम्मुख ही शीघ्रता के साथ तीक्ष्ण बाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित किया । उन्होंने सुतीक्ष्ण साठ बाणों से अभिमन्यु को घायल किया, पर वे मैनाक पर्वत के समान तनिक भी विचलित न हुए । अश्वत्थामा ने फिर सुवर्णपुङ्ख-युक्त तिहत्तर बाण अभिमन्यु को मारे॥१२।१६॥ पुत्रवत्सल आचार्य द्रोण ने एक सौ, पिता के हितैषी अश्वत्थामा ने आठ, कर्ण ने बाईस भल्ल बाण, कृत-वर्मा ने चौदह भल्ल बाण, बृहद्बल ने पचास भल्ल बाण और कृपाचार्य ने दस भल्ल बाण एक साथ अभि-मन्यु को मारे । अभिमन्यु ने भी उन सबको दस-दस बाण मारे॥१७।१९॥कोशलेश्वर बृहद्बल ने कर्णी

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥
बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम् ।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥
तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे ।
व्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः ॥ २४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

बाण से अभिमन्यु को वक्षःस्थल में घायल किया । उन्होंने क्रुद्ध होकर स्फूर्ति के साथ उनकी ध्वजा, धनुष, सारथी और घोड़ों को नष्ट करके पृथ्वी पर गिरा दिया। रथ न रहने पर ढाल तलवार लेकर बृहद्बल ने अभिमन्यु का कुण्डलमण्डित सिर काटने का विचार किया । तब अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाण मारकर उनका हृदय फाड़ डाला । इससे वे प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । उस समय कटु वचन कहते हुए, खड्ग-धनुष धारण किये, दस सहस्र राजा युद्ध में पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए । महावीर अभिमन्यु बृहद्बल को मारकर अपने पैने बाणों से शत्रुसेना को स्तम्भित करते हुए युद्ध के मैदान में भ्रमण करने लगे॥२०।२४॥

द्रोणपर्व का सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच—स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः ।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्कोपयन्भृशम् ॥ १ ॥
प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः ।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥
कर्णं चाप्यकरोत्क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥
तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय ॥ ४८ ॥

*सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महावीर अभिमन्यु* ने कर्ण के कान में दुबारा तीक्ष्ण कर्णिक बाण मारकर पचास बाणों से उनको जर्जर कर दिया । महारथी कर्ण ने अभिमन्यु के प्रहार से विह्वल और क्रोधान्ध होकर उनको उतने ही बाण मारे । उन बाणों से घायल होकर अभिमन्यु अपूर्व शोभा को प्राप्त हुए । उन्होंने भी क्रोध करके कर्ण को अत्यन्त उग्र बाण मारे । अभिमन्यु के दारुण बाणों के प्रहार से कर्ण के अङ्ग कट-फट गये और उनसे रक्त की धारा बह चली, जिससे कर्ण की भी अपूर्व शोभा हुई । एक दूसरे के बाणों से घायल होकर, रक्त से भीगे हुए, दोनों वीर फूले हुए ढाक के पेड़ के समान

अथ कर्णस्य सचिवान्षट् शूरांश्चित्रयोधिनः ।
साश्वसूतध्वजरथान्सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥
तथेतरान्महेष्वासान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥
मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥ ८ ॥
तस्य दौःशासनिर्विध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चाऽर्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥
ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद्रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाऽब्रवीत् ॥ १० ॥
पिता तवाऽऽहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जाऽस्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥

जान पड़ने लगे॥१।४॥महाबाहु अभिमन्यु ने कर्ण के छः महाबली अमात्यों को, सारथी को और घोड़ों को मार डाला तथा धनुष, ध्वजा और रथ काट डाले। उन्होंने अन्य महावीरों को भी दस-दस बाणों से घायल किया। अभिमन्यु ने वास्तव में यह बहुत ही अद्भुत कार्य किया। फिर उन्होंने छः बाणों से मगध-राज के पुत्र को मार डाला। इसके पश्चात् तरुण अवस्थावाले अश्वकेतु को, सारथी और घोड़ा सहित, यमपुर भेज दिया। हाथी पर सवार मार्तिकावतक भोज का सिर एक क्षुरप्र बाण से काटकर वीर अभिमन्यु घोर सिंहनाद करने लगे॥५।८॥उस समय वीर दुःशासन का पुत्र अभिमन्यु के सन्मुख आया। उसने तीक्ष्ण चार बाण अभिमन्यु के घोड़ों को, एक बाण सारथी को और दस बाण अभिमन्यु को मारे। महापराक्रमी अभिमन्यु ने दुःशासन के पुत्र के बाणप्रहार से कुपित होकर उसको दस बाण मारे; फिर क्रोध से लाल नेत्र करके वे ऊँचे स्वर से कहने लगे -- हे दुःशासन के प्रिय पुत्र ! तुम्हारे पिता बड़े डरपोक हैं जो संग्राम से भाग खड़े हुए। बड़ी बात तो यह है कि जो तुम क्षत्रिय-धर्म को जानते हो और युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो। किन्तु स्मरण रक्खो कि मेरे हाथ से कदापि जीते नहीं बच सकते ! महावीर अभिमन्यु ने दुःशासन के पुत्र से यों कहकर बहुत ही तीक्ष्ण, चमकीला, स्वच्छ किया हुआ एक नाराच बाण धनुष पर चढ़ाकर शत्रु पर छोड़ा। किन्तु महापराक्रमी अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ तीन तीक्ष्ण बाणों से उस नाराच को राह में काट डाला॥९।१२॥अभिमन्यु ने अश्वत्थामा के रथ की ध्वजा काटकर वीर शल्य को तीन बाण मारे। शल्य ने धैर्य के साथ उस प्रहार को सहकर गृद्धपत्रयुक्त नव बाण अभिमन्यु के हृदय

हृष्यसम्भ्रान्तवद्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी॥ १४ ॥
तं विव्याधाऽऽयसैः षड्भिः सोऽपाक्रामद्रथान्तरम्
शत्रुञ्जयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान्हत्वा विव्याध सौबलम् ।
तं सौबलस्त्रिभिर्विध्वा दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।
अथाऽब्रवीत्पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७ ॥
पुरा सर्वान्प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान्प्रत्यभाषत ॥ १८ ॥
अस्ति वाऽस्याऽन्तरं किञ्चित्कुमारस्याऽथ पश्यत
अण्वप्यस्याऽन्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९ ॥
शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ।
धनुर्मण्डलमेवाऽस्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥
सन्दधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।
आरुजन्नपि मे प्राणान्मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन्रणे ॥ २२ ॥

को मारे। शल्य का यह कर्म बहुत ही अद्भुत जान पड़ा। तब युद्धनिपुण अभिमन्यु ने स्फूर्ति के साथ शल्य का धनुष काटकर उनके पार्श्वरक्षक सारथियों को मार डाला और फिर लोहमय छ बाण मारकर शल्य को पीड़ित किया। अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित शल्य वह रथ छोड़कर दूसरे रथ पर सवार हो गये॥१३।१५॥समरनिपुण अभिमन्यु ने शीघ्र ही शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास, इन पाँचों वीरों का वध करके शकुनि को कई बाण मार कर विह्वल कर दिया। शकुनि ने अभिमन्यु को तीन तीक्ष्ण बाण मारकर राजा दुर्योधन से कहा—हे राजेन्द्र! अब हमें चाहिए कि सब लोग मिलकर अभिमन्यु का वध करें; क्योंकि यह हममें से एक एक को मार डालता है। हे महाराज! इसी समय कर्ण ने द्रोणाचार्य से कहा—हे ब्रह्मन्! यह वीर बालक हम लोगों में से हर एक को युद्ध से हटा करके सम्पूर्ण सेना का संहार कर रहा है। इसलिए आप तुरन्त ही इसके प्राण लेने का कोई उपाय बताओ॥१५।१८॥ महावीर द्रोणाचार्य ने यह सुनकर कौरवपक्ष के सब वीरों को सुनाकर कहा—हे वीरो! देखो, इस कुमार का कैसा युद्धकौशल है; कहीं प्रहार करने का तनिक भी अवकाश नहीं देख पड़ता। इस वीर बालक की स्फूर्ति तो देखो। यह बालक चारों ओर विचर रहा है, पर कहीं किञ्चित्मात्र भी प्रहार करने का अवसर नहीं देता। यह बालक सब बातों में अपने पराक्रमी पिता अर्जुन के ही तुल्य है। यह ऐसी स्फूर्ति के साथ तरकस से बाण निकालता, धनुष पर चढ़ाता और चलाता है कि रथ के मार्गों में केवल मण्डलाकार धनुष ही देख पड़ता है। शत्रुदमन महावीर अभिमन्यु बाणप्रहार से मुझे जर्जर, पीड़ित और मोहित

अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।
अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहाऽऽर्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।
तमाचार्योऽब्रवीत्कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥
अभेद्यमस्य कवचं युवा चाऽऽशुपराक्रमः ।
उपदिष्टा मया चाऽस्य पितुः कवचधारणा ॥ २७ ॥
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ।
शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः॥ २८ ॥
अभीषूश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥ २९ ॥
अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात्प्रहरणं कुरु ।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ३० ॥
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन् ॥ ३१ ॥
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ।
अश्वानस्याऽवधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥

सा कर रहा है तथापि इसका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है॥१८।२२॥ कौरवपक्ष के बड़े-बड़े वीर योद्धा कुपित होकर, लाख लाख यत्न करने पर भी, प्रहार करने का अवसर नहीं देख पाते; यह देखकर मुझे बड़ा आह्लाद हो रहा है। ऐसे अपूर्व युद्धकौशल के कारण यह वीर बालक वीरों में सब से अधिक मान प्राप्त करने के योग्य है। महावीर अभिमन्यु ऐसी स्फूर्त्ति के साथ अपने बाणों की वर्षा से सब दिशाओं को व्याप्त कर रहा है कि इसमें और अर्जुन में कुछ भी भेद नहीं देख पड़ता। महावीर कर्ण ने अभिमन्यु की मार से अत्यन्त पीड़ित होकर फिर द्रोणाचार्य से कहा—हे आचार्य! युद्ध छोड़कर भाग जाना वीर क्षत्रियों का धर्म नहीं है, इसी कारण अभिमन्यु के बाणों से व्यथित होकर भी मैं रणभूमि में उपस्थित हूँ। इस तेजस्वी कुमार के अग्निसदृश प्रज्वलित परम दारुण बाण मेरे हृदय को पीड़ित कर रहे हैं॥२३।२६॥कर्ण के ये वचन सुनकर महारथी द्रोणाचार्य हँसकर कहने लगे—हे कर्ण! अभिमन्यु का कवच सुदृढ और अभेद्य है। फिर यह अभी जवान और फुर्तीला है, शीघ्र ही थक नहीं सकता। मैंने इसके पिता पराक्रमी अर्जुन को कवच पहनने की सब गुप्त बातें और विधियें बतला दी हैं। उन सब गुप्त उपायों को यह बालक भी भली-भाँति जानता है। एक उपाय यह है कि यत्न के

शेषास्तु च्छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ।
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥ ३३ ॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।
स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।
मार्गैः स कौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ॥ ३५ ॥
आर्जुनिर्व्यचरद्व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ।
मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥
विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः ।
तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७ ॥
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।
राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥
व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात्पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३९ ॥
स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥
स्रुतरुधिरकृतैकरागवस्त्रो भ्रुकुटिपुटाकुलितोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

साथ बाण मारकर इसका धनुष और धनुष की डोरी काटी जा सकती है; और अभीषु, रथ के घोड़े तथा पार्श्वरक्षक सारथी मारे जा सकते हैं। हे कर्ण ! यदि तुमसे हो सके तो यह कार्य कर डालो; इस प्रकार अभिमन्यु को पहले शस्त्र हीन करके फिर प्रहार करो। तुम भलीभाँति समझ लो कि जब तक इसके हाथ में धनुष है तब तक सब देवता और दैत्य मिलकर भी इसे परास्त नहीं कर सकते। अतएव यदि तुम अभिमन्यु को परास्त करना चाहते हो तो उसे रथ हीन करके उसका धनुष काट डालो॥२६।३१॥हे महाराज ! महारथी द्रोणाचार्य की सम्मति मानकर कर्ण ने स्फूर्त्ति के साथ बाणवर्षा करते हुए अभिमन्यु के धनुष को शीघ्रता के साथ काट डाला। भोज ने अभिमन्यु के रथ के घोड़ों को मार डाला। कृपाचार्य ने उनके पार्श्वरक्षक सारथियों को मार गिराया। इस प्रकार अभिमन्यु का धनुष कट जाने पर शेष वीरगण उन पर बाण बरसाने लगे। हे राजेन्द्र! उस समय वे निर्दय छहों महारथी स्फूर्त्ति से एक साथ अकेले बालक अभिमन्यु पर प्रहार करने लगे॥३१।३४॥धनुष और रथ न रहने पर भी वीर अभिमन्यु ने वीर क्षत्रिय का धर्म नहीं छोड़ा। वीर महारथियों ने तो धर्म को छोड़ दिया; परन्तु बालक अभिमन्यु ने नहीं छोड़ा। असहाय अभिमन्यु ढाल-तलवार लेकर, आकाशमार्ग में उछलकर, गरुड़ की भाँति स्फूर्त्ति के साथ बलपूर्वक कौशिक (सर्वतोभद्र) आदि पैंतरों से घूमते हुए शत्रुसेना का संहार करने लगे। छिद्रदर्शी महाधनुर्धर लोग वीर अभिमन्यु को देखकर और यह समझकर कि यह खड्गधारी बालक मुझ पर ही प्रहार करने आ रहा है, उनको तीक्ष्ण

बाण मारने लगे॥२४।३७॥इसी समय शत्रुदमन द्रोणाचार्य ने स्फूर्ति के साथ नाराच बाण से अभिमन्यु के खड्ग की मणिमय मूठ काट डाली। इसी समय कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से ढाल भी काट डाली। इस प्रकार धनुष-बाण या ढाल-तलवार कुछ भी न रहने पर वीर अभिमन्यु ने पृथ्वी पर आकर हाथ में चक्र ले लिया। अब वे क्रुद्ध सिंह की तरह द्रोणाचार्य की ओर झपटे। तब चक्र की उज्ज्वल रेणु से शोभित अङ्गवाले चक्रपाणि अभिमन्यु की बड़ी शोभा हुई। वे उस समय चक्र हाथ में लिये हुए अपने मामा वासुदेव के समान जान पड़ने लगे। क्षण भर तक वीर अभिमन्यु का रूप बहुत ही भयावना हो उठा। महातेजस्वी सिंहनाद करते हुए वीरों के मध्य में खड़े हुए अभिमन्यु के शरीर से रक्त बह रहा था, जिससे उनके वस्त्र लाल हो रहे थे। भौंहें टेढ़ी करके शत्रुसेना की ओर देखते हुए अभिमन्यु की बड़ी शोभा हुई॥३७।४१॥

द्रोणपर्व का अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपञ्चाशत्तमेऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच—विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः ।
रराजाऽतिरथः संख्ये जनार्दन इवाऽपरः ॥ १ ॥
मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा ।
महारथस्ततः कार्ष्णिः स जग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चाऽरिभिः कृतः ।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥
स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव ।
अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥ ५ ॥
तस्याऽश्वान्गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥ ६ ॥
ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत् ।
जघान चाऽस्याऽनुचरान्गान्धारान्सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥

---

उनचासवाँ अध्याय ॥ ४९ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! महावीर अभिमन्यु उस समय चक्र हाथ में लेकर संग्राम में दूसरे विष्णु के समान शोभा को प्राप्त हुए। उनके बिखरे हुए बाल वायु में उड़ रहे थे। उनके हाथ में ऊपर उठा हुआ चक्र बहुत ही शोभायमान हो रहा था। उस समय कोई भी अभिमन्यु को नेत्र उठाकर नहीं देख सकता था। व्याकुल हुए-हुए राजाओं ने अभिमन्यु के उस चक्र को खण्ड-खण्ड कर डाला॥१।३॥तब अभिमन्यु गदा लेकर अश्वत्थामा की ओर दौड़े। उन्होंने, प्रज्वलित अग्नि के समान, उस गदा को देखकर रथ पर से कूदकर अपनी जान बचाई। तब महावीर अभिमन्यु ने गदा के प्रहार से अश्वत्थामा के घोड़ों, पार्श्वरक्षक सारथियों और रथ को चूर-चूर कर डाला। बाणों से सब शरीर छिदा हुआ होने के कारण से अभिमन्यु अत्यन्त ही शोभित होने लगे॥४।६॥इसके उपरान्त अभिमन्यु ने सुबल के पुत्र कालिकेय को मार



पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश ।
केकयानां रथान्सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥
दौःशासनी रथं साश्वं गदया समपोथयत् ।
ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ १० ॥
भ्रातृव्यौ सम्प्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।
तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ ।
दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।
गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥ १३ ॥
विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥
क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १५ ॥
तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १६ ॥

---

करके उनके अनुचर गान्धार देश के सतहत्तर योद्धाओं को उसी गदा से मार गिराया। फिर वसातीय दस रथी, केकय देश के सात रथी और दस हाथी मार-कर अभिमन्यु ने गदा की चोट से दुःशासन के पुत्र के रथ और घोड़ों को नष्ट कर दिया॥७।९॥महावीर दुःशासन का पुत्र भीषण गदा तानकर "ठहर-ठहर" कहता हुआ अभिमन्यु की ओर दौड़ा। पहले समय में महादेव और अन्धकासुर ने जैसे भयानक गदायुद्ध किया था वैसे ही अभिमन्यु और दुःशासन का पुत्र दोनों, एक दूसरे के प्राण लेने के लिए, गदाप्रहार करने लगे। वे दोनों वीर परस्पर गदा का वार करके इन्द्रध्वज की भाँति अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े॥०। १२॥इसी मध्य में कौरवों की कीर्ति को बढ़ानेवाले दुःशासन के पुत्र ने उठते हुए अभिमन्यु के मस्तक में वेग से गदा मारी। इतनी देर तक अकेले ही युद्ध करते-करते अभिमन्यु थक गये थे, उस पर दुःशासन के पुत्र ने जोर से मस्तक में गदा मारी। उस प्रहार से अभिमन्यु के प्राण निकल गये और उनका चेतनाहीन शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। हे महाराज! कमल-वन को जैसे गजराज नष्ट-भ्रष्ट कर डाले वैसे ही सम्पूर्ण शत्रु-सेना को मथकर अन्त में अकेले वीर अभिमन्यु कई वीरों के द्वारा अधर्मपूर्वक मारे गये। व्याधों के हाथ से मारे गये जङ्गली गजराज की भाँति मृत्यु को प्राप्त हुए अभिमन्यु बहुत ही शोभायमान हुए॥१३। १५॥उस समय आपके पक्ष के सब महारथियों ने समर-भूमि में मरे पड़े हुए महावीर अभिमन्यु को घेर लिया। ग्रीष्म ऋतु में जङ्गल को जलाकर बुझे हुए दावानल के समान, कौरव-सेना को नशाकर अस्त हुए सूर्य के समान, राहु-ग्रस्त चन्द्रमा के समान, सूखे हुए समुद्र के समान और वृक्षों की डालें तोड़कर

विमृद्य नगशृङ्गाणि सन्निवृत्तमिवाऽनिलम् ।
अस्तङ्गतमिवाऽऽदित्यं तप्त्वा भारत वाहिनीम् ॥ १७ ॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १९ ॥
आसीत्परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥
अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाऽम्बरात् ॥ २१ ॥
द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्त्तराष्ट्रमहारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥
तस्मिन्विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥
रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाऽम्बरोत्तमैः ॥ २५ ॥
तथाऽश्वनरनागानामलङ्कारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥

रुकी हुई आँधी के समान पड़े हुए पूर्णचन्द्र के सदृश मुखवाले, सुन्दर अलकों से शोभित अभिमन्यु को इस प्रकार जीवित देखकर आपके पक्ष के सब महारथी बहुत प्रसन्न होकर बारम्बार सिंहनाद करने लगे१६। १९॥हे महाराज ! कौरवों को बड़ा ही हर्ष उत्पन्न हुआ; किन्तु अन्य वीरों के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली । उस समय आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के समान, पृथ्वी पर पड़े हुए अभिमन्यु को देखकर आकाशचारी सिद्ध आदि प्राणी चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे—महावीर द्रोणाचार्य और कर्ण आदि कौरवपक्ष के छः महारथियों ने मिलकर इस अकेले वीर बालक को मारा है । हमारी सम्मति में यह घोर अधर्म हुआ है॥२०।२२॥हे महाराज ! मरे हुए अभिमन्यु रणशय्या पर पड़े हुए थे और उनके चारों ओर सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण, वीरों के कुण्डल-शोभित कटे हुए मस्तक, विचित्र पगड़ियाँ, पताका, चामर, विचित्र कम्बलासन, उत्तम आयुध, रथ, घोड़े, हाथी, हाथियों और घोड़ों के अलङ्कार, केंचुल छोड़े विषैले सर्पों के समान म्यान से निकली हुई तलवारें, धनुष, कटी हुई शक्तियाँ, ऋष्टि, कम्पन, प्रास और पट्टिश आदि शस्त्र-अस्त्र बिखरे हुए पड़े थे । इनसे वह पृथ्वीमण्डल पूर्णचन्द्र और महनक्षत्र-तारागण से युक्त आकाश-मण्डल के समान शोभायमान हो रहा था॥२३।२७॥अभिमन्यु के बाणों से सवार समेत मरकर गिरे हुए, रक्त में सने हुए, केवल

चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।
विविधैश्चाऽऽयुधैश्चाऽन्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७ ॥
वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥
सांकुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥
पदातिसङ्घैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाऽभवन्मही ॥ ३१ ॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाऽभवद्व्यथा ॥ ३२ ॥
अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥
दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान्वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३५ ॥
इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥

---

अन्तिम श्वास ले रहे योद्धा की लाशों से वह रणभूमि अत्यन्त अगम्य हो रही था। महावत, अंकुश, घण्टा, चर्म, आयुध और झण्डों से शोभित तथा अभिमन्यु के बाणों से निहत पर्वताकार, हाथी मर पड़े थे। सारथी और रथी की लाशों से पूर्ण, विक्षुब्ध कुण्ड के समान, बिना घोड़ों के रथ जहाँ तहाँ टूटे पड़े थे। हाथों में शस्त्र पकड़े प्राणहीन पैदलों के शरीर सब ओर ढेरों देख पड़ते थे। इन सबसे वह रणभूमि उस समय बड़ी भयावनी हो रही थी॥२८।३१॥ हे राजेन्द्र! चन्द्र-सूर्य के सदृश तेजस्वी बालक अभिमन्यु जब मृत्यु को प्राप्त होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़े तब कौरव-पक्ष के वीर अत्यन्त आह्लादित और पाण्डवपक्ष के लोग अत्यन्त शोकविह्वल हो उठे। पाण्डवों की सेना युधिष्ठिर के सन्मुख ही प्राण लेकर इधर-उधर भागने लगी। अभिमन्यु की मृत्यु होने के कारण योद्धाओं को इधर उधर भागते देखकर महाराज युधिष्ठिर ने कहा—हे वीर क्षत्रियो! समरनिपुण महाबाहु अभिमन्यु युद्ध से पीछे नहीं हटे, बल्कि शत्रुओं के हाथ से मरकर स्वर्गलोक को चले गये हैं। फिर तुम क्यों भागे चले जा रहे हो? भागो नहीं, भयभीत होओ मत, हम लोग शीघ्र ही शत्रुओं को परास्त करेंगे॥३२।३५॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन के समान प्रभावशाली प्रतापी महावीर अभिमन्यु संग्राम में विषैले सर्प के समान [illegible] के अनेक राजकुमारों को मारकर स्वर्ग को

युद्धे ह्याशीविषाकारान्राजपुत्रान्रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥
हत्वा दशसहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥
रथाश्वनरमातङ्गान्विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृतांल्लोकाञ्शाश्वतान्पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय. ॥ ४९ ॥

गये है । दस सहस्र सेना सहित महारथी कौशलेश्वर बृहद्बल को मारकर वीर अभिमन्यु इन्द्रलोक को गये हैं । सहस्रों रथों, रथियों, हाथियों, घोड़ो और पैदल सेना का संहार करके वे पुण्यकर्मा कुमार अपने पुण्य से जीते हुए उन सनातन लोकों मे पहुँचे हैं, जिन्हें पुण्यात्मा लोग प्राप्त करते हैं । इसीलिए वीर अभिमन्यु कदापि शोचनीय नहीं है । महातेजस्वी अभिमन्यु ऐसा विकट युद्ध और मार-काट करके भी तृप्त नहीं हुए थे; इस कारण उनकी मृत्यु शोचनीय नहीं है। [ हे नरनाथ ! धर्मराज युधिष्ठिर ने ऐसे वचन कहकर अपने पक्ष के दु.खित वीरों का दु ख दूर किया और उन्हें धैर्य दिया । ]॥३६।३९॥

द्रोणपर्व का उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच—वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।
निवेशायाऽभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ १ ॥
निरीक्षमाणास्तु वयं परे चाऽऽयोधनं शनैः ।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ २ ॥
ततो निशाया दिवसस्य चाऽशिवः शिवारुतैः सन्धिरवर्तताऽद्भुतः ।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ३ ॥
वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां विभूषणानां च समाक्षिपन्प्रभाः ।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥ ४ ॥
महाभ्रकूटाचलशृङ्गसन्निभैर्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः ।
सवैजयन्त्यंकुशवर्मयन्तृभिर्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः ॥ ५ ॥

पचासवाँ अध्याय ॥ ५० ॥

सञ्जय ने कहा – हे राजेन्द्र ! इस प्रकार शत्रुपक्ष के श्रेष्ठ वीर अभिमन्यु को मारकर, शत्रुओं के बाणों से पीड़ित और रक्त मे नहाये हुए, ग्लानिग्रस्त हम लोग सायङ्काल को विश्राम करने के लिए अपने डेरों को लौटे । लाल कमल के समान सूर्य का बिम्ब अस्ता-चल के शिखर पर पहुँच गया । दिन और रात्रि की सन्धि का समय आ पहुँचा । चारों ओर गीदड़ों का अमङ्गलसूचक शब्द सुनाई पड़ने लगा॥१।२॥क्रमशः सूर्यदेव ने चमकीले म्यान, शक्ति, ऋष्टि, वरूथ, ढाल और अलङ्कारों की आभा को हरकर — अन्तरिक्ष और

हतेश्वैरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करैर्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः ।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः पुरैरिवाऽमित्रहतैर्नराधिप ॥ ६ ॥
रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः ।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनैर्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥ ७ ॥
प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः ।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा क्षितावनाथा इव शेरते हताः ॥ ८ ॥
अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः ।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः पिशाचसङ्घाश्च सुदारुणा रणे ॥ ९ ॥
त्वचो विनिर्भिद्य पिबन्वसामसृक् तथैव मज्जाः पिशितानि चाऽश्नुवन् ।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥ १० ॥
शरीरसङ्घातवहा ह्यसृग्जला रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा प्रवर्त्तिता योधवरैस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२ ॥
पिबन्ति चाऽश्नन्ति च यत्र दुर्दशाः पिशाचसङ्घास्तु नदन्ति भैरवाः ।
सुनन्दिताः प्राणभृतां भयङ्कराः समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥ १३ ॥
तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् ।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥

---

पृथ्वी को एकाकार सा करते हुए—अपने प्रिय शरीर अग्नि में प्रवेश किया। उस समय हम लोग और हमारे शत्रुपक्ष के लोग दोनों ही, संग्राम में विमोहित से होकर, रणभूमि को देखते हुए धीरे-धीरे अपने-अपने शिविर को चले। हम लोगों ने देखा कि समरभूमि ऐसे हाथियों की लाशों से परिपूर्ण और दुर्गम हो रही है, जो आकाश को छूनेवाले पर्वतशिखर के समान हैं और पताका, अङ्कुश, घण्टा, कवच और सवारों सहित मरे पड़े हैं। रथी, सारथी, विभूषण, घोड़े, पार्श्वसारथी, पताका, केतु आदि से शून्य और टूटे-फूटे बड़े-बड़े रथ इधर-उधर पड़े हुए थे। शत्रु-पक्ष के वीरों के बाणों ने उन रथों को तोड़-फोड़ डाला था और वे उजड़े लुटे हुए नगर के समान प्रतीत होते थे॥५।६॥वीरों के बाणों से सवारों सहित ऐसे घोड़े मरे पड़े थे, जो विविध बहुमूल्य आभूषणों से अलङ्कृत थे, जिनकी जीभें, दाँत, नेत्र और आँतें बाहर निकली हुई थीं और जिन्होंने समरभूमि को बहुत ही भयानक बना रक्खा था। बहुमूल्य ढाल, आसन, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र आदि से विभूषित और अमूल्य शय्या पर लेटने के योग्य वीरगण हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों और अनुचरों सहित अनाथ की तरह पृथ्वी पर पड़े हुए थे॥७।८॥भीषण आकार के गीदड़, कुत्ते, कौवे, बगले, गिद्ध, गरुड़, भेड़िये, चीते, रक्त पीनेवाले पक्षी, राक्षस, पिशाच आदि आनन्द के साथ युद्ध में निहत प्राणियों की खाल फाड़कर माँस, मज्जा और चर्बी खा रहे थे। अनेकों मांसभोजी राक्षस आदि एक दूसरे से लाशें छीनते, हँसते, गाते और तालियाँ बजाते थे॥९।१०॥हे राजेन्द्र! वीरों के शस्त्र-

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं निपातितं शक्रसमं महाबलम् ।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

प्रहार से उत्पन्न, दुस्तर वैतरणी नदी के समान भयानक, रक्त की नदी रणभूमि में बह रही थी। रथ उसमें नाव-डोंगी आदि के समान जान पड़ते थे, हाथी पर्वत से प्रतीत होते थे और मनुष्यों के कटे हुए सिर कमल से देख पड़ते थे। मांस की कीचड़ हो रही थी। विविध अस्त्र शस्त्र मालाओं के समान उसमें बह रहे थे। अधमरे और मरे लोगों के शरीरों से परिपूर्ण वह भयानक नदी रणक्षेत्र के मध्य में बह रही थी। भीषण आकारवाले गीदड़, कुत्ते और अन्य अनेक मांसाहारी पशु-पक्षी बड़े आनन्द के साथ उस नदी में मांस खाते और रक्त पीते हुए भयङ्कर स्वर से चिल्ला रहे थे। सैनिकों ने सन्ध्या के समय इन्द्रसदृश, भूषणों से विहीन, मृत महावीर अभिमन्यु को देखा कि हव्य-विहीन यज्ञ के अग्नि के समान बुझे हुए पड़े हैं। उस यमपुरी को बढ़ानेवाली, नाचते हुए कबन्धों से परिपूर्ण, भयावनी रणभूमि को क्रमशः छोड़ करके सब योद्धा अपने-अपने शिविर में गये॥११।१५॥

— ० —

द्रोणपर्व का पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच—हते तस्मिन्महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे ।
विमुक्तरथसन्नाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥
द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥
यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्त्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥
अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥

इक्यावनवाँ अध्याय ॥ ५१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस प्रकार महारथी अभिमन्यु की मृत्यु हो जाने पर पाण्डवपक्ष के सब वीर योद्धा रथ, कवच और धनुष आदि रखकर महाराज युधिष्ठिर के चारों ओर बैठकर उसी भयानक युद्ध का ध्यान करते हुए अभिमन्यु को स्मरण करने लगे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने वीर भतीजे की मृत्यु से अत्यन्त कातर और दुःखित होकर विलाप करके कहने लगे—॥१।३॥हाय! महावीर अभिमन्यु मेरा प्रिय और हित करने की इच्छा से देवताओं के लिए भी दुर्भेद्य द्रोणाचार्य की सेना के व्यूह में ऐसे प्रवेश हो गया था जैसे गायों के झुण्ड में सिंह प्रवेश करे। जिसके पराक्रम से महाधनुर्धर रणदुर्मद अस्त्र-शस्त्र-

स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥
कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥
किं स्विद्वयमपेतार्थमक्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनञ्जयौ ॥ ९ ॥
अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
प्रियकामो जयाकांक्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥
न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात्प्रवर्त्तते ।
मधुलिप्सुर्हि नाऽपश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥
यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥
कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥
नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥
अलुब्धो मतिमान्ह्रीमान्क्षमावान्रूपवान्बली ।
वपुष्मान्मानकृद्वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥

विशारद शत्रुपक्ष के महारथी योद्धा समर से भाग खड़े हुए, जिसने हमारे प्रधान शत्रु दुःशासन को समर के मध्य थोड़ी ही देर में मूर्च्छित और विमुख कर दिया था और जो अनायास ही द्रोणाचार्य के सेना-रूप महासागर के पार पहुँच गया था, वह रण-पण्डित वीर अभिमन्यु दुःशासन के पुत्र से युद्ध करके उसके हाथों मारा गया ! ॥४।७॥ अब आज मैं किस प्रकार पुत्रवत्सल अर्जुन और, पुत्र को न देखकर अत्यन्त कातर, सुभद्रा को अपना मुख दिखलाऊँगा ? श्रीकृष्ण और अर्जुन यहाँ आकर मुझसे अभिमन्यु के बारे में पूछेंगे तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगा ? मैंने ही जयलाभ और अपने प्रिय की इच्छा से यह श्रीकृष्ण, अर्जुन और सुभद्रा के लिए दुःखदायक अप्रिय कार्य किया है। लोभ के वश हुआ-हुआ पुरुष कभी दोष नहीं जान सकता; वह लोभ और मोह के वश होकर दोष-पूर्ण कार्य करने लगता है। मैं राज्य के लोभ के वश होकर ही ऐसे अनिष्ट का विचार नहीं कर सका॥८।११॥ हाय ! सुकुमार बालक अभी सुन्दर भोग, भोजन, शयन, सवारी, वस्त्र, आभूषण आदि प्राप्त कर सकने के योग्य था उसी को मैंने इतने बड़े युद्ध का भार सौंप-कर सबके आगे भेज दिया ! सुशिक्षित सीधा घोड़ा जैसे विषम सङ्कट में पड़कर उससे नहीं उबरता वैसे ही सग्राम के विषय में अनभिज्ञ बालक अभिमन्यु भी रण में जाकर मृत्यु के मुख से नहीं बच सका। आज हम लोग यदि स्वयं प्राण दे करके अभिमन्यु के साथ पृथ्वी पर नहीं लेटेंगे तो अवश्य ही क्रुद्ध अर्जुन की कोपदृष्टि की अग्नि में भस्म हो जायँगे॥१२।१४॥ जो अर्जुन अत्यन्त सन्तोषी, लोभहीन, बुद्धिमान्, लज्जा-शील, क्षमाशाली, सुन्दर, मानी, औरों का सम्मान करनेवाले, सत्यपरायण, धीर, महाबली और पराक्रमी

यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्याऽस्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली ॥ १८ ॥
भयं तु सुमहत्प्राप्तं धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात्क्रुद्धः कौरवाञ्शोषयिष्यति ॥ १९ ॥
क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयकारकः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन्हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥
न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चाऽमरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याऽप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

हैं; जिनके श्रेष्ठ और अद्भुत कार्यों की प्रशंसा पण्डितगण किया करते हैं; जिन महावीर ने हिरण्यपुर के रहनेवाले इन्द्र के वैरी निवातकवच और कालकेय असुरों का संहार किया; जिन्होंने क्षण भर में अनुचरों सहित पुलोम-नन्दन को मारा और जो शरण गत शत्रु को भी अभयदान करते हैं उनके पुत्र बली अभिमन्यु की रक्षा हम लोग नहीं कर सके। ॥१७।१८॥हमको बार-बार धिक्कार है।महाबली धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिए अवश्य ही महाभय का समय आ गया है। पुत्र के मारे जाने के कारण क्रोधान्ध होकर महावीर अर्जुन अवश्य ही सब कौरवों का नाश कर डालेंगे। क्षुद्र लोग जिसके सहायक हैं वह स्वयं क्षुद्र और अपने कुल का संहार करानेवाला दुरात्मा दुर्योधन अवश्य शोक करता हुआ अनुचित रीति से मारा जायगा। हाय! इस असाधारण पौरुषसम्पन्न अभिमन्यु को इस प्रकार रणभूमि में पड़े हुए देखकर मुझे जय, राज्य, देवशरीर या इन्द्रपद की प्राप्ति भी प्रीतिदायक नहीं॥१९।२१॥

—०—

द्रोणपर्व का इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

सञ्जय उवाच—अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १ ॥
अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसन्तप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २ ॥

बावनवाँ अध्याय ॥ ५२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! युधिष्ठिर इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि वहाँ पर महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास आ गये। राजा युधिष्ठिर ने महात्मा व्यास को देखते ही उठकर विधिपूर्वक उनका सत्कार और पूजन किया। व्यासजी जब आसनपर बैठ गये तब, भतीजे की मृत्यु से शोकविह्वल, युधिष्ठिर बैठकर दीनभाव से

अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥
बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥
मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन्सैन्धवेन निवारिताः ॥ ५ ॥
ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवाऽसमं युद्धमीदृशं यत्कृतं परैः ॥ ६ ॥
तेनाऽस्मि भृशसन्तप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच—तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान्व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ८ ॥
व्यास उवाच—युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९ ॥
स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून्हत्वा बहून्रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥
अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान्मृत्युर्हरति भारत ॥ ११ ॥
युधिष्ठिर उवाच इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥ १२ ॥

वेदव्यास से कहने लगे—हे भगवन्! बालक अभिमन्यु को युद्ध में कई महाधनुर्द्धर महारथियों ने मिलकर अधर्मयुद्ध करके मार डाला॥२।३॥वह बालक और बालबुद्धि होने पर भी वीर था और शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेवाला था। युद्ध करते समय उस असहाय बालक को शत्रुओं ने अनीति से मारा। मैंने अभिमन्यु से कहा था कि तुम इस व्यूह के भीतर हमारे प्रवेश होने की राह बना दो। मेरी आज्ञा के अनुसार व्यूह को तोड़कर अभिमन्यु भीतर प्रवेश कर गया। हम लोग उसके पीछे शत्रुसेना के भीतर प्रवेश होने लगे, तो दुष्ट जयद्रथ ने राह रोक दी; हमें भीतर नहीं जाने दिया। क्षत्रियों का यह नियम है कि वे समान युद्ध [ एक के साथ एक या अनेक के साथ अनेक ] करते हैं; किन्तु शत्रुओं ने घमासान युद्ध करके अभिमन्यु को मार डाला। यही मुझे बड़ा सन्ताप है। मेरे नेत्रों से शोक के आँसू बह रहे हैं। मैं बारम्बार अभिमन्यु के मरण को सोच रहा हूँ। मुझे किसी प्रकार भी शान्ति नहीं प्राप्त होती॥४।७॥सञ्जय कहते हैं कि भगवान् महर्षि वेदव्यास ने शोकाकुल राजा युधिष्ठिर को इस प्रकार विलाप और सन्ताप करते हुए देखकर कहा—हे सब शास्त्रों में निपुण धर्मपुत्र! तुम सरीखे महात्मा और ज्ञानी पुरुष विपत्ति में कभी व्याकुल नहीं होते। यह महावीर कुमार रण में बहुत से शत्रुओं को मारकर, जिसको कोई बालक नहीं कर सकता उस

नागायुतबलाश्चाऽन्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥
नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् ।
विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १४ ॥
जेतव्यमिति चाऽन्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥ १५ ॥
मृता इति च शब्दोऽयं वर्त्तते च ततोऽर्थवत् ।
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥
निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशङ्गताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥
अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः ॥ १८ ॥
हरत्यमरसङ्काश तन्मे ब्रूहि पितामह ।
सञ्जय उवाच—तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥ १९ ॥
व्यास उवाच—अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥
स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥ २१ ॥

---

अद्भुत कार्य को करके, स्वर्गलोक को गया है।हे युधिष्ठिर! विधाता का यह मृत्युरूप विधान अलङ्घ्य है। हे भारत! देवता, दानव, गन्धर्व आदि सबको एक दिन अवश्य ही मृत्यु के वश होना पड़ता है॥८।११॥युधिष्ठिर ने कहा—हे महात्मा जी! ये महाबली नरपतिगण मर-कर सेना के मध्य पृथ्वीतल पर पड़े हुए हैं। इनमें कोई दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाले थे और कोई वायु के समान वेग और बल से सम्पन्न थे। ये सब परस्पर युद्ध करके मरे हैं। इन्हें युद्ध में मारनेवाला कोई भी योद्धा जगत् में नहीं देख पड़ता। ये सब पराक्रमी थे और तपोबल से भी सम्पन्न थे। इनके हृदय में सदैव शत्रुओं को जीतने का विचार बना रहता था। ये युद्ध से भागना या हारना जानते ही न थे; किन्तु वे ही ये इस समय, आयु समाप्त हो जाने से, मरे पड़े हैं। इनके मरण से आज मृत्यु का नाम सार्थक हुआ॥१२।१६॥ये शूर, क्रोधी और मानी राजपुत्र शत्रु के वशीभूत होकर काल के शिकार बन गये हैं और निश्चेष्ट निरभिमान होकर पृथ्वी पर पड़े हैं। हे ऋषि-वर! इन मारे गये राजाओं को देखकर मेरे हृदय में यह संशय उत्पन्न हुआ है कि यह मृत्यु कौन है; क्या है? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है और यह किसलिए प्रजा का संहार करती है? आप कृपा करके यह सब वृत्तान्त वर्णन करके मेरे संशय को दूर कीजिए॥१६।१८॥सञ्जय कहते हैं कि धर्मराज ने महर्षि से जब यह प्रश्न किया तब उन्हें आश्वासन देने के लिए महर्षि कहने लगे—हे नरश्रेष्ठ! पूर्व समय में महर्षि

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात्स्नेहबन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥
समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥ २३ ॥
पवित्रमरिसङ्घघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४ ॥
श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः ।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा ॥ २५ ॥
पुरा कृतयुगे तात आसीद्राजा ह्यकम्पनः ।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६ ॥
तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले ।
श्रीमान्कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥
स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि ।
व्यस्यन्बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥
स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः ।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥
स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचाऽन्वितः ।
शोचन्नहनि रात्रौ च नाऽलभत्सुखमात्मनः ॥ ३० ॥
तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् ।
आजगामाऽथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥

---

नारद ने राजा अकम्पन से जो वर्णन किया था वह प्राचीन इतिहास मैं तुमको सुनाता हूँ। राजा अकम्पन को भी इसी प्रकार अत्यन्त असह्य पुत्रशोक हुआ था। अब मैं मृत्यु की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ। इस उपाख्यान को सुनने से स्नेहबन्धन-जनित दुःख शोक से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा॥१९।२२॥हे पुत्र! यह उपाख्यान बहुत ही पवित्र, शत्रुनाशक, महामङ्गल-मय, आयु को बढ़ानेवाला, शोक को मिटानेवाला, पुष्टिवर्द्धक, वेदपाठ के समान फल देनेवाला और श्रेष्ठ है। तुम इसे मन लगाकर सुनो। हे राजेन्द्र! आयुष्मान् पुत्र, राज्य और सम्पत्ति की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को नित्य प्रातःकाल यह उपाख्यान सुनना चाहिए॥२३।२५॥पूर्व समय में, सत्ययुग में, अकम्पन नाम के एक प्रतापी नरेश थे। वे युद्धभूमि में शत्रुओं के वशीभूत हो गये। उनके पुत्र का नाम हरि था। वह नारायण के समान बलशाली, श्रीमान्, अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण, बुद्धि-मान् और इन्द्र के समान था। वह भी युद्धक्षेत्र में जाकर शत्रुओं के मध्य घिर गया। वह हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा करके, अत्यन्त दुष्कर कार्य करने के उपरान्त, शत्रुओं के हाथ से मारा गया॥२६।२९॥शत्रुओं के हाथों अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु हुई देखकर क्रोध और शोक से व्याकुल राजा अकम्पन रणभूमि से अपनी राजधानी

स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत्तदा ॥ ३२ ॥
तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः ।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥
मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः ।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥ ३४ ॥
क एष मृत्युर्भगवन्किं वीर्यबलपौरुषः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥ ३५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥
नारद उवाच—शृणु राजन्महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् ।
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयाऽपि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥
प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः ।
असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव ।
चिन्तयन्न ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥ ३९ ॥
तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता ॥ ४० ॥
ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् ।
चराचरं जगत्सर्वं ददाह भगवान्प्रभुः ॥ ४१ ॥

में आये। यहाँ पुत्र का क्रिया-कर्म करके राजा अकम्पन दिन-रात चिन्ता करते हुए शोक से अत्यन्त विह्वल रहने लगे। उन्हें किसी प्रकार भी शान्ति नहीं प्राप्त होती थी। इसी मध्य में एक दिन देवर्षि नारद उनके पुत्रशोक का समाचार जानकर, उन्हें धैर्य देने के लिए, उनके समीप आये॥३०।३१॥राजा ने देवर्षि नारद को आते हुए देखकर यथोचित उपचारों से भक्ति के साथ उनकी पूजा की। फिर शत्रुओं के विजयी होने का और अपने पुत्र के मारे जाने का वृत्तान्त विस्तार के साथ कहकर अकम्पन ने कहा — हे भगवन्! शत्रुओं ने पराक्रम प्रकट करके मेरे महाबली पुत्र को मार डाला है। अब आप कृपा कर मुझसे कहिए कि यह मृत्यु कौन और क्या है? इसका पराक्रम और पौरुष कितना और कैसा है? मैं इसका समाचार जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ। हे धर्मराज! वरदानी देवर्षि नारद अकम्पन राजा का प्रश्न सुनकर पुत्रवियोग से उत्पन्न शोक को मिटानेवाले इस उपाख्यान का वर्णन करने लगे॥३२।३५॥ नारद ने कहा —हे राजेन्द्र! मैंने इस विस्तृत उपाख्यान को जिस प्रकार सुना है, उसी प्रकार तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो। लोकपितामह ब्रह्माजी ने पहले प्रजा की सृष्टि की। उसके पश्चात् इस जगत् को जैसे का तैसा बना हुआ देखकर, विनष्ट न होते देख, उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई।

ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥
ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः ।
जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३ ॥
तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया ।
अब्रवीत्परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥
किं कुर्मे कामं कामार्ह कामाज्जातोऽसि पुत्रक ।
करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

बहुत सोचने पर भी वे सृष्टिसंहार के उपाय के बारे में कुछ निश्चय नहीं कर सके॥३६।३९॥तब उनके मन में क्रोध उत्पन्न हुआ। उस कोप के प्रभाव से, अन्तरिक्ष से, एक दारुण अग्नि उत्पन्न हुआ जो संसार के सब देशों को जलाने के लिए चारों ओर विस्तृत होने लगा। इस प्रकार कमलासन ब्रह्मा ने क्रोध के आवेश से सब जगत्को भयविह्वल बनाकर ज्वालामाला से व्याप्त चराचर जगत् और आकाशमण्डल को भस्म कर देना चाहा।उस अग्निमें चराचर प्राणी जलनेलगे॥४०।४२॥ तब जटाजूटधारी निशाचरपति महादेवजी ब्रह्माजी के शरणागत हुए। महादेवजी को प्रजा के हित की कामना से आया हुआ देखकर, तेज के प्रभाव से प्रज्वलित होकर, ब्रह्माजी कहने लगे – हे वत्स! तुमने मेरी इच्छा के अनुसार ही जन्म लिया है। तुम वरदान के योग्य हो। इसलिए बतलाओ, तुम्हारा मनोरथ क्या है? मैं तुम्हारा प्रिय करने को प्रस्तुत हूँ॥४३।४५॥

द्रोणपर्व का बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

स्थाणुरुवाच—प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो ।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥
तास्तवेह पुनः क्रोधात्प्रजा दह्यन्ति सर्वशः ।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन्प्रभो ॥ २ ॥
ब्रह्मोवाच—संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति ।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥
इयं हि मां सदा देवी भारार्ता समचूचुदत् ।
संहारार्थं महादेव भारेणाऽभिहता सती ॥ ४ ॥

तिरपनवाँ अध्याय ॥ ५३ ॥

महादेव ने ब्रह्मा से कहा—हे विभो! इस प्रजा की सृष्टि करने के लिए आपने ही पहले यत्न किया और अनेक प्रकार के जीवों की उत्पत्ति तथा पालन आपके ही द्वारा हुआ है। हे प्रभो! वही प्रजा इस समय आपके क्रोध की अग्नि से भस्म हुई जा रही है। हे भगवन्! यह देखकर मेरे मन में दया हो आई है। इसलिए प्रसन्न होकर अपने इस क्रोध को शान्त कीजिए॥१।२॥ब्रह्मा ने कहा—हे महादेव! मैं जगत्

ततोऽहं नाऽधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा ।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥

रुद्र उवाच—संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप ।
मा प्रजाः स्थावराश्चैव जङ्गमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥
तव प्रसादाद्भगवन्निदं वर्त्तेत्त्रिधा जगत् ।
अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥ ७ ॥
भगवन्क्रोधसन्दीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत् ।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥
पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोलपाः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥
तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसीद भगवन्स त्वं रोषो न स्याद्वरो मम ॥ १० ॥
सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन ।
तस्मान्निवर्त्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥
तत्पश्यदेव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया ।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्त्तेरंस्तथा कुरु ॥ १२ ॥
अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः ।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥ १३ ॥
मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥

भर का संहार नहीं करना चाहता। मेरी इच्छा नहीं कि यह कार्य इस प्रकार हो, किन्तु पृथ्वी के हित की कामना से ही मुझे क्रोध उत्पन्न हो आया है। इस पृथ्वी ने भारी भार से पीड़ित होकर प्राणियों का विनाश करने के निमित्त मुझसे ही अनुरोध किया था। किन्तु मैं सम्पूर्ण जगत् के संहार का कुछ उपाय नहीं सोच सका। इसी कारण मेरे अन्तःकरण में क्रोध का उदय हो आया है॥३।५॥महादेव ने कहा— हे विश्वनाथ! विश्व संहार के लिए उत्पन्न हुए क्रोध को आप प्रसन्न होकर शान्त कीजिए, सब चराचर जगत् का संहार न कीजिए। आपकी कृपा से यह भूत, भविष्य और वर्तमान त्रिविध जगत् बना रहे। आपने क्रोध के वश होकर जो यह अग्नि उत्पन्न की है वह नदी, पत्थर, वृक्ष, पल्लव, घास फूस आदि सब स्थावर और जङ्गम जगत् को भस्म किये डलती है। आप मुझ पर प्रसन्न होकर यही वरदान दीजिए कि आपका क्रोध शान्त हो॥६।१०॥हे भगवन्! आपने जो सृष्टि की थी वह भस्म हुई जा रही है, इसलिए आप अपने इस तेज को अपने में ही लीन कर लीजिए। प्रजा के हित की कामना करके इसका कोई और उपाय सोचिए। आप ऐसा कीजिए जिसमें ये प्राणी बने रहें, सृष्टि की जड़ नष्ट न हो और प्रजा का अत्यन्त अभाव न हो जाय॥११।१२॥हे देवताओं के ईश्वर! आपने मुझे प्रजापालन के कार्य में नियुक्त

नारद उवाच—श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे ।
तेजः सन्धारयामास पुनरेवाऽन्तरात्मनि ॥ १५ ॥
ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥ १६ ॥
उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥ १७ ॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना ।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥ १८ ॥
सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता ।
स्मयमाना च साऽवेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥ १९ ॥
तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः ।
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥ २० ॥
त्वं हि संहारबुद्ध्याऽथ प्रादुर्भूता रुषो मम ।
तस्मात्संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ २१ ॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।
एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥ २२ ॥
दध्यौ चाऽत्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम् ।
पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः ।
सर्वभूतहितार्थाय तां चाऽप्यनुनयत्तदा ॥ २३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥

किया है। [ फिर आपको इस प्रजा पर दया नहीं आती। ] आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इसी से मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि आप इस सृष्टि को नष्ट न होने दें॥१३।१४॥नारद जी ऋषि कहते हैं— हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् सब लोकों के पितामह ब्रह्मा ने, प्रजा के हित के लिए कहे गये, शिव के वचन सुनकर उस क्रोधरूप तेज को फिर अपने में लीन कर लिया। इस प्रकार अग्नि का उपसंहार करके ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए प्रवृत्त-धर्म की और मोक्ष के लिए निवृत्त धर्म की कल्पना की। तब क्रोध से उत्पन्न अग्नि का उपसंहार करते समय ब्रह्मा के इन्द्रिय छिद्रों से एक अद्भुत स्त्री उत्पन्न हुई। उसके अङ्गों का रङ्ग काला, लाल और पिङ्गल था। उसका मुख, जिह्वा और नेत्र लाल थे। उसके कानों में तपे हुए सुवर्ण के कुण्डल थे और अङ्गों में सुवर्ण के आभूषण थे॥१५।१८॥उस स्त्री ने प्रकट होकर दक्षिण दिशा में आश्रय लिया। वह ब्रह्मा और शङ्कर को देखकर जब मुसकराती हुई दक्षिण दिशा में खड़ी हुई तब विधाता ने "मृत्यु" नाम से उसको सम्बोधन करके कहा— तुम इस प्रजा का संहार करो। मेरी संहार बुद्धि के द्वारा, मेरे ही क्रोध से तुम्हारा जन्म हुआ है इसलिए तुम मेरी आज्ञा से जड़-चेतन सब प्रजा का नाश करो। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा॥१९।२२॥नारदजी कहते हैं —कमण्डलु-योनि ब्रह्मा के ये वचन सुनकर, क्षण भर सोचकर,

वह कमलनयनी मृत्यु देवी खेद के कारण रोने लगी। उसके नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिरने लगीं। पितामह ब्रह्मा ने सब प्राणियों के हित के लिए उन आँसुओं को अपने हाथों में ही रोक लिया। अनुनय करके वे मृत्यु को सन्तुष्ट करने लगे॥२२।२३॥

—०—

द्रोणपर्व का तिरपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

नारद उवाच—विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवाऽऽवर्जिता पुनः ॥ १ ॥

मृत्युरुवाच—त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर ।
क्रूरं कर्माऽऽहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥
बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन्प्रभो ।
प्रियान्पुत्रान्वयस्यांश्च भ्रातॄन्मातॄः पितॄन्पतीन् ॥ ३ ॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेभ्येभ्यो बिभेम्यहम् ।
कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ४ ॥
तेभ्योऽहं भगवन्भीता शरणं त्वाऽहमागता ।
यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥
कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोदग्रनखेन च ।
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥
इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर ।
प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन्प्रभो ॥ ७ ॥
त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम् ।
तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाऽऽराधने रता ॥ ८ ॥
न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान्प्राणभृतां प्रियान् ।
हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९ ॥

चौवनवाँ अध्याय ॥ ५४ ॥

नारदजी कहते हैं कि हे राजेन्द्र! उस स्त्री ने दुःख छोड़कर, हाथ जोड़कर, लता की भाँति नम्र होकर ब्रह्मा जी से कहा— हे महात्मा जी! आपने मुझ पापीयसी स्त्री की सृष्टि क्यों की? मैं जान बूझकर मूढ़ की भाँति ऐसा अहित और क्रूर कर्म कैसे करूँगी? मैं अधर्म से भयभीत होती हूँ, इसलिए आप कृपा करके मुझे यह आज्ञा न दीजिए॥१।३॥जिनके परमप्रिय पुत्र, मित्र, भाई, पिता और पति आदि को मैं नष्ट करूँगी वे अवश्य ही मेरा अनिष्ट चाहेंगे। हे भगवन्! बन्धु-वियोग से दुःखित प्राणियों के नेत्रों से जो आँसू गिरेंगे उन्हीं से भयभीत होकर मैं शरण में आई हूँ। मैं हाथ जोड़कर आप से निवेदन करती हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न हों; मैं कदापि यमराज के भवन में नहीं जा सकूँगी॥३।५॥हे पितामह! आप कृपा करके मेरा यह मनोरथ पूर्ण कीजिए। मैं धेनुकाश्रम में जाकर अत्यन्त कठोर तप के द्वारा आपकी आराधना करना चाहती हूँ। आप कृपा करके मुझे इसकी आज्ञा दीजिए। मैं आपसे यह वर चाहती हूँ कि आप मुझे यह कार्य न

ब्रह्मोवाच—मृत्यो सङ्कल्पिताऽसि त्वं प्रजासंहारहेतुना ।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥ १० ॥
भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
भवत्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥ ११ ॥
नारद उवाच—एवमुक्ताऽभवत्प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाऽकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥ १२ ॥
तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
प्रसादं चाऽगमत्क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥ १३ ॥
स्मयमानश्च देवेशो लोकान्सर्वानवेक्ष्य च ।
लोकास्त्वासन्यथापूर्वं दृष्टास्तेनाऽपमन्युना ॥ १४ ॥
निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्याऽपि जगामाऽथ समीपात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥
अपसृत्याऽप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥ १६ ॥
सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥ १७ ॥
पञ्च चाऽब्दानि कारुण्यात्प्रजानां तु हितैषिणी ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सा ॥ १८ ॥
ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥ १९ ॥

सौंपें। विलाप करते हुए प्राणियों के प्रिय प्राणों को मैं नहीं हर सकूंगी। इस अधर्म से आप मेरी रक्षा कीजिए॥६।९॥ब्रह्मा ने कहा—हे मृत्यु! तुम्हारी उत्पत्ति ही प्रजा के नाश के लिए हुई है। इससे तुम, मेरी आज्ञा के अनुसार, जाकर सब प्रजा का संहार करो; इस विषय में अधिक सोच विचार मत करो। सब लोगों का नाश अवश्य ही होगा; यह टल नहीं सकता। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। इसके लिए कोई तुम्हारी निन्दा नहीं करेगा॥१०।११॥नारद जी कहते हैं—ब्रह्मा के ये वचन सुनकर, अत्यन्त भयविह्वल हो, हाथ जोड़कर मृत्युदेवी ब्रह्मा की ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी रही। संसार के भले के लिए लोकसंहार करना वह किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकी॥१२॥ पितामह ब्रह्मा क्षणभर शान्त रहे, फिर शीघ्र ही हंसते हुए लोकरक्षा के लिए सुप्रसन्न हुए। इस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा ने जब क्रोध त्याग दिया तब सब प्राणी अपमृत्यु से बचकर पहले की ही भाँति प्रसन्न होगये। वह कन्या मृत्युदेवी प्रजासंहार करना अङ्गीकार न करके, ब्रह्मा से विदा होकर, वहाँ से चली और शीघ्र ही धेनुकाश्रम में पहुँचकर कठोर तपस्या करने लगी॥१३।१५॥सब इन्द्रियों को भोग्य विषयों से हटाकर वह घोर तप करने लगी। प्रजा के हित की कामना से वह इक्कीस पद्म वर्ष तक एक पाँव से खड़ी रही॥१६।१८॥फिर इक्कीस पद्म वर्ष तक दूसरे

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ॥ २० ॥
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च साऽनयत् ।
धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥ २१ ॥
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता ।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥ २२ ॥
पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥ २३ ॥
ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
तस्थौ चाऽश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥ २४ ॥
पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुराऽयजन् ।
तत्रांऽगुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥ २५ ॥
पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
अपाकर्षत्स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥ २६ ॥
अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥ २७ ॥
ततस्तामब्रवीत्प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
सौम्येन मनसा राजन्प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥ २८ ॥
मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह ।
ततोऽब्रवीत्पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥ २९ ॥
नाऽहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाऽऽक्रोशतीस्तथा ।
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥ ३० ॥

---

पाँव से खड़ी रही। फिर अयुत पद्म वर्ष तक मृगों के साथ विचरती रही। इसके पश्चात् स्वच्छ जल-वाली पवित्र नन्दा नदी में जाकर नियमपूर्वक एक सहस्र आठ वर्ष तक जल के भीतर रहकर उसने समय बिताया। इस प्रकार नन्दा तीर्थ में निष्पाप होकर वह पहले पवित्र कौशिकी तीर्थ में पहुँची। वहाँ केवल वायुभक्षण और जल पी करके फिर नियम ग्रहण-पूर्वक उसने घोर तप किया॥१९।२२॥फिर पञ्चगङ्गा तीर्थ और वेतस तीर्थ में जाकर, विशेष तप करके, शरीर सुखाया। उसके पश्चात् भागीरथी और प्रधान तीर्थ महामेरु में जाकर, प्राणायामपरायण होकर, शिला की भाँति निश्चेष्ट भाव से वह तप करती रही। इसके उपरान्त हिमाचल के शिखर पर पहुँचकर, उँगली पर सारे शरीर का भार देकर, निखर्व वर्षों तक वह तप करती रही। फिर वह कन्या पुष्कर, गोकर्ण-तीर्थ, नैमिषतीर्थ, मलयतीर्थ आदि में यथेष्ट नियम ग्रहण करके अपने शरीर को सुखाती रही। इस प्रकार वह अनन्य भक्ति के साथ एकाग्रचित्त से

अधर्मभयभीताऽस्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाऽभयमव्ययम् ॥ ३१ ॥
आर्त्ता चाऽनागसी नारी याचामि भव मे गतिः ।
तामब्रवीत्ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥ ३२ ॥
अधर्मो नाऽस्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः ।
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथञ्चन ॥ ३३ ॥
तस्मात्संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।
धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥ ३४ ॥
लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥ ३५ ॥
यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि ।
सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥ ३६ ॥
पुनरेवाऽब्रवीद्वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा ।
यद्येवमेतत्कर्तव्यं मया न स्याद्विना प्रभो ॥ ३७ ॥
तवाऽऽज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥ ३८ ॥
अह्रीश्चाऽन्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः ।
ब्रह्मोवाच—तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः ॥
अधर्मस्ते न भविता नाऽपध्यास्याम्यहं शुभे ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा की आराधना करती रहीं॥२३।२७॥तब भगवान् ब्रह्मा वहाँ आये और शान्त तथा प्रसन्न मन से पूछने लगे —हे मृत्यु ! तुम किसलिए ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो ?॥२८।२९॥मृत्यु ने कहा—हे भगवन् ! सब प्रजा स्थिर और एकाग्रचित्त से सुस्थ रहकर अपना समय व्यतीत कर रही है। वह वाक्य-द्वारा भी परस्पर किसी का अपकार नहीं करती । मैं किसी प्रकार उसका विनाश नहीं कर सकूंगी । मैं आपसे यही वर माँगती हूँ । मैं अधर्म से डरकर ही यह घोर तपस्या कर रही हूँ । अतएव आप मुझे अभय प्रदान कीजिए । मेरा कोई अपराध नहीं है । मैं इसी भय से व्याकुल हो रही हूँ । प्रार्थना करती हूँ कि आप कृपा करके मुझे आश्रय दें॥२९।३२॥ हे राजेन्द्र ! तब त्रिकालज्ञ ब्रह्मा ने कहा —हे कन्या ! इस चराचर प्रजा का संहार करने से तुमको किञ्चित्-मात्र भी अधर्म या पाप नहीं होगा । मेरा वचन कभी भी मिथ्या नहीं होने का । अतएव तुम निर्भय होकर चारों प्रकार की प्रजा का संहार करो । तुम्हें सनातन धर्म पवित्र करेगा । लोकपाल यमराज, व्याधियाँ, देवगण और मैं, ये सब तुम्हारी सहायता करेंगे । मैं तुमको यह भी वर देता हूँ कि तुम यह कर्म करने में निष्पाप और रजोगुण हीन होकर परम प्रसिद्धि प्राप्त करोगी॥३२।३६॥तब उस कन्या ने प्रणाम-पूर्वक ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और हाथ जोड़कर कहा —हे ब्रह्मन् ! यदि मेरे बिना यह कार्य नहीं हो सकता हो तो, विवश होकर, मैं आपकी इस

यान्यश्रुबिन्दूनि करे ममाऽऽसंस्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः ।
ते मारयिष्यन्ति नरान्गतासून्नाऽधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥
नाऽधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा ।
धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री तस्मात्प्राणान्सर्वथेमान्नियच्छ ॥ ४१ ॥
सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ सन्त्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् ।
एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो मिथ्या वृत्तान्मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥
तेनाऽऽत्मानं पावयस्वाऽऽत्मना त्वं पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् ।
तस्मात्कामं रोषमप्यागतं त्वं सन्त्यज्याऽन्तः संहरस्वेति जीवान् ॥ ४३ ॥
नारद उवाच—सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशाच्छापाद्भीता बाढमित्यब्रवीत्तम् ।
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥
मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः ।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम् ॥ ४५ ॥
सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते गत्वा वृत्ताः सन्निवृत्तास्तथैव ।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा वृत्ता देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥ ४६ ॥
वायुर्भीमो भीमनादो महौजा भेत्ता देहान्प्राणिनां सर्वगोऽसौ ।
नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥ ४७ ॥

---

आज्ञा को शिरोधार्य करती हूँ । यदि धर्म से यह कर्तव्य है तो फिर मुझे भय नहीं है; किन्तु आप मेरा एक निवेदन सुनिए । लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और परस्पर कही गई कठोर वाणी ये भिन्न भिन्न इन्द्रियवृत्तियाँ लोगों के शरीर को क्षीण करती रहा करें॥२६।३९॥ब्रह्मा ने कहा—हे मृत्यु ! तुम जो कहती हो वही होगा । अब तुम प्रजा के संहार में लग जाओ । इससे तुम न तो अधर्म में ही लिप्त होगी और न मेरे ही द्वारा तुम्हारा अनिष्ट होगा । तुम्हारे आँसुओं की जो बूँदें मेरे हाथों में गिरी हैं वे जीवों के शरीरों में व्याधि रूप से प्रकट होकर उनके प्राणों को नष्ट करने में तुम्हारी सहायता करेंगी । इसमें तुम्हें किञ्चित्मात्र भी अधर्म नहीं होगा । अब तुम भयभीत होओ मत । तुम प्राणियों का धर्म हो, धर्म की स्वामिनी हो । तुम धर्मपरायण और धर्म का कारण होकर धैर्यधारणपूर्वक सब प्राणियों के जीवन-संहार में लग जाओ ॥३९।४१॥काम और क्रोध से बची रहकर सब प्राणियों के जीवन को हरो । इससे तुम्हें अक्षय धर्म होगा । [ जो लोग धर्मात्मा हैं वे मृत्यु को प्राप्त होकर भी अमर रहेंगे और ] जो दुराचारी हैं उन्हें उनका अधर्म ही नष्ट करेगा । तुम मेरी आज्ञा का पालन करके अपने आत्मा को पवित्र करो । तुम अपने अन्तःकरण में आये हुए काम और क्रोध को त्याग करके, समदर्शी होकर, जीवों का संहार करो । पुण्य बुद्धि से इस कार्य को करोगी तो पवित्र रहोगी और असत्यमार्ग का ग्रहण करोगी तो अपने को पाप में मग्न करोगी । यह समझकर, मेरी आज्ञा के अनुसार, निर्भय होकर अपने कर्तव्य का पालन करो॥४१।४३॥नारदजी कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् उस कन्या ने अपना नाम 'मृत्यु' होने से उद्विग्न होकर और 'कहा न मानने से ब्रह्माजी शाप न दे दें' इस भय से तत्काल ही ब्रह्मा की आज्ञा स्वीकार कर ली । हे महाराज ! वही मृत्यु काम क्रोध-हीन होकर, निर्लिप्त भाव से अन्त-

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टास्तस्मात्पुत्रं मा शुचो राजसिंह ।
स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो नित्यं रम्यान्वीरलोकानवाप्य ॥ ४८ ॥
त्यक्त्वा दुःखं सङ्गतः पुण्यकृद्भिरेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम् ।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ॥ ४९ ॥
आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे नैतान्मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति ।
तस्मान्मृतान्नाऽनुशोचन्ति धीरा मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम् ।
इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥

द्वैपायन उवाच — एतच्छ्रुत्वाऽर्थवद्वाक्यं नारदेन प्रकाशितम् ।
उवाचाऽकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥ ५१ ॥
व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम ।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥
तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः ।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥
पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च ।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥

काल में सब प्राणियों के जीवन को नष्ट करती है। सभी प्राणियों की मृत्यु होती है। रोग कहलानेवाली व्याधियाँ प्राणियों के ही शरीर से उत्पन्न होती हैं और उनके द्वारा प्राणियों को अत्यन्त व्यथा होती है। अतएव अन्तकाल में प्राणियों का प्राण वियोग होते देखकर तुम उन प्राणियों के लिए वृथा शोक न करो। प्राण-नाश होने पर सब इन्द्रियाँ प्राणियों के साथ परलोक में जाती हैं और अपने अपने कार्य को सम्पन्न करके फिर लौट आती हैं। मनुष्यों की ही भाँति देवगण भी परलोक में जाकर अपना अपना कार्य करते हैं; अर्थात् इन्द्र आदि देवता भी मनुष्यों की भाँति मनुष्यलोक में आते और अनेक कर्म करके स्वर्गलोक को लौट जाते हैं॥४४।४६॥घोररूप, भीम-नाद, सर्वचारी, उग्र, अनन्ततेज से सम्पन्न प्राणवायु सब प्राणियों के शरीर को ही प्राणों से अलग कर देता है। उसका गमन-आगमन नहीं है। हे राजेन्द्र! देवताओं की भी मर्त्यसंज्ञा है; उन्हें भी मृत्यु नहीं छोड़ती। इसमें अब तुम अपने पुत्र की मृत्यु के लिए वृथा शोक मत करो। वह सुरलोक में वीरों के मनोहर लोक पाकर, दुःखहीन होकर, पुण्य करनेवाले पुण्यात्माओं के साथ आनन्द कर रहा है। हे महाराज! प्रजा की यह मृत्यु दैवनिर्दिष्ट है। समय आने पर मृत्यु ही प्राणियों का संहार करती है। अन्यके द्वारा किसी की मृत्यु होने की कल्पना उन्हीं मूढ़ पुरुषों की है, जो मृत्यु के इस रहस्य को नहीं जानते। वास्तव में अपनी मृत्युका कारण प्राणी आप ही है; मृत्यु डण्डा हाथ में लेकर किसी को नहीं मारने आती। जो लोग बुद्धिमान् हैं वे, यह जानकर कि ब्रह्माजी ने ही सब प्राणियों की मृत्यु उत्पन्न की है और कभी न कभी अवश्य ही मृत्यु होगी, मृत पुरुषों के लिए कभी शोक नहीं करते। हे राजेन्द्र! तुमको अब प्रतीत हो गया है कि प्राणियों की मृत्यु दैव-विहित है। अब तुम पुत्र की मृत्यु के लिए शोक करना छोड़दो॥४७।५०॥महाराज अकम्पन ने प्रिय सखा नारद के ऐसे यथार्थ वचन सुनकर कहा हे भगवन्! इस इतिहास के सुनने से मेरा शोक जाता रहा। मैं प्रसन्न होकर अपने को कृतार्थ समझ रहा हूँ। मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥५१।५२॥ व्यास जी कहते हैं कि महाराज अकम्पन का पुत्रशोक

एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः ।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥
सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः ।
अभिमन्युः परान्हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे ।
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः ॥ ५७ ॥
विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ।
तस्मात्परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव ।
अप्रमत्तः सुसन्नद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसम्वादे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

---

दूर करके देवर्षि नारदजी वहाँ से नन्दन वन को चले गये। हे धर्मराज ! इस इतिहास को स्वयं सुनने अथवा अन्य किसी को सुनाने से धन की प्राप्ति होती है। इसके पढ़ने, सुनने या सुनाने से पुण्य होता है, यश प्राप्त होता है, आयु की वृद्धि होती है और अन्त समय स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। हे राजेन्द्र ! तुमने इस परमार्थ-पूर्ण तत्वज्ञानसहायक इतिहास को सुन लिया। अब क्षत्रियधर्म, वीरों की परमगति और मृत्यु का रहस्य सोचकर धैर्य धारण करो। चन्द्रमा के अंश से उत्पन्न निष्पाप महारथी अभिमन्यु युद्ध-भूमि में असंख्य वीर क्षत्रियों के आगे सम्मुख युद्ध करके, शत्रुसेना का संहार करते करते, शत्रुओं के खड्ग, गदा, शक्ति और धनुष-बाण के प्रहार से मरकर फिर चन्द्रलोक को चला गया। अतएव हे पाण्डव ! अपने भाइयों के साथ धैर्य धारण करके शोक हीन होकर, सावधान और सुसज्जित होकर, फिर शत्रुओं से युद्ध करो॥५३।५८॥

द्रोणपर्व का चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच— श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च ।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच— गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः ।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥
भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय ।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३ ॥
कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥

---

पचपनवाँ अध्याय ॥ ५५ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि हे महाराज ! मृत्यु की उत्पत्ति और उसके अद्भुत कार्य का वर्णन सुनकर राजा युधिष्ठिर सन्तुष्ट हुए। व्यासदेव को प्रसन्न करके उनसे धर्मराज ने कहा—हे भगवन् ! पूर्व समय में इन्द्र के समान पराक्रमी, पुण्यात्मा, माननीय, सत्यवादी और निष्पाप अनेक राजर्षि हो गये हैं।

व्यास उवाच — शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः ।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥
तौ कदाचिद्गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया ।
विधिवच्चाऽर्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥ ६ ॥
तं कदाचित्सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता ।
दुहिताऽभ्यागमत्कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७ ॥
तयाऽभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद्यथाविधि ।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८ ॥
तां निरीक्ष्याऽब्रवीद्वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥ ९ ॥
उताऽहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम्
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥
एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
ममेयं भगवन्कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥
नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥
ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

ऐसे कितने राजर्षियों को मृत्यु ने नष्ट किया है। आप फिर अपने यथार्थ और शोक को दूर करनेवाले वचन सुनाकर मेरा सन्ताप दूर कीजिए। प्राचीन राजर्षियों के कर्मों का वर्णन करके मुझे ढाढस बँधाइए। पुण्यात्मा राजर्षियों ने ब्राह्मणों को कौन-कौन और कितनी दक्षिणाएँ दी हैं! यह सब मुझसे कहिए॥१।४॥व्यास जी ने कहा—हे धर्मराज! राजा शैव्य के एक पुत्र था, जिसका नाम सृञ्जय था। महर्षि पर्वत और नारद सृञ्जय के सखा थे। एक दिन दोनों ऋषि सृञ्जय से मिलने के लिए उनके भवन में गये। सृञ्जय ने आदरपूर्वक दोनों ऋषियों की विधिपूर्वक पूजा की। दोनों ऋषि अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बड़े सुख से कुछ दिनों तक राजा के भवन में रहे। एक दिन राजा सृञ्जय उनके साथ सुख से बैठे हुए थे, इसी समय राजा की एक परम सुन्दरी अविवाहिता कन्या ने वहाँ आकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने भी अभिनन्दनपूर्वक उसे आशीर्वाद दिया॥५।८॥अब महर्षि पर्वत ने हँसकर कहा—हे राजेन्द्र! यह श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त चञ्चलनयनी कन्या किसकी है! यह सूर्य की प्रभा है, या अग्नि की शिखा है, अथवा चन्द्रमा की कान्ति है! इनमें से कोई नहीं है तो अवश्य ही श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, पुष्टि या सिद्धि में से कोई न कोई होगी॥९।१०॥महाराज सृञ्जय ने देवर्षि पर्वत के वचन सुनकर कहा—हे मित्र! यह कन्या मेरी ही है। यह श्रेष्ठ कन्या अब योग्य वर चाहती है॥११॥इसी समय देवर्षि नारद राजा से कह उठे—हे राजेन्द्र! यदि तुम कन्यादान करके कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो मुझे यह कन्या, भार्या बनाने के लिए, दे दो। राजा सृञ्जय ने प्रसन्न होकर तुरन्त ही उन्हें अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया। तब देवर्षि पर्वत ने क्रोधान्ध होकर देवर्षि नारद

हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।
यस्माद्वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥
एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः ।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषादत्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् ।
न त्वेषां निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥
अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि ।
तस्मात्त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥ १७ ॥
अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा ।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान्पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः ।
तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित्पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥ २० ॥
तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत् ।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥ २२ ॥
यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिन्दमम् ।
यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥

से कहा—देखो, पहले मैं मन ही मन में इस कन्या को भार्यारूप से प्राप्त कर चुका हूँ। पीछे से तुमने इसे माँग लिया। इससे मैं तुमको शाप देता हूँ कि तुम अपनी इच्छानुसार स्वर्ग को न जा सकोगे॥१२।१४॥ यह सुनकर नारद ने भी कहा—यह मेरी पत्नी है, ऐसा मन से विचार करना, मुख से कहना और बुद्धि से निश्चय करना, सत्य (प्रतिज्ञा), जल छोड़कर कन्यादान होना (अग्नि का साक्षी होना) और पाणिग्रहण के मन्त्रों का पढ़ा जाना, ये ही विवाह के लक्षण प्रसिद्ध हैं। किन्तु इतना होना ही किसी कन्या के किसी पुरुष की स्त्री होने के लिए यथेष्ट नहीं है। वास्तव में सप्तपदी-गमन (सात भाँवरें फिरना) ही विवाह की पूर्णता है। तुमने इस कन्या का वरण मन से ही किया था, वास्तव में तुम्हारे साथ इसका विवाह नहीं हुआ था। फिर भी तुमने अन्यायपूर्वक मुझे शाप दिया। इससे मैं भी तुमको शाप देता हूँ कि तुम मेरे बिना स्वर्गलोक को न जा सकोगे। हे धर्मराज! इस प्रकार दोनों महर्षि परस्पर शाप देकर उन्हीं राजा के भवन में रहने लगे॥१५।१८॥ इधर पुत्र की कामना से नरपति सृञ्जय विशुद्ध हृदय होकर बड़े यत्न से, खाने पीने की सामग्री और वस्त्र आदि देकर, ब्राह्मणों की आराधना करने लगे। एक दिन वेद वेदाङ्ग के पारदर्शी स्वाध्याय निरत ब्राह्मणों ने राजा सृञ्जय पर प्रसन्न होकर, उन्हें पुत्र देने की कामना से, देवर्षि नारद के समीप जा

सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाऽभवत्कृतम् ।
तस्मिन्वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥
कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥
शय्यासनानि यानानि स्थालीपिठरभाजनम् ।
तस्य राज्ञोऽपि यद्वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६ ॥
सर्वं तत्काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।
अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।
केचित्तत्राऽब्रुवन्राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥ २८ ॥
सोऽस्याऽऽकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे ।
ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥
राजपुत्रं तथाऽऽजह्नुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् ।
गृह्यैनमनुपायज्ञा नीत्वाऽरण्यमचेतसः ॥ ३० ॥
हत्वा विशस्य चाऽपश्यँल्लुब्धा वसु न किञ्चन ।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद्वरदं वसु ॥ ३१ ॥

कर कहा—हे ब्राह्मण ! आप राजा सृञ्जय को उनकी इच्छा के अनुरूप एक पुत्र रत्न दीजिए। ब्राह्मणों की प्रार्थना स्वीकार करके नारद ने महाराज सृञ्जय से कहा—हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण लोग सन्तुष्ट होकर तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा करते हैं। अब तुम बतलाओ, कैसा पुत्र चाहते हो ? तुम्हारा कल्याण होगा॥१८।२२॥राजा सृञ्जय ने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मैं आपके वर से सब गुणों से अलङ्कृत, कीर्तिशाली, यशस्वी, महा-पराक्रमी एक पुत्र प्राप्त करूँ। विशेषता यह हो कि उस बालक का मल-मूत्र थूक-कफ, पसीना आदि सब सुवर्णमय हो। नारद ने सृञ्जय राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्हें उनकी इच्छा के अनु-सार वरदान दिया। राजा सृञ्जय के यहाँ थोड़े ही दिनों में, उनकी इच्छा के अनुरूप, पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र पृथ्वीमण्डल में सुवर्णष्ठीवी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महर्षि नारद के वरदान से वह पुत्र क्रमश अपरिमित धन का अधिकारी हो गया। उस पुत्र के द्वारा राजा सृञ्जय ने अपने यहाँ की सब वस्तुओं को सुवर्णमय बना लिया॥२२।२५॥समया-नुसार उन राजा के यहाँ घर, दीवार, दुर्ग, ब्राह्मण-शाला, अतिथिशाला, शय्या, आसन, स्थान, थाली आदि सब पात्र सुवर्णमय हो गये और दिन पर दिन लक्ष्मी बढ़ने लगी। कुछ दिनों के उपरान्त दस्युओं को राजकुमार के द्वारा सुवर्ण उत्पन्न होने का समा-चार प्रतीत हुआ। उन्होंने राजकुमार को देखकर, दल बाँधकर, राजा का अनिष्ट करना विचारा। उन दस्युओं में से किसी-किसी ने कहा—हम स्वयं जाकर राजपुत्र को पकड़ लायेंगे। वह राजपुत्र ही सुवर्ण की खान है। अतएव उसे पकड़ लेने का यत्न करना ही हमारा परम कर्तव्य है॥२६।२९॥इसके उपरान्त लोभ के वशवर्ती दस्युगण एक दिन राज-भवन में प्रवेश हो गये और राजकुमार सुवर्णष्ठीवी को पकड़कर वन की ओर भाग गये। राजकुमार

दस्यवश्च तदाऽन्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाऽद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।
तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
विललाप सुदुःखार्त्तो बहुधा करुणं नृपः ।
विलपन्तं निशम्याऽथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य सन्निधौ ।
उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥
सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर ।
कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।
आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
संवर्त्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद्धनं स भगवान्प्रभुः ॥ ३८ ॥
हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः सवैः ।
यस्य सेन्द्रामरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चाऽऽसन्परिच्छदाः ॥ ४० ॥
यस्य सत्रं तदा ह्यन्नं मनोभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चाऽन्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥

को वे डाकू पकड़ तो ले गये परन्तु आगे क्या करना चाहिए, इसका निश्चय बहुत सोचकर भी वे न कर सके। अन्त को किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उन्होंने राजकुमार के शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डाले, परन्तु उससे उन्हें किञ्चित्मात्र भी सोना नहीं मिला। राजकुमार की मृत्यु होते ही वरदान से प्राप्त होनेवाले धन की भी सम्भावना न रही। तब वे मूर्ख डाकू मोहवश, एक दूसरे को उस धन का अपहरण करनेवाला समझकर, एक दूसरे को मारने लगे। इस प्रकार उन डाकुओं ने उस अद्भुत राजकुमार को मारकर आप ही अपनी हत्या कर ली और अन्त को सब नरकगामी हुए॥२९।३३॥इधर राजा सृञ्जय, वरदान से प्राप्त, अपने पुत्र को नष्ट देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और करुण स्वर से विलाप करने लगे। पुत्रशोक से दुःखित राजा के समीप जाकर महर्षि नारद कहने लगे—हे सृञ्जय! हम लोग ब्रह्मवादी महर्षि हैं। यद्यपि हम सदा तुम्हारे भवन में रहते हैं, किन्तु तुम भी एक दिन मर जाओगे और विषयभोग और मनोरथों से तुम्हारी तृप्ति न होगी। हे सृञ्जय! हमने सुना है कि अविक्षित् के पुत्र महाप्रतापी राजा मरुत्त को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है। बृहस्पति की स्पर्धा करके महर्षि संवर्त ने उनको यज्ञ कराया था। भगवान् शङ्कर ने राजा मरुत्त को विविध यज्ञ करने के लिए हिमवान् पर्वत का एक सुवर्णमय भाग दे दिया था। यज्ञ के अन्त

पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥ ४२ ॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान्वेदपारगान् ।
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याऽभवन्गृहे ॥ ४३ ॥
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक्क्लृप्तैर्दिवौकसः ।
ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥
तत्सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥
श्रद्दधानो जिताँल्लोकान्गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।
सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ॥ ४८ ॥
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

में बृहस्पति और इन्द्र आदि सब देवता उन राजा के साथ बैठते थे। उनके यज्ञमण्डप का सब सामान सुवर्ण-मय था॥३३।४०॥राजा मरुत्त के यज्ञ के समय भोजन की इच्छा से आये हुए ब्राह्मण और द्विज ( क्षत्रिय और वैश्य भी) इच्छानुरूप दूध, दही, घी, मिठाई, भक्ष्य, भोज्य पदार्थ खा-पीकर तृप्त होते थे। वेदपाठी प्रसन्न चित्त ब्राह्मणगण इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण पाते थे। राजर्षि मरुत्त के यज्ञ में मरुद्गण अथवा सब देव-गण भोजन के समय सब वस्तुएँ परोसते थे। विश्वेदेवा उनके सभासद थे। पराक्रमी राजा मरुत्त के यज्ञों में विधिपूर्वक दी हुई घी की आहुतियों से प्रसन्न देवगण उनके राज्य भर में अच्छी तरह जल बरसाते थे, जिससे बहुत अन्न उत्पन्न होता था॥४०।४५॥वे राजर्षिश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य-पालन, वेदपाठ और श्राद्ध आदि करके सदैव ऋषियों, देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट रखते थे। राजा मरुत्त ब्राह्मणों को उनकी इच्छा के अनुसार अमित शय्या, आसन, सवारियाँ और दुस्त्यज सुवर्ण का ढेर देकर सन्तुष्ट किया करते थे। देवराज इन्द्र सदैव उनके शुभचिन्तक थे। राजा मरुत्त अपनी प्रजा को पुत्र के समान सुख से रखकर श्रद्धापूर्वक यज्ञ करने से प्राप्त अक्षय लोकों में पहुँचे और वहाँ अपने पुण्यों का फल भोगने लगे। उन्होंने सहस्र वर्ष तक युवा रहकर अपनी प्रजा, पुत्र, स्त्री, बन्धु बान्धव आदि के साथ राज्य किया। हे सृञ्जय ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य अथवा धर्म, अर्थ, काम और बल में तुमसे अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा राजा मरुत्त भी मृत्यु

से नहीं बच सके। अतएव तुम अपने उस पुत्र का शोक मत करो, जिसने न तो यज्ञ ही किये और न ब्राह्मणों को दक्षिणा ही दी॥४५।५०॥

—०—

द्रोणपर्व का पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५६ ॥

नारद उवाच— सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १ ॥
यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान् ।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥ २ ॥
प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः ।
एतत्सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्धनागमम् ॥ ३ ॥
धर्मेणाऽऽराधयन्देवान्बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा ।
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत् ॥ ४ ॥
यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥
हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन्पुरा ।
ग्राहान्कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान्बहून् ॥ ६ ॥
कामान्वर्षति पर्जन्यो रूपाणि विविधानि च ।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥ ७ ॥
सहस्रं वामनान्कुब्जान्नक्रान्मकरकच्छपान् ।
सौवर्णान्विहितान्दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८ ॥
तत्सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ९ ॥

छप्पनवाँ अध्याय ॥ ५६ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय! बहुत ही दुर्द्धर्ष और अद्वितीय वीर राजा सुहोत्र को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है। वे ऐसे प्रतापी थे कि देवता लोग भी उनकी ओर नेत्र तक उठाकर नहीं देख सकते थे। उन्होंने धर्म के अनुसार राज्य का अधिकार प्राप्त करके यह नियम कर रक्खा था कि वे ऋत्विक् ब्राह्मण और पुरोहित आदि का सम्मान करते, उनसे अपने हित के उपदेश पूछते और उन्हीं के मत पर चलते थे। सुहोत्र को यह विदित हुआ कि प्रजापालन, दान, यज्ञ और शत्रुओं को जीतना ही क्षत्रिय का धर्म है। इस धर्म के पालन में धन की आवश्यकता देखकर राजा ने धर्म के अनुसार धन प्राप्त करने की इच्छा की॥१।३॥ विधिपूर्वक देवगण की आराधना करके और बाहुबल से शत्रुओं को हराकर वे म्लेच्छों और डाकुओं से रिक्त पृथ्वीमण्डल का राज्य करते थे। उन्होंने अपने गुणों से सब प्राणियों को सन्तुष्ट कर रक्खा था। उनके राज्य में प्रति वर्ष मेघों से सुवर्ण की वर्षा होती थी। उनके राज्य में नदियाँ थीं उनमें ग्राह आदि जलजीव

सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥ १० ॥
काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५६ ॥

भी सुवर्णमय थे। उन नदियों का सुवर्ण सर्वसाधारण की सम्पत्ति था॥४।६॥मेघों से सुवर्णमय ग्राह और केकड़े, अनेक प्रकार की मछलियाँ आदि अद्भुत बहुमूल्य पदार्थ बरसते थे। उनके राज्य में कोसों लम्बी-चौड़ी बावलियाँ थीं। हे राजेन्द्र! अपने राज्य में सहस्रों सुवर्णमय ग्राह, मगर, मच्छ, कच्छ आदि देखकर स्वयं राजा सुहोत्र को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कुरुजाङ्गल क्षेत्र में जाकर यज्ञ करना आरम्भ कर दिया और उन यज्ञों में ब्राह्मणों को अपने राज्य का वह अपरिमित सुवर्ण दे डाला। महाराज सुहोत्र ने इसी प्रकार सहस्र अश्वमेध यज्ञ, एक सौ राजसूय यज्ञ, क्षत्रियों के करने के अन्य अनेक पुण्यदायक यज्ञ तथा निरन्तर अन्यान्य काम्य ( किसी कामना से किये जानेवाले ) और नैमित्तिक ( किसी कारण से किये जानेवाले ) कर्म किये। हे सृञ्जय! वे राजा सुहोत्र भी नहीं बचे। सत्य, तप, दान और दया में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा राजा सुहोत्र को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा। अतएव तुम अपने उस पुत्र का शोक मत करो जिसने न यज्ञ किये न दक्षिणा दी और न वेद ही पढ़ा॥७।१२॥

द्रोणपर्व का छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

नारद उवाच—राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥
तस्याऽश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात्समीयुषाम् ।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नाऽऽसीत्संख्या विपश्चिताम् ॥ २ ॥
वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः ।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥
नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः ।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ॥ ४ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय ॥ ५७ ॥

नारद ने कहा— हे सृञ्जय! सुना है कि महातेजस्वी पुरुवंशी राजा अङ्ग को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा। उन राजर्षि ने दस लाख एक रङ्ग के श्वेत घोड़े ब्राह्मणों को दान किये थे। उनके अश्वमेध यज्ञ में अनेक देशों से वेदपाठी, शास्त्रज्ञ, विधि के जानने-वाले और असंख्य ब्राह्मण पण्डितों का समागम हुआ था। वे सभी वेदज्ञ, विद्वान्, ब्रह्मचारी, उदार, प्रियदर्शन ब्राह्मण राजा अङ्ग के यहाँ उत्तम भोजन, वस्त्र, गृह, शय्या, आसन, सवारी और दक्षिणा पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। नट, नृत्य करनेवाले, गन्धर्व,

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत् ।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा ।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥
धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः ।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमाली महात्मनाम् ॥ ७ ॥
गवां सहस्रानुचरान्दक्षिणामत्यकालयत् ।
हेमशृंग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादाजाविकं बहु ।
रत्नानां विविधानां च विविधांश्चाऽन्नपर्वतान् ॥ ९ ॥
तस्मिन्संविततेे यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥
अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः ।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्याऽऽसन्सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

स्वर्णचूडाधारी सेवक, आरती करनेवाले लोग नित्य सेवा और क्रीड़ा आदि के द्वारा उन ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया करते थे॥१।४॥राजा ने प्रत्येक यज्ञ में यथासमय ब्राह्मणों को अपार दक्षिणा दी थी । राजा ने दक्षिणा में सुवर्णमण्डित मनवाले दस सहस्र हाथी दिये, ध्वजा-पताका सहित सुवर्णमय दस सहस्र रथ दिये और सुवर्णमय अलङ्कारों से भूषित सहस्रों कन्याएँ दीं थीं । उन्होंने रथ, हाथी, घोड़े, घर, खेत, सुवर्णमालाओं से भूषित लाखों गाय-बैल और सहस्रों दास-दासियाँ दक्षिणा में दीं थीं । पुरातत्त्व के जाननेवाले विद्वानों का कथन है कि राजा ने सुवर्ण से जिनके सींग मढ़े थे , चाँदी से खुर मढ़े थे, काँसे की दोहनी और बछड़े जिनके साथ थे, ऐसी बढ़िया दुधार सहस्रों गाय और दासियाँ, दास, गदहा, ऊँट, बकरी, भेड़ आदि असंख्य पशु, बहुविधि रत्न और अन्नों के पर्वत—यज्ञों की दक्षिणा में—सुपात्र ब्राह्मणों को दिये थे । उन याज्ञिक राजा अङ्ग ने अपने धर्म के अनुसार सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले और निर्दोष यज्ञ किये थे । तुमसे अधिक धर्मात्मा, दानी, दयालु और सत्यनिष्ठ और तुम्हारे पुत्र की अपेक्षा पुण्यात्मा राजा अङ्ग को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा । अतएव तुम अपने उस पुत्र का शोक मत करो, जिसने न यज्ञ किये,न दक्षिणा दी और न वेद ही पढ़ा॥८।१२॥

—०—

द्रोणपर्व का सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अथ अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

नारद उवाच—शिविमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत्पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥
साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन् ।
स शिविर्वै रिपून्नित्यं मुख्यान्निघ्नन्सपत्नजित् ॥ २ ॥
तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः ।
स राजा वीर्यवान्धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद्युधि ।
अयजच्चाऽश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥
निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोजाविभिस्तथा ॥ ५ ॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिविर्ब्राह्मणसात्करोत् ।
यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥
यावत्यः सिकता गाङ्गयो यावन्मेरोर्महोपलः ।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ।
तावतीरददद्गा वै शिविरौशीनरोऽध्वरे ॥ ७ ॥
नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः ।
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाऽध्यगच्छन्नरोत्तमम् ॥ ८ ॥
तस्याऽऽसन्विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः॥ ९ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय ॥ ५८ ॥

नारद ने कहा —हे सृञ्जय ! हमने सुना है कि उशीनर के पुत्र महाप्रतापी राजा शिवि को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है। सब शत्रुओं को जीतकर उन्होंने पर्वत-द्वीप-समुद्र-वन-सहित इस पृथ्वीमण्डल पर अपना अधिकार कर लिया था। वे अपने रथ के शब्द से पृथ्वीमण्डल को कँपाते हुए दिग्विजय कर चुके थे। राजा शिवि ने दिग्विजय में बहुत सा धन प्राप्त करने के पश्चात् अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे, जिनमें ब्राह्मणों को बहुत-बहुत दक्षिणा दी गई थी। उन्होंने युद्ध में अन्य मनुष्यों की हिंसा किये बिना ही बहुत सा धन प्राप्त किया था। सब क्षत्रियश्रेष्ठ मूर्धाभिषिक्त राजा लोग शिवि को युद्ध में अपने समान और माननीय समझते थे॥१।४॥ महात्मा शिवि ने अपने बाहुबल से पृथ्वीमण्डल के राजाओं को जीत लिया और फिर निर्विघ्नरूप से बहुफलदायक अश्वमेध यज्ञ किया था। उन्होंने उस यज्ञ में हाथी, घोड़े, मृग, गाय, बकरे, भेड़ आदि पशु और सहस्र कोटि निष्क सुवर्ण तथा जीविका के लिए सम्पूर्ण भूमि भी ब्राह्मणों को दे दी थी। वर्षा में जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरती हैं, आकाशमण्डल में जितने तारे हैं, गङ्गा में जितने बालू के कण हैं, सुमेरु पर्वत पर जितने शिला-खण्ड हैं और समुद्र में जितने रत्न और जीव-जन्तु हैं उतनी ही असंख्य गायें उन्होंने यज्ञ में दान की थीं॥५।७॥ भगवान् ब्रह्मा ने भूत, भविष्य और वर्तमान में ऐसा

हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः ।
शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः ।
तस्याऽऽसन्यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥
पिबत स्नात खादध्वमिति यत्रोच्यते जनाः ।
यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः ।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥
एताँल्लब्ध्वा वरानिष्टाञ्शिबिः काले दिवं गतः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

प्रतापी कोई राजा अपनी सृष्टि में नहीं देख पाया, जो महाराज शिबि के कार्यभार को सँभाल सके। नरपति शिबि ने अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे, जिनमें सब प्रार्थियों की इच्छाएँ पूर्ण की गई थीं॥८।९॥उन यज्ञों में खम्भे (यूप), आसन, घर, दीवार, फाटक आदि सब सुवर्ण के थे। खाने-पीने की सब सामग्री स्वादिष्ट बनी थी। हजारों-लाखों की संख्या में प्रियवादी विद्वान् ब्राह्मण उपस्थित हुए थे। यज्ञस्थल में दुग्ध-दही के तालाब भरे हुए थे,अन्न के पर्वत के समान ढेर लगे थे। नाना प्रकार की खाने-पीने की वस्तुएँ भरी पड़ी थीं। चारों ओर यही सुन पड़ता था "कि स्नान करो, खाओ, पियो" उन दानी राजा के धर्मकार्यों से सन्तुष्ट होकर रुद्रदेव ने यह कहकर उनको वरदान दिया था कि हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सम्पत्ति, श्रद्धा, कीर्त्ति, धर्म-कर्म, सब प्राणियों का तुम पर स्नेह का भाव और स्वर्ग अक्षय हो। इस प्रकार इच्छा के अनुरूप वरदान प्राप्त करके नरपति शिबि भी, समय आने पर, स्वर्गलोक को गये। हे सृञ्जय ! सत्य, तप, दया और दान में तुमसे अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा राजा शिबि को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा। अतएव तुम उस पुत्र के लिए वृथा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ किये, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया॥१०।१५॥

द्रोणपर्व का अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

अथ एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

नारद उवाच—रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥
असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि ।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात्पितुरच्युतः ॥ २ ॥

उनसठवाँ अध्याय ॥ ५९ ॥

नारद ने कहा—हे महाराज ! हमने सुना है कि राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को भी एक दिन मृत्यु के वश होना पड़ा। सब प्रजा महात्मा रामचन्द्र को अपने सगे पुत्र से भी बढ़कर प्यार करती थी।

वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः ।
जघान च जनस्थाने राक्षसान्मनुजर्षभः ॥ ३ ॥
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश ।
तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम् ।
तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।
सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥
व्याप्य कृत्स्नं जगत्कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विविधं राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं सजारूथ्यमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९ ॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥
क्षुत्पिपासेऽजयद्रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥
अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ १२ ॥

सब गुणों से अलंकृत महातेजस्वी रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा के अनुसार स्त्री के साथ चौदह वर्ष तक वनवास किया। वहाँ जनस्थान में रहते समय वहाँ के निवासी तपस्वियों की रक्षा के लिए उन्होंने चौदह सहस्र राक्षसों को मारा॥३।४॥वहीं रहने के समय लक्ष्मण और राम दोनों भाइयों को माया से मोहित करके राक्षसराज रावण, राम की प्यारी पत्नी, सीता को हर ले गया। महापराक्रमी श्रीरामचन्द्र ने रावण के उस अपराध से अत्यन्त कुपित होकर उस पर चढ़ाई कर दी और अन्त को उस शत्रुओं से न हारने-वाले, देवता-दैत्यों के लिए अवध्य, देव-ब्राह्मण-वैरी दुरात्मा रावण को और उसके वंश भर को युद्धभूमि में मार डाला॥४।७॥प्रजा के हितैषी, देवर्षिगण-सेवित, देवता आदि के द्वारा सम्मानित रामचन्द्र की पवित्र उज्ज्वल कीर्ति अब तक पृथ्वीमण्डल भर में व्याप्त हो रही है। सब प्राणियों के हितैषी महात्मा रामचन्द्र ने बहुविध राज्य प्राप्त करके धर्म के अनुसार प्रजा का पालन किया था। उन्होंने महायज्ञ अश्वमेध किया। घृतधारा आदि से इन्द्र तृप्त कर दिये गये थे। रामचन्द्र ने और भी कई प्रकार के यज्ञ किये

नाऽह्रीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ।
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १३ ॥
पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदाऽनर्थाश्च नाऽभवन् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।
वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्त्तं हुतमेव च ।
अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
नाऽप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाऽकाले ज्वलनोऽदहत् ।
अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाऽभवंस्तदा ॥ १७ ॥
शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाऽभवन् ।
स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।
सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ।
श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
आजानुबाहुः सुभुजाः सिंहस्कन्धो महाबलः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।
रामो रामो राम इति प्रजानामभवत्कथा ॥ २२ ॥

॥७।१०॥यज्ञकाल में भूख प्यास को जीतकर वे सब प्रकार की व्याधियों से मुक्त अर्थात् नीरोग थे। असाधारण गुणवान् और अपने तेज से प्रकाशमान रामचन्द्र उस समय सब प्राणियों से बढ़कर शोभायमान हुए। महात्मा राम का राज्य ऐसा था कि पृथ्वी पर ऋषि, देवता और मनुष्य एकत्र रहा करते थे। प्राणियों के शरीर में तेज, प्राण, अपान, उदान और समान वायु की कमी न थी॥११।१३॥सब तेजस्वी पदार्थ प्रकाशमान थे, कोई निस्तेज नहीं दिखाई पड़ता था। कभी कोई अनर्थ या अनिष्ट नहीं होता था। सब प्रजा पूर्ण आयु का उपभोग करती थी। कोई युवाअवस्था में नहीं मरता था। वेदोक्त विधि के अनुसार दिये गये विविध हव्य, कव्य, निष्पूर्त और आहुत सामग्री को देवगण प्रसन्नता के साथ ग्रहण करते थे। रामचन्द्र के राज्य में डाँस मच्छर और खूनी जानवर आदि का उत्पात नहीं था। न तो कोई जल में डूबता था और न कोई अग्नि में जलकर मरता था। राज्य भर में कोई धर्महीन, लोभी या मूर्ख देखने को नहीं था। सब वर्णों की प्रजा सदा सज्जनयोग्य अपने-अपने इष्ट कार्य में लगी रहती थी और अपने-अपने कर्तव्य का पालन करती रहती थी॥१४।१८॥जिस समय जनस्थान में राक्षसों ने स्वाहा स्वधा और पूजा का लोप करना प्रारम्भ कर दिया था उस समय महात्मा रामचन्द्र ने ही उन्हें मारकर पितरों और देवताओं को स्वाहा-स्वधा और पूजा फिर दिलाई थी। रामचन्द्र के राज्यकाल में मनुष्यों के सहस्र ( अर्थात् बहुत ) पुत्र होते

रामाद्रामं जगद्भूद्रामे राज्यं प्रशासति ।
चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाऽष्टधा ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

थे और सब सहस्र वर्ष तक जीवित रहते थे। बड़े को छोटे का श्राद्ध नहीं करना पड़ता था॥१८।२०॥श्याम-वर्ण, लाल नयनोंवाले, मत्त हाथी के समान पराक्रमी, सिंह-स्कन्ध, आजानुबाहु, बली, सबके हितैषी राम ने युवा रहकर ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य किया। उनके राज्यकाल में सब प्रजा राम का ही नाम जपा करती थी और सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त सुन्दर हो रहा था। महात्मा रामचन्द्र ने अन्त को अपने दो पुत्रों और छः भतीजों को राज्य बाँट दिया। उसके पश्चात् अवध भर के स्वेदज, अण्डज, उद्भिद् और जरायुज जाति के चतुर्विध प्राणियों को साथ लेकर वे स्वर्ग को चले गये॥२०।२४॥हे सृञ्जय ! तप, सत्य, दया और दान में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से कहीं अधिक पुण्यात्मा महात्मा रामचन्द्र को भी मृत्यु की मर्यादा माननी पड़ी है। अतएव अब तुम उस पुत्र के लिए वृथा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ किया न दक्षिणा दी और न वेदाध्ययन ही किया॥२४।२५॥

—०—

द्रोणपर्व का उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

नारद उवाच— भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥ १ ॥
यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥
सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥
सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः ।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥ ४ ॥
तेनाऽऽक्रान्ता जनौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् ।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याऽङ्के निषसाद ह ॥ ५ ॥

साठवाँ अध्याय ॥ ६० ॥

नारद ने कहा महाराज भगीरथ बड़े प्रतापी थे; पर उन्हें भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा। भगीरथ ने इतने यज्ञ किये थे कि उनके यज्ञों के सुवर्ण के खम्भे गङ्गा के तट पर दूर-दूर तक थे। उन्होंने वीर राजाओं और राजपुत्रों को पराजित करके सुवर्ण के आभूषणों से अलङ्कृत दस लाख सुन्दरी कन्याएँ ब्राह्मणों को दान की थीं। वे कन्याएँ एक-एक रथ पर बैठी हुई थीं और प्रत्येक रथ में चार-चार उत्तम अलङ्कृत घोड़े

तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाऽभवत्पुरा ।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत्तदा ॥ ६ ॥
तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥ ७ ॥
भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८ ॥
तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलंकृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥ ९ ॥
यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्राऽऽत्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राऽददद्वशी ॥ १० ॥
नाऽदेयं ब्राह्मणस्याऽऽसीद्यस्य यत्स्यात्प्रियं धनम्
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥
येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनाऽवस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वाराजमीश्वरम् ॥ १२ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

जुते हुए थे। प्रत्येक रथ के पीछे सुवर्णमालाभूषित सौ हाथी थे। प्रत्येक हाथी के साथ सहस्र घोड़े और प्रत्येक घोड़े के साथ सुवर्णालङ्कृत सौ गउएँ थीं। गउओं के साथ बहुत सी बहुमूल्य बकरियाँ अथवा भेड़ें थीं॥१।४॥राजा भगीरथ के भारी दक्षिणा देने के समय इतनी भीड़ हुई कि उस भीड़ के आक्रमण से व्यथित और व्याकुल होकर भगवती गङ्गा उन राजा की गोद में बैठ गईं। तभी से वे, भगीरथ की कन्या के अर्थ में भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हुई हैं। पुत्र के समान ही गङ्गा ने भगीरथ के पुरखों को नरक से उबारा है। भगवती भागीरथी जिस स्थान पर राजा भगीरथ की जाँघ पर बैठ गई थीं, वह स्थान उर्वशी-तीर्थ के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। हे सृञ्जय! देवता, मनुष्य और पितृगण के आगे सूर्यसदृश तेजस्वी मधुरभाषी गन्धर्वगण इस गाथा को गाते हैं॥५।६॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार भगवती गङ्गा ने इक्ष्वाकुकुल-चूड़ामणि, बहुत बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों के करनेवाले, महात्मा भगीरथ को अपना पिता बनाया है। भगीरथ की यज्ञशाला को इन्द्र और वरुण आदि लोकपाल सुशोभित करते थे और सब प्रकार के यज्ञ के विघ्नों को मिटाते थे। ब्राह्मण लोग जहाँपर जिस वस्तु को माँगते थे वहींपर उसी समय वह वस्तु उन्हें भगीरथ राजा देते थे।कोई ऐसी वस्तु नहीं थी, जिसे राजा ब्राह्मणों को अदेय समझते हों। वे महात्मा अन्त को ब्राह्मणों के प्रसाद से ब्रह्मलोक को गये॥७।११॥मरीचिप महर्षिगण, मोक्ष और स्वर्ग की प्राप्ति के लिए, सूर्य के समान ब्रह्मविद्या और कर्मकाण्ड में निपुण महात्मा भगीरथ के समीप आते और उनकी उपासना करते थे॥१२॥हे सृञ्जय! सत्य, दया, दान और तप में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा भगीरथ भी मृत्यु से नहीं बचे। इस कारण

यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।
राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥
येऽपश्यन्भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।
पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥ १० ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

दिलीप ने रथ पर चढ़कर जल के ऊपर युद्ध किया था; उनके रथ के पहिये जल में नहीं डूबते थे। यह एक अद्भुत कार्य था, जिसे अन्य राजा लोग नहीं कर सकते थे। दिलीप के अतिरिक्त यह अद्भुत क्षमता और किसी में नहीं थी। दृढ़धनुर्द्धर, सत्यवादी, बहुत दक्षिणा देकर यज्ञ करनेवाले राजा दिलीप के दर्शन भर जिन मनुष्यों ने किये थे उन्हें भी स्वर्गलोक प्राप्त हुआ था राजा दिलीप के महल में सदैव धनुष की डोरी का शब्द, वेदपाठ की ध्वनि और भोजन करो, खाओ, पियो इत्यादि का शब्द सुनाई पड़ता था॥७।११॥हे सृञ्जय! वे तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ सत्यवादि, तपस्वी, दयालु और दानी तथा तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा राजा दिलीप भी मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बचे। इस कारण अब तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक मत करो जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया॥११।१२॥

द्रोणपर्व का इकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

नारद उवाच—मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥
यं देवावश्विनौ गर्भात्पितुः पूर्वं चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन्राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ॥ २ ॥
धूमं दृष्ट्वाऽगमत्तत्र पृषदाज्यमवाप सः ।
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
गर्भाद्धि जहतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ ।
तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥

बासठवाँ अध्याय ॥ ६२ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय! सुनने में आता है कि युवनाश्व के पुत्र और सब देवताओं, दानवों और मनुष्यों को जीतनेवाले प्रतापी राजा मान्धाता को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना पड़ा था। वे अपने पिता की कोख से उत्पन्न हुए थे और स्वयं अश्विनीकुमारों ने उन्हें पिता के पेट से निकाला था। उसका वृत्तान्त यों है कि मान्धाता के पिता युवनाश्व एक समय शिकार खेलने के लिए वन में गये थे। वहाँ

अन्योन्यमब्रुवन्देवाः कमयं धास्यतीति वै ।
मामेवाऽयं धयत्वग्रे इति ह स्माऽऽह वासवः ॥ ५ ॥
ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत्पयोऽमृतम् ।
मां धास्यतीति कारुण्याद्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥ ६ ॥
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याऽद्भुतं कृतम् ।
ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
तस्याऽऽस्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चाऽस्रवत्
अपिबत्पाणिमिन्द्रस्य सा चाऽप्यह्नाऽभ्यवर्धत ॥ ८ ॥
सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान् ।
इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥
धर्मात्मा धृतिमान्वीरः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत् ।
उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ।
सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥
अददद्रोहितान्मत्स्यान्ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते ।
हैरण्यान्योजनोत्सेधानायतान्शतयोजनम् ॥ १३ ॥

उनके वाहन थक गये और उन्हें स्वयं भी तृषा लगी। दूर से यज्ञ का धुआँ देखकर वे एक यज्ञशाला में पहुँचे। वहाँ उन्हें कलश में रक्खा हुआ मन्त्रों से पवित्र "पृषदाज्य" प्राप्त हुआ। वे उसी को पी गये। उसके प्रभाव से युवनाश्व के सूर्य-सदृश तेजस्वी गर्भ रह गया॥१।३॥देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों ने राजा की यह दशा देखकर, उनके प्राणों की रक्षा के लिए उनकी कोख को फाड़कर एक परम सुन्दर कुमार बाहर निकाला, और उसे राजा की गोद में बिठा दिया। देवतुल्य यशशाली नये कुमार को पिता की गोद में बैठे देखकर परस्पर कहने लगे कि यह अभी का उत्पन्न हुआ बालक क्या पीकर जियेगा? तब इन्द्र ने कहा—ये बालक मुझको पियेगा। इतना कहते ही इन्द्र की उँगलियों में अमृतमय दुग्ध उत्पन्न हो गया। इन्द्र ने करुणा करके कहा था कि यह बालक मेरी उँगलियाँ पियेगा; सो उनके "मान्धाता" इस कथन के अनुसार देवताओं ने युवनाश्व के पुत्र का नाम मान्धाता ही रख दिया॥४।७॥अद्भुत नामवाले "मान्धाता" बालक के मुख में इन्द्र के हाथ से दूध और घी की धाराएँ गिरने लगीं। इन्द्र का हाथ पीने के कारण मान्धाता में दिव्य शक्ति का सञ्चार हुआ और वे नित्य प्रति शीघ्रता के साथ बढ़ने लगे। वे बारह दिन में बारह वर्ष के बालक के समान हो गये। महापराक्रमी मान्धाता ने एक ही दिन में सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को जीत लिया॥७।१०॥धर्मात्मा, धीर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और महापराक्रमी मान्धाता ने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और नृग आदि बड़े-बड़े पराक्रमी नरपतियों को बाहुबल और धनुष की सहायता से

बहुप्रकारान्सुस्वादून्भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् ।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥
भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः ।
घृतह्रदाः सूपपङ्का दधिफेना गुडोदकाः ॥ १५ ॥
रुरुधुः पर्वतान्नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः ।
देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥
विप्रास्तत्राऽऽगताश्चाऽऽसन्वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ब्राह्मणा ऋषयश्चाऽपि नाऽऽसंस्तत्राऽविपश्चितः॥ १७ ॥
समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः ।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामाऽस्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥
गतः पुण्यकृतां लोकान्व्याप्य स्वयशसा दिशः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ २० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

जीत लिया। जहाँ से सूर्य का उदय होता है और जहाँ पर उनका अस्त होता है वहाँ से वहाँ तक युवनाश्व के पुत्र महाराज मान्धाता का क्षेत्र कहलाता है। मान्धाता ने सौ अश्वमेध और इतने ही राजसूय यज्ञ किये थे। उन्होंने यज्ञ की दक्षिणा में ब्राह्मणों को सुवर्ण-पूर्ण रोहित और मत्स्य देश दान किये थे, जो बहुत ऊँचे और श्रेष्ठ समझे जाते थे। उनके भीतर पद्मराग मणियों की खानें थीं॥१०।१३॥उनके यज्ञ में नाना प्रकार के भक्ष्य-भोज्य अन्नों के पर्वत ऐसे ऊँचे, ढेर लगे हुए थे। ब्राह्मणों के अतिरिक्त जो और लोग आये हुए थे वे भी उन स्वादिष्ट आहारों से तृप्त होकर परम आनन्द को प्राप्त हुए थे। उस यज्ञशाला में अनेक प्रकार की खाने-पीने की सामग्रियों के पर्वताकार ढेर लगे थे। घी के कुण्ड, दही का फेन, विविध भोज्य पदार्थों की कीचड़ और गुड़ का जल जिनमें था ऐसी मधु-क्षीर-वाहिनी नदियाँ अन्न के पर्वतों को घेरे हुए थीं। उनके यज्ञ में असंख्य देवता, असुर, मनुष्य, नाग, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी आदि प्राणी आये थे। वेद और वेदाङ्ग के पण्डित ब्राह्मणों और ऋषियों का बड़ा भारी जमघट था। वहाँ कोई ऐसा न था, जो शास्त्रों का ज्ञाता न हो॥१४।१७॥महातेजस्वी मान्धाता समुद्रों समेत धन रत्न पूर्ण समग्र पृथ्वीमण्डल ब्राह्मणों को देकर और सब दिशाओं में अपनी पवित्र उज्ज्वल कीर्ति फैलाकर अन्त को स्वर्गवासी हुए। वे यह शरीर त्याग-कर अपने पुण्य से जीते हुए लोकों में गये॥१८। १९॥हे सृञ्जय! तप, सत्य, दया, दान में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा महाराज मान्धाता भी जब मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बचे तब तुमको अपने उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक न करना चाहिए, जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया॥१९।२०॥

—०—

द्रोणपर्व का बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥



अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

नारद उवाच--ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः ।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥
अब्राह्मणानां यद्वित्तं पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
तत्सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥
सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च ।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥
व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् ।
चतुर्धा व्यभजत्सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
देवारण्येषु सर्वेषु विजहाराऽमरोपमः ।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥
यदा नाऽभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित् ।
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम् ॥ ८ ॥

तिरसठवाँ अध्याय ॥ ६३ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय ! सुना जाता है कि महाराज नहुष के पुत्र ययाति भी मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बचे। उन महात्मा ने सौ अश्वमेध, सौ राजसूय, सौ वाजपेय, सहस्र पुण्डरीक याग, इतने ही अतिरात्र, असंख्य चातुर्मास्य, विविध अग्निष्टोम यज्ञ और बहुत दक्षिणावाले अन्य अनेक यज्ञ करके ब्राह्मणद्वेषी म्लेच्छों की सम्पत्ति और पृथ्वी जो कुछ थी सो सब उनसे छीनकर ब्राह्मणों को दे दी थी॥१।३॥राजा ययाति जिस समय पुण्य यज्ञ कर रहे थे उस समय पवित्र नदी सरस्वती, समुद्र, नदी, पर्वत आदि सब जल की जगह दुग्ध-दही देकर उनकी सहायता करते थे। ययाति ने देवासुर संग्राम के समय देवताओं की सहायता की थी और यज्ञ के समय सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के चार भाग करके चारों ऋत्विजों को दे दिये थे। उन्होंने बहुत से यज्ञ किये। उनके शर्मिष्ठा और (शुक्र की कन्या) देवयानी नाम की दो पत्नियाँ थीं, जिनके गर्भ से धर्मानुसार उन्होंने कई पुत्र उत्पन्न किये॥४।६॥ देवसदृश राजा ययाति, दूसरे इन्द्र की भाँति, अपनी इच्छा के अनुसार सब लोकपालों के उद्यानों में सैर किया करते थे। बहुत समय तक विषयभोग करने पर भी जब उनकी विषयवासना शान्त नहीं हुई तब वेद-शास्त्र के जाननेवाले राजा ययाति एक गाथा गाते हुए स्त्रियों सहित वन को चले गये। वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते समय ययाति ने जो गाथा गाई थी वह यह है कि "पृथ्वीमण्डल भर पर धान्य, यव, सुवर्ण, पशु, स्त्री आदि जितनी भोग की सामग्री है वह सब यदि

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नाऽलमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ९ ॥
एवं कामान्परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च ।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ ११ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

एक ही मनुष्य को भोग करने के लिए मिल जाय तो भी उसे तृप्ति नहीं होगी । यह जानकर मनुष्य को वैराग्यपूर्वक शान्ति का मार्ग ग्रहण करना चाहिए।" महाराज ययाति इस प्रकार विरक्त होकर, सब विषयों की वासना छोड़कर, धैर्यधारणपूर्वक वन को चले गये । वन को जाते समय उन्होंने छोटे बालक पूरु को राज्य सौंप दिया था॥७।१०॥हे सृञ्जय ! वन में जाकर हरि को भजते हुए अन्त समय वे भी मृत्यु के वशवर्ती हुए । तुमसे तप, दया, दान और सत्य में अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा महाराज ययाति को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा । इसलिए तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु का शोक न करो, जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेद ही पढ़ा॥११॥

द्रोणपर्व का तिरसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

नारद उवाच—नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ॥ १ ॥
जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः ।
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाऽशिवा गिरः ॥ २ ॥
बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च ।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्वा प्रासान्गतव्यथः ॥ ३ ॥
त एनं मुक्तसन्नाहाः प्रार्थयञ्जीवितैषिणः ।
शरण्यमीयुः शरणं तवाऽऽस्म इति वादिनः ॥ ४ ॥

चौंसठवाँ अध्याय ॥ ६४ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय ! सुनते हैं कि प्रतापी महाराज अम्बरीष को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा । राजा अम्बरीष ने अकेले ही दस लाख वीर राजाओं से युद्ध किया था । अस्त्र-शस्त्र के युद्ध में निपुण, घोरदर्शन वैरी राजाओं ने जय प्राप्त करने की अभिलाषा से युद्धभूमि में चारों ओर से कटु वचन कहते-कहते अम्बरीष को घेर लिया था । किन्तु अम्बरीष ने अपने बाहुबल, स्फूर्ति और अस्त्रबल से उन सबको परास्त कर दिया । उन शत्रुओं के छत्र, शस्त्र, ध्वजा, रथ, वाहन आदि को नष्ट कर दिया, बहुतों को मार भी डाला । इस प्रकार वे सब शत्रु अम्बरीष के अधीन हो गये । मृत्यु से जो शत्रु बच रहे थे वे अपने

स तु तान्वशगान्कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम्।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथाऽनघ ॥ ५ ॥
बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा ।
तस्मिन्यज्ञे तु विप्रेन्द्राः सन्तृप्ताः परमार्चिताः ॥ ६ ॥
मोदकान्पूरिकापूपान्स्वादुपूर्णांश्च शष्कुलीः ।
करम्भान्पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥
सूपान्मैरेयकापूपान्रागखाण्डवपानकान् ।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥ ८ ॥
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च ।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥ ९ ॥
मादनीयानि पापानि विदित्वा चाऽऽत्मनः सुखम्।
अपिबन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥
तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीवा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥
तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दशप्रयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥
हिरण्यकवचान्सर्वाञ्श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान्सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान्राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥

प्राण बचाने के लिए, कवच फेंककर "हम आपके शरणागत हैं" कहते हुए, अम्बरीष के आश्रय में आ गये॥१।४॥महाबलशाली इन्द्र-सदृश राजा अम्बरीष ने इस प्रकार सब राजाओं को अपने अधीन करके सारी पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लिया और फिर शास्त्रविधि के अनुसार सैंकड़ों यज्ञ किये। उन यज्ञों में जो लोग आये थ उनको अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन कराये गये थे। विधिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा की गई थी और वे लोग अच्छी तरह स्वादिष्ट, अनेक प्रकार के, लड्डू, पूरी, पुए, कचोड़ी, करम्भ (दही-चिउरा), पृथुमृद्वीक, अच्छी तरह बनाये गये विविध अन्न, कच्ची रसोई, मैरेयक (मदिरा), रागखाण्डव, शरबत, और अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, घी, मधु, दुग्ध, दही, जल, रसीले फल, कन्द मूल आदि विविध पदार्थ खा पीकर परम प्रसन्न होते थे। मद्य-पान को पापजनक जानकर भी सुखप्राप्ति के लिए बहुत से लोग इच्छानुसार मदिरा पीते थे और प्रसन्नतापूर्वक गाते बजाते थे॥५।१०॥मदिरा और अन्य नशों को खा-पीकर नशे में मस्त सहस्रों मनुष्य, अम्बरीष की प्रशंसा से पूर्ण, कविता और गाथा गाते और हर्ष के मारे नाचने लगते थे। हे राजेन्द्र! प्रतापी अम्बरीष ने अपने यज्ञों में बहुत दक्षिणा दी थी। उन्हों ने विद्वान् ब्राह्मणों को दस अयुत यज्ञ करानेवाले एक लाख ऐसे राजा दान किये थे, जो सुवर्ण के

सदण्डकोशनिचयान्ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चाऽपरे ॥ १५ ॥
यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

कवच, श्वेत छत्र और कलँगी से शोभित थे सुवर्णमय रथों पर सवार थे और जिनके साथ उनके सब अनुचर आदि भी थे । अम्बरीष ने यह अद्भुत ही काम किया जो दण्ड-कोष-सामग्रीसहित मूर्धाभिषिक्त सैकड़ों राजा और राजपुत्र दक्षिणा में दे डाले । महर्षियों ने प्रसन्न होकर कहा था कि राजा अम्बरीष ने जैसी अपरिमित दक्षिणा दी और अद्भुत यज्ञ किये, वैसी दक्षिणा न किसी ने दी होगी और न कोई आगे दे सकेगा॥११।१६॥हे सृञ्जय ! वे राजा अम्बरीष भी अन्त को मृत्यु के अधीन हुए । तप, सत्य, दया, दान में तुमसे बढ़े हुए और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा राजा अम्बरीष भी जब मृत्यु से नहीं बचे तब तुमको उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक नहीं करना चाहिए जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेदाध्ययन ही किया॥१७॥

—०—

द्रोणपर्व का चौसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

नारद उवाच—शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान्सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥
तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥ २ ॥
ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥
हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजाना कुमाराः शशिबिन्दवः ॥ ४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय ॥ ६५ ॥

नारद जी कहते हैं—हे सृञ्जय ! सुना जाता है कि महाप्रतापी राजा शशबिन्दु भी मृत्यु से नहीं बचे । सत्यविक्रमी श्रीमान् शशबिन्दु ने अनेक प्रकार के बड़े-बड़े यज्ञ करके देवताओं और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया था । शशबिन्दु के एक लाख रानियाँ थीं । एक-एक रानी के गर्भ से राजा के एक-एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे । वे राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी, वेदशास्त्रविशारद, हिरण्मय कवचों से भूषित और श्रेष्ठ धनुर्द्धर योद्धा थे । उन राजकुमारों ने भी पृथक्-पृथक् विधिपूर्वक बहुत से अश्वमेध यज्ञ और अन्य प्रकार के दस-दस लाख यज्ञ किये थे॥१।४॥ राजा शशबिन्दु ने स्वयं अश्वमेध करके उसकी दक्षिणा

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत्पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥
राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥
रथे रथे शतं चाऽश्वा बलिनो हेममालिनः ।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥
एतद्धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे ।
शशिबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥
वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे ।
ते तथैव पुनश्चाऽन्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥
भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः ।
तस्याऽश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥
तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम् ।
शशिबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

में वे सब अपने पुत्र ब्राह्मणों को दे डाले। प्रत्येक राजकुमार के साथ और भी बहुत कुछ सामान था। एक-एक राजपुत्र के साथ सौ-सौ रथ, हाथी, घोड़े और मणि-सुवर्ण आदि से अलङ्कृत कन्याएँ भी थीं। प्रत्येक कन्या के साथ सौ हाथी थे। प्रत्येक हाथी के साथ सौ रथ थे। प्रत्येक रथ के साथ सुवर्णमाल्य भूषित महाबली श्रेष्ठ सौ घोड़े थे। प्रत्येक घोड़े के साथ सहस्र गायें थीं। प्रत्येक गाय के साथ पचास भेड़ें थीं॥५। ८॥हे सृञ्जय! राजा शशबिन्दु ने अश्वमेध यज्ञ करके इस प्रकार ब्राह्मणों को अपार धन दिया था। साधारणत. लोगों के अश्वमेध यज्ञ में जितने लकडी के खम्भे होते हैं उतने ही लकड़ी के खम्भे तो शशबिन्दु के यज्ञ में थे ही, किन्तु उनके अतिरिक्त उतने ही सुवर्ण के खम्भे (यूप) भी थे। शशबिन्दु के महायज्ञ में इतनी सामग्री तैयार की गई थी कि कोस भर के ऊँचे, पर्वताकार, खाने-पीने की सामग्री के, तेरह ढेर खिला-पिला चुकने पर अन्त को बच रहे थे। उनके राज्यकाल में यह पृथ्वीमण्डल शान्ति से परिपूर्ण था; कहीं कोई विघ्न, अनर्थ या व्याधि नहीं देख पड़ती थी। सर्वत्र हृष्ट-पुष्ट मनुष्य दिखाई पड़ते थे। राजा शशबिन्दु बहुत समय तक इस प्रकार राज्य करके अन्त में स्वर्ग को चले गये॥९।११॥हे महाराज! तप, सत्य, दया, दान में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा प्रतापी महाराज शशबिन्दु भी जब मृत्यु से नहीं बच सके तब फिर तुम उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक क्यों करते हो, जिसने न यज्ञ किये, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया॥१२॥

—०—

द्रोणपर्व का पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

नारद उवाच—गयं चाऽऽमूर्त्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनो भवत् ॥ १ ॥
तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात्ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाऽविहिंस्याऽन्यान्धनमिच्छामि चाऽक्षयम्॥ ३ ॥
विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥ ४ ॥
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चाऽस्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥
तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत्सर्वं धर्मेणाऽरीनजीजयत् ॥ ६ ॥
स दर्शपौर्णमासीभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च ।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चाऽवाप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सराञ्शतम् ।
गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाऽप्ययुतानि षट् ।
उत्थायोत्थाय स प्रादात्परिसंवत्सराञ्शतम् ॥ ९ ॥

छासठवाँ अध्याय ॥ ६६ ॥

नारद जी ने कहा—हे सृञ्जय! सुना जाता है कि अमूर्तरया के पुत्र महाराज गय को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा। उन महात्मा ने सौ वर्ष तक हवन से बचा हुआ अन्न ही खाकर जीवन धारण किया था। महाराज गय के इस उत्कृष्ट नियम को देखकर अग्निदेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और वरदान देने के लिए उनके समीप आकर कहने लगे—"मैं प्रसन्न हूँ, मुझसे वरदान माँगो"। राजा गय ने अग्निदेव से कहा—हे अग्निदेव! मेरी इच्छा है कि मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजन के प्रसाद से सब वेदशास्त्रों का मर्म जान जाऊँ। औरों की हिंसा न करके मैं अपने धर्म से अक्षय धन का अधिकारी हो जाना चाहता हूँ। मैं नित्य श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को धन दे सकूँ और अपने वर्ण की सुन्दरी धर्मपत्नियों के गर्भ से मेरे उत्तम सन्तान उत्पन्न हो। सदा धर्म में ही मेरा मन लगा रहे और धर्मपालन में कभी कोई विघ्न न हो"॥१।५॥राजा गय के ये वचन सुनकर अग्निदेव बहुत ही सन्तुष्ट हुए और इच्छानुरूप वरदान देकर अन्तर्द्धान हो गये। राजा गय ने अग्निदेव की कृपा और वरदान के प्रभाव से अभिलषित विषय पाकर अपने शत्रुओं को परास्त किया। इसके उपरान्त उन्होंने सौ वर्ष की दीक्षा लेकर धर्मानुसार दर्शपौर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य आदि अनेक श्रेष्ठ यज्ञ किये और ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया। सौ वर्ष तक नित्य प्रातःकाल उठकर

नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥
सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् ।
विप्रेभ्यः प्राददद्राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥
जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
गयस्याऽऽसन्समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥
सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥
ससमुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥ १४ ॥
भूतग्रामाश्च विविधाः सन्तृप्ता यज्ञसम्पदा ।
गयस्य सदृशो यज्ञो नाऽस्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥ १५ ॥
षट्त्रिंशद्योजनायामा त्रिंशद्योजनमायता ।
पश्चात्पुरश्चतुर्विंशद्वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥
गयस्य यजमानस्य मुक्ता वज्रमणिस्तृता ।
प्रादात्स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥ १७ ॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चाऽन्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।
यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥
कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥

थे ब्राह्मणों को एक लाख सत्तर हजार गौएँ, दस हजार घोड़े और एक लाख निष्क सुवर्ण दान करते थे। प्रति नक्षत्र में नक्षत्र-दक्षिणा देते और सोम तथा अङ्गिरा के समान बहुत से विविध यज्ञ करते थे॥६।१०॥गय राजा ने अश्वमेध यज्ञ के अन्त में ब्राह्मणों को सुवर्ण की वेदियाँ (चबूतरे) बनवाकर दान की थीं। उन वेदियों में असंख्य मणि-रत्न भी थे। उस यज्ञ में बहुत से रत्नों से शोभित, सब प्राणियों के मन को मोहनेवाले, बहुमूल्य, सुवर्ण के खम्भे (यूप) थे। महाराज गय ने यज्ञ के समय में प्रसन्न-चित्त ब्राह्मणों और अन्यान्य प्राणियों को उत्तम भोजन कराये थे। समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, नगर, देश, स्वर्ग और आकाशमण्डल में रहनेवाले अनेक प्रकार के सब जीव महाराज गय के यज्ञ में सब प्रकार से तृप्त और सन्तुष्ट होकर कहने लगे थे कि महाराज गय के यज्ञ के समान और किसी का यज्ञ कभी नहीं हुआ। महात्मा गय के यज्ञ की वेदी तीस योजन चौड़ी, छत्तीस योजन लम्बी, चौबीस योजन आगे और पीछे विस्तृत थी॥११।१६॥उसमें असंख्य मणि, मोती, हीरे स्थान-स्थान पर जगमगा रहे थे। महाराज गय ने ब्राह्मणों को वस्त्र, आभूषण और पहले कहे अनुसार दक्षिणाएँ दी थीं। उनका यज्ञ समाप्त होने पर सबको, दे-लेकर, खिला-पिलाकर भोजन-सामग्री के पच्चीस पर्वत बराबर ढेर, दुग्ध और रस की कई नदियाँ और वस्त्रों तथा आभूषणों की कई

यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिपु लोकेपु विश्रुतः ।
वटश्चाऽक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

ढेरियाँ बच रही थीं । ऐसा अद्भुत यज्ञ करने के ही प्रभाव से महाराज गय की कीर्त्ति तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । जहाँ गय ने यज्ञ किया था उस स्थान पर अक्षय-वट और पवित्र ब्रह्मसरोवर अब तक उपस्थित हैं । इन्हीं के कारण गय का नाम जगत् में प्रसिद्ध हो रहा है ॥१७।२०॥ हे सृञ्जय ! तप, सत्य, दया, दान में तुमसे अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा धर्मात्मा महाराज गय को भी अन्त को मृत्यु के वश होना पड़ा । इसलिए अब तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु का शोक मत करो, जिसने न यज्ञ ही किया, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही पढ़ा॥२१॥

— ० —

द्रोणपर्व का छासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्याय. ॥ ६७ ॥

नारद उवाच – सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन्सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
गृहानभ्यागतान्विप्रानतिथीन्परिवेषकाः ।
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥
न्यायेनाऽधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥
उपस्थिताश्च पशवः स्वयं यं शंसितव्रतम् ।
बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत्सत्रयाजिनम् ॥ ४ ॥
नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः ।
तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत्पुरा ॥ ५ ॥
ब्राह्मणेभ्योऽददन्निष्कान्सौवर्णान्स प्रभावतः ।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥ ६ ॥

सड़सठवाँ अध्याय ॥ ६७ ॥

नारद जी कहते हैं—हे सृञ्जय! सुना जाता है कि महामति रन्तिदेव की भी मृत्यु हुई । दानी रन्तिदेव राजा के यहाँ रसोई बनाने और परोसनेवाले दो लाख अनुचर थे । ये लोग राजा के यहाँ आनेवाले अतिथि-अभ्यागतों और भूखे-प्यासों के लिए नित्य सुन्दर रसोई बनाते और उनके आगे परोसते थे । रन्तिदेव ने न्याय से उपार्जित किया हुआ बहुत सा धन ब्राह्मणों को दे डाला था । उन्होंने वेद पढ़े थे और क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध करके शत्रुओं को वश में कर लिया था॥१।३॥रन्तिदेव के यज्ञदीक्षा लेने

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान्निष्कान्सहस्रशः ।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ७ ॥
अल्पं दत्तं मयाऽद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत्सम्प्रदास्यति ॥ ८ ॥
द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत् ।
भविष्यति न सन्देह एवं राजाऽददद्वसु ॥ ९ ॥
सहस्रशश्च सौवर्णान्वृषभान्गोशतानुगान् ।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥ १० ॥
अध्यर्धमासमददद्ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ११ ॥
ऋषिभ्यः करकान्कुम्भान्स्थालीः पिठरमेव च ।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १२ ॥
वृक्षांश्च विविधान्दद्यादन्नानि च धनानि च ।
सर्वं सौवर्णमेवाऽऽसीद्रन्तिदेवस्य धीमतः ॥ १३ ॥
तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥ १४ ॥
नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १५ ॥

पर, स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से, बहुत से यज्ञपशु स्वयं उनके समीप आ जाते थे। उनके अग्निहोत्र यज्ञ में इतने पशु मारे गये थे कि उनके रसोईघर से, मारे गये पशुओं के चमड़ा से, जो रक्त निकला उससे अत्यन्त पवित्र श्रेष्ठ चर्मण्वती नदी प्रकट हुई। महाराज रन्तिदेव बारम्बार यह कहते हुए कि "तुमको निष्क देता हूँ, तुमको निष्क देता हूँ" ब्राह्मणों को सहस्रा निष्क दान करते थे और इतने पर भी जो लोग बच रहते थे उन्हें सान्त्वना देकर सुवर्ण निष्क ही देते थे। वे ऐसे दानी थे कि एक एक दिन में सहस्रा लाखों करोड़ों निष्क देकर भी यह खेद किया करते थे कि मैंने आज थोड़ा ही दान किया, अब और ब्राह्मण कहाँ मिलें जिनको मैं दान दूँ। दान लेनेवाले ब्राह्मणों को दान न देने से मुझे चिरस्थायी महादुःख होगा,—यही सोचकर राजा बहुत सा द्रव्य दान किया करते थे। हे सृञ्जय ! सहस्र सुवर्ण के बैल, सौ गायें और एक सौ आठ सुवर्णमुद्रा इतने को एक निष्क कहते हैं ॥४।१०॥ राजा रन्तिदेव सौ वर्ष तक प्रत्येक पक्ष में ऐसे करोड़ों निष्क ब्राह्मणों को देते थे। उनके यहाँ सब सामान सुवर्ण का था। वे ऋषियों, ब्राह्मणों को सुवर्ण की बनी अग्निहोत्र की सामग्री, यज्ञ की सामग्री, करवे ( करक ), घड़े, थाली, पीढ़े, शय्या, आसन, सवारियाँ, महल, मकान, विविध फल फूलों के वृक्ष और अन्न आदि सामग्री दान किया करते थे॥११।१३॥ रन्तिदेव की उस अलौकिक समृद्धि और सम्पत्ति को देखकर पुराण इतिहास के ज्ञाताओं ने यह गाथा गाई है कि "महाराज रन्तिदेव का ऐसा विभव और धन-सम्पत्ति कुबेर के भवन में भी नहीं देख पड़ती, मनुष्यों

व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।
सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥ १६ ॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः ।
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १७ ॥
सूपं भूयिष्ठमश्नध्वं नाऽद्य मांसं यथा पुरा ।
रन्तिदेवस्य यत्किञ्चित्सौवर्णमभवत्तदा ॥ १८ ॥
तत्सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १९ ॥
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान्द्विजोत्तमाः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २० ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मापुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

के यहाँ की कौन कहे ! महाराज रन्तिदेव के भवन तो सुवर्ण रत्न की खान हैं।'' रन्तिदेव के भवन में इतने अधिक अतिथि-अभ्यागत आते थे कि उनके भोजन के लिए इक्कीस सहस्र गायें मारी जाती थीं॥१४। १७॥सुन्दर चमकीले मणिकुण्डल पहने हुए रसोइये उत्तम-उत्तम भोजन तैयार करके अतिथियों से पुकार-पुकारकर कहते थे कि 'अच्छी तरह मांस आदि भक्षण कीजिए।आज का मांस पहले का सा नहीं बना है, बहुत बढ़िया बना है।'' महाराज रन्तिदेव के यहाँ जितना सुवर्ण था वह सब उन्होंने यज्ञ करते समय ब्राह्मणों को बाँट दिया था। उनके यज्ञों में देवता प्रत्यक्ष आकर हव्य ग्रहण करते थे, पितृगण कव्य ग्रहण करते थे और ब्राह्मण याचक आदि सब यथेष्ट पदार्थ पाकर प्रसन्न होते थे॥१७।२०॥हे सृञ्जय ! महाराज रन्तिदेव तप, दया, दान और सत्य में तुमसे बढ़े हुए और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा थे; तथापि उन्हें भी मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा। इसलिए अब तुम अपने पुत्र की मृत्यु के लिए वृथा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ ही किये, न दक्षिणा ही दी और न वेद ही पढ़ा॥२१॥

—०—

द्रोणपर्व का सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नारद उवाच—दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान्यः शिशुर्वने ॥ १ ॥
हिमावदातान्यः सिंहान्नखदंष्ट्रायुधान्वली ।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष ववन्ध च ॥ २ ॥

अड़सठवाँ अध्याय ॥ ६८ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय ! महाप्रतापी दुष्यन्त के पुत्र भरत को भी मरना ही पड़ा। वे महाप्रतापी बाल्यावस्था में ही वन में ऐसे अद्भुत कार्य करते थे जो और मनुष्यों के लिए सर्वथा दुष्कर थे। वे बर्फ के समान

क्रूरांश्चोग्रतरान्व्याघ्रान्दमित्वा चाऽकरोद्वशे ।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ॥ ३ ॥
व्यालादींश्चाऽतिबलवान्सुप्रतीकान्गजानपि ।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्शुष्कास्यानकरोद्वशे ॥ ४ ॥
माहिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह ।
सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद्बलात् ॥ ५ ॥
बलिनः सृमरान्खड्गान्नानासत्त्वानि चाप्युत ।
कृच्छ्रप्राणं वने बध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥
तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनाऽस्य कर्मणा ।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि ॥ ७ ॥
सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान् ।
त्रिशताश्वान्सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि ।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥ १० ॥
इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान्धनैः ।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥

बल और नख तथा दाढ़ ही जिनके शस्त्र हैं ऐसे महाबली सिंहोंको अपने बाहुबल से पछाड कर खींचते हुए ले आते और बाँधते थे । क्रूरप्रकृति अत्यन्त उग्र व्याघ्रों को हराकर वश में कर लेना उनके बायें हाथ का कर्तव्य था । मैनसिल और लाख के रङ्ग की लाल बूँदों से युक्त जिनकी खाल होती है ऐसे चीतों को पकड़कर वे वश में कर लेते थे॥१।२॥बहुत से विषैले सर्पो और बली गजराजों को पकड़कर उनके दाँत उखाड़ डालते थे और उन सूखे मुखवाले वशवर्ती जीवों को अधमरा करके छोड़ देते थे। बड़े-बड़े बली भैंसों को पकड़कर खींचते थे और सैंकड़ों बल-दृप्त सिंहों को पकड़कर खींचते थे । सृमर, गैंडे आदि अनेक बली वनजन्तुओं को पकड़ कर लाते, बान्धते और वश में करके छोड़ देते थे। उन जीवों की जान भर बच जाती थी । तपोवन के रहनेवाले ऋषियों ने बालक भरत के ऐसे अद्भुत कर्म देखकर उनका नाम 'सर्वदमन' रख दिया था । भरत की माता शकुन्तला उन्हें सदा मना किया करती थीं कि हे पुत्र! इस प्रकार वन के जीवों को क्लेश मत दो॥४।७॥महाराज भरत जब बड़े हुए तब उन्होंने यमुना के तट पर सौ अश्वमेध, सरस्वती नदी के तट पर तीन सौ अश्वमेध और गङ्गा के तट पर चार सौ अश्वमेध यज्ञ किये । इसके पश्चात् उन्होंने फिर सहस्र अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये और उनमें ब्राह्मणों को बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दीं । भरत जी ने अग्निष्टोम, अतिरात्र, विश्वजित् और सहस्रों वाजपेय यज्ञ करके देवताओं को सन्तुष्ट कर दिया । राजा भरत ने इस प्रकार असंख्य यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अपरिमित धन देकर

जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ।
यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः ।
अलंकृतान्भ्राजमानान्सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥
हैरण्यानश्वान्द्विरदान्रथानुष्ट्रानजाविकम् ।
दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥ १४ ॥
ग्रामान्गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान् ।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥
चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

प्रसन्न कर दिया। उन्होंने यज्ञ की दक्षिणा में आचार्य कण्व को एक सहस्र विशुद्ध सुवर्ण के बने हुए कमल दिये थे॥८।१२॥उनके यज्ञ में सुवर्ण के बने हुए यूप इतने बड़े थे कि उनका घेरा सौ व्याम (व्याम = चार हाथ) का था। इन्द्र आदि देवताओं ने आकर ब्राह्मणों के साथ उनके यूप की स्थापना की थी। राजा भरत ने अलङ्कारों से अलङ्कृत रत्नमण्डित सुवर्ण-शोभित असंख्य हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, बकरे, भेड़े, दासी-दास, धन, धान्य, बछड़ों सहित दुधार गायें, गाँव, घर, खेत, विविध वस्त्र और सैकड़ों करोड़ अयुत सुवर्णमुद्राएँ ब्राह्मणों को दान की थीं। वे चक्रवर्ती, शत्रुओं को जीतनेवाले, स्वयं अपराजित और उत्साही महात्मा भरत भी एक दिन मृत्यु के मुख में चले गये॥१२।१६॥हे सृञ्जय ! तुमसे बढ़कर तपस्वी, दानी, दयालु, सत्यवादी और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा भरत को भी जब मरना ही पड़ा तब तुम्हें अपने उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक कभी न करना चाहिए, जिसने न यज्ञ ही किया, न दक्षिणा ही दी, न वेद ही पढ़ा॥१६।१७॥

— ० —

द्रोणपर्व का अड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

नारद उवाच—पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यमभ्यषिञ्चन्साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥
यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन्पृथुः ।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय ॥ ६९ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय ! सुना जाता है कि राजा वेन के पुत्र महाराज पृथु को भी एक दिन मृत्यु के अधीन हो जाना पड़ा था। महर्षियों ने उनसे राजसूय यज्ञ कराया था और आपस में सम्मति करके, उसी अवसर पर, भारत के सम्राट् के पद पर उनका अभिषेक किया था। महाप्रतापी पृथु

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
ततो राजेति नामाऽस्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुक् ।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४ ॥
आसन्हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥
फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
तेषामासीत्तदाऽऽहारो निराहाराश्च नाऽभवन् ॥ ६ ॥
अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥
प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां नाऽभवत्तदा ।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥
तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाऽभवत् ॥ ९ ॥
तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् ।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पिताऽसि नः ॥ ११ ॥

ने अपने बाहुबल से पृथ्वीमण्डल के सब वीर राजाओं को परास्त कर दिया था । महर्षियों ने यह कहकर उनका सार्थक नामकरण किया था कि ये महाराज हम सबको प्रथित ( प्रसिद्ध ) करेंगे इसलिए इनका नाम पृथु होगा । ये हम प्राणियों की क्षत (शत्रुओं या डाकुओं-चोरों के आक्रमण से होनेवाले शस्त्रकृत घाव ) से रक्षा करेंगे इसलिए ये क्षत्रिय हैं और इनका क्षत्रिय पद सार्थक है । हे सृञ्जय ! महाराज पृथु को देखकर सब प्रजा ने कहा था कि हम सब इनके अनुरागी हैं, इसी से प्रजा-रञ्जन गुण होने के कारण वे राजा हुए॥१।३॥महाराज पृथु के राज्यकाल में यह पृथ्वी बिना जोते ही सब अन्न उत्पन्न करती थी और कामधेनु के समान प्रजा को उसकी इच्छानुसार वस्तुएँ देती थी। सब गायें कामधेनु थीं। कमल मधुपूर्ण रहते थे । कुश सुवर्णमय थे और उनका स्पर्श सुखदायक था । लोग उन्हीं के बने वस्त्र पहनते और उन्हीं की शय्या पर लेटते थे। कोई प्राणी भूखा नहीं रहता था, लोग वृक्षों के अमृततुल्य स्वादिष्ट मधुर फल खाते थे॥४।६॥उस समय के मनुष्य नीरोग और निर्भय थे; उनकी सब इच्छाएँ पूर्ण होती थीं। मनुष्य इच्छानुसार वृक्षों के तले या पर्वतों की कन्दराओं में रहते थे । उस समय पृथ्वी पर राष्ट्र और पुर आदि का विभाग नहीं हुआ था । सब प्रजा इच्छानुसार प्रसन्नतापूर्वक जहाँ चाहे वहाँ रहती थी । महाराज पृथु जब समुद्र-यात्रा करते तब जल स्तम्भन हो जाता था । इसी प्रकार पर्वत आदि भी उन्हें यथेष्ट मार्ग दे दिया करते थे। फाटक आदि के भीतर रथ जाते समय उनके रथ की ऊँची ध्वजा कभी नहीं टूटी॥७।९॥महात्मा

देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान्वरान् ।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्त्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥
तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः ।
शरांश्चाऽप्रतिमान्घोरांश्चिन्तयित्वाऽब्रवीन्महीम् ॥ १३ ॥
एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः कांक्षितं पयः ।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥ १४ ॥
वसुधोवाच—दुहितृत्वेन मां वीर सङ्कल्पयितुमर्हसि ।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥ १५ ॥
ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा ।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥ १६ ॥
साऽतिष्ठद्वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती ।
वत्सोऽभूत्पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाऽभवत्तदा॥ १७ ॥
छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् ।
उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥ १८ ॥
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा ।
दोग्धा चाऽऽसीत्तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥ १९ ॥
असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा ।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्राऽऽसीद्वत्सश्चाऽऽसीद्विरोचनः॥ २० ॥

प्रतापी पृथु एक समय अपनी सभा में सुखपूर्वक विराजमान थे, इसी समय वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, नाग, सप्तऋषि, पुण्यजन ( यक्ष ), गन्धर्व, अप्सरा, पितर आदि सब उनके समीप जाकर कहने लगे—हे महाराज! आप सम्राट हैं, क्षत्रिय हैं, हमारे रक्षक, पिता और राजा है। आप प्रभु है, इसलिए हम सब अनुगत प्रजा को हमारी इच्छा के अनुसार वर दीजिए, जिनसे तृप्त होकर हम लोग सदा सुख से रहें॥१०।१२॥तब महात्मा पृथु ने उन्हें यथेष्ट वर देना स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त अपना दिव्य आजगव धनुष और उग्र बाण लेकर, क्षण भर सोचकर, उन्होंने पृथ्वी से कहा—हे धरित्री! इधर आओ, तुम्हारा कल्याण हो। तुम शीघ्र इस प्रजा को, इच्छा के अनुरूप, दुग्ध दो। तब मैं प्रजा को, इसकी प्रार्थना के अनुसार अन्न देकर सन्तुष्ट करूँगा। और जो तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगी तो मैं अभी इन बाणों से तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा॥१३।१४॥पृथ्वी ने भयभीत होकर कहा—हे भद्र! मुझे आज से आप अपनी कन्या समझिए। हे वीर! आप वत्स, पात्र, दुहनेवाले और दुग्ध आदि की कल्पना कर दीजिए, तो मैं सबको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दे दूँगा। नारद जी कहते हैं—हे सृञ्जय! तब पृथु राजा ने गोरूपिणी पृथ्वी को दुहने का सब प्रबन्ध कर दिया। संसार के सब प्राणी निम्नलिखित प्रकार से पृथ्वी को दुहने लगे। सबसे पहले दुहने की इच्छा से वृक्ष आदि ( वनस्पति ) पृथ्वी के समीप आये। वत्सवत्सला गाय का रूप रक्खे हुए पृथ्वी, दुहनेवाले और दुहने के पात्र को चाहती हुई, खड़ी ही थी। वनस्पतियों में पुष्पित शाल वृक्ष

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले ।
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाऽभवत्पृथुः ॥ २१ ॥
अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुन्धरा ।
धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥ २२ ॥
सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाऽक्लिष्टकर्मभिः ।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ॥ २३ ॥
अन्तर्धानं चाऽऽमपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् ।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चाऽऽसीद्वृषध्वजः ॥ २४ ॥
पुण्यगन्धान्पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन् ।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ॥ २५ ॥
स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम् ।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धाऽन्तकस्तदा ॥ २६ ॥
एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट् ।
यैर्वर्त्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७ ॥
यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
सन्तर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥ २८ ॥
हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित्पार्थिवा भुवि ।
तान्ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे ॥ २९ ॥

बछड़ा बना, पाकर का पेड़ दुहनेवाला बना, कटे हुए वृक्ष का फिर पनप आना ही दुग्ध और उदुम्बर (गूलर) पात्र हुआ॥१५।१८॥पर्वत जब पृथ्वी को दुहने लगे तब उदयाचल बछड़ा बना और महापर्वत सुमेरु दुहनेवाला हुआ। उन्होंने रत्न और ओषधिरूप दुग्ध को प्रस्तरमय पात्र में दुह लिया। उसके पश्चात् सब देवताओं ने इन्द्र को बछड़ा और सूर्य को दुहनेवाला बनाकर प्रिय तेजोमय वस्तुओं को लकड़ी के पात्र में दुह लिया।असुरों ने विरोचन को बछड़ा और शुक्राचार्य को दुहनेवाला बनाकर आममय पात्र में मायारूप दुग्ध दुह लिया॥१८।२०॥मनुष्यों ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा और स्वयं महाराज पृथु को दुहनेवाला बनाकर पृथ्वीतलरूप पात्र में खेती और अन्नरूप दुग्ध दुह लिया। नागवंश ने महानाग तक्षक को बछड़ा और नागराज धृतराष्ट्र को दुहनेवाला बनाकर अलाबु-पात्र में विषरूप दुग्ध दुह लिया। अक्लिष्टकर्मा सप्तर्षियों ने राजा सोम को बछड़ा और बृहस्पति को दुहनेवाला बनाकर छन्दोमय पात्र में ब्रह्मस्वरूप वेदमय दुग्ध दुह लिया ॥२१।२३॥यक्षों ने वृषध्वज शङ्कर को बछड़ा और कुबेर को दुहनेवाला बनाकर आमपात्र में अन्तर्द्धान-क्रियारूप दुग्ध दुह लिया। गन्धर्वों और अप्सराओं ने चित्ररथ को बछड़ा और विश्वरुचि को दुहनेवाला बनाकर पद्म पात्र में पवित्र सुगन्धरूप दुग्ध दुह लिया। पितरों ने वैवस्वत को बछड़ा और यम को दुहनेवाला बनाकर रजतपात्र में स्वधास्वरूप दुग्ध दुह लिया ॥२४।२६॥हे सृञ्जय ! इस प्रकार सभी प्राणियों ने अपने-अपने बछड़े की सहायता से अपने-अपने पात्र में अपनी-अपनी अभीष्ट वस्तु दुह

षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान्ददौ ॥ ३० ॥
इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ३२ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्यति व्याहरन् ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

ली, जिससे कि अब तक उनका निर्वाह हो रहा है। महाप्रतापी पृथु ने बहुत से यज्ञ करके, सब प्राणियों को उनके अभीष्ट पदार्थ देकर, सन्तुष्ट कर दिया। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ में पृथ्वी पर के सब पदार्थों की सुवर्णमयी प्रतिमूर्तियाँ बनवाकर ब्राह्मणों को दान कर दी थीं। उन्होंने सुवर्ण के छासठ सहस्र हाथी बनवाकर ब्राह्मणों को दान किये थे। इसी प्रकार मणि-रत्न-पूर्ण और सुवर्णमयी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणों को दान कर दी थी। हे सृञ्जय! महाराज पृथु तुमसे अधिक सत्यनिष्ठ, दयालु, दानी और तपस्वी थे और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर धर्मात्मा थे; किन्तु उन्हें भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा। इसलिए अब तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ ही किया, न दक्षिणा ही दी और न वेद ही पढ़ा॥२७।३३॥

—०—

द्रोणपर्व का उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

अथ सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७० ॥

नारद उवाच—रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥
यः स्माऽऽस्यमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चाऽऽसीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥
यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाऽब्रुवन् ।
ततोऽवधीत्कार्त्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥
क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाऽजयत् ॥ ४ ॥

सत्तरवाँ अध्याय ॥ ७० ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय! महायशस्वी, शूर और वीर, परशुराम को तो तुम जानते ही होगे। वे भी एक दिन अवश्य ही मरेंगे और अन्त समय तक जीवन-सुख आदि से अतृप्त ही रहेंगे। श्रेष्ठ राजलक्ष्मी और सुख पाकर भी उनके चित्त में किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न हुआ। उन्होंने पृथ्वी का पापरूप भार उतारने के लिए अस्त्र-शस्त्र धारण कर रक्खे थे। उनके श्रेष्ठ चरित्र में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। एक समय कृतवीर्य के पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन ने, क्षत्रिय-सेना के साथ उनके पिता के आश्रम में पहुँचकर बछ-

ब्रह्मद्विषां चाऽथ तस्मिन्महस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यान्निजग्राह दन्तकूरं जघान ह ॥ ५ ॥
सहस्रं मुसलेनाऽहन्सहस्रमसिनाऽवधीत् ।
उद्बन्धनात्सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥
दन्तान्भंक्त्वा सहस्रस्य कर्णान्नासा न्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥
शिष्टान्बध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च ।
गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद्दक्षिणेन च ॥ ८ ॥
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ।
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ॥ ९ ॥
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ।
निजघ्ने दशसाहस्रान्रामः परशुना तदा ॥ १० ॥
नह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ।
भृगो रामाऽभिधावेति यदाऽऽक्रन्दन्द्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥
ततः काश्मीरदरदान्कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ।
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् ॥ १२ ॥
रक्षोवाहान्वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान्मार्तिकावतान् ।
शिबीनन्यांश्च राजन्यान्देशान्देशान्सहस्रशः ॥ १३ ॥
निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान्

---

पूर्वक अग्निहोत्र की गाय के जाने का प्रयत्न किया और मुनिवर जमदग्नि पर भी आक्रमण किया। उस समय परशुराम जी घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे। लौटने पर उन्हें यह वृत्तान्त विदित हुआ। तब उन्होंने क्रोधी होकर उस सहस्रबाहु अर्जुन को मार डाला, जिसे कभी कोई शत्रु युद्ध में नहीं जीत सका था॥१।३॥ परशुराम जी ने उसी सिलसिले में मृत्युग्रस्त चौंसठ सहस्र अयुत क्षत्रियों का एक धनुष की सहायता से नष्ट कर दिया। उसके पश्चात् और भी ब्राह्मणद्वेषी दुए चौदह सहस्र क्षत्रियों को मारा। महावीर परशुराम ने निग्रहपूर्वक सहस्र क्षत्रियों को मूसल से और इतने ही क्षत्रियों को खड्ग से मारा। उन्होंने सहस्र क्षत्रियों को वृक्षों की डालों में फाँसी देकर और सहस्र क्षत्रियों को जल में डुबाकर मार डाला। सहस्र क्षत्रियों के दाँत तोड़ डाले और सहस्र क्षत्रियों के कान काट लिये। उन्होंने बचे हुए हैहयवंशी क्षत्रियों को बाँध कर मार डाला और उनके मस्तक तोड़ दिये॥४।८॥ मान सहस्र क्षत्रियों को दण्ड स्वरूप उन्होंने कड़वा धुआँ पिलाया। पिता के मारे जाने से कुपित महामनि परशुराम ने गुणावती के उत्तर और खाण्डव वन के दक्षिण जो स्थान है वहाँ शतसहस्र वीर हैहयों को रथ, हाथी, घोड़े आदि सहित समर में मार डाला। उस समय परशुराम ने क्षत्रियों के कहे हुए कटु वचन और "हे परशुराम! दौड़ो, बचाओ" यह ब्राह्मणों सहित पिता की पुकार स्मरण करके परशु से दस सहस्र क्षत्रियों का संहार कर डाला॥८।१०॥ परम

कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
सर्वानष्टादश द्वीपान्वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७ ॥
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।
ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान्हेमभूषणान् ॥ १८ ॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९ ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २० ॥
सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः ।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाऽज्ञया ॥ २१ ॥
स कश्यपस्य वचनात्प्रोत्सार्य सरितां पतिम् ।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन्ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
अध्यावसद्गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।
एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३ ॥

---

प्रतापी परशुरामजी ने इसके उपरान्त क्षत्रिय-कुल पर क्रोध करके काश्मीर, दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिबि तथा अन्यान्य देशों के दस-सहस्र-कोटि क्षत्रियों को तीक्ष्ण बाणों से यमपुरी भेज दिया॥११।१३॥ बीरबहूटी और दुपहरी फूल के रङ्ग के शत्रुओं के रक्त का प्रवाह बहाकर उन्होंने उससे कई सरोवर भर दिये और अठारहों द्वीपों को अपने वश में कर लिया। उसके पश्चात् सैकड़ों महायज्ञ किये, जिनके समाप्त होने पर ब्राह्मणों को बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ दीं। उनके यज्ञ में जो वेदी सुवर्ण की बनी थी वह बत्तीस हाथ ऊँची थी और विधिपूर्वक बनाई गई थी। उस वेदी में सैकड़ों रत्न थे और सैकड़ों पताकाएँ लगी हुई थीं। गाँव के और वन के असंख्य पशुओं से पूर्ण यह समग्र पृथ्वी परशुराम ने आचार्य कश्यप को दक्षिणा में दे दी थी। पृथ्वी को दस्यु रूप क्षत्रियों से शून्य और शिष्ट जनों से परिपूर्ण करके अश्वमेध महायज्ञ में परशुराम ने कश्यप को दक्षिणा में सुवर्णभूषणमण्डित एक लाख गजराज दान किये थे॥१४।१८॥ हे श्वैत्यनन्दन ! परशुराम ने इस प्रकार इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय हीन करके सैकड़ों यज्ञ किये और सारी पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर दी। महर्षि कश्यप ने सातों द्वीप पृथ्वी परशुराम से लेकर उनसे कहा – हे राम ! तुम यह

जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।
त्वया चतुर्भद्रतरः पुण्यात्पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

पृथ्वी मुझको दे चुके हो इसलिए, मेरी आज्ञा के अनुसार, इस पृथ्वी से निकलकर अन्यत्र जाकर रहो॥१९।२१॥हे महाराज! ब्राह्मण की आज्ञा मानकर श्रेष्ठ योद्धा परशुराम ने बाणप्रहार से समुद्र को उसकी सीमा से हटा दिया और वे महेन्द्राचल पर्वत पर जाकर रहने लगे॥इस प्रकार सैकड़ों गुणों से अलङ्कृत,तेजस्वी,यशस्वी और भृगुवंश की कीर्ति को बढ़ानेवाले परशुराम भी एक दिन अवश्य मरेंगे॥२२।२४॥हे राजेन्द्र ! सत्य, तप, दया, दान में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा परशुराम को भी एक दिन मरना पड़ेगा। अतएव अब तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु के लिए वृथा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ ही किया न दक्षिणा ही दी और न वेद ही पढ़ा। देखो, तुमसे सब बातों में श्रेष्ठ, सब गुणों से अलङ्कृत, प्रतापी राजर्षि लोग मृत्यु के वश हुए हैं और ऐसे ही सैकड़ों राजा और प्रतापी लोग आगे चलकर मरेंगे॥२५॥

द्रोणपर्व का सत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

अथ एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

व्यास उवाच—पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजिकम् ।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत्स सृञ्जयः ॥ १ ॥
तमब्रवीत्तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
श्रुतं कीर्त्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥ २ ॥
आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥ ३ ॥
एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम् ।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
विस्मयेन हृते शोके तमसीवाऽर्कतेजसा ।
विपाप्माऽस्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥ ५ ॥

नारद उवाच —दिष्ट्याऽपहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि ।
तत्तत्प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥

सृञ्जय उवाच—एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान्मम ।
प्रसन्नो यस्य भगवान्न तस्याऽस्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥

नारद उवाच—मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा ।
उद्धृत्य नरकात्कष्टात्पशुवत्प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच—प्रादुरासीत्ततः पुत्रः सृञ्जयस्याऽद्भुतप्रभः ।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥
ततः सङ्गम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥
अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः ।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥
शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्याऽरीन्सहस्रशः ।
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥
ब्रह्मचर्येण यान्कांश्चित्प्रज्ञया च श्रुतेन च ।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान्गतः ॥ १३ ॥
विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः ।
न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥ १४ ॥

---

इसमे यज्ञ करनेवाले, दक्षिणा देनेवाले, प्राचीन राजर्षियों का वृत्तान्त वर्णन किया गया है। सूर्य जैसे अन्धकार को नष्ट कर देते हैं वैसे ही इन उपाख्यानों के सुनने से उत्पन्न हुए ज्ञान और विस्मय ने मेरे शोक को दूर कर दिया है। मैं निष्पाप हो गया हूँ, मेरी सब व्यथा जाती रही। बताइए, अब मैं क्या करूँ॥३।५॥ यह सुनकर नारद ने कहा—हे राजेन्द्र! बड़ी बात जो तुम्हारे हृदय से पुत्रशोक जाता रहा। अब तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँगो। जो तुम चाहोगे वही पाओगे। हम ऋषि लोग मिथ्यावादी नहीं हैं॥६॥ सृञ्जय ने कहा—हे भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इसी से मैं कृतकृत्य हो गया। आप जिस पर प्रसन्न हों उसके लिए दुर्लभ ही क्या है॥७॥नब नारद ने कहा—हे राजेन्द्र! डाकुओं ने वृथा तुम्हारे पुत्र की हत्या की है। मैं उसे, यज्ञबलि में निहत पशु की भाँति, कष्टदायक नरक से उबारकर फिर तुमको देता हूँ॥८॥व्यास जी कहते हैं—प्रसन्न ऋषि नारद के तपोबल के प्रभाव से सृञ्जय का वह पुत्र, कुबेर के बालक के समान अद्भुत प्रभा से सम्पन्न होकर, सृञ्जय के सन्मुख प्रकट हो गया। अपने पुत्र को पाकर राजा सृञ्जय बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने इसके उपरान्त बहुत से श्रेष्ठ यज्ञ किये और उनमें ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणाएँ दीं॥९।१०॥हे युधिष्ठिर! सृञ्जय का पुत्र सुवर्णष्ठीवी अकृतार्थ और प्राणभय से भयभीत हुआ हुआ था। वह न तो युद्ध-विद्या में निपुण था और न युद्ध में मारा ही गया था। उसने न तो यज्ञ ही किया था और न उसके कोई सन्तान ही उत्पन्न हुई थी। इन्हीं कारणों से देवर्षि

तस्मात्स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे ।
न चेहाऽऽनयितुं शक्यं किञ्चिदप्राप्यमीहितम् ॥ १५ ॥
यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः प्रयान्ति यां चोत्तमयज्विनो जनाः ।
तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यां तथा तामक्षयां ते तनयो गतो गतिम् ॥ १६ ॥
अन्तात्पुनर्भावगतो विराजते राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः ।
तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां गतोऽभिमन्युर्न स शोकमर्हति ॥ १७ ॥
एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा-जह्यरीन्धैर्यमाप्नुहि ।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ ॥ १८ ॥
शोचतो हि महाराज अघमेवाऽभिवर्धते ।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः ॥ १९ ॥
प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन् ।
एतद् बुध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते ॥ २० ॥
एवं विद्वन्समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः ।
श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः ।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं सञ्जीवितं पुनः ॥ २२ ॥
एवं विद्वन्महाराज मा शुचः साधयाम्यहम् ।
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ २३ ॥

नारद ने फिर उसे जिला दिया था; किन्तु आपका भतीजा अभिमन्यु तो शूर, वीर और कृतार्थ था। उसने सम्मुख युद्ध में सहस्रों शत्रुओं को मारा और फिर आप भी सम्मुख संग्राम में मारा जाकर स्वर्ग-लोक को गया। लोग ब्रह्मचर्य, प्रज्ञा, शास्त्र के अध्ययन और महायज्ञ द्वारा जिन अक्षय लोकों को प्राप्त करते हैं उन्हीं लोकों में तुम्हारा भतीजा अभिमन्यु गया है। विद्वान् पण्डित लोग नित्य पुण्य कर्म करके स्वर्गलोक प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु स्वर्गवासी पुण्यात्मा जीव स्वर्गलोक से इस लोक में आना नहीं चाहते। इसलिए युद्ध में मरकर स्वर्ग को गये हुए वीर अभिमन्यु को पार्थिव सुखभोग के लिए यहाँ नहीं लाया जा सकता और ऐसा करना उचित भी नहीं होगा॥१३।१५॥ योगी लोग एकान्त में समाधि लगाकर ईश्वर का ध्यान करके जिस गति को प्राप्त करते हैं, और श्रेष्ठ यज्ञ तथा तपस्या करने से जो उत्तम गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हारे वीर पुत्र अभिमन्यु को प्राप्त हुई है। मरण के उपरान्त दैवी सम्पत्ति को पाकर राजा की भाँति वीर अभिमन्यु अमृतमय किरणों से शोभायमान होकर चन्द्रलोक में विराजमान है। द्विजों के योग्य अपनी चन्द्रमयी देह पाकर अभिमन्यु उत्तम लोकों में सुख भोग रहा है। उसके लिए अब शोक करना उचित नहीं॥१६।१७॥ हे धर्मराज! यह वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया है। अब स्थिर होकर धैर्य धारण करो; शोक मत करो। मेरी बुद्धि में इस लोक में स्थित जीवित पुरुष ही शोचनीय है, स्वर्गगत पुरुष नहीं। हे महाराज! शोक करने से पाप की वृद्धि ही होती है। इसलिए

वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे ।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वस्य युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम् ।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५ ॥
सम्पूज्य मनसा विद्वान्विशोकोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
पुनश्चाऽचिन्तयद्दीनः किंस्विद्वक्ष्ये धनञ्जयम् ॥ २६ ॥

इतिश्रीमहाभारतेद्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥समाप्तमभिमन्युवधपर्व ।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि शोक त्यागकर श्रेय के लाभ का यत्न करता रहे। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, प्रिय कार्य और उत्साह, इनको विद्वान् लोग शौच (पवित्रता) कहते हैं। शोक अपवित्रता का रूप है। यह जानकर उठो, अपने को पवित्र और एकाग्र बनाओ, शोक मत करो॥१८।२०॥तुम मृत्यु की उत्पत्ति, अनुपम तप, सब प्राणियों में समभाव और सृञ्जय के मरे हुए पुत्र का फिर जी उठना इत्यादि वृत्तान्त सुन चुके। हे महाराज ! यह सब जानकर तुम शोक मत करो। अब मैं जाता हूँ। मेरा कहा स्वीकार करो। अब भगवान् वेदव्यास वहीं अन्तर्द्धान हो गये॥२१।२३॥मेघ विहीन आकाश के समान प्रभा से युक्त, वागीश्वर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, वेदव्यास जी युधिष्ठिर को समझाकर चले गये। महेन्द्रतुल्य पराक्रमी, न्याय से धनोपार्जन करनेवाले, पहले के राजाओं के यज्ञों का वृत्तान्त सुनकर और मन ही मन में उनकी प्रशंसा करके युधिष्ठिर शोकहीन हो गये। किन्तु फिर वे दीन भाव से यह चिन्ता करने लगे कि अर्जुन के आने पर उनसे क्या कहूँगा ॥२३।२६॥

द्रोणपर्व का इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७१ ॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

सञ्जय उवाच—तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये ।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान्सन्ध्याकाल उपस्थिते ॥ १ ॥
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ ।
हत्वा संशप्तकव्रातान्दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥ २ ॥
प्रायात्स शिविरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् ।
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥
किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्च सज्जति केशव ।
स्यन्दन्ति चाऽप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाऽच्युत ॥ ४ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७२ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं - हे महाराज ! प्राणियों का संहार करनेवाला यह भयङ्कर दिन व्यतीत हो गया और भगवान् भास्कर अस्ताचल पर पहुँच गये। सन्ध्या हो गई। हे भरतश्रेष्ठ ! दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध बन्द करके अपने-अपने शिविर को चली गईं। उधर अर्जुन भी दिव्य अस्त्रों के द्वारा संशप्तकसेना का संहार करके, विजय दिलानेवाले रथ पर बैठे हुए, अपने शिविर को चले। मार्ग में जाते-जाते अर्जुन गद्गद स्वर से श्रीकृष्णचन्द्र जी से कहने लगे—॥१।३॥ हे गोविन्द ! मेरा हृदय इस समय क्यों अकारण भय-

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापऽसर्पति ।
भुवि ये दिक्षु चाऽप्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५ ॥
बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्वं एवाऽघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥
वासुदेव उवाच—व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति ।
मा शुचः किञ्चिदेवाऽन्यत्तत्राऽनिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥
सञ्जय उवाच ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम् ।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥
ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा ।
बीभत्सुरब्रवीत्कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥
नदन्ति नाऽद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाऽडम्बरैः सह ॥ ११ ॥
वीणा नैवाऽद्य वाद्यन्ते शम्या तालस्वनैः सह ।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ॥ १२ ॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममाऽनीकेषु वन्दिनः ।
योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ॥ १३ ॥
कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाऽभिवदन्ति माम् ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥

विह्वल हो रहा है। मेरे मुख में अच्छी तरह बात नहीं निकलती, अङ्ग कांप रहे हैं, शरीर शिथिल हो रहा है, रथ पर बैठे रहा नहीं जाता ! मेरे हृदय में एक अगाध अनिष्ट-चिन्ता उत्पन्न हुई है, वह किसी प्रकार दूर नहीं होती। पृथ्वी पर और सब दिशाओं में अत्यन्त उग्र अनिष्टसूचक उत्पात देख पड़ते हैं, वे मुझे भयविह्वल कर रहे हैं। भाई-बन्धुओं सहित महाराज युधिष्ठिर तो कुशलपूर्वक होंगे न ?॥५।६॥कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! भाइयों सहित धर्मराज सकुशल ही होंगे। इस विषय में सन्देह और शोक मत करो। वहां और ही कुछ अनिष्ट हो सकता है॥७॥सञ्जय कहते हैं—इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुन ने रणभूमि के निकट सन्ध्यावन्दन किया। फिर दोनों मित्र रथ पर बैठकर युद्ध की बातें करते हुए अपने शिविर के समीप पहुँचे। अपने शत्रुओं का नाश करके दुष्कर कर्म करनेवाले अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अपने शिविर को देखा तो वह नष्ट-भ्रष्ट और निरानन्द देख पड़ा। इससे अर्जुन का हृदय धड़कने लगा॥८।१०॥उन्होंने व्याकुल होकर कहा—हे जनार्दन ! आज मङ्गलमय तुरही, नगाड़े, शङ्ख आदि बाजे नहीं बज रहे हैं। करताल और वीणा बजाकर गवैये लोग मङ्गल गीत नहीं गाते। मेरे शिविर में वन्दीजन मेरी स्तुति के मनोरम पद नहीं पढ़ते। योद्धा लोग मुझे देखते ही सिर झुकाकर दूसरी ओर चले जाते हैं। वे पहले की भाँति मेरा अभिनन्दन

नहि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाऽच्युत ।
न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युयाति हसन्निव ॥ १६ ॥
सञ्जय उवाच—एवं सङ्कथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम् ।
ददृशाते भृशास्वस्थान्पाण्डवान्नष्टचेतसः ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥
मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाऽभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥
मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्ताऽस्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥
न चोपदिष्टस्तस्याऽऽसीन्मयाऽनीकाद्विनिर्गमः ।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥
भित्त्वाऽनीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि ।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥
लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाऽद्रिषु ।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥

करके मेरे आगे, रण में किये गये, अपने कर्मों का वर्णन नहीं करते । हे माधव ! आज यह क्या बात है ? मेरे सब भाई तो सकुशल हैं न ? स्वजनों को व्याकुल देखकर मेरे मन का भाव शुद्ध नहीं होता, अनिष्ट की आशङ्का और भी जोर पकड़ती जाती है। पाञ्चालराज द्रुपद, राजा विराट और मेरे पक्ष के अन्य योद्धा सबके सब सकुशल हैं न ? आज मुझे रण से आते देखकर वीर अभिमन्यु हँसता हुआ, अपने भाइयों के साथ, पहले की भाँति मुझे लेने के लिये क्यों नहीं आता ?॥११।१६॥सञ्जय कहते हैं—अर्जुन और श्रीकृष्ण इस प्रकार बात चीत करते हुए शिबिर के भीतर गये । भीतर जाकर दोनों ने देखा कि चारों भाई पाण्डव बहुत ही व्याकुल और उदास हो रहे हैं । उदास अर्जुन ने भीतर पहुँचकर सब भाइयों और पुत्रों को देखा, किन्तु अभिमन्यु नहीं देख पड़े। तब व्याकुल होकर अर्जुन ने कहा – हे वीरो ! तुम सबके चेहरों का रङ्ग कुम्हलाया हुआ है और उदासी झलक रही है। वीर अभिमन्यु मुझे यहाँ कहीं नहीं देख पड़ता । तुम लोग कोई मेरा अभिनन्दन नहीं करते॥१७।१९॥मैंने सुना है कि आज द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की थी । बालक अभिमन्यु के अतिरिक्त तुम लोगों में से ऐसा कोई नहीं था जो उस व्यूह को तोड़कर भीतर जा सकता । मैंने अभिमन्यु को उस व्यूह के भीतर जाने का उपाय तो बता दिया था, परन्तु उससे बाहर निकलने का उपाय नहीं बताया था। तुम लोगों ने कहीं उस

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्याऽऽत्मजात्मजम् ।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥
सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत्कालमोहितः ॥ २५ ॥
सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः ।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥
वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ २७ ॥
मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् ।
मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमिवोद्गतम् ॥ २८ ॥
स्मिताभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥ ३१ ॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितृणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।
रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥ ३३ ॥

बालक को शत्रु सेना के भीतर तो नहीं भेज दिया? शत्रुनाशन अभिमन्यु शत्रुओं के व्यूह को तोड़कर, भीतर प्रवेश होकर, वहीं शत्रुओं के हाथ से युद्ध में मारा तो नहीं गया?॥२०।२२॥शीघ्र बतलाओ, लोहित-लोचन, महाबाहु, जङ्गली सिंह शिशु के तुल्य और उपेन्द्र के समान पराक्रमी वीर बालक अभिमन्यु युद्ध में मारा तो नहीं गया? बतलाओ, सुकुमार, महायोद्धा, इन्द्र का पौत्र और मेरा प्रिय अभिमन्यु युद्ध में मारा तो नहीं गया? सुभद्रा और द्रौपदी के प्रिय पुत्र और श्रीकृष्ण तथा कुन्ती के दुलारे अभिमन्यु को किसी ने मार तो नहीं डाला? जिसे काल ने मोहित कर दिया है? पराक्रम, ज्ञान और माहात्म्य में वृष्णिवीर श्रीकृष्ण के समकक्ष महावीर अभिमन्यु क्या मारा गया? ॥२३।२६॥सुभद्रा का प्यारा पुत्र, मेरा दुलारा, शूर-श्रेष्ठ अभिमन्यु यदि मुझे देखने को न मिला तो मैं अपने प्राण दे दूँगा। कोमल घुंघराले बालों से शोभित, बालक, मृग नयन, मस्त हाथी के समान पराक्रमी, सिंह-शावक के समान वीर, मन्द मुसकान के साथ मधुर भाषण करनेवाले, शान्त, बड़े बूढ़ों की आज्ञा का पालन करनेवाले, विनीत, बालकपन में भी अद्भुत कर्म करनेवाले, प्रियवादी, मत्सर रहित, महाउत्साही, महाबाहु, कमलदल के तुल्य विशाल नयनोंवाले, भक्तोंपर दया करनेवाले अभिमन्यु को मैं न देख पाऊँगा तो अपने प्राण अवश्य दे दूँगा। नीच प्रवृत्तियों से दूर रहनेवाले, कृतज्ञ,

मयाऽध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।
सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
रूपं चाऽऽप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥
नाऽद्याऽहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।
शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।
यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।
छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं शुभम् ॥ ४२ ॥

ज्ञानी, अस्त्रविद्या में निपुण, युद्ध में पीठ न दिखानेवाले, युद्धप्रिय, शत्रुओं को भयभीत करनेवाले स्वजनों को प्रिय और हित करने में तत्पर, अपने पितृकुल की जय के लिए यत्नशील, शत्रु पर पहले प्रहार न करनेवाले, युद्ध में कभी न व्याकुल होनेवाले अपने प्रिय पुत्र अभिमन्यु को यदि मैं न देख पाऊँगा तो अपने प्राण दे दूँगा॥२७।२३॥रथी योद्धाओं की गणना के समय मैंने उस महारथी की गणना करते हुए कहा था कि उसमें अन्य महारथियों से आधा गुण अधिक है। उसी नवयुवक, बाहुबल में अद्वितीय और प्रद्युम्न तथा श्रीकृष्ण के परम प्रिय अभिमन्यु को यदि मैं न देख पाऊँगा तो अवश्य ही अपने प्राण दे दूँगा। बालक अभिमन्यु के सुन्दर ललाट, नासिका, नयन, भृकुटी और होठों से शोभित मुखचन्द्र को बिना देखे मेरे हृदय को शान्ति न प्राप्त होगी। वीणा की ध्वनि और कोयल के शब्द के समान मधुर अभिमन्यु की बोली सुने बिना मेरे हृदय को कभी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती॥३३।३७॥उस वीर को देव दुर्लभ असाधारण रूप बिना देखे मेरे हृदय को शान्ति नहीं प्राप्त होगी। प्रणाम करने में निपुण और पितृगण के आज्ञाकारी अभिमन्यु को आज यदि मैं नहीं देख पाऊँगा तो मुझे कभी शान्ति न प्राप्त होगी। हाय! वह सुकुमार वीर महामूल्य शय्या पर लेटने के योग्य सनाथ अभिमन्यु युद्धभूमि में अनाथों की भाँति पड़ा हुआ होगा। पहले कोमल शय्या पर शयन करने के समय जिसके समीप सुन्दर स्त्रियाँ रहती थीं, वही इस समय धूल में पड़ा होगा और चारों ओर गिदड़ियाँ उसे घेरे हुए होंगी॥३७।४१॥जिसको पहले सूत-मागध वन्दी-

नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।
हा पुत्र काऽवितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।
सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥ ४४ ॥
स्वभाभिर्मोहिता रम्या त्वयाऽत्यर्थं विराजते ।
नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।
एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।
कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।
स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् ।
पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥ ४९ ॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात्परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥
इत्येवं विलपन्मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।
अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्त्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥
सुभद्रायां च संभूतो न चैवं वक्तुमर्हति ।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥

जन स्तुति-गीतों से जगाते थे उसी के आसपास आज खूनी मांसाहारी जीव अनिष्ट स्वर में बोल रहे होंगे। जिसका सुन्दर मुख छत्रछाया के योग्य था, उसी के मुख को आज रणभूमि की रज मलिन करेगी ! हाय पुत्र ! मैं तुम्हारा मुख देखकर तृप्त नहीं हुआ था; किन्तु मैं ऐसा अभागा हूँ कि काल तुमको बलपूर्वक मेरे समीप से लिये जा रहा है । पुण्यात्मा लोग जहाँ जाते हैं वह अपनी कान्ति से रमणीय यमराज की संयमनी पुरी आज तुम्हें पाकर अत्यन्त शोभायमान हो रही होगी । निर्भय होकर युद्ध करनेवाले तुम प्रिय अतिथि को पाकर यमराज, वरुण, कुबेर और इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी पूजा करेंगे॥४१।४६॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! जहाज टूटने पर उस पर सवार डूबता हुआ सौदागर जैसे विलाप करता है वैसे ही अत्यन्त दुःख के साथ विलाप करके अर्जुन ने युधिष्ठिर से पूछा––हे कुरुनन्दन ! वीर अभिमन्यु श्रेष्ठ वीरों से युद्ध करते-करते शत्रुसेना का विनाश करके सम्मुखयुद्ध में मारा तो नहीं गया ? बहुत से महारथी योद्धा मिलकर यत्नपूर्वक उससे युद्ध कर रहे होंगे और उस समय उस अकेले बालक ने सहायता के लिए मेरा स्मरण किया होगा॥४६।४९॥ऐसा जान पड़ता है कि कर्ण, द्रोण, कृपाचार्य प्रमुख विपक्षियों के तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित वह बालक अवश्य ही "हे पिता! दौड़ो, मेरी रक्षा करो !" कहकर बहुत विलाप कर रहा होगा

अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।
कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥ ५३ ॥
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान् ।
यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याऽभिनन्दति ॥ ५४ ॥
उपायान्तं रिपून्हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति ।
नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५ ॥
शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ।
सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनंक्ष्यति ।
सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥ ५७ ॥
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं त्वहम् ।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।
हृष्टानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुता वीरानुपालभन् ।
अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम् ।
किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥

और उसी समय नीचहृदय शत्रुओं ने मिलकर उसे मार डाला होगा। अथवा वह मेरा पुत्र और श्रीकृष्ण का भानजा है, इसलिए उसने कभी ऐसे दीन वचन न कहे होंगे। मेरा हृदय अवश्य ही वज्र का बना हुआ है, जो महाबाहु रक्तनयन वीर बालक अभिमन्यु को न देखकर टुकडे-टुकडे नहीं हो जाता! ॥४९।५३॥ हाय! नृशस नीच धनुर्धर शत्रुओं ने श्रीकृष्ण के भानजे और मेरे पुत्र बालक अभिमन्यु को मर्मभेदी तीक्ष्ण बाण कैसे मारे! जब मैं शत्रुओं को मारकर आता था तब वह उत्साही वीर बालक सदैव आगे बढकर मेरे समीप आता और मेरा अभिनन्दन करता था; किन्तु आज वह क्या मुझे नहीं देखता? आज वह मेरे समीप आकर अभिनन्दन क्यों नहीं करता? अवश्य ही वह इस समय रक्त से तर होकर पृथ्वी पर मरा पडा होगा। आकाश से गिरे हुए सूर्य की भाँति कान्तिपूर्ण अपने अङ्गों की आभा से वह रणभूमि की शोभा बढा रहा होगा। मुझे सुभद्रा के लिए बडा शोक हो रहा है, क्योंकि वह युद्ध से न भागनेवाले अपने वीर पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर अवश्य ही शोकपीडित होकर प्राण दे देगी। हाय! आज अभिमन्यु को न देखकर सुभद्रा और द्रौपदी मुझसे क्या कहेंगी और मैं ही उन दुःख से पीडित देवियों से क्या कहूँगा? ॥५३।५८॥ मेरा हृदय वज्र का बना हुआ है, जो अपनी बहू उत्तरा को शोक से पीडित होकर विलाप करते देख टुकडे-टुकडे न हो जायगा! मैंने लौटते समय हर्ष और गर्व से भरे हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों का सिंहनाद सुना है और श्रीकृष्ण ने भी सुना है कि वैश्या-पुत्र युयुत्सु इस प्रकार कौरवों से तिरस्कार-पूर्ण भर्त्सनावाक्य कह रहे थे कि

सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते ।
आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ।
इति तान्परिभाषन्वै वैश्यापुत्रो महामतिः ॥ ६३ ॥
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।
किमर्थमेतन्नाऽऽख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥ ६४ ॥
अधक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान्महारथान् ।
संजय उवाच — पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
मैवमित्यब्रवीत्कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥
सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥
एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८ ॥
ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।
गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥
एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥

"हे अधर्मी महारथियो ! तुम लोग अर्जुन का हरान में असमर्थ होकर अकेले महात्मा बालक को क्या मारकर लज्जित नहीं होते ? ॥५८।६०॥ क्या कुछ ही देर के पश्चात् तुम्हें पाण्डवों का पराक्रम देखने को मिल जायगा तुम लोगों ने युद्धभूमि में श्रीकृष्ण और अर्जुन का अपराध किया है इसलिए तुमको शोक करना चाहिए क्योंकि तुम्हारे सिर पर मृत्यु सवार है। तुम शोक करने के समय वृथा प्रसन्न हो रहे हो और सिंहनाद कर रहे हो। तुम लोगों को शीघ्र ही अपने पापकर्म का परिणाम मिलेगा। तुमने भारी अधर्म किया है, इसका परिणाम तुम्हें क्यों न प्राप्त होगा।" महामति युयुत्सु कोप और दुःख से परिपूर्ण होकर, शस्त्र रखकर, वहाँ से चले गये। हे श्रीकृष्ण ! तुमने युयुत्सु के मुख से ये बातें सुनकर युद्धभूमि में ही मुझसे क्या नहीं कहा ? मैं उन नीच द्रोण आदि महारथियों को उसी समय, वहीं, अपने बाणों की अग्नि से भस्म कर देता ॥६१।६५॥

सञ्जय कहते हैं कि आँखों में आँसू भरे हुए, पुत्रशोक से पीड़ित, चिन्तित अर्जुन को पकड़कर, उनके तीव्र शोक को शान्त करते हुए, श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार समझाने लगे — हे पार्थ ! इस प्रकार शोक से कातर मत होओ। युद्ध में न भागनेवाले शूरों की, विशेषकर हम लोग जैसे शस्त्र जीविकावाले क्षत्रियों की, एक दिन यही गति होती है। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अर्जुन ! जो लोग शूर हैं, डटकर युद्ध करते हैं, उनके लिए धर्मशास्त्रविशारद विद्वानों ने यही गति निश्चित की है। जो शूर क्षत्रिय रण में पीठ नहीं दिखाते उनका युद्ध में मरना निश्चित और स्वाभाविक है। वीर कुमार अभिमन्यु उन्हीं श्रेष्ठ लोकों को गया है जहाँ पुण्यात्मा लोग

स च वीरान्रणे हत्वा राजपुत्रान्महाबलान् ।
वीरैराकांक्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१ ॥
मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः ।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ७२ ॥
इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम ।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥
एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद ।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥
एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाऽद्भुतकर्मणा ।
ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातॄन्सर्वान्पार्थः सगद्गदान् ॥ ७५ ॥
स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः ।
अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥
सनागस्यन्दनहयान्द्रक्ष्यध्वं निहतान्मया ।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान्मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७७ ॥
कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम् ।
सौभद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणाऽपि समागतः ॥ ७८ ॥
यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान्रक्षणे मम ।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालन्मया गुप्तो भवेत्ततः ॥ ७९ ॥
कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ८० ॥

जाया करते है ॥६५।६९॥ हे भरतकुल-तिलक ! सभी वीर लोग यह चाहते हैं कि सम्मुख-संग्राम में युद्ध करते-करते उनकी मृत्यु हो। वीर अभिमन्यु रण में महाबली राजपुत्रों को मारकर युद्ध करते-करते उस मृत्यु से मरा है, जिसकी वीर लोग इच्छा रखते हैं। हे पुरुषसिंह ! तुम शोक मत करो। धर्मसंस्थापक महापुरुषों ने युद्ध में मरना क्षत्रियों का धर्म निश्चित किया है। देखो, ये सब तुम्हारे भाई और सुहृद तुम्हें शोकविह्वल देखकर व्याकुल हो रहे हैं। इन्हें समझाओ, ढाढ़स बँधाओ। जानने के योग्य सब बातें तुम जानते ही हो। तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए॥७०।७४॥ अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णचन्द्र ने जब इस प्रकार समझाया तब महावीर अर्जुन गद्‌गद् स्वर से अपने भाइयों से कहने लगे—महाबाहु, ऊँचे कन्धोंवाले, कमलनयन वीर अभिमन्यु की मृत्यु का वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। जिन्होंने मेरे पुत्र को मारा है वे शीघ्र ही संग्राम में देखेंगे कि उनके दल के हाथी, घोड़े, रथ और योद्धा मेरे बाणों से नष्ट होंगे। तुम लोग अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण हो। तुम लोग शस्त्र लिए उपस्थित थे। तुम्हारे आगे तो इन्द्र भी अभिमन्यु की हत्या नहीं कर सकते थे॥७५।७८॥ यदि मैं जानता कि तुम सब पाण्डव और पाञ्चाल-गण मेरे पुत्र अभिमन्यु की रक्षा न कर सकोगे तो मैं स्वयं कहीं न जाकर उसकी रक्षा करता। तुम लोग

अहो वः पौरुषं नाऽस्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः ।
यत्राऽभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ८१ ॥
आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान् ।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान् ॥ ८२ ॥
आहोस्विद्भूषणार्थाय वर्मशस्त्रायुधानि वः ।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ८३ ॥
एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान् ।
न स्माऽशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४ ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५ ॥
न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥
सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
बहुमानात्प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥ ८७ ॥
ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

रथ पर बैठकर बाण-वर्षा कर रहे थे, तब भी कैसे शत्रुपक्ष के योद्धा तुम्हें हटा करके अभिमन्यु को मार सके ! आज मुझे प्रतीत हो गया कि तुम लोगों में पौरुष और पराक्रम किञ्चित्मात्र भी नहीं है॥७०।८१॥ यदि ऐसा न होता तो तुम्हारी आँखों के आगे ही शत्रु लोग अभिमन्यु की हत्या कैसे कर पाते ! अथवा मुझे अपनी ही निन्दा करनी चाहिए । तुम दुर्बल, भीरु, कच्चे निश्चयवाले पर विश्वास करके मैं क्यों संशप्तक-गण से युद्ध करने गया था ! तुम लोग मेरे पुत्र की रक्षा नहीं कर सके तो क्या ये कवच, शस्त्र, धनुष-बाण आदि केवल दिखाने के लिए ही तुमने धारण कर रक्खे हैं।॥८२।८३॥तुम लोग क्या जनता में बढ़-बढ़कर वीरता की बातें करना ही जानते हो ? बहुमूल्य खड्ग धारण किये हुए वीर अर्जुन इतना कहकर शान्त हो रहे । काल के समान क्रुद्ध और पुत्रशोक से अत्यन्त पीड़ित विह्वल अर्जुन बारम्बार श्वास ले रहे थे । उनके नेत्रों में शोक और क्रोध के मारे आँसू भरे हुए थे । केवल बड़े भाई युधिष्ठिर और महात्मा श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन के और सब सुहृद्गण उनसे बात करने की कौन कहे, उनकी ओर देख तक भी नहीं सकते थे । वे दोनों महानुभाव सब समय सब अवस्थाओं में अर्जुन के हितचिन्तक, प्रिय, उनके हृदय के भाव को पहचाननेवाले और अनुगत थे। अर्जुन भी उन्हें बहुत मानते और प्यार करते थे । वे ही उस समय अर्जुन से कुछ कह सकते थे। अब पुत्र-शोक से अत्यन्त पीड़ित और क्रुद्ध कमलनयन अर्जुन से महाराज युधिष्ठिर यों कहने लगे॥८४।८८॥

—०—

द्रोणपर्व का बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत्तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥
व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे ॥ २ ॥
स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
अस्मानभिजगामाऽऽशु पीडयन्निशितैः शरैः ॥ ३ ॥
ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत्कुत एव तु ॥ ४ ॥
वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥
स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥
स तवाऽस्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत्तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७ ॥
ते नु याता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥
ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समवारयत् ॥ ९ ॥

---

तिहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाबाहु अर्जुन! तुम जब सशप्तक-सेना को मारने गये थे तब द्रोणाचार्य ने मुझे पकड़ने के लिए बड़ी-बड़ी चेष्टाएँ की थीं। [व्यूह बना करके] आचार्य जब मुझे पकड़ने का यत्न करने लगे तब हम लोग भी अपनी सेना को व्यूहरचना-पूर्वक शत्रुओं के सम्मुख खड़ा करके उनके आक्रमण को रोकने की चेष्टा करने लगे। मेरे पक्ष के बहुत से रथियों ने द्रोणाचार्य को बढ़ने से रोका और मैं भी सुरक्षित हो गया, तब द्रोणाचार्य अपने तीक्ष्ण बाणों से हमारी सेना को पीड़ित करते हुए हम लोगों की ओर बढ़े॥१।३॥उस समय हम लोगों को आचार्य ने इतना दुःख दिया कि हम लोग उनकी सेना के व्यूह को क्या तोड़ते, उनकी ओर नेत्र उठाकर देखने में भी असमर्थ हो गये। तब मैंने व्याकुल होकर अद्वितीय योद्धा कुमार अभिमन्यु से कहा कि हे पुत्र! तुम द्रोणाचार्य की सेना के इस व्यूह को तोड़कर हमारे लिए भीतर प्रवेश होने का मार्ग बना दो। हम लोगों की प्रेरणा से, उत्तम प्रकृति के बहुमूल्य घोड़े की तरह, पराक्रमी अभिमन्यु ने असह्य भार होने पर भी उसे अपने ऊपर ले लिया॥४।६॥गरुड़ जैसे समुद्र में प्रवेश होते वैसे ही वह बालक तुम्हारी सिखाई हुई अस्त्रविद्या के बल से, अपने बाहुबल के सहारे, शत्रुसेना के भीतर प्रवेश हो गया। हम लोग अभिमन्यु के पीछे जा रहे थे। जिस राह से अभिमन्यु

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च ।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥
परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः ।
यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥
ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाऽभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥
स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चाऽलक्षितान्बहून् ।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाऽऽजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।
एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।
ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद्भुवि ।
विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १७ ॥
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन्परस्परम् ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्छितः ॥ १८ ॥

व्यूह के भीतर गया था उसी राह से हम लोग भी भीतर जाने का प्रयत्न करने लगे। उस समय क्षुद्र पराक्रमी सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ ने, रुद्र के दिये हुए वरदान के प्रभाव से, हम सबको बाहर ही रोक दिया। बहुत यत्न करने पर भी हम उसे नहीं हटा सके॥७।९॥उधर महारथी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कोशलराज बृहद्बल और कृतवर्मा, इन छः महारथियों ने अकेले ही बालक अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया। महावीर अभिमन्यु उन लोगों से यथाशक्ति युद्ध करता रहा किन्तु अन्त को कई महारथियों ने मिलकर उसका रथ नष्ट कर दिया। दुःशासन का पुत्र गदा लेकर बड़ी स्फूर्ति से रथहीन अभिमन्यु के समीप पहुँचा। सङ्कट में पड़े हुए अभिमन्यु को, पैदल देखकर दुःशासन के पुत्र ने मार डाला॥१०।१२॥धार्मिकश्रेष्ठ अभिमन्यु ने पहले सहस्रों हाथियों, घोड़ों, रथियों और पैदल सिपाहियों को मारा। उसके पश्चात् आठ सहस्र रथी, नव सौ हाथी, दो सहस्र श्रेष्ठ योद्धा राजपुत्र उसके हाथ से मारे गये। अभिमन्यु के बाणों से बहुत से अलक्षित वीर राजाओं, राजपुत्रों और क्षत्रिय योद्धाओं की मृत्यु हुई। उसने महापराक्रमी कोशलेश बृहद्बल को भी बलपूर्वक सम्मुख समर में मारा। इस प्रकार घमासान युद्ध करके और अद्भुत पराक्रम दिखाकर वह स्वर्ग को सिधार गया। हे भाई! हमारे शोक को बढ़ानेवाली यह घटना इस प्रकार हुई है॥१३।१६॥युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर पुत्रवत्सल अर्जुन शोक से व्याकुल हो उठे और "हाय! पुत्र!" कहकर, लम्बी साँस लेकर, गिर पड़े। तब सब वीर लोग चारों ओर से उनको घेरकर उदास भाव

कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ॥ १९ ॥
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच—सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
न चेद्वधभयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान्प्रहास्यति ॥ २० ॥
न चाऽस्माञ्शरणं गच्छेत्कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥
धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥
रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन ।
अपि द्रोणकृपौ राजञ्छादयिष्यामि ताञ्शरैः ॥ २३ ॥
यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।
मा स्म पुण्यकृताँल्लोकान्प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४ ॥
ये लोका मातृहन्तृणां ये चापि पितृघातिनाम् ।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥ २५ ॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम् ।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम् ।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥

से एक दूसरे की ओर निहारने लगे। कुछ देर के पश्चात् अर्जुन को होश आया। वे उस समय क्रोध के मारे ज्वर से ग्रसित हुए मनुष्य की भाँति काँप रहे थे और बारम्बार लम्बी श्वास ले रहे थे। हाथ से हाथ मलकर, दाँत कटकटाकर, उन्मत्त की तरह देखते हुए अर्जुन कहने लगे—हे धर्मराज! हे वीरो! मैं तुम लोगों के आगे यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल प्रातःकाल अवश्य ही जयद्रथ को मार डालूँगा। यदि जयद्रथ प्राणों की रक्षा के लिए, भयभीत होकर, दुर्योधन आदि को छोड़कर हम लोगों की, पुरुषोत्तम कृष्ण की अथवा हे महाराज! आपकी शरण में न आ गया तो अवश्य ही मैं कल प्रातःकाल उसको मार डालूँगा॥१६।२१॥ हुए जयद्रथ मेरे साथ पहले की मित्रता भुलाकर दुर्योधन का प्रिय करना चाहता है। वही नीच पापी मेरे पुत्र के वध का कारण है। इसलिए कल मैं अवश्य ही उसे मारूँगा। युद्धभूमि में जो कोई उसकी रक्षा करने के लिये मुझसे युद्ध करेगा उसे—चाहे द्रोणाचार्य हों और चाहे कृपाचार्य—मैं अवश्य ही अपने तीक्ष्ण बाणों का लक्ष्य बनाऊँगा॥२२।२३॥ हे श्रेष्ठ पुरुषो! यदि मैं कल संग्राम में यह कार्य न करूँ तो मुझे वे लोक न प्राप्त हों जिनमें पुण्यात्मा और शूरवीर क्षत्रिय जाते हैं। यदि मैं कल जयद्रथ को न मारूँ तो उन्हीं लोकों में जाऊँ जिनमें माता-पिता की हत्या करनेवाले, गुरु स्त्री गामी, चुगलखोर, सज्जनों से डाह रखनेवाले और उन्हें वृथा कलङ्क लगाकर उनकी निन्दा करनेवाले पापी जाते हैं। यदि मैं कल जयद्रथ को न मारूँ तो उन्हीं लोकों में

पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा ।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाऽश्नताम् ॥ २८ ॥
तानह्नायाऽधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ।
वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
अवमन्यमानो यान्याति वृद्धान्साधून्गुरूंस्तथा ।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाऽग्निं च या भवेत् ॥ ३० ॥
याऽप्सु श्लेष्मपुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः ।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१ ॥
नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः ।
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ॥ ३२ ॥
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम् ।
भृत्यैः सन्दिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम् ।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥
संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम् ।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चाऽपकारिणम् ॥ ३५ ॥
अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च ।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद्वृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥

---

जाऊँ जिनमें किसी की धरोहर मार लेनेवाले, विश्वास-घाती, पर-स्त्री-गामी, दूसरे की निन्दा करनेवाले, ब्रह्महत्या और गोहत्या करनेवाले तथा देवता पितर अतिथि अग्नि आदि को दिये बिना अकेले ही पायस यवान्न साग कृसर ( खिचड़ी या तिलचावल ) संयाव ( हलवा ) पुये मांस आदि खानेवाले पातकी जाते हैं॥२८।२९॥ यदि कल मैं जयद्रथ का वध न करूँ तो उन्हीं लोकों में जाऊँ जिनमें वेदपाठी ब्रह्मचारी ब्राह्मण का और वृद्धजन गुरुजन साधुजन आदि का अनादर करनेवाले जाते हैं। यदि कल मैं जयद्रथ के प्राण न ले लूँ तो वही कष्टदायक नरक-गति मुझे भी प्राप्त हो जो ब्राह्मण गाय और अग्नि को पाँव से छूनेवालों और जल में थूकने या मल मूत्र त्याग करनेवालों की होती है। नङ्गा होकर स्नान करनेवाला, अतिथि-अभ्यागत को विमुख करनेवाला, रिश्वत लेनेवाला, असत्य बोलनेवाला, धोखा देनेवाला, वञ्चक, अपनी पूर्व स्थिति या कार्यों को छिपाकर अन्यथा प्रकट करनेवाला, झूठी सूचना देनेवाला, भृत्य पुत्र स्त्री आश्रितजन आदि के सम्मुख उन्हें दिये बिना अकेले मिठाई आदि खानेवाला जिस बुरी गति को प्राप्त होता है वही गति मेरी हो, यदि मैं कल जयद्रथ का वध न करूँ ॥२९।३४॥ जो नीच प्रकृति का पुरुष अपने आश्रित अच्छे स्वभाववाले और आज्ञा-पालन करनेवाले का त्याग कर देता है, उसका पालन-पोषण नहीं करता अथवा अपने साथ उपकार करनेवाले की निन्दा करता है, उसी की सी बुरी गति मेरी भी हो, यदि मैं जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा पूर्ण न करूँ। [illegible] नीय सुपात्र पड़ोसी को श्राद्ध की अन्न-सामग्री

मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः ।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥
भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम् ।
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥ ३८ ॥
ये चाऽऽवर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि ।
शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥
एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते ।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥ ४० ॥
दिवा मैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते ।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः ।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम् ।
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद्ददाति न ।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ ४४ ॥
धर्मादपेता ये चाऽन्ये मया नात्राऽनुकीर्तिताः ।
ये चाऽनुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।
इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६ ॥

न देनेवाला और अयोग्य तथा शूद्रा या रजस्वला कन्या से विवाह करनेवाले ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन करानेवाला, मदिरा पीनेवाला, लोक और शास्त्र की मर्यादा को तोड़नेवाला, कृतघ्न तथा अपने स्वामी की निन्दा करनेवाला जिस बुरी गति को प्राप्त होता है वही गति मेरी भी हो, यदि मैं कल जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा पूर्ण न करूँ॥३५-३७॥ यदि मैं कल जयद्रथ को न मारूँ तो मेरी भी वही गति हो जो सव्य होकर (बायें हाथ से) भोजन करनेवाले या गोद में रखकर खानेवाले, पलाश के आसन पर बैठनेवाले, तिन्दुक से दातुन करनेवाले, प्रातःकाल तक सोनेवाले, शीत से भयभीत होकर न स्नान करनेवाले ब्राह्मण, कायर क्षत्रिय, जिस गाँव में एक ही कूप हो और कोई वेदपाठी न रहता हो उस गाँव में छः महीने तक रहनेवाले, शास्त्र की निन्दा करनेवाले, दिन को मैथुन करने और सोनेवाले, किसी के घर में अग्नि लगा देनेवाले, किसी को विष देनेवाले और अग्निहोत्र न करनेवाले की होती है ॥३८-४१॥ जल पीती हुई गाय को हटा देनेवाले, रजस्वला गमन करनेवाले कन्या विक्रय करनेवाले, पुरोहिती और भिक्षावृत्ति करनेवाले ब्राह्मण, मुख-मैथुन करनेवाले और ब्राह्मण को कुछ देने की प्रतिज्ञा करके पीछे लोभ के मारे न देनेवाले मनुष्य की जो बुरी गति होती है वही गति मेरी भी हो, यदि मैं कल

यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव स प्रवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥
असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥ ४८ ॥
यदि विशति रसातलं तदग्र्यं वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद्दिवम् ॥ ५० ॥
अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥ ५१ ॥
स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णो दरनिःसृतध्वनिः ।
जगत्सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ॥ ५२ ॥
ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्सहस्रशः ।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

जयद्रथको न मारूँ॥४२।४४॥ जिन अधर्मियों का उल्लेख कर चुका हूँ और जिन पापियों का उल्लेख नहीं किया, उन सबकी सी बुरी गति मेरी हो यदि मैं कल जयद्रथ को न मारूँ। मैं यह दूसरी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कल दिन डूबने से पहले पापी जयद्रथ जीता जागता रहा तो मैं यहीं अग्नि में जल मरूँगा। मैं सत्य कहता हूँ कि असुर, देवता, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि और चराचर जगत्, कोई भी कल मेरे शत्रु जयद्रथ की रक्षा नहीं कर सकता॥४५।४८॥ अभिमन्यु की मृत्यु का मूलकारण जयद्रथ चाहे भाग कर रसातल में प्रवेश हो रहे, चाहे आकाश में चला जाय, चाहे देवलोक अथवा दैत्यलोक में भाग जाय, तथापि कल प्रातःकाल होते ही मैं अवश्य ही अपने पैने सैकड़ों बाणों से उसका सिर काट डालूँगा।

इतना कहकर वीर अर्जुन ने दाहने बायें दोनों ओर से गाण्डीव धनुष की डोरी बजाई। वह गाण्डीव का शब्द सब शब्दों को दबाकर आकाशमण्डल तक पहुँच गया। अर्जुन जब इस प्रकार प्रतिज्ञा कर चुके तब श्रीकृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। अत्यन्त कुपित अर्जुन ने भी उनके साथ ही अपना दिव्य देवदत्त शङ्ख बजाया॥४९।५१॥ श्रीकृष्ण के मुख की वायु से परिपूर्ण पाञ्चजन्य के छिद्र में जो शब्द निकला उसने पाताल, स्वर्ग, दिशाओं के मण्डल और दिक्पालों को प्रलयकाल की भाँति कँपा दिया। उस समय पाण्डवों के शिविर में अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर सहस्रों बाजे और शङ्ख बजने लगे, सब वीर योद्धा हर्ष और उत्साह से सिंहनाद करने लगे॥५२।५३॥

०

द्रोणपर्व का तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७३ ॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच —श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम्।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥

शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाऽभिपरिप्लुतः ।
मज्जमान इवाऽगाधे विपुले शोकसागरे ॥ २ ॥
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्बहु ।
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥
अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् ।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥ ४ ॥
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् ।
तत्स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया ॥ ५ ॥
अथवाऽस्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः ।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते सन्दत्त ममाऽभयम् ॥ ६ ॥
द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाल्हिकाः ।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम् ॥ ७ ॥
किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता ।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥ ८ ॥
प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम् ।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ॥ ९ ॥
वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना ।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः ॥ १० ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! पुत्र की मृत्यु का बदला लेने के लिए उद्यत पाण्डवों का वह महाशब्द सुनकर दूतों ने जाकर जयद्रथ को सब वृत्तान्त कह सुनाया । सुनते ही व्याकुल होकर जयद्रथ उठ बैठे । वे शोक के मारे अत्यन्त दुःखित हुए। वे उस समय मानों अथाह अपार शोक के समुद्र में डूबने लगे । जयद्रथ बहुत सोच-विचारकर उसी समय अपने डेरे से वहाँ पर गये जहाँ दुर्योधन और सब राजा बैठे हुए थे॥१।३॥अर्जुन से भयभीत हुए हुए जयद्रथ सब वीर राजाओं के सम्मुख विलाप करते हुए, लज्जित भाव से, कहने लगे—हे राजाओ ! पाण्डु की स्त्री कुन्ती के गर्भ से कामी इन्द्र के द्वारा उत्पन्न दुर्मति अर्जुन ने अकेले ही मुझको मार डालने की प्रतिज्ञा की है । आप लोगों का कल्याण हो, मैं अपने प्राण बचाने के लिए अभी अपने देश को जाता हूँ । अथवा हे श्रेष्ठ क्षत्रियो ! आप सब लोग मिलकर अपने अस्त्रबल के प्रभाव से मेरी रक्षा कीजिए । अर्जुन मेरे प्राण लेना चाहता है, आप लोग मेरी रक्षा करने की प्रतिज्ञा मुझे दें । द्रोणाचार्य, कृपाचार्य कर्ण, दुर्योधन, शल्य, बाह्लीक और दुःशासन आदि योद्धा चाहें तो साक्षात् काल के हाथ से भी मुझे छुड़ा सकते हैं । तो फिर क्या मार डालने के लिए उद्यत अकेले अर्जुन से आप सब राजा लोग मुझे नहीं बचा सकते ? पाण्डवों की प्रतिज्ञा और हर्षध्वनि सुनकर मैं बहुत ही भयभीत हो गया हूँ । मृत्यु के मुख में जानेवाले मनुष्य की तरह मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं॥७।१०॥अवश्य ही गाण्डीव-

तत्र देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥
तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः ।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥
एवं विलपमानं तं भयाद्व्याकुलचेतसम् ।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥
न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि ॥ १४ ॥
अहं वैकर्त्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाऽप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः ॥ १७ ॥
एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
ससैन्यास्त्वाऽभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ १८ ॥
त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १९ ॥
अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम् ॥ २० ॥

धन्वा अर्जुन ने मेरे वध की प्रतिज्ञा की है इसी कारण, शोक करने के समय भी, पाण्डव हर्ष प्रकट करते हुए सिंह की तरह गरज रहे हैं। मेरे विचार में तो मनुष्यों की कौन कहे, सब देवता, गन्धर्व, असुर, नाग, राक्षस आदि भी सब मिलकर अर्जुन की प्रतिज्ञा को कदापि मिथ्या नहीं कर सकते। इसलिए आप लोग मुझे अनुमति दीजिए कि मैं अपने प्राण लेकर अपने घर चला जाऊँ। आप लोगों का कल्याण हो। मैं यहाँ से भागकर कहीं अन्यत्र जाऊँगा तो पाण्डव लोग मुझे यहाँ देख ही न पावेंगे॥१०।१२॥भय और शङ्का से व्याकुल जयद्रथ को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर अपने कार्य को ही श्रेष्ठ माननेवाले राजा दुर्योधन यों कहकर उन्हें सान्त्वना देने लगे — हे पुरुषसिंह! तुम भयभीत होओ मत। इतने वीर क्षत्रियों के मध्य में तुम रहोगे फिर कौन युद्धभूमि में तुम पर आक्रमण करने का साहस कर सकेगा? देखो मैं, वीर कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्द्धर्ष वीर वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, कम्बोजराज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, सशस्त्र कलिङ्गराज, अवन्ति देश के दोनों भाई विन्द और अनुविन्द, द्रोणाचार्य जी और अश्वत्थामा, शकुनि तथा और भी अनेक देशों के राजा लोग अपनी अपनी सेना साथ लेकर तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम अपने अन्तःकरण से यह चिन्ता दूर कर दो॥१३।१८॥तुम स्वयं भी तो श्रेष्ठ

सञ्जय उवाच—एवमाश्वासितो राजन्पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥
उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥
निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान्विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥
विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
अर्जुनस्याऽऽत्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥
द्रोण उवाच – सममाचार्यकं तात तव चैवाऽर्जुनस्य च ।
योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः॥ २५ ॥
न तु ते युधि सन्त्रासः कार्यः पार्थात्कथञ्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नाऽत्र संशयः ॥ २६ ॥
न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति॥ २७ ॥
तस्माद्युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥
अधीत्य विधिवद्वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया ।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः ॥ २९ ॥
दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान्दिव्यान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान्॥ ३० ॥

---

रथी और शूर हो। फिर क्यों पाण्डवों से इतना भयभीत हो रहे हो? मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना तुम्हारी रक्षा करने के लिए जी खोलकर युद्ध करेगी। हे वीर सिन्धुराज! तुम मत भयभीत होओ॥१९।२०॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! सिन्धु देश के राजा जयद्रथ को इस प्रकार सान्त्वना देकर राजा दुर्योधन उन्हें साथ लिए हुए रात्रि को ही द्रोणाचार्य के स्थान पर पहुँचे। आचार्य को प्रणाम करके दोनों बैठ गये। तब जयद्रथ ने विनीत भाव से कहा—हे आचार्य! निशाने पर बाण मारने, दूर तक बाण चलाने, स्फूर्ति और दृढ़ प्रहार करने में अर्जुन में और मुझमें क्या अन्तर है? आप कृपा करके मुझे बताइए॥२१।२४॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे तात! अर्जुन और तुम दोनों ही मेरे शिष्य हो और मैंने तुम दोनों को बाण विद्या की एक सी शिक्षा दी है। किन्तु अर्जुन ने अधिक अभ्यास करके और कष्ट सहकर तुमसे अधिक निपुणता प्राप्त कर ली है। इसी कारण अर्जुन तुमसे सब बातों में बढ़कर हैं। परन्तु युद्ध में अर्जुन से तुम्हें बिल्कुल न भयभीत होना चाहिए; क्योंकि इस भय से मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। मेरे बाहुबल से रक्षित पुरुष का देवता भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। मैं कल ऐसे व्यूह की रचना करूँगा, जिसे अर्जुन किसी प्रकार नहीं तोड़ सकेंगे। इसलिए तुम निर्भय होकर युद्ध करो। हे महारथी! अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करके बाप

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः ।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥
पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वा तु यॉंल्लोकान्प्राप्नुवन्ति तपस्विनः ।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥
एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः ।
अपानुदद्भयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥
ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाऽप्यासीद्विशाम्पते ।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दादे की राह पर चलो॥२५।२८॥तुमने विधिपूर्वक वेदों को पढ़ा है, तुम अग्निहोत्र करते हो और बहुत से यज्ञ भी कर चुके हो। तुम तो सब प्रकार कृतार्थ हो चुके हो॥अब तुम्हें मृत्यु से न भयभीत होना चाहिए। यदि तुम अर्जुन से युद्ध करके मारे भी जाओगे तो मन्द मनुष्यों के लिए दुर्लभ और महाभाग्य से प्राप्त होनेवाले मनुष्य शरीर का प्राप्त होना सफल होजायगा; तुम बाहुबल से जीते हुए दिव्य लोकों में जाओगे। अपने मन में अच्छी प्रकार समझ लो कि यादव, कौरव, पाण्डव, मैं और मेरा पुत्र कोई अमर नहीं हैं; सबको एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही होगा। बली काल किसी को नहीं छोड़ेगा। हम सब लोग बारी-बारी से मृत्यु को प्राप्त होंगे और अपने-अपने कर्मों को साथ ले जायँगे। तपस्वी लोग कठोर तपस्या करके जिन लोकों को जाते हैं उन्हीं लोकों को क्षत्रिय-धर्म का पालन करनेवाले वीर पुरुष भी प्राप्त करते हैं॥२९।३३॥आचार्य के ये वचन सुनने से सिन्धुराज जयद्रथ को आश्रय मिला। उन्होंने अर्जुन का भय छोड़कर युद्ध करने का निश्चय कर लिया। हे महाराज! उस समय कौरव-सेना के लोग भी प्रसन्न होकर कोलाहल और सिंहनाद करने लगे। चारों ओर बाजे बजने लगे॥३४।३५॥

द्रोणपर्व का चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

सञ्जय उवाच—प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयमभाषत ॥ १ ॥
भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं चाऽस्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७५ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! इधर महात्मा श्रीकृष्ण, अर्जुन के प्रतिज्ञा करने पर, उससे बोले — हे अर्जुन! तुमने न मुझसे ही सम्मति ली और न भाइयों की ही सम्मति पूछी और जयद्रथ के मारने की दुष्कर प्रतिज्ञा कर बैठे। यह तुमने बड़े ही साहस का कार्य किया है। यह बहुत असह्य बोझ तुमने अपने

असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं तु सर्वलोकस्य नाऽवहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥
धार्त्तराष्ट्रस्य शिविरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥
त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥
तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाऽकस्मात्सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥
सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्त्तो धनञ्जयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥
तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥
ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन्सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥
अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात्सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥
स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीं क्रियाम् ।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२ ॥

सिर पर उठा लिया है। मुझे यही चिन्ता है कि कहीं प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकने पर हम लोग लोगों के उपहास के पात्र न हों। ॥१।३॥ मैंने जिन गुप्तचरों को दुर्योधन के शिविर में भेजा था, वे वहाँ से शीघ्र ही आकर मुझसे वहाँ का सब समाचार कह गये हैं। उनका कहना है कि तुमने जब जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा की तब यहाँ होनेवाले सिंहनाद और बाजों के शब्द सुनकर धृतराष्ट्र के सब पुत्र बहुत भयभीत हुए और जयद्रथ भी व्याकुल हो गया। वे लोग सोचने लगे कि शत्रु शिविर में अकस्मात् यह सिंहनाद क्यों हो रहा है। इसका कोई कारण अवश्य ही है। इसके उपरान्त कौरव लोग युद्ध के लिए सुसज्जित होने लगे॥४।६॥ उनके शिविर में युद्ध के लिए प्रस्तुत होनेवाले हाथी, घोड़े, रथ और पैदल आदि का शब्द सुनाई पड़ने लगा। वे लोग यह सोचकर युद्ध की तैयारी करने लगे कि अभिमन्यु के मारे जाने की सूचना से शोकातुर अर्जुन क्रोधान्ध होकर रात्रि को ही आक्रमण कर देंगे। हे अर्जुन! कौरवों ने भी अपने दूतों से तुम्हारी जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा और उसे पूर्ण करने के लिए सौगन्ध खाना सुन लिया है। तब क्षुद्र मृगों की भाँति दुर्योधन के अनुचर और राजा जयद्रथ उदास हो गये॥७।१०॥ इसके पश्चात् सिन्धु-सौवीर देश का राजा जयद्रथ अपने अनुचरों के साथ दीनभाव से दुर्योधन की राजसभा में गया। वहाँ मन्त्रणा के समय अपने बचाव की सब

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः ।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥
तां न देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्त्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः ।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥
अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि गृहान्प्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमना॰ स सुयोधनः ।
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥ १७ ॥
तमार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चाऽऽत्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥
नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्याऽस्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥
वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याऽग्रतस्तिष्ठेत्साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥
महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २१ ॥
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२ ॥

सम्मति सोचकर राजसभा में वह दुर्योधन से कहने लगा कि हे राजेन्द्र! मुझे ही अपने पुत्र की मृत्यु का कारण जानकर कल प्रातःकाल अर्जुन मुझे मारने के लिए युद्ध करेंगे। उन्होंने अपनी सब सेना के मध्य में मेरे मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा की है मुझे विश्वास है कि देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस आदि कोई भी अर्जुन की प्रतिज्ञा को टाल नहीं सकता॥१३।१४॥इसलिए अब आप लोग मेरी रक्षा का उपाय कीजिए। ऐसा न हो कि अवसर पाकर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लें। आप लोग जो उपाय उचित समझें सो करें। यदि आप लोग भली भाँति मेरी रक्षा न कर सकें तो हे कुरुनन्दन! मुझे आज्ञा दीजिए, मैं अपने घर चला जाऊँ ॥१५।१६॥ व्याकुल हुए हुए जयद्रथ के यों कहने पर दुर्योधन ने उदास होकर सिर झुका लिया और वह सोच में पड़ गया। दुर्योधन को अत्यन्त चिन्तित देखकर राजा जयद्रथ कोमल, अपने हित के आक्षेपपूर्ण वचन इस प्रकार कहने लगा—हे महाराज! आपके दल में मुझे कोई ऐसा पराक्रमी योद्धा नहीं देख पड़ता जो महायुद्ध में अपने अस्त्र से अर्जुन के अस्त्र को रोक सके। वासुदेव जिनके सहायक हैं वे अर्जुन जब गाण्डीव धनुष को मण्डलाकार घुमावेंगे तब उनके आगे कौन ठहर सकेगा ॥१७।२०॥ साक्षात् देवराज इन्द्र भी तो नहीं ठहर सकते। सुना जाता है कि पराक्रमी अर्जुन ने किसी समय पैदल ही महेश्वर से हिमालय पर्वत

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन्हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३ ॥
सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना ।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥
स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्राऽर्थितोऽर्जुन ।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥
कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥
शकटः पद्मकश्चाऽर्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः ।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः ।
धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः ।
एतानजित्वा षड्रथान्नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥ २९ ॥
तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय ।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥
भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै ।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

पर युद्ध किया था। उन्होंने इन्द्र के कहने से अकेले ही हिरण्यपुर के रहनेवाले सहस्रों दानवों को मार डाला था। मेरी समझ में तो बुद्धिमान् वासुदेव के साथ वीर अर्जुन देवगण सहित त्रिभुवन को भी नष्ट कर सकते हैं। इसी कारण मैं प्रार्थना करता हूँ कि या तो आप यह प्रतिज्ञा कीजिए कि अपने वीर पुत्र अश्वत्थामा सहित महात्मा द्रोणाचार्य मेरी रक्षा करेंगे और या मुझे यहाँ से अपने घर जाने की सम्मति दीजिए॥२१।२४॥हे अर्जुन ! राजा दुर्योधन ने स्वयं द्रोणाचार्य से जयद्रथ की रक्षा करने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की है। देखो, द्रोणाचार्य ने तुम्हारी प्रतिज्ञा व्यर्थ करके जयद्रथ के प्राण बचाने की तैयारी आरम्भ कर दी है। सब योद्धा और उनके रथ, युद्ध के लिए, अभी से उद्यत हो रहे हैं। द्रोणाचार्य ने विचित्र व्यूह की रचना की है; उसका पिछला आधा भाग पद्मव्यूह है और आगे का आधा भाग शकटव्यूह। पद्मव्यूह का जो अंश है उसके मध्य में एक और सूचीमुख व्यूह बनाया गया है। उसी सूचीव्यूह के पिछले भाग में जयद्रथ रहेगा। कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय वृषसेन, कृपाचार्य और शल्य ये छः महारथी उस व्यूह के अग्रभाग की रक्षा करेंगे॥२५।२८॥हे पार्थ ! ये छहों महारथी धनुर्विद्या, अस्त्रकौशल, वीर्य, दम और बल में अद्वितीय और दुर्द्धर्ष हैं। हे अर्जुन ! तुम इन छहों में से प्रत्येक के बल-वीर्य के बारे में अलग अलग विचार करके देखो। फिर जब ये छहों मिलकर युद्ध करेंगे तब इन्हें सहज में जीत लेना सर्वथा असम्भव होगा।

अतएव मैं मन्त्रणा निपुण, दूरदर्शी, बुद्धिमान्, हितैषी मन्त्रियों के साथ फिर कार्यसिद्धि और अपने हित का उपाय सोचूँगा॥२८।३१॥

—०—

द्रोणपर्व का पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अर्जुन उवाच

षड्थान्धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान्बलाधिकान् ।
तेषां वीर्यं ममाऽर्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन ।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २ ॥
द्रोणस्य मिषतश्चाऽहं सगणस्य विलप्यतः ।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥
यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥ ४ ॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः ।
द्यौर्वियत्पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥
ग्राम्यारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥
तथाऽपि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया ।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवाऽऽयुधमालभे ॥ ७ ॥
यस्य गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः ।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८ ॥
तस्मिन्द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः ।
तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥ ९ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७६ ॥

अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव ! दुर्योधन के जिन छः महारथियों को आप बहुत बलवान् मानते हैं वे, मेरी बुद्धि में, सब मिलकर भी मेरे बराबर नहीं हैं। मैं तो समझता हूँ कि उनका बल-वीर्य मेरे आधे बल-वीर्य के बराबर भी नहीं है। हे मधुसूदन ! आप देखेंगे कि मैं जयद्रथ को मारने की अभिलाषा से इन सबके अस्त्र-शस्त्रों को अपने अस्त्र शस्त्रों से निष्फल कर दूँगा। अपने अनुचरों सहित द्रोणाचार्य खड़े देखते रहेंगे और मैं अपने बाणों से जयद्रथ का सिर काट-कर गिरा दूँगा॥१।३॥यदि साध्यगण, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, इन्द्र, विश्वेदेवा, अन्य लोकपालगण, पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, स्वर्ग, आकाश, यह पृथ्वी, सब दिशाएँ, दिक्पाल देवता, गाँव के और वन के सब जीव, स्थावर और जङ्गम प्राणी एकत्र हो करके सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा करेंगे तो भी कल प्रातःकाल आप मेरे बाणों से रण में उसको मरा हुआ ही देखेंगे॥४।७॥और श्री-कृष्ण ! मैं यह बात सत्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ।

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान्नाराचैस्तिग्मतेजितैः ।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान्मया युधि ॥ १० ॥
नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम् ।
पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ११ ॥
गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे ।
नृनागाश्वान्विदेहासून्कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ १२ ॥
यमात्कुबेराद्वरुणादिन्द्राद्रुद्राच्च यन्मया ।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥ १३ ॥
ब्राह्मेणाऽस्त्रेण चाऽस्त्राणि हन्यमानानि संयुगे ।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याऽभिरक्षिणाम् ॥ १४ ॥
शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः ।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥ १५ ॥
क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६ ॥
बह्वागस्कृत्कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः ।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वाञ्शोचयिष्यति ॥ १७ ॥
सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे ।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

शस्त्र छूकर कहता हूँ। हे केशव ! उस पापी जयद्रथ की रक्षा करनेवाले महारथी द्रोणाचार्य के ऊपर ही मैं सबसे पहले आक्रमण करूँगा। दुष्ट दुर्योधन का विश्वास है कि द्रोणाचार्य के ऊपर ही उसकी हार-जीत निर्भर है। इसलिए उन्हीं द्रोणाचार्य की सेना के अग्रभाग को चीर करके मैं जयद्रथ के समीप पहुँचूँगा। कल आप देखेंगे कि वज्रपात से जैसे पर्वतों के शिखर फटते हैं वैसे ही बड़े-बड़े वीर योद्धा मेरे तीक्ष्ण बाणों से विदीर्ण हो होकर युद्धभूमि में गिर रहे हैं। गिरते हुए और गिरे हुए मेरे तीक्ष्ण बाणों से विदीर्ण-देह नर, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों से रक्त की नदी बह चलेगी॥८।११॥मेरे गाण्डीव धनुष से छूटे हुए, मन और वायु के समान वेग से जानेवाले, तीक्ष्ण बाण सहस्रों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के जीवन को नष्ट करेंगे। इस महायुद्ध में योद्धा लोग मेरे उन महाघोर अस्त्रों को देखेंगे जिन्हें मैंने इन्द्र, यम, कुबेर, रुद्र और वरुण आदि देवताओं से प्राप्त किया है। हे श्रीकृष्ण ! कल आप देखेंगे कि जयद्रथ की रक्षा करनेवालों के अस्त्रों को मैं ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से नष्ट करूँगा॥१२।१४॥कल युद्ध में आप देखेंगे कि मैं अपने बाणों के वेग से राजाओं के सिर काटकर उनसे रणभूमि को पाट दूँगा। मैं मांसाहारी जीवों को तृप्त करूँगा, शत्रुपक्ष की सेना को मार भगाऊँगा, मित्रों को प्रसन्न करूँगा और जयद्रथ को मारूँगा। बहुत से अपराध करनेवाला, निन्दित सम्बन्धी, पापदेश में उत्पन्न राजा जयद्रथ मेरे हाथ से मरकर अपने आत्मीयों को शोक में डालेगा। सिन्धुदेश के सब दूध भात के खानेवाले, पापाचारी

तथा प्रभाते कर्त्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः ।
नाऽन्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाऽहं नरर्षभ ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥ २० ॥
तव प्रसादाद्भगवन्किं नाऽवाप्तं रणे मम ।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन्मां विगर्हसे ॥ २१ ॥
यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम् ।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥
माऽवमंस्था ममाऽस्त्राणि माऽवमंस्था धनुर्दृढम् ।
माऽवमंस्था बलं बाह्वोर्माऽवमंस्था धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
तथाऽभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च ।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥
ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः ।
श्रीर्ध्रुवाऽपि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना ।
सन्दिदेशाऽर्जुनो नर्दन्वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६ ॥
यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम ।
तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ २७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

क्षत्रिय अपने राजा जयद्रथ के साथ मेरे बाणों से मर-मरकर यमपुर को जायँगे। हे श्रीकृष्ण ! कल प्रातःकाल मैं ऐसा अद्भुत कर्म करूँगा जिससे दुर्योधन को मानना पड़ेगा कि त्रिभुवन में मेरे बराबर दूसरा योद्धा नहीं है। मेरा गाण्डीव दिव्य धनुष है, मैं स्वयं युद्ध करनेवाला हूँ और आप मेरे सारथी हैं। फिर मैं किसे परास्त नहीं कर सकता ? हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने समर में कहाँ विजय नहीं पाई ? मुझे अजेय दुर्द्धर्ष जानकर भी, मेरे असह्य पराक्रम को जानकर भी, आप क्या मेरा तिरस्कार कर रहे हैं ?॥१९।२१॥ चन्द्रमा में चिह्न और समुद्र में जल जैसे स्थिर है वैसे ही मेरी प्रतिज्ञा भी अटल है। हे वासुदेव ! आप मेरी, मेरे अस्त्रों की, दृढ़ दिव्य धनुष की और मेरे बाहुबल की अवमानना न कीजिए। मैं संग्राम में इस प्रकार जाऊँगा कि किसी से नहीं हारूँगा और सबको जीत लूँगा। मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। आप जयद्रथ को मरा हुआ ही समझिए। ब्राह्मण में सत्य, सज्जनों में नम्रता, यज्ञ में श्री और नारायण में जय नित्य निरन्तर विराजमान है॥२२।२५॥ सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! श्रीकृष्ण से यों कहकर आप अपने पराक्रम का वर्णन करने के उपरान्त, अपनी शक्ति पर विश्वास करके अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! आप ऐसा उद्योग कीजिए जिससे प्रातःकाल होते ही मुझे रथ तैयार मिले और मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो॥२६।२७॥

द्रोणपर्व का छियत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच—तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥
नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः ।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद्भविष्यति ॥ २ ॥
ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः ।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिघः समदृश्यत ॥ ३ ॥
शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥
चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥
रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥
वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
तान्दृष्ट्वा दारुणान्सर्वानुत्पातान्लोमहर्षणान् ॥ ७ ॥
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥
अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनिः ।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥ ९ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! दुःख और शोक से पीड़ित अर्जुन और श्रीकृष्ण ने वह रात्रि जागकर ही व्यतीत कर दी। वे क्रुद्ध सर्प की भाँति श्वास लेते रहे। इस प्रकार नर और नारायण को अत्यन्त कुपित जानकर इन्द्र आदि सब देवता बहुत ही व्याकुल और व्यथित होकर सोचने लगे कि इसका परिणाम क्या होगा। कौन सी दुर्घटना, कौन सा महा अनर्थ होने वाला है?॥१।२॥ उस समय अत्यन्त दारुण आँधी धूल उड़ाती हुई वेग से चलकर घोर अमङ्गल की सूचना देने लगी। आदित्यमण्डल में कबन्ध और मण्डल (परिघ) देख पड़ने लगा। बिना मेघों के दारुण वज्रा घात शब्द होने लगे, कड़क कड़ककर बिजलियाँ गिरने लगीं। पर्वत वन सहित पृथ्वी बारम्बार काँपने लगी। बड़े बड़े जल-जन्तुओं के निवासस्थान समुद्र क्षोभ को प्राप्त होने लगे। नदियों की धाराएँ उलटी बहने लगीं। मांसाहारी जीवों को आनन्दित और यमपुरी को परिपूर्ण करने के लिए रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों के दोनों होंठ फड़कने लगे। सब वाहन एक साथ मल मूत्र त्याग करते हुए रुदन करने लगे ॥३।७॥ इन दारुण उत्पातों को देखकर और महाबली अर्जुन की उग्र प्रतिज्ञा का समाचार सुनकर आपके पक्ष के सब योद्धा लोग और सैनिक लोग अत्यन्त ही व्यथित और खिन्न हो गये॥७।८॥ इधर महावीर अर्जुन ने कृष्णचन्द्र से कहा—हे केशव! आप जाकर अपनी बहन

स्नुषां चाऽस्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव ।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥ १० ॥
ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्त्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥

वासुदेव उवाच

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठेषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥
कुले जातस्य वीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ।
सदृशं मरणं ह्येतत्तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥
दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥
जित्वा सुबहुशः शत्रून्प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
गतः पुण्यकृतां लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयाऽपि च ।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥
वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा ।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥
प्राप्स्यते चाऽप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः ।
अस्याऽवलेपस्य फल ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८ ॥

---

सुभद्रा, बहू उत्तरा और उसकी सखियों को समझाइए, उनका शोक दूर कीजिए । सामवाक्य, सत्योपदेश आदि के द्वारा किसी प्रकार उनको ढाढ़स बँधाइए ॥९।१०॥ अर्जुन के यों कहने पर अत्यन्त व्याकुल कृष्णचन्द्र अर्जुन के घर में गये और वहाँ पुत्र शोक से पीड़ित, व्याकुल, अपनी बहन सुभद्रा को इस प्रकार समझाने लगे—सुनो बहन ! तुम और तुम्हारी बहू उत्तरा दोनों ही वीर कुमार अभिमन्यु की मृत्यु के लिए शोक मत करो । हे सुभद्रा ! काल के द्वारा सभी प्राणियों की एक दिन यही गति होती है । उत्तम कुल में उत्पन्न वीर क्षत्रियश्रेष्ठ अभिमन्यु की मृत्यु उसके योग्य ही हुई है, सम्मुखयुद्ध में युद्ध करते करते मरना क्षत्रियोचित मृत्यु है । इसलिए तुम पुत्र की मृत्यु का शोक मत करो । मैं तो इसे उसके लिए बड़े भाग्य की बात मानता हूँ, जो पिता के तुल्य पराक्रमी धीर महारथी अभिमन्यु क्षत्रियधर्म के अनुसार उस गति को प्राप्त हुआ, जिसकी सब क्षत्रिय इच्छा करते हैं । बहुत से शत्रुओं को जीतकर और मारकर वीर अभिमन्यु उन अक्षय लोकों को गया है जहाँ पुण्यात्मा लोग जाते हैं और सब प्रकार की इच्छाएँ पूर्ण होती हैं ॥११।१५॥ सज्जन लोग तप, ब्रह्मचर्य, वेद शास्त्र के अध्ययन और प्रज्ञा आदि सत्कर्मों के द्वारा जो गति प्राप्त करने का उद्योग करते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्र को प्राप्त हुई है । हे सुभद्रा ! तुम वीर बालक की माता, वीर पति की पत्नी, वीर पिता की पुत्री और वीर भाई की बहन हो । इसलिए तुम्हें अपने पुत्र का शोक न करना चाहिए । उसको परमगति प्राप्त हुई है । हे बहन ! तुम धैर्य धरो, पापमति बालक की घात करनेवाला जयद्रथ बहुत शीघ्र अपने इष्ट मित्र अनुचर आदि सहित अपने किये का फल भोगेगा । यह रात्रि व्यतीत होने

व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत् ।
नहि मोक्ष्यति पार्थात्स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥
श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चाऽन्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥
व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत् ।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥
अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् ।
सहस्रशो रिपून्हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥
आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम् ।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥
यत्पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥
यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनिचराः पतगा सुरासुराश्च ।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरपि प्रभाते ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७७ ॥

---

हो पापी जयद्रथ इन्द्र की अमरावती पुरी में भी जाकर क्यों न अपनी जान बचाना चाहे, परन्तु अर्जुन के हाथ से जीता नहीं बचेगा॥१८।१९॥यह निश्चित समझो कि कल के दिन जयद्रथ का सिर धड़ पर न रहेगा इसलिए शोक करना छोड़ो, रुदन करना बन्द करो। फिर यह भी विचार करके देखो कि वह वीर बालक जिस प्रकार क्षत्रियधर्म का पालन करते करते श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार हम लोग और अन्य सब शस्त्रधारी लोग एक दिन उसी गति को पहुँचेंगे। चौड़ी छाती और बड़ी बाहुओंवाला महारथी अभिमन्यु असंख्य शत्रुओं के आगे से नहीं हटा और युद्ध करते करते सहस्रों शत्रुओं को मारकर स्वर्ग को गया है॥२०।२३॥इसलिए तुम सब शोक सन्ताप करना छोड़ो। हे बहन! अपनी बालिका बहू को ढाढ़स बँधाओ और स्वयँ शोक करना छोड़ो। प्रातःकाल शत्रु के मारे जाने की सूचना सुनने से तुम्हारा शोक दूर हो जायगा। अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की है वह अवश्य पूर्ण होगी, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकती। तुम्हारे पति जो करना चाहते हैं वह कदापि निष्फल नहीं होता। मैं फिर कहता हूँ कि यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, राक्षस, पक्षी, देवता, दैत्य आदि सब मिलकर युद्धभूमि में जयद्रथ की रक्षा करेंगे, तो भी कल प्रातःकाल उन सबके साथ जयद्रथ जीवित नहीं रह सकता॥२४।२६॥

०

द्रोणपर्व का सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

अथ अष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७८ ॥

सञ्जय उवाच—एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।

सुभद्रा पुत्रशोकार्त्ता विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥
हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्याऽसि संयुगम् ।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २ ॥
कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् ।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥ ३ ॥
नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम् ।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम् ॥ ४ ॥
चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् ।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ५ ॥
शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् ।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥ ६ ॥
योऽन्वास्यते पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः ।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ॥ ७ ॥
योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधबन्दिभिः ।
सोऽद्य क्रव्यादगणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते ॥ ८ ॥
पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो ।
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनाऽस्यनाथवत् ॥ ९ ॥
अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवाऽनघ ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम् ॥ १० ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७८ ॥

संजय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! पुत्रशोक से विह्वल और अत्यन्त दुःखित सुभद्रा, श्रीकृष्ण के [illegible] सुनकर इस प्रकार विलाप करने लगी — हाय पुत्र ! तुम तो अपने पिता के तुल्य पराक्रमी थे, फिर कैसे संग्राम में शत्रुओं के हाथ से मारे गये ! नील कमल के समान साँवला, सुन्दर दाँतों और विशाल नेत्रों से शोभित तुम्हारा मनोहर मुख आज युद्धभूमि की धूल से सना हुआ कैसा दिखाई पड़ रहा है ! अवश्य ही सब लोग देख रहे होंगे कि सुन्दर सिर, ग्रीवा, बाहु, कन्धे, चौड़ी छाती, [illegible] और [illegible] अंगों से शोभायमान, [illegible] शस्त्रों से [illegible] के घावों से [illegible], [illegible] संग्राम में [illegible] और तुम पृथ्वी पर उदय हुए चन्द्रमा के समान पड़े हुए हो ॥१-५॥ हाय अभी तो तुम्हारी युवा अवस्था थी, तुम्हारे सुन्दर अङ्ग अभी परिपुष्ट हुए थे। पहले जो बहुमूल्य [illegible] प्रार्थनीय बिछौनों से युक्त शय्या पर सोते थे, वही सुख भोगने योग्य तुम आज कैसे बाणों से घिरे हुए युद्धभूमि में पड़े हुए हो और [illegible] सो रहे हो ॥६-७॥ जिस महाबाहु की सुन्दरी स्त्रियाँ सेवा करती थीं और प्रसन्नचित्त सूत, मागध और बन्दीजन स्तुतिपूर्वक जिसकी उपासना किया करते थे, वही तुम आज युद्धभूमि में पड़े हुए हो और मांसभोजी [illegible] तुम्हारे पास [illegible] शब्द से [illegible] रहे हैं। हाय पुत्र ! [illegible] पाण्डव, [illegible]

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च ।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥ ११ ॥
धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम् ।
धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग्बलम् ॥ १२ ॥
धिक्केकयांस्तथा चेदीन्मत्स्यांश्चैवाऽथ सृञ्जयान् ।
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥
अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम् ।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥
स्वस्त्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वाऽतिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५ ॥
एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाऽऽशु मे ।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥
हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवाऽसि मे ।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥
इमां ते तरुणीं भार्यां तवाऽऽधिभिरभिप्लुताम् ।
कथं सन्धारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १८ ॥
अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥ १९ ॥

और यादव तुम्हारे सहायक थे, फिर किसने किस प्रकार अनाथ की भाँति तुमको मार डाला ? हाय निष्पाप पुत्र ! मुझ अभागिन के नेत्र तुमको देखकर तृप्त नहीं होते थे । इसलिए तुम्हें देखने को अवश्य ही आज मैं यमराज की पुरी को जाऊँगी॥८।१०॥हे पुत्र ! तुम्हारे विशाल नेत्र, मनोहर केश, सुगन्धित मुख और मधुर वचनों से युक्त व्रणशून्य मुखमण्डल को अब मैं फिर कब देखूँगी ? भीमसेन के बल, अर्जुन की धनुर्विद्या, यादवों और पाञ्चालों के बाहुबल तथा कैकेय-मत्स्य सृञ्जय आदि देशों के वीरों को धिक्कार है, जो वे युद्धभूमि में तुम्हारी रक्षा नहीं कर सके । मेरे नेत्र शोक के आँसुओं से व्याकुल हैं॥११। १३॥अभिमन्यु को न देखने के कारण आज मुझे सारी पृथ्वी अन्धकारमयी और सूनी देख पड़ रही है । तुम वासुदेव के भानजे, अर्जुन के वीर पुत्र और अतिरथी थे । समरभूमि में तुम्हारे मृत शरीर को मैं कैसे देख सकूँगी ! हे पुत्र ! आओ आओ, तुम्हें भूख लगी होगी, मेरे स्तनों में दूध भरा हुआ है । मुझ मन्दभागिनी की गोद में बैठकर दूध पी लो । मैं तुम्हें देखकर तृप्त नहीं हुई हूँ॥१४।१६॥हाय वीर ! तुम स्वप्न के मिले हुए धन की भाँति दिखाई पड़कर अचानक नष्ट हो गये । अहो, मनुष्य शरीर अनित्य और जल में उठनेवाले बुल्बुले की तरह चञ्चल है । हे पुत्र अभिमन्यु ! तुम्हारी यह तरुणी भार्या उत्तरा, तुम्हारे शोक से, व्याकुल हो रही है । वृषभ हीन गाय की भाँति बिलखती हुई इस बहू को मैं किस प्रकार समझाऊँगी और रक्खूँगी ? अहो पुत्र ! सङ्कट के समय में मुझे छोड़कर तुम चले गये हो । जब पुत्र

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २० ॥
यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २१ ॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥
या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हत्वाऽरीन्निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥ २३ ॥
गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
नैवेशिकं चाऽभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥ २४ ॥
ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या ।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥
ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः ।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥
राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती ।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पाविताना सुरक्षितैः ॥ २७ ॥
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम् ।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥
व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २९ ॥

के होने का फल मिलने का समय आया तब तुम मुझे दर्शनों को तरसती हुई छोड़ चल बसे ! काल की गति को बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी नहीं जान सकते ॥१७। १०॥कौन जानता था कि केशव ऐसे सहायक रक्षक के रहते तुम यों अनाथ की भाँति सग्राम में मारे जाओगे ! अच्छा, जाओ पुत्र ! यज्ञ करनेवाले, दानी, जितेन्द्रिय, आत्मज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पुण्य तीर्थों में स्नान करनेवाले, कृतज्ञ, उदारचित्त, गुरुसेवा-परायण और सहस्र दक्षिणा दान करनेवाले धर्मात्माओं की जो गति होती है वही श्रेष्ठ गति तुमको भी प्राप्त हो । संग्राम में पीठ न दिखानेवाले योद्धा लोग युद्ध में शत्रुओं को मारकर मरने पर जो गति प्राप्त करते हैं वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो॥२०।२३॥सहस्र गोदान करनेवालों, यज्ञ के लिए दान करनेवालों, सब सामग्री सहित गृह-दान करनेवालों की जो शुभ गति होती है, आश्रय देने योग्य निर्धन ब्राह्मणों को धन-रत्न दान करनेवालों, निरभिमान और सन्यासियों की जो गति होती है; अथवा दण्डनीय पापियों को उचित दण्ड देनेवालों की जो गति होती है, वही गति तुम्हें प्राप्त हो। व्रतधारी मुनियों को ब्रह्मचर्य पालन करने से और पतिव्रताओं को पति की सेवा से जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें प्राप्त हो॥२४।२६॥सदाचार का पालन करके राजा लोग जिस श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं, चारों आश्रमों के लोग अपने-अपने धर्म का

कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च ।
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा ।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥
ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम् ।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥
साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः ।
नाऽरुन्तुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३३ ॥
मधुमांसनिवृत्तानां मदाद्दम्भात्तथाऽनृतात् ।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥
ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः ।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥
एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम् ।
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटिसहितां तदा ॥ ३६ ॥
ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः ।
उन्मत्तवत्तदा राजन्विसंज्ञा न्यपतन्क्षितौ ॥ ३७ ॥
सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः ।
सिक्त्वाऽम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः॥ ३८ ॥

---

पालन करके और पुण्यात्मा लोग पुण्य की रक्षा करके जो सनातनी गति प्राप्त करते हैं, वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो। दीन जनों पर दया करनेवाले, सदा सबको बाँटकर खानेवाले और छल प्रपञ्च या चुगली न करने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं वही गति तुम्हें प्राप्त हो। जो लोग व्रत नियम आदि का पालन करते हैं, धर्मात्मा हैं, गुरुजन की सेवा करते हैं और अतिथि को विमुख नहीं जाने देते उन्हें जो गति प्राप्त होती है वही शुभ गति तुम्हें प्राप्त हो॥२७।२९॥ कष्ट और सङ्कट के समय जो अपने को सँभाले रहते हैं, शोक की अग्नि में जलकर भी धैर्य को नहीं छोड़ते, सदा माता पिता की सेवा करते रहते हैं और अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री की ओर नेत्र उठाकर नहीं देखते, उन्हें जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें प्राप्त हो। ऋतुकाल में अपनी स्त्री का सहवास करनेवालों और परस्त्री गमन से विमुख मनीषी पुरुषों को जो गति प्राप्त होती है वही गति तुम्हें प्राप्त हो॥३०।३२॥ जो ईर्ष्याशून्य पुरुष सबको समदृष्टि से देखते हैं, किसी को मर्मपीड़ा नहीं पहुँचाते और जो क्षमाशील हैं उनको जो गति प्राप्त होती है वही गति तुम्हें प्राप्त हो। जो लोग मदिरा नहीं पीते, मांस आदि भक्षण नहीं करते, मद, दम्भ, असत्य, पर सन्ताप और अन्याय से बचे रहते हैं, उन्हें जो गति प्राप्त होती है वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो। लोक लज्जा का खयाल रखनेवाले, सब शास्त्रों के ज्ञाता, ज्ञान से ही तृप्त, जितेन्द्रिय सज्जनों को जो गति प्राप्त होती है वही गति तुम्हें प्राप्त हो॥३३।३५॥शोक से पीड़ित होकर सुभद्रा दीन भाव से इस प्रकार विलाप कर रही थीं, इसी-

विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम् ।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥
सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥
ये चाऽन्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने ।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥
कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान्यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥
एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ॥ ४३ ॥
ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान्कृष्णो बन्धूंस्तथाऽर्जुनम् ।
विवेशाऽन्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथाऽऽलयम् ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७८ ॥

समय उत्तरा को साथ लिए द्रौपदी भी वहाँ आ गई। वे सब बहुत विलाप करके रुदन करने लगीं। वे अत्यन्त दुःख से उन्मत्त सी और अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं॥३६।३७॥अत्यन्त दुःखित श्रीकृष्ण ने दुःख से विह्वल सुभद्रा को अनेक उपचारों से अचेत किया। जल छिड़ककर वे उनको होश में लाये। इसके पश्चात् कृष्णचन्द्र ने अचेत सी, रुदन करती काँपती हुई, पृथ्वी पर लोट रही सुभद्रा से कहा हे बहन ! तुम पुत्र के लिए शोक मत करो। और हे पाञ्चाली द्रौपदी ! तुम उत्तरा को समझाओ। क्षत्रियश्रेष्ठ वीर अभिमन्यु उस प्रशंसनीय गति को प्राप्त हुआ है जिसके लिए क्षत्रिय लोग सदा इच्छुक रहते हैं॥३८।४०॥हे वरानने ! मैं तो यही चाहता हूँ कि हम लोगों के कुल में और जितने पुरुष हैं वे यशस्वी अभिमन्यु की सी गति पावें। हम लोग और हमारे पक्ष के सब लोग मिलकर जो कर सकते हैं वह तुम्हारे अकेले महारथी पुत्र ने कर दिखाया है। इसलिए उसकी मृत्यु कदापि शोचनीय नहीं है॥४१।४२॥कृष्णचन्द्र इस प्रकार अपनी बहन, द्रौपदी और उत्तरा को समझा बुझाकर अर्जुन के समीप गये। वहाँ राजाओं, मित्रों और अर्जुन को विश्राम करने के लिए आज्ञा देकर वे स्वयं विश्राम करने के लिए अन्तःपुर में गये। और सब लोग भी अपने-अपने डेरों में विश्राम करने के लिए गये॥४३।४४॥

०

द्रोणपर्व का अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

अथ एकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच – ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याऽप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाऽम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥ १ ॥

उन्नासीवाँ अध्याय ॥ ७९ ॥

सञ्जय कहते हैं—इसके उपरान्त महात्मा श्रीकृष्ण अर्जुन के डेरे में गये। वहाँ हाथ पाँव धोकर उन्होंने सुन्दर स्थान में वैदूर्यमणि के रखवाये हुए कुशों की शुभशय्या बिछाई। फिर विधिपूर्वक मङ्गल माल्य, अक्षत, गन्धद्रव्य आदि से उसे अलङ्कृत करके उसके चारों ओर श्रेष्ठ शस्त्र रक्खे। इसके पश्चात् अर्जुन जब सन्-

सन्तस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभैः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥
अलञ्चकार तां शय्यां परिवार्याऽऽयुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।
ततः प्रतीमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥
सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।
स्थापयित्वा ततो द्वास्थान्गोप्तॄंश्चाऽऽत्तायुधान्नरान् ॥ ६ ॥
दारुकानुगतः श्रीमान्विवेश शिविरं स्वकम् ।
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहु कृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥
पार्थाय सर्वं भगवाञ्शोकदुःखापहं विधिम् ।
व्यदधात्पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियङ्करः ॥ ९ ॥
न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित्सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १० ॥
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ११ ॥

स्पर्श आचमन आदि कर चुके तब विनीत परिचारक नित्य रात्रि को दी जानेवाली रुद्र की बलि ले आये। अब अर्जुन ने महादेव की पूजा की और बलि दी। इसके उपरान्त प्रसन्नचित्त से उन्होंने गन्ध-माला आदि से श्रीकृष्ण की पूजा की और उन्हें भी रात्रि के योग्य उपहार अर्पण किये॥१।५॥तब अर्जुन को साधुवाद देकर कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! तुम्हारा कल्याण हो,अब तुम जाकर विश्राम करो। मैं भी तुम्हारे कल्याण के लिए जाता हूँ। अर्जुन के हितचिन्तक भगवान् वासुदेव द्वार पर सशस्त्र सावधान द्वारपालों को तैनात करके, दारुक सारथी को साथ लिये हुए, अपने शिविर में गये। वहाँ श्वेत शय्या पर लेट करके महायशस्वी विष्णुस्वरूप भगवान् कृष्णचन्द्र बहुत से कर्त्तव्यों के बारे में निश्चय करने लगे। उन्होंने अर्जुन के शोक-दुःख को मिटानेवाली और तेज तथा द्युति को बढ़ानेवाली व्यवस्था योगबल के द्वारा कर दी॥५।९॥हे राजेन्द्र!उस रात्रि को पाण्डवों के शिविर में किसी को भी निद्रा नहीं आई। सब लोग इस प्रकार सोचते रहे कि पुत्र-शोक से पीड़ित वीर अर्जुन ने कल प्रातःकाल जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है। महाबाहु शत्रुदमन अर्जुन उस अपनी प्रतिज्ञा को किस प्रकार पूर्ण करेंगे!पुत्रशोक से विह्वल होकर अर्जुन यह बड़ी दुष्कर प्रतिज्ञा कर बैठे हैं।। एक तो जयद्रथ स्वयं साधारण योद्धा नहीं है, उस पर]दुर्योधन ने अपने पराक्रमी भाइयों, महारथी

तत्कथं नु महाबाहुर्वासवि: परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥
कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः स ताम् ॥ १३ ॥
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥ १५ ॥
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयन्नर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनञ्जयः ।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥
तस्मिन्हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः ।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद्यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् ।
एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥
कृच्छ्रेण महता राजन्रजनी व्यत्यवर्त्तत ।
तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।
अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥ २१ ॥

योद्धाओं और असंख्य सेना को जयद्रथ की रक्षा के निमित्त नियुक्त कर रक्खा है। हम लोग यही चाहते हैं कि महाबली अर्जुन युद्ध में जयद्रथ और अन्य शत्रुओं को मारकर, प्रतिज्ञारूप महाव्रत से उत्तीर्ण होकर, विजयी और सुखी हों॥१०।१४॥जो फल वे जयद्रथ का वध नहीं कर पावेंगे तो अवश्य ही जलती हुई चिता में अपने प्राण दे देंगे, क्योंकि अर्जुन कभी अपनी प्रतिज्ञा को टाल नहीं सकते॥१५।१७॥धर्मराज युधिष्ठिर की सम्पूर्ण विजय अर्जुन के ऊपर ही निर्भर है। यदि अर्जुन अपने प्राण दे देंगे तो फिर धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी जीवित नहीं रह सकेंगे। इसलिए यदि हमने कुछ दान, हवन या पुण्य किया है तो उसके फल से अर्जुन अपने शत्रुओं पर विजय पावें। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार आपस में कहकर, अर्जुन की जय की इच्छा रखते हुए, वीरों ने वह रात्रि बड़े कष्ट से व्यतीत की॥१७। २०॥इधर उसी रात्रि को श्रीकृष्ण ने जागकर और अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके अपने सारथी से कहा —हे दारुक ! पुत्र वध से शोकाकुल अर्जुन ने कल जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है। उसकी सूचना पाकर दुर्योधन, अपने मन्त्रियों से सम्मति करके, ऐसा उपाय करेगा जिसमें अर्जुन युद्ध में जयद्रथ का वध न कर सके। दुर्योधन की कई अक्षौहिणी सेना और पुत्र सहित सब अस्त्रों के ज्ञाता द्रोणाचार्य अवश्य जयद्रथ की रक्षा करेंगे॥२०।२३॥आचार्य जिसकी

जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥ २२ ॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।
अक्षौहिण्यो हिताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३ ॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।
एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
सोऽपि तं नोत्सहेताऽऽजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।
सोऽहं श्वस्तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ॥ २५ ॥
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।
न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममाऽर्जुनात् ।
अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्त्तमपि दारुक ॥ २७ ॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत्तथा ।
अहं विजित्य तान्सर्वान्सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान्ससुयोधनान् ।
श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥
धनञ्जयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।
श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥ ३० ॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।
श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।
श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥

रक्षा करें उसे, दैत्यों और दानवों के अहङ्कार को मिटानेवाले, अद्वितीय वीर इन्द्र भी नहीं मार सकते। परन्तु मैं कल वह उपाय करूँगा जिससे सूर्य के अस्त होने से पहले ही अर्जुन जयद्रथ को मार लेंगे। स्त्री-मित्र-सजातीय बन्धु-बान्धव आदि कोई भी मुझे अर्जुन से बढ़कर प्रिय नहीं है॥२४।२७॥मैं क्षण भर भी इस पृथ्वी को अर्जुन के बिना नहीं देख सकता। अतएव चाहे जिस तरह हो, कल अवश्य ही अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। मैं स्वयं, अर्जुन के लिए, सहसा चतुरङ्गिणी सेना सहित कर्ण और दुर्योधन आदि सबको जीतकर मार डालूँगा। हे दारुक! कल अर्जुन के लिए मैं स्वयं युद्ध करूँगा और तीनों लोकों के निवासी मेरे पराक्रम को देखेंगे। मैं कल सहस्रों राजाओं, सैकड़ों राजपुत्रों और चतुरङ्गिणी सेना को मार भगाऊँगा।मैं क्रुद्ध होकर तुम्हारे आगे ही अर्जुन के लिए अपने सुदर्शन चक्र से उन राजाओं की सेना को मार गिराऊँगा॥२७।३१॥कल देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस और त्रिभुवन के सब प्राणी जान लेंगे कि मैं अर्जुन का

ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।
यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चाऽनु स मामनु ॥ ३३ ॥
इति सङ्कल्प्य तां बुद्ध्या शरीरार्धं ममाऽर्जुनः ।
यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः ।
गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥ ३५ ॥
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
स्थानं च कल्पयित्वाऽथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ।
छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् ।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥
युक्तान्वाजिवरान्यत्तः कवची तिष्ठ दारुक ।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।
एकाह्नाऽहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।
यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
आशंसे सारथे तत्र भविताऽस्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥

मित्र हूँ । जो अर्जुन का शत्रु है वह मेरा भी शत्रु है और जो अर्जुन का मित्र है वह मेरा भी मित्र है । तुम निश्चित समझो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है, हम दोनों मित्र "एक प्राण दो देह" हैं॥३१।३४॥ हे दारुक ! तुम प्रातःकाल होते ही मेरे श्रेष्ठ सुसज्जित रथ को लेकर मेरे साथ युद्धभूमि में चलना । रथ पर गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष-बाण आदि शस्त्र और युद्ध की सब सामग्री रख लेना । उसमें रथ की शोभा बढ़ानेवाले गरुड़ से अलङ्कृत ध्वजा और छत्र लगा देना । सूर्य और अग्नि के समान चमकीले, विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित सुवर्णजाल से शोभित बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य और सुग्रीव नाम के चारों घोड़े जोतकर, कवच पहन करके, तुम रथ पर तैयार रहना॥३४।३९॥ ज्योंही तुम्हें मेघगर्जन सदृश मेरे पाञ्चजन्य शङ्ख का गम्भीर शब्द सुन पड़े त्योंही तुम वेग से मेरे समीप आ जाना । हे दारुक ! मैं अपने फुफेरे भाई अर्जुन के सब दुःख और क्रोध को एक ही दिन में, शत्रुवध करके, शान्त कर दूँगा । मैं सब प्रकार से ऐसा यत्न करूँगा कि दुर्योधन आदि के सम्मुख ही अर्जुन दुष्ट जयद्रथ को मार लेंगे । मुझे पूर्ण आशा है कि युद्धभूमि में काल अर्जुन जिसे-जिसे मारने का यत्न करेंगे उसे उसे मार डालेंगे॥३९।४२॥ दारुक ने कहा—हे पुरुषोत्तम ! स्वय

दारुक उवाच—जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥
एवं चैतत्करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसंभाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

आप जिसका रथ हाँकते हैं उस भाग्यशाली की जय होना सर्वथा निश्चत है। उसकी हार कहाँ से हो सकती है। आपने मुझे जो आज्ञा दी है उसी के अनुमार ही मैं सब कार्य करूँगा। कल सुप्रभात होगा और अर्जुन अवश्य ही विजय प्राप्त करेंगे॥४३।४४॥

— ० —

द्रोणपर्व का उनासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७९ ॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच—कुन्तिपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ १ ॥
तं तु शोकेन सन्तप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम् ।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥
प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः ।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३ ॥
प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ ।
न चाऽऽसने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यधात्तदा ॥ ४ ॥
ततः कृष्णो महातेजा जानन्पार्थस्य निश्चयम् ।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥
मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः ।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥
किमर्थं च विषादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर ।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः ॥ ७ ॥

अस्सीवाँ अध्याय ॥ ८० ॥

सञ्जय कहते है— हे राजेन्द्र ! उधर अचिन्त्य-पराक्रमी अर्जुन अपनी की हुई प्रतिज्ञा को और जयद्रथ कीरक्षा के लिये की हुई दुर्योधन की सम्मति को सोचते-सोचते कुछ निद्रित हो गये। अब शोकपीड़ित अर्जुन के निकट स्वप्नावस्था में गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण आये। भक्ति और प्रेम से परिपूर्ण अर्जुन सदा, सभी अवस्थाओं में, उठकर श्रीकृष्ण का आदर करते थे। उस समय भी श्रीकृष्ण को देखकर उन्होने उठकर उनका आदर-सत्कार किया और बैठने के लिए उन्हें सुन्दर आसन दिया। किन्तु आप आसन पर नहीं बैठे, खड़े ही रहे॥१।४॥महातेजस्वी कृष्णचन्द्र ने अर्जुन के मन की बात को जानकर बैठकर कहा—हे पार्थ ! तुम खेद न करो। यह बली काल बहुत ही दुर्जय है। काल ही सब प्राणियों को भवितव्यता के लिए

यत्तु कार्यं भवेत्कार्यं कर्मणा तत्समाचर ।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८ ॥
शोचन्नन्दयते शत्रून्कर्शयत्यपि बान्धवान् ।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः ।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १० ॥
मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता ।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥ ११ ॥
मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्त्तराष्ट्रैः किलाऽच्युत ।
पृष्ठतः सैन्धवः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ १२ ॥
दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः ।
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥ १३ ॥
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः ।
कथं शक्येत सन्द्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥ १४ ॥
प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव ।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः ॥ १५ ॥
दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्त्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥

विनाश करता है । हे नरश्रेष्ठ ! बतलाओ तो, तुम क्यों खेद कर रहे हो ? तुम श्रेष्ठ ज्ञानी हो । जो बुद्धिमान् हैं वे कदापि शोक नहीं करते । तुमको भी शोक नहीं करना चाहिए । शोक में सब कार्य नष्ट हो जाते हैं । अपने कर्तव्य का पालन करो । जो मनुष्य हाथ पर हाथ रक्खे केवल शोक ही किया करता है उसका वह शोक ही शत्रु है । हे मित्र ! शोक करनेवाला मनुष्य अपने शत्रुओं को प्रसन्न और बान्धवों को दुखी करता है । वह स्वयं भी मर मिटता है । इसलिए तुम शोक मत करो॥४।९॥ यह सुनकर अर्जुन ने कहा— हे श्रीकृष्ण ! मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि अपने पुत्र की हत्या के मूल कारण दुर्मति जयद्रथ को कल अवश्य मारूँगा । यह निश्चित है कि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होने देने के लिए दुर्यो-धन आदि कौरव कुछ कमी न रक्खेंगे । वे जयद्रथ को सारी सेना के पीछे रक्खेंगे और उनके पक्ष के सब महारथी मिलकर उसकी रक्षा करेंगे॥१०।१२॥ हे श्रीकृष्ण ! दुर्योधन की अत्यन्त दुर्जेय ग्यारह अक्षौ-हिणी सेना, जो मरने से बची है, जयद्रथ की रक्षा करेगी और सब महारथी भी उसे बचाने का उद्योग करेंगे । ऐसी दशा में दुरात्मा जयद्रथ के समीप तक मैं कैसे पहुँचूँगा और उसे देखूँगा ? विशेषकर इन दिनों सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण दिन छोटा होता है । इससे, इतने थोड़े समय में, इतनी सेना को नष्ट करके जयद्रथ तक पहुँचना असम्भव जान पड़ता है । जब तक वह दुष्ट मुझे नहीं मिलेगा और इसी कारण मैं उसको नहीं मार सकूँगा, तब मेरी प्रतिज्ञा कैसे पूर्ण होगी ? प्रतिज्ञा पूर्ण न होने पर मुझ सा मानी पुरुष कैसे जीता रह सकता है ? हे वीर ! इस समय दुःख विनाश की मेरी आशा नष्ट सी हो

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याऽम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवास्थितः॥१७॥
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥
पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान्मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥
यदि तद्विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथाऽज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २० ॥
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनञ्जय ।
ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत्॥ २१ ॥
ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याऽम्भो धनञ्जयः ।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥
ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् ॥ २३ ॥
पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥
वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥
प्रेक्षमाणो बहून्भावाञ्जगामाऽद्भुतदर्शनान् ।
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥ २६ ॥

---

रही है। प्रातःकाल होने में अब देर नहीं है, इसी से मैं आपसे यह कह रहा हूँ॥१३।१६॥हे महाराज ! अर्जुन के शोक का कारण सुनकर श्रीकृष्ण आचमन करके, पूर्वमुख होकर, आसन पर बैठ गये। इसके पश्चात् वे अर्जुन के हित और जयद्रथ के वध के लिए इस प्रकार कहने लगे —हे अर्जुन ! देवाधिदेव महादेव ने जिसके द्वारा सब दैत्यों का नाश किया था वह दिव्य सनातन पाशुपत अस्त्र यदि तुम्हें स्मरण है तो उसकी सहायता से कल तुम अवश्य ही जयद्रथ को मार सकोगे। यह अस्त्र तुम एक बार शङ्कर से प्राप्त कर चुके हो; किन्तु यदि उसे भूल गये हो तो इस समय एकाग्र मन से उस अस्त्र की प्राप्ति के लिए भगवान् शङ्कर का ध्यान करो। तुम उनके भक्त हो, इस कारण उनकी कृपा से ही वह महान् दिव्य अस्त्र अवश्य तुम्हें प्राप्त होगा॥१७।२१॥यह सुनकर अर्जुन ने आचमन किया और पृथ्वी पर बैठकर वे एकाग्र चित्त से शङ्कर का ध्यान करने लगे। कुछ समय में शुभ ब्राह्म मुहूर्त्त (चार घड़ी रात्रि रहे) उपस्थित होने पर अर्जुन ने अपने को कृष्णचन्द्र के साथ आकाशमार्ग में जाते हुए देखा। श्रीकृष्ण उनका दाहना हाथ पकड़े हुए थे और वे वायु के समान वेग से ज्योतिष्कमण्डलपूर्ण, सिद्ध-चारण-सेवित आकाशमार्ग द्वारा जाकर पवित्र हिमालय पर्वत के शिखर और मणिमान् पर्वत पर पहुँचे॥२२।२४॥अनेक प्रकार के अद्भुत दृश्य

कुवेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥
सदापुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८ ॥
पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥
हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ ३० ॥
स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चाऽन्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥
स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥
वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥
तस्मिञ्शैले व्रजन्पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४ ॥
चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।
समुद्रांश्चाऽद्भुताकारानपश्यद्बहुलाकरान् ॥ ३५ ॥
वियद्द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाऽभ्यगात्॥ ३६ ॥

देखते हुए धर्मात्मा अर्जुन उत्तर दिशा में चले। उन्होंने श्वेत पर्वत देखा; कुबेर की विहार-वाटिका में पद्मा से शोभित सुन्दर सरोवर देखा। फिर सर्वदा फलने-फलनेवाले वृक्षों से शोभित और स्फटिक शिलाओं से अलङ्कृत अगाध जलवाली, श्रेष्ठ नदी गङ्गा को देखा। गङ्गा-तट पर अनेक सिंह, व्याघ्र और अनेक प्रकार के मृग विचर रहे थे; पवित्र आश्रम शोभायमान थे और पक्षी उड़ रहे थे॥२५।२९॥उसके आगे उन्होंने मन्दराचल के विविध स्थानों को देखा। उनमें किन्नरों के गाने का शब्द गूँज रहा था। अनेक ओषधियों के प्रकाश से परिपूर्ण सुवर्ण-चाँदी के शिखर और फूले हुए कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। फिर अञ्जन-राशि के तुल्य काल पर्वत देखा। आगे ब्रह्मतुङ्ग पर्वत, अनेक नदियाँ, अनेक देश, अनेक नगर, बहुत ऊँचे शतशृङ्ग पर्वत, शर्यातिवन, पवित्र अश्वशिरा ऋषि का स्थान, आथर्वण ऋषि का स्थान, वृषदंश शैल और महामन्दर पर्वत देखा। उस पर्वत पर अप्सराएँ और किन्नर विहार कर रहे थे॥२९।३३॥उस पर्वत पर जाते-जाते अर्जुन सहित श्रीकृष्ण ने देखा कि यह पृथ्वी-मण्डल पवित्र झरनों और सुवर्ण आदि धातुओं की खानों से युक्त तथा चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित हो रहा है; अनेक नगर माला की तरह इसे घेरे हुए हैं। उन्होंने अनेक रत्नों के आकार और अद्भुत आकारवाले समुद्रों को भी देखा। धनुष से छूटे हुए बाण की

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥
समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥
सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥
नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसङ्घैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥
गीतवादित्रसन्नादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्कृष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥
स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥
वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥
लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥
स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४५ ॥
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥

तरह श्रीकृष्ण सहित अर्जुन आकाश, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और पृथ्वी पर विचरते हुए आश्चर्य के साथ सब दृश्य देखते जा रहे थे॥३४।३६॥इसके उपरान्त अर्जुन ने एक बहुत बड़ा विशाल पर्वत देखा, जिसकी दीप्ति ग्रह नक्षत्र-चन्द्रमा सूर्य और अग्नि के समान थी। उसी प्रज्वलित अग्नि के समान पर्वत पर अर्जुन को, सदा तपस्या में निरत,देवदेव महात्मा शङ्कर देख पड़े। अर्जुन को उनका तेज एकत्र प्रकाशमान सहस्र सूर्यों के प्रकाश सा जान पड़ा।वे सिर पर जटाजूट और हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए थे। वे वल्कल और मृगछाला पहने हुए थे। उनके एक सहस्र नेत्र थे और अङ्ग विचित्र थे। महापराक्रमी महादेव के समीप पार्वती देवी और तेजस्वी भूतगण उपस्थित थे॥३७।४०॥उन गणों में से कोई गा रहा था, कोई बजा रहा था, कोई जोर से बोल रहा था, कोई हँस रहा था, कोई नृत्य कर रहा था, कोई इधर-उधर टहल रहा था, कोई ताल ठोक रहा था और कोई ऊचे स्वर से चिल्ला रहा था। आसपास पवित्र सुगन्ध भरी हुई थी। ब्रह्मवादी ऋषि लोग दिव्य स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर रहे थे॥४१।४२॥सब प्राणियों की रक्षा करनेवाले, ईशान, वरदानी, शिव को देखते ही कृष्णचन्द्र ने अर्जुन के साथ सनातन ब्रह्म का उच्चारण करते-करते पृथ्वी पर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया। लोकों के आदि, विश्वकर्मा, जन्म रहित, ईशान ( जिनकी इच्छा अप्रतिहत है ), अव्यय

कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४७ ॥
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥
अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत ।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥
ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५० ॥
स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ५१ ॥
येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत्साधयामि किम् ।
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत्सर्वं प्रददामि वाम् ॥ ५२ ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३ ॥
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥ ५४ ॥

कृष्णार्जुनावूचतुः—नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ ५६ ॥

(विकाररहित), प्रवृत्ति और निवृत्ति के कारणस्वरूप, उत्पत्तिस्थान, आकाशरूप, वायुरूप, सब प्रकार के वेगों के आश्रयस्थल, जलधाराओं को उत्पन्न करनेवाले, पृथ्वी की परमप्रकृति, देव दानव यक्ष और मनुष्यों का शासन करनेवाले, योग और योगियों के परम आश्रय, प्रत्यक्ष परब्रह्म, ब्रह्मज्ञानियों के इष्टदेव, जगत् की सृष्टि और संहार करनेवाले, काल के समान दारुण कोपवाले, महात्मा, इन्द्र के ऐश्वर्य आदि और सूर्य के प्रताप आदि गुणों के उत्पत्तिस्थान महादेव को श्रीकृष्ण और अर्जुन ने मन-वाणी-काया से प्रणाम किया और वे उन जन्मरहित कारण स्वरूप शङ्कर की शरण में गये जिनकी शरण में सूक्ष्म अध्यात्म पद के ज्ञान को खोजनेवाले विद्वान् लोग जाते हैं॥४२।४७॥अर्जुन भी उन्हें सब प्राणियों के आदि और भूत भविष्य वर्तमान का उत्पत्तिस्थान जानकर भक्तिपूर्वक बारम्बार प्रणाम करने लगे। नर और नारायण दोनों को आये हुए देखकर, प्रसन्न होकर, हँसते हुए देवादिदेव शङ्कर कहने लगे—हे नर-श्रेष्ठ वीरो! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। उठो, तुम्हारी सब थकन जाती रहे। बोलो, क्या चाहते हो? यहाँ तुम जिस कार्य की सिद्धि के लिए आये हो, उसे मैं अवश्य सिद्ध करूँगा। तुम अपने कल्याण का वर माँगो, मैं वह तुम्हें देने को उद्यत हूँ॥४८।५२॥महादेव के वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उठे और हाथ जोड़कर, भक्तिपूर्वक, उनकी स्तुति करने लगे। अब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने कहा—भव (सबके प्रभु), शर्व (संहार करनेवाले), रुद्र, वर-

कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥ ५७ ॥
विलोहिताय धूम्राय व्याधायाऽनपराजिते ।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥
होत्रे पोत्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ।
अचिन्त्यायाऽम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ ५९ ॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाऽजिताय च ॥ ६० ॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥
ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च ।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥
नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥

सञ्जय उवाच—एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः ।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दानी, पशुपति, उग्र, कपर्दी, महादेव, भीम, त्र्यम्बक, शान्तरूप, ईशान, दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करनेवाले, अन्धकासुर को मारनेवाले, कुमार कार्त्तिकेय के पिता, नीलग्रीव, वेधा, पिनाकी, हविष्य (यज्ञ में भाग प्राप्त करनेवाले), सत्यस्वरूप, विभु(व्यापक), विलोहित, धूम्र, व्याध, अपराजित, सब प्राणियों में श्रेष्ठ, सर्वजयी, नीलशिखण्ड, शूली, दिव्यचक्षु, होता, पाता (रक्षक), त्रिनेत्र, वसुरेता, अचिन्त्यस्वरूप, अम्बिका पति, सर्वदेववन्दित, वृषध्वज, मुण्ड, जटाजूटधारी, ब्रह्मचारी, जल में तपस्या करनेवाले, ब्रह्मण्य, अजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा और विश्व में व्याप्त मृत्युञ्जय को प्रणाम है॥५२।६१।आप सेवनीय हैं, सब प्राणियों के अथवा प्रमथ भूतगण आदि के प्रभु और वेद-मुख हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं । सर्वस्वरूप, शङ्कर, शिव (मोक्ष देनेवाले), वाचस्पति, प्रजापति, विश्वपति और महत् जनों के पति रुद्र को हमारा प्रणाम है । आपके सहस्रों सिर, सहस्रों हाथ, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं । आपके कर्म असंख्य हैं । आप मृत्युरूप हैं। आपको हम प्रणाम करते हैं। हिरण्यवर्ण, हिरण्यकवचधारी, भक्तों पर दया करनेवाले जगदीश्वर को हम प्रणाम करते हैं । हे प्रभो ! ऐसी कृपा कीजिए जिससे हमारी इच्छा पूर्ण हो॥६२।६४॥सञ्जय कहते हैं – इस प्रकार स्तुति करके अर्जुन सहित श्रीकृष्ण, अस्त्र की प्राप्तिके लिए, शङ्करको प्रसन्न करने लगे॥६५॥

द्रोणपर्व का अस्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८० ॥

अथ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच — ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम् ।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥
तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना ।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २ ॥
ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः ।
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥
ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा ।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥
स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम् ।
येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥ ५ ॥
सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
तत्र मे तद्धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥
येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७ ॥
तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह ।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥
निर्दिष्टं यद्वृषाङ्केन पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।
तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥
ततस्तौ तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसन्निभम् ।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥

इक्यासीवाँ अध्याय ॥ ८१ ॥

सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! हाथ जोड़े हुए महानुभाव अर्जुन ने प्रसन्नचित्त होकर, सम्पूर्ण तेजों के आधार, शङ्कर जी की ओर सादर भक्तिपूर्ण दृष्टि से देखा। उन्होने आश्चर्य के साथ देखा कि वासुदेव ने उनकी ओर से रात्रि को जो विधिपूर्वक पूजोपहार रुद्र को अर्पण किया था वह वहाँ, शङ्कर के समीप उपस्थित है। तब मन ही मन शङ्कर और नारायणावतार कृष्णचन्द्र की पूजा करके अर्जुन ने महादेव से कहा मैं आपसे दिव्य पाशुपत अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ। अर्जुन के अन्तःकरण का भाव जानकर मुसकराते हुए श्रीशङ्कर ने कृष्णचन्द्र और अर्जुन से कहा— हे पुरुषश्रेष्ठो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम्हारा मनोरथ मैंने जान लिया है। जिस कार्य के लिये तुम यहाँ आये हो, उसके पूर्ण होने का वरदान मैं तुमको देता हूँ। पहले मैंने जिनसे समर में देवताओं के वैरी दानवों का संहार किया था वे दिव्य धनुष और बाण यहाँ, निकट ही, अमृतमय दिव्य सरोवर में रक्खे हुए हैं। तुम जाकर उस उत्तम धनुष और बाण को ले आओ॥४।७॥तब वे दोनों वीर 'बहुत अच्छा' कहकर, शिव के गणों के साथ, उस दिव्य सरोवर पर गये।

द्वितीयं चाऽपरं नागं सहस्रशिरसं वरम् ।
वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥
ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याऽम्भः कृताञ्जली ।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥
गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद्ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥
ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥
तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५ ॥
ततः पार्श्वाद्वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्त्तत ।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नीललोहितः ॥ १६ ॥
स तद्गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
विचकर्षाऽथ विधिवत्सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥
तस्य मौर्वी च मुष्टिं च स्थानं चाऽऽलक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥
स सरस्येव तं बाणं मुमोचाऽतिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन्सरसि तद्धनुः ॥ १९ ॥

शिवजी का बताया हुआ वह सरोवर सैकड़ों आश्चर्यजनक दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त, सर्वार्थसाधक और पवित्र था। सूर्यमण्डलसदृश उस सरोवर के समीप असम्भ्रान्त भाव से जाकर नरनारायण ऋषियों के अवतार कृष्णचन्द्र और अर्जुन ने देखा कि जल के भीतर दो भयङ्कर नाग बैठे हैं। एक नाग अत्यन्त भयङ्कर और एक ही सिर का है, किन्तु दूसरा नाग अग्नि के समान प्रज्वलित है और उसके एक सहस्र सिर हैं॥८।११॥तब वेदज्ञ कृष्णचन्द्र और अर्जुन ने आचमन करके हाथ जोड़कर शङ्कर को प्रणाम और स्मरण किया और शतरुद्री के मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया। वे दोनों महात्मा, शङ्कर की अपरम्पार महिमा जानकर, प्रणामपूर्वक उन दोनों नागों की आराधना करने लगे। तब वे दोनों महानाग शङ्कर के प्रभाव से देखते ही देखते शत्रुओं का नाश करनेवाले दिव्य धनुष और बाण बन गये॥१२।१४॥ तुरन्त ही प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने श्रेष्ठ प्रभा से युक्त धनुष बाण उठा लिया और लाकर शङ्कर के आगे रख दिया। इसके उपरान्त शिव के पार्श्वभाग से पिङ्गललोचन तपोमूर्ति बलवान् नील लोहित एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ, जो कि शिव का ही दूसरा रूप था। उस ब्रह्मचारी ने वह श्रेष्ठ धनुष हाथ में लेकर, एकाग्रता के साथ ठीक पैंतरे से खड़े होकर, विधिपूर्वक बाण चढ़ाकर धनुष को खींचा। अचिन्त्यपराक्रमी अर्जुन ने ध्यान के साथ उसका धनुष पकड़ना, डोरी खींचना और पैंतरे से खड़े होना देखा और शिवजी के उच्चारण किये हुए अस्त्र मन्त्र का स्मरण कर लिया॥१५।१८॥महाबली प्रभु शङ्कर ने उस बाण को उसी सरोवर में छोड़ा और उसके पश्चात् वह धनुष भी उसी सरोवर में डाल दिया। स्मृतिशक्तिसम्पन्न अर्जुन ने शङ्कर को प्रसन्न देखकर अपने अन्तःकरण में, पहले

तत: प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥ २० ॥
मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीत: प्रादाद्वरं भव: ॥ २१ ॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ।
तत: पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥ २२ ॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्ष: कृतं कार्यममन्यत ।
ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥
अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्भवेनाऽर्जुनकेशवौ ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ २४ ॥
तथा भवेनाऽनुमतौ महासुरनिघातिना ।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकांक्षिणौ ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुन: पाशुपतास्त्रप्राप्तो एकाशीतितमोऽध्याय: ॥ ८१ ॥

वन में जो शङ्कर का दर्शन हुआ था और उन्होंने सन्तुष्ट होकर पाशुपत अस्त्र के साथ जो वर दिया था, उसे स्मरण किया और मन ही मन में कहा कि हे शङ्कर ! वह आपका दिया हुआ वर और दिव्य अस्त्र मुझे भी प्राप्त हो । अर्जुन के अन्तःकरण के भाव को जानकर अन्तर्यामी महादेव ने प्रसन्नतापूर्वक पाशुपत अस्त्र के साथ ही वह वर दिया कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो॥१०,२१॥ दुर्द्धर्ष अर्जुन ने इस प्रकार शङ्कर से फिर दिव्य पाशुपत अस्त्र पाकर निश्चय कर लिया कि हम कृतकार्य हो गये । अर्जुन के शरीर में उस समय आनन्द के मारे रोमाञ्च हो आया । इसके उपरान्त अर्जुन और कृष्णचन्द्र दोनों ने परम प्रसन्न होकर देवाधिदेव महादेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । फिर दोनों ही, शङ्कर की अनुमति लेकर, प्रसन्नतापूर्वक वैसे ही अपने शिविर को लौटे जैसे जम्भासुर के वध के लिए महासुरनाशक शङ्कर की अनुमति लेकर प्रसन्नचित्त इन्द्र और विष्णु अपने लोक को गये थे॥२१।२५॥

— ० —

द्रोणपर्व का इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८१ ॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच तयो: संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा ।
साऽत्यगाद्रजनी राजन्नथ राजाऽन्वबुध्यत ॥ १ ॥
पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किका: ।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवु: पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥

बयासीवाँ अध्याय ॥ ८२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे भरतकुलतिलक ! पूर्वोक्त प्रकार से श्रीकृष्ण और दारुक आपस में बातें करते [illegible] रही थी कि रात्रि व्यतीत हो गई । प्रातःकाल होते ही सूत [illegible] युधि-ष्ठिर को जगाने लगे । वैतालिक सूत आदि [illegible] [illegible] पुरुषश्रेष्ठ [illegible] स्तुति करने लगे। नृत्य करनेवाले नृत्य करने लगे, और [illegible] मधुर स्वर से [illegible]

नर्तकाश्चाऽप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः ।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥
मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः ।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
एवमेतानि सर्वाणि तथाऽन्यान्यपि भारत ।
वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधु शिक्षिताः ॥ ५ ॥
स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद्दिवम् ।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥
प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे ।
उत्थायाऽवश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥
ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च ।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥
भद्रासनेपूपविष्टः परिधायाऽम्बरं लघु ।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन ससुगन्धिना ॥ १० ॥
राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम् ।
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥
हरिणा चन्दनेनाऽङ्गमुपलिप्य महाभुजः ।
स्रग्वी चाऽक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः १२ ॥

जिनमें कुरुवंश की प्रशंसा और गुणों का वर्णन था॥१। २॥मृदङ्ग, झाँझ, भेरी, पणव, डङ्के, गोमुख, पटह, नगाड़े और शङ्ख आदि बाजे बजने लगे। चतुर और बाजे बजाने में निपुण पुरुष प्रसन्नचित्त होकर इन तथा अन्य बाजों को अच्छे ढँग से बजाने लगे। इन बाजों का मेघगर्जन-तुल्य भारी शब्द आकाशमण्डल में गूँज उठा। उससे निद्रागत राजेन्द्र युधिष्ठिर जाग पड़े॥४।६॥महामूल्य उत्तम शय्या पर सुखपूर्वक निद्रागत राजा युधिष्ठिर उठकर प्रात.काल के आवश्यक कार्यों से निवृत्त होने के लिए स्नानगृह में गये। तब श्वेत वस्त्र पहने, युवा, स्नान किये हुए एक सौ आठ स्नानकरानेवाले कर्मचारी लोग भरे हुए सुवर्ण के घड़े लेकर धर्मराज की सेवा में उपस्थित हुए। लघु वस्त्र पहने हुए राजा युधिष्ठिर सुन्दर आसन पर बैठ गये। स्नान करानेवालों ने चन्दन से सुगन्धित और मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके स्वच्छ जल से उन्हें भलीभाँति स्नान कराया। बलवान् सुशिक्षित स्नानकरानेवालों ने कषाय ओषधियों से औटाये हुए जल से भलीभाँति मल-मल कर राजा को स्नान कराया। फिर केवड़े आदि के बसाये हुए सुगन्धित जल से उनका शरीर शुद्ध किया गया॥७।१०॥इसके पश्चात्, जल सुखाने के लिए, महाराज युधिष्ठिर ने सिर पर राजहंस के समान श्वेत पगड़ी लपेट ली। सब अङ्गों में हरिचन्दन और अङ्गराग लगाकर, माला पहनकर, नवीन वस्त्र धारण करके

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः ।
तत्राऽग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥
समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा ।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः ॥ १४ ॥
द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः ।
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद्ब्राह्मणर्षभान् ॥ १५ ॥
दान्तान्वेदव्रतस्नातान्स्नातानवभृथेषु च ।
सहस्रानुचरान्सौरान्सहस्रं चाऽष्ट चाऽपरान् ॥ १६ ॥
अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः ।
तान्द्विजान्मधुसर्पिभ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥
प्रादात्काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः ।
अलंकृतं चाऽश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥
तथा गाः कपिला दोग्ध्री सवत्साः पाण्डुनन्दनः ।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्वा तेभ्यः प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥
स्वस्तिकान्वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान् ।
माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २० ॥
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा ।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥
मङ्गल्यान्पक्षिणश्चैव यच्चाऽन्यदपि पूजितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२ ॥

महाबाहु युधिष्ठिर सदाचार के अनुसार पूर्वमुख हो हाथ जोड़कर गायत्री का जाप करने लगे। अब वे अग्निहोत्रशाला में, जहाँ अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे थे, विनीत भाव से गये। वहाँ मन्त्र पढ़कर लकड़ियों और घी की आहुतियों से अग्नि की आराधना करके वे बाहर निकले॥१३।१४॥फिर दूसरी ड्योढ़ी में जाकर पुरुषसिंह युधिष्ठिर ने वेदवेत्ता, वृद्ध, जितेन्द्रिय, वेदव्रतस्नात, यज्ञान्त में अनेक बार अवभृथ-स्नान किये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों के दर्शन किये। वहाँ युधिष्ठिर के साथ सदा रहनेवाले सूर्योपासक एक सहस्र और अन्य आठ सहस्र ब्राह्मण उपस्थित थे। शहद, घी, मङ्गलकार्यों में काम आनेवाले श्रेष्ठ फल, अक्षत, फूल, दूध आदि माङ्गलिक पदार्थों से ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्तिपाठ कराकर प्रत्येक ब्राह्मण को उन्होंने एक एक निष्क सुवर्ण दक्षिणा दी और उनकी प्रदक्षिणा की। इसके अतिरिक्त उन्हें आभूषणों से अलंकृत एक सौ घोड़े, उत्तम वस्त्र, अभीप्सित दक्षिणा, बछड़ों सहित कपिला दुधारू गौएँ दीं, जिनके सींग सुवर्ण से और खुर चाँदी से मढ़े हुए थे। इसके पश्चात् स्वस्तिक चिह्नयुक्त पात्र, सकोरे, सुवर्ण के सम्पुटित अर्घपात्र, माला, जल के भरे हुए घड़े, प्रज्वलित अग्नि, अक्षतपूर्ण पात्र, रुचक (एक प्रकार का नीबू), गोरोचना, अच्छी प्रकार अलंकृत शुभलक्षिणी कन्या, दही, घी, शहद, जल, मङ्गलमय पक्षी तथा

ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः ।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् ।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४ ॥
तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥
मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ २६ ॥
चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः ।
दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २७ ॥
संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥ २८ ॥
ततो मुहूर्तादासीत्तु स्यन्दनानां स्वनो महान् ।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९ ॥
ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३० ॥
ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
शिरसा वन्दनीयं-तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः सन्नद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥

---

अन्य पूजनीय पदार्थों को देखकर और छूकर राजा युधिष्ठिर बाहर की ड्योढ़ी में आये॥२०।२२॥ वहाँ उनके परिचारकों ने सुवर्ण का सर्वतोभद्र सिंहासन लाकर रख दिया। उस दिव्य सिंहासन को विश्वकर्मा ने बनाया था। उस पर कोमल बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था। जिस पर श्वेत रङ्ग की चादर पड़ी हुई थी। मोती, मणि, वैदूर्य आदि बहुमूल्य रत्न उसमें जड़े हुए थे। उस सिंहासन पर जब युधिष्ठिर बैठे तब अनुचरगण श्वेत बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण ले आये। वस्त्र और आभूषण पहन लेने पर युधिष्ठिर का रूप शत्रुओं के शोक को बढ़ानेवाला देख पड़ा॥२३।२६॥ भृत्यगण चन्द्रकिरण-सदृश, सुवर्णदण्ड-युक्त, बहुमूल्य सुन्दर चामर डुलाकर उनकी सेवा करने लगे। उस समय वे चमकती हुई बिजलियों से शोभित मेघ के समान जान पड़ने लगे। सूतगण स्तुति करने लगे, वन्दीजन वन्दनागान गाने लगे और गवैये गन्धर्व मधुर गीत गाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे। क्षण भर तक वन्दीजनों का शब्द गूँजता रहा। इसके पश्चात् रथों की घरघराहट, घोड़ों की टापों की आवाज़, हाथियों के घण्टों का शब्द, शङ्खनाद और मनुष्यों के पाँवों का शब्द ऐसा हुआ कि उससे वहाँ की पृथ्वी मानों काँप उठी॥२७।३०॥ थोड़ी देर के पश्चात् कुण्डल-मण्डित, कमर में तलवार लटकाये हुए, कवचधारी, नवयुवक द्वारपाल ने वहाँ आकर

न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।
सोऽब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥ ३३ ॥
अर्घ्यं चैवाऽऽसनं चाऽस्मै दीयतां परमार्चितम् ।
ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ॥ ३४ ॥
पूजयामास विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

के घुटने टेककर वन्दनीय युधिष्ठिर को प्रणाम करके निवेदन किया कि हे महाराज ! महात्मा वासुदेव यहाँ पधारे हैं । पुरुषसिंह युधिष्ठिर ने कहा—उनका स्वागत करो और उनको श्रेष्ठ आसन लाकर दो । जब श्रीकृष्णको भीतर लाकर श्रेष्ठ आसन पर बिठाया गया तब युधिष्ठिर ने उनका सत्कार किया । श्रीकृष्ण ने भी धर्मराज का सत्कार किया॥२१।३५॥

—०—

द्रोणपर्व का बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८२ ॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच—ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् ।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥
सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित्ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाऽच्युत ॥ २ ॥
वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरम् ।
ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥
अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम् ।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् ।
युधामन्युं सुवाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥
एते चाऽन्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चाऽऽसने शुभे ॥ ७ ॥

तिरासीवाँ अध्याय ॥ ८३ ॥

सञ्जय कहते हैं कि युधिष्ठिर ने अभिनन्दन करके कहा हे श्रीकृष्ण ! रात्रि को कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ? आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ तो ठीक हैं ? श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर से कुशलप्रश्न करके कहा—हे सौम्य ! आपके दर्शनों से मैं प्रसन्न हो गया हूँ । हे महाराज ! इसी समय द्वारपालने आकर निवेदन किया कि महाराज के दर्शनों के लिए सब सुहृद आये हुए हैं । युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर वह द्वारपाल उन लोगों को ले आया । राजा विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, महारथी राजा द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सह-

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥
ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥
एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवाऽमराः ।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥
त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् ।
क्लेशांश्च विविधान्कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥
त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥
स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम ।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥
स भवांस्तारयत्वस्माद्दुःखामर्षमहार्णवात् ।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥
नहि तत्कुरुते संख्ये रथो रिपुवधोद्यतः ।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥
यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन ।
तथैवाऽस्मान्महाबाहो वृजिनात्त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥
त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान्पाण्डवान्कुरुसागरे ।
समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥

देव, चेकितान, केकय देश के राजा, कौरव युयुत्सु, पाञ्चालतनय उत्तमौजा, सुबाहु, युधामन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र तथा अन्य अनेक सुहृद युधिष्ठिर के समीप आये। उन्होंने सबको बैठने की आज्ञा दी। वे लोग युधिष्ठिर को यथायोग्य प्रणाम करके यथोचित बहुमूल्य आसनों पर बैठ गये॥१।७॥महाबली श्रीकृष्ण और सात्यकि दोनों एक ही आसन पर बैठे। अब उन सबको सुनाकर राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके, मधुर स्वर में कहा—हे कृष्णचन्द्र! सब देवता जैसे इन्द्र के आश्रित हैं, वैसे ही हम लोग एक आपका ही आश्रय लेकर युद्ध में विजय और सुख चाहते हैं॥८। १०॥आप भली भाँति जानते हैं कि शत्रुओं ने किस प्रकार हमारा राज्य छीन लिया, अपमान किया, हमें वन को भेज दिया और हमने कैसे-कैसे क्लेश प्राप्त किये हैं। हे सबके ईश्वर! हे भक्तवत्सल! हे मधुसूदन! हमारे सब सुख और हमारी स्थिति सब आपके ही ऊपर निर्भर है। सो अब आप ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें अर्जुन की जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा पूर्ण हो और मेरे हृदय में आपकी भक्ति अटल बनी रहे। हे श्रीकृष्ण! आप नौकास्वरूप होकर इस दुःख और क्रोध के महासागर से हमें पार लगाइए॥११।१४॥ युद्ध में तत्पर रथी भी वह कार्य नहीं कर सकता जो आप, सारथी बनकर, कर रहे हैं। हे जनार्दन! जैसे आप सब आपत्तियों से यादवों की रक्षा करते हैं वैसे

नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन　।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम　॥ १८ ॥
नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम्　।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत्सत्यं कुरु माधव　॥ १९ ॥
इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि　।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्　॥ २० ॥
वासुदेव उवाच—सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः　।
शरासनधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः　॥ २१ ॥
वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः　।
युद्धशौण्डः सदाऽमर्षी तेजसा परमो नृणाम्　॥ २२ ॥
स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः　।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान्द्विषतस्ते हनिष्यति　॥ २३ ॥
अहं च तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः　।
धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम्　॥ २४ ॥
अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम्　।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः　॥ २५ ॥
तस्याऽद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा　।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चाऽन्ये पुरुषादकाः　॥ २६ ॥
यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाऽप्यसौ　।
राजधानीं यमस्याऽद्य हतः प्राप्स्यति संकुले　॥ २७ ॥

हो। इस सङ्कट में हमारी रक्षा कीजिए। हे महाबाहु! हे शङ्ख-चक्र-गदाधर! हम लोग नौका हीन अथाह कौरव-सागर में डूब रहे हैं, आप नौकास्वरूप होकर उसमें हमें उबारिए। हे देवदेव! हे ईश! हे सनातन! हे संहार करनेवाले! हे विष्णु! हे जिष्णु! हे हरे! हे कृष्ण! हे वैकुण्ठ! हे पुरुषोत्तम! आपको प्रणाम है। देवर्षि नारद से मैं सुन चुका हूँ कि आप पुरातन नारायण ऋषि हैं, वर के देनेवाले हैं, शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले विष्णु हैं और श्रेष्ठ हैं। सो आप नारद के कथन को सत्य कीजिए॥१५-१९॥ सभा के बीच युधिष्ठिर के यों कहने पर कमलनयन [illegible] गम्भीर स्वर से [illegible] कहने लगे — हे राजेन्द्र! देवताओं सहित तीनों लोकों में अर्जुन के समान धनुर्धर योद्धा दूसरा नहीं है। वे वीर्यवान्, अस्त्रज्ञ, पराक्रमी, महाबली, युद्धनिपुण, क्रोधी और तेजस्वी हैं। वृषभस्कन्ध, महाबाहु, महाबली, सिंह और साँड़ के समान चलनेवाले अर्जुन अवश्य आपके शत्रुओं को मारेंगे॥२०-२३॥ मैं वही उपाय करूँगा जिससे वीर-श्रेष्ठ अर्जुन दुर्योधन की सेना को उसी प्रकार से नष्ट करेंगे जिस प्रकार से अग्नि ईंधन के ढेर को भस्म कर देती है। अर्जुन आज अपने बाणों से उस क्षुद्र, पापी, अभिमन्यु की मृत्यु के मूल-कारण, जयद्रथ को उसी मार्ग से भेजेंगे जिससे कोई लौटकर नहीं आता। आज उसके मांस को गिद्ध, बाज, [illegible] और मा-

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति ।
विशोको विज्वरो राजन्भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८३ ॥

मास-भोजी अन्य पिशाच राक्षस आदि अवश्य भक्षण करेंगे॥२४।२६॥यदि आज इन्द्र आदि सब देवता भी मिलकर जयद्रथ की रक्षा करेंगे तो भी वह दुर्मति अवश्य मारा जायगा। आज दुष्ट जयद्रथ को मारकर अर्जुन आपसे मिलेंगे। आप शोक और सन्ताप त्यागकर शान्त हों॥२७।२८॥

द्रोणपर्व का तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्याय ॥ ८४ ॥

सञ्जय उवाच—तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः ।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥
तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याऽग्रतः स्थितम् ।
तमुत्थायाऽर्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥
व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् ।
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥
तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥
ततस्तत्कथयामास यथादृष्टं धनञ्जयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥ ६ ॥
ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाऽब्रुवन् ॥ ७ ॥
अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥

चौरासीवाँ अध्याय ॥ ८४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इस प्रकार युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण की बातचीत हो ही रही थी कि इसी समय सुहृदों सहित राजा युधिष्ठिर के दर्शन करने के लिए अर्जुन वहाँ पर आये। उस ड्योढ़ी में प्रवेश कर, प्रणाम करके, सम्मुख खड़े हुए अर्जुन को युधिष्ठिर ने आसन से उठकर प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया। फिर आशीर्वाद देकर, उनका मस्तक सूँघकर, हँसते हुए धर्मराज कहने लगे — हे भाई अर्जुन ! आज संग्राम में अवश्य तुम्हें भारी विजय प्राप्त होगी; क्योंकि तुम्हारे मुख की कान्ति वैसी ही उज्ज्वल है और श्रीकृष्ण भी तुम पर अत्यन्त ही प्रसन्न हैं॥१।४॥तब अर्जुन ने बहुत ही आश्चर्यजनक वृत्तान्त का वर्णन करते हुए कहा— हे राजेन्द्र ! आपका कल्याण हो; आज रात्रि को मैंने स्वप्न में श्रीकृष्ण की कृपा से एक बहुत ही अद्भुत

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥
रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ॥ १० ॥
तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ।
रथं रथवरस्याऽऽजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११ ॥
स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ॥ १२ ॥
ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥ १३ ॥
तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ।
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४ ॥
तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ॥ १५ ॥
जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ॥ १६ ॥
स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ।
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान्मेराविव दिवाकरः ॥ १७ ॥
अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ

---

दृश्य देखा है । [सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! ] अब अपने सुहृदों के आश्वासन के लिए रात्रि का वह सब वृत्तान्त अर्जुन ने कह सुनाया, जिस प्रकार वे शिव से जाकर मिले थे और उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया था । वह वृत्तान्त सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । सबने सिर झुकाकर शङ्कर को प्रणाम किया और अर्जुन को साधुवाद देकर हर्ष प्रकट किया॥५।७॥ इसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने सब भाई बन्धुओं को युद्ध-यात्रा करने की आज्ञा दी । वे लोग शीघ्रतापूर्वक सुसज्जित होकर प्रसन्नता के साथ युद्ध करने के लिए चल दिये । महावीर सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन—युधिष्ठिर को प्रणाम करके—हर्ष और उत्साह के साथ उस भवन से बाहर निकले । वीर सात्यकि और कृष्ण-चन्द्र जी एक ही रथ पर बैठकर अर्जुन के डेरे पर पहुँचे॥८।१०॥ वहाँ पहुँचकर शास्त्र के जाननेवाले श्रीकृष्ण ने अर्जुन के, वानरचिह्नयुक्त ध्वजा से अलङ्कृत, श्रेष्ठ रथ को तैयार किया । मेघ के समान गम्भीर शब्द करनेवाला, तपे हुए सुवर्ण की सी कान्ति से युक्त, सुसज्जित वह श्रेष्ठ रथ बालसूर्य के समान शोभा देने लगा । अर्जुन जब सब नित्य कृत्य कर चुके तब श्रीकृष्ण ने उनके समीप जाकर कहा——हे अर्जुन ! ध्वजा-पताका युक्त तुम्हारा रथ तैयार है॥१०।१३॥ अब महाबली अर्जुन ने सुवर्ण-कवच और किरीट पहना, धनुर्बाण लिया, रथ की प्रदक्षिणा की और तब वे उस पर सवार हुए । उस समय तप विद्या और अवस्था में वृद्ध, कर्मकाण्डी, सदाचारी, जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग

शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ।
अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन्रश्मिविदां वरः ॥ १८ ॥
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ।
स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ॥ १९ ॥
सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन्यथा शशी ।
सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ॥ २० ॥
सहाऽम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ।
ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ॥ २१ ॥
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ।
सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ॥ २२ ॥
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ।
तमनु प्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ॥ २३ ॥
ववौ संहर्षयन्पार्थं द्विषतश्चाऽपि शोषयन् ।
ततस्तस्मिन्क्षणे राजन्विविधानि शुभानि च ॥ २४ ॥
प्रादुरासन्निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥
दृष्ट्वाऽर्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
युयुधानाऽद्य युद्धे मे दृश्यन्ते विजयो ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

---

स्तुतिपूर्वक जयसूचक आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन करने लगे। श्रेष्ठ रथी अर्जुन उस विजयदायक और युद्धमन्त्रों से अभिमन्त्रित सुवर्णमय रथ पर बैठकर सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्थित सूर्यनारायण के समान अपूर्व शोभा को प्राप्त हुए॥१३।१७॥ शर्याति के यज्ञ में आते हुए इन्द्र के साथ जैसे अश्विनीकुमार गये थे वैसे ही अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण और सात्यकि भी रथ पर सवार हुए। वृत्रासुर के वध के लिए जाते समय मातलि ने जैसे इन्द्र के घोड़ों की रास पकड़ी थी वैसे ही सारथी के कार्य में चतुर महात्मा श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन के घोड़ों की रास हाथ में ली। चन्द्रमा जैसे अँधेरे का नाश करने के लिए बुध और शुक्र के साथ जाते हैं, अथवा इन्द्र जैसे तारक असुर के संग्राम में वरुण और सूर्य के साथ गये थे, वैसे ही शत्रुनाशक वीर अर्जुन, जयद्रथ-वध के लिए सात्यकि और श्रीकृष्ण के साथ भी रथ पर बैठकर रणक्षेत्र को चले॥१७।२१॥ बाजे बजने लगे, मङ्गलगीतों और स्तुतियों का पाठ किया जाने लगा। मागधों और सूतों के स्तुतिपाठ का शब्द, जयशब्द, आशीर्वाद, पुण्याहपाठ आदि का शब्द, एकत्र होकर उन वीरों की प्रसन्नता और उत्साह को बढ़ाने लगा॥ उस समय पवित्र सुगन्धित अनुकूल वायु पाण्डवों को प्रसन्न और उनके शत्रुओं को शोकातुर शुष्क करने लगा। हे राजेन्द्र! उस समय पाण्डवों की विजय के सूचक, और कौरवों के लिए उसके विपरीत, विवि

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥
यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥
स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ॥ ३० ॥
न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥
त्वयि चाऽहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥
मय्यपेक्षा न कर्त्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३३ ॥
नहि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राऽहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वाऽगमत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ।

सगुन दिखाई पड़ने लगे॥२१।२५॥अपने दक्षिण ओर विजयसूचक सगुन देखकर अर्जुन ने महाधनुर्द्धर सात्यकि से कहा—हे युयुधान ! मुझे इस समय जो शकुन देख पड़ते हैं, उनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि आज के युद्ध में मेरी विजय अवश्य होगी । अब मैं वहाँ जाता हूँ जहाँ सिन्धुराज यमलोक को जाने के लिए मेरे पराक्रम की प्रतीक्षा कर रहा है॥२६।२८किन्तु जयद्रथ का वध करना जैसे मेरा आवश्यक कर्तव्य है, वैसे ही धर्मराज की रक्षा करना भी है । इसलिए आज तुम धर्मराज की रक्षा करो; यह कार्य मैं तुमको सौंपता हूँ । इसमें सन्देह नहीं है कि मेरे ही समान तुम भी उनकी रक्षा कर सकोगे । तुम श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी हो, साक्षात् इन्द्र भी तुमको युद्ध में परास्त नहीं कर सकते॥२९।३१॥महारथी प्रद्युम्न या तुम यदि महाराज युधिष्ठिर की रक्षा का काम अपने ऊपर ले लो तो फिर मैं निश्चिन्त होकर जयद्रथ को मार दूँगा । मेरे लिए तुम कुछ चिन्ता न करना । मेरे रक्षक श्रीकृष्ण हैं । तुम सब प्रकार से धर्मराज की ही रक्षा करना । जहाँ मेरे साथ महाबाहु श्रीकृष्ण हैं वहाँ किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आ सकती । अर्जुन के यों कहने पर शत्रुदमन यादवश्रेष्ठ सात्यकि युधिष्ठिर के समीप चले गये॥३२।३५॥

द्रोणपर्व का चौरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥ ८५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यौ हते तत्र के वाऽयुध्यन्त मामकाः ॥ १ ॥

जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः ।
कथं तत्किल्विषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवाऽन्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥
कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद्धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः ॥ ४ ॥
किं नु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानद्य श्रुतो मे नाऽभिनन्दनम् ॥ ५ ॥
बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।
न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६ ॥
स्तुवतां नाऽद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिविरे मम ।
सूतमागधसङ्घानां नर्त्तकानां च सर्वशः ॥ ७ ॥
शब्देन नादिताऽभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥
निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य सञ्जय ।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥ ९ ॥
तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्त्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥

पचासीवाँ अध्याय ॥ ८५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! प्रातःकाल होने पर अभिमन्यु-वध के दुःख और शोक से पीड़ित पाण्डवों ने क्या किया? उन्होंने किन-किन वीरों से युद्ध किया? अर्जुन के अद्भुत पराक्रम और कर्मों को जाननेवाले कौरव लोग, अभिमन्यु-वधरूप अपराध करके भी, कैसे निर्भय बने रहे? पुत्रशोक से पीड़ित कुपित अर्जुन को मृत्यु की तरह आते हुए उन्होंने कैसे देखा? युद्ध में पुत्र के मारे जाने से दुःखित अर्जुन को गाण्डीव धनुष कँपाते देखकर मेरे पुत्रों ने क्या किया?॥१।४॥ हे सञ्जय ! संग्राम में दुर्योधन की कैसी अवस्था थी? आज घोर विलाप सुनाई पड़ रहा है। हे सूत-पुत्र ! आज जयद्रथ के शिविर में पहले की भाँति अन्य महाशब्दों को दबाकर आकाश तक उठनेवाला वह तुरही, शङ्ख, दुन्दुभि, सूत, मागध, बन्दीजन और नृत्य करनेवालों का शब्द नहीं सुन पड़ता॥५।७॥ मेरे पुत्रों के डेरे में आज सूत मागधों की की हुई स्तुति का शब्द और नृत्य करनेवालों की छमाछम नहीं सुन पड़ती। बहुत से दीन-दुःखी याचकों का, अनेक प्रकार का, श्रुति मधुर शब्द आज मुझे नहीं सुनाई पड़ता। पहले मैं सत्यधृति सोमदत्त के भवन में बैठकर जिस सुमधुर शब्द को सुनता था, वह आज मुझको नहीं सुनाई पड़ता। मैं अभागा आज देख रहा हूँ कि मेरे पुत्रों और बान्धवों के घरों में घोर आर्तनाद सुनाई पड़ रहा है और वे घर उत्साहहीन जान पड़ते हैं॥८।१०॥ विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण तथा मेरे अन्य पुत्रों का वह हर्ष और उत्साह से पूर्ण शब्द आज

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२ ॥
वितण्डालापसँल्लापैर्द्रुतवादित्रवादितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाऽद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥ १४ ॥
द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्त्तकाश्च ये ।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥
विन्दानुविन्दयोः सायं शिबिरे यो महाध्वनिः ॥ १६ ॥
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु ।
नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।
सप्ततन्तून्वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।
ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥
द्रोणस्याऽऽसीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ।
नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः ॥ २० ॥

नहीं सुन पड़ता । महाधनुर्द्धर और मेरे पुत्रों के परम सहायक अश्वत्थामा के घर में सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शिष्य बने हुए रहते थे । वितण्डा ( अपना पक्ष स्थापित न करके दूसरे के पक्ष पर आक्षेप करना ) आलाप ( भाषण ), सलाप ( दो मनुष्यों की परस्पर बात-चीत ), द्रुतगति से बाजे बजाकर और मनोहर गीत गाकर लोग दिन रात उनकी सेवा किया करते थे । बहुत से कौरव, पाण्डव और यादव उनकी उपासना किया करते थे । उन अश्वत्थामा के भवन में भी आज पहले का सा मनोहर मधुर शब्द नहीं सुन पड़ता ॥११।१४॥वीर अश्वत्थामा के यहाँ जो नृत्यकरने गानेवाले सदा रहते थे उनका भी शब्द आज नहीं सुन पड़ता । विन्द और अनुविन्द के शिविर में तथा केकयराजकुमारों के भवन में सायङ्काल को नित्य जो महाध्वनि सुन पड़ती थी वह आज नहीं सुनपड़ती।उनके यहाँ नित्य आनन्दित मनुष्यों का कोलाहल और नृत्य-करने गानेवालों के ताल और गीत की ध्वनि जो सुन पड़ती थी, उसका आज कहीं पता नहीं । सोमदत्त के पुत्र श्रुतनिधि के घर में पहले यज्ञ करनेवाले याज्ञिक सदा उपस्थित रहते थे, किन्तु आज वहाँ उनका शब्द नहीं सुनाई पड़ता॥१५।१९॥महात्मा द्रोणाचार्य के भवन में नित्य जो वेद पाठ का शब्द, प्रत्यञ्चा की ध्वनि, तोमर-खड्ग आदि अस्त्रों की झनकार और रथों की घरघराहट सुन पड़ती थी, वह आज नहीं सुन पड़ती । वहाँ अनेक देशों से आये हुए लोग नाना प्रकार के गीत गाते और बाजे बजाते थे । आज वह

वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ।
यदाप्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ॥ २१ ॥
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥
वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनाऽतिगाः ॥ २३ ॥
शर्म चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवाऽस्ति रणे जयः ॥ २४ ॥
प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नाऽन्वपद्यत ॥ २५ ॥
ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्त्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥
न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २८ ॥
एतेषां मतमादाय यदि वर्त्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २९ ॥
श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ३० ॥

शब्द भी नहीं सुन पड़ता है। हे सञ्जय! महात्मा श्रीकृष्ण जिस समय उपप्लव्य नगर से, शान्ति की इच्छा से, सब प्राणियों के कल्याण के निमित्त सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये थे उस समय मैंने मन्दमति दुर्योधन से कहा था कि "हे दुर्योधन! इस समय श्रीकृष्ण के द्वारा पाण्डवों से सन्धि कर लो। मेरी मति से सन्धि करने का यही ठीक अवसर है, इस अवसर को हाथ से न जाने दो। मेरी बात को स्वीकार कर लो। शान्ति के लिए प्रार्थना करनेवाले श्रीकृष्ण का कहा न मानोगे, तो हित के लिए वे जो उपदेश कर रहे हैं उसे टाल दोगे, तो युद्ध में किसी प्रकार तुम्हें जय नहीं प्राप्त हो सकेगी"॥२१।२४॥ हे सञ्जय! सन्धि करने के निमित्त मैंने इस प्रकार बारम्बार दुर्योधन से अनुरोध किया। किन्तु उस दुर्मति ने काल-वश होकर मेरी बात टालकर, कर्ण और दुःशासन के कहने के अनुसार, श्रीकृष्ण को नाहीं कर दी। मैं, बुद्धिमान् विदुर, द्रोण, बाह्लीक, जयद्रथ, सोम-दत्त, पितामह भीष्म, अश्वत्थामा, शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, धर्मात्मा कृपाचार्य तथा अन्य हमारे बुद्धिमान् भाई बन्धु सभी ने जुए का विरोध किया था॥२५।२८॥ यदि इन सब हितैषियों की और मेरी सम्मति को मेरा पुत्र दुर्योधन मान लेता तो [ कभी यह कुरुक्षय न होता; ] वह बहुत समय तक जीवित रहकर राज्य भोगता। उसके इष्ट-मित्र भी

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥
अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च ।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥
नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि ।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३३ ॥
शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
द्रोणस्याऽथ विकर्णस्य बाह्लीकस्य कृपस्य च ॥ ३४ ॥
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम् ।
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥ ३५ ॥
कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्त्वान्ब्रूयादतोऽन्यथा ।
कृष्णो न धर्मं सञ्जह्यात्सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६ ॥
मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम् ।
नाऽन्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
इत्यहं विलपन्सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान् ।
न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ३८ ॥

आनन्द करते । मैंने बारम्बार समझाकर दुर्योधन से कहा था कि हे पुत्र ! पाण्डव लोग सरलहृदय, मधुरभाषी, अपने जातिवालों और भाइयों से प्रिय वचन बोलनेवाले, कुलीन, मिलकर चलनेवाले और बड़े प्राज्ञ हैं; उन्हें सुख प्राप्त होगा । जो पुरुष धर्म पर दृष्टि रखता है वह इस लोक में सर्वत्र सुख भोगता है और मरने पर परलोक में भी उसको शान्ति और कल्याण प्राप्त होता है॥२९।३१॥हे पुत्र ! धर्मात्मा पाण्डव जो बात स्वीकार कर लेंगे उसे कदापि मिथ्या नहीं करेंगे। उन्हें भी यह राज्य प्राप्त होना चाहिए । यह समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी, तुम्हारे ही समान, उनके भी पिता पितामह की है । इस पर तुम्हारा और उनका एक सा अधिकार है । [ यदि तुम्हें यह शङ्का हो कि राज्य प्राप्त होने पर शक्तिशाली होकर पाण्डव तुम्हारा राज्य छीन लेंगे, तो तुम्हारी यह शङ्का निर्मूल है । ] पाण्डव लोग धर्म को नहीं छोड़ सकते । मेरे सजातीय वृद्धजन ऐसे हैं कि जिनका कहा पाण्डव सुनेंगे और मानेंगे । शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोण, विकर्ण, बाह्लीक, कृपाचार्य तथा भरतवंश के अन्य सब श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे हित के निमित्त पाण्डवों से जो कुछ कहेंगे उसे पाण्डव स्वीकार कर लेंगे । पूर्वोक्त पुरुषों में से तुम ऐसा किसे समझते हो, कि वह तुम्हारे हित के विरुद्ध कार्य करने के लिए पाण्डवों से अनुरोध करेगा ? ॥३२।३५॥ फिर श्रीकृष्ण तो कभी धर्म को छोड़ने के नहीं । पाण्डव-गण उन्हीं के अनुगामी हैं । [ तुम धर्मपूर्वक, श्रीकृष्ण के कहने से, पाण्डवों को उनका राज्य दे दो और यह शङ्का छोड़ दो कि राज्य प्राप्त करके बली पाण्डव अधिक शक्तिशाली हो जायँगे और मेरा भी राज्य छीन लेंगे ।] पाण्डव धर्मात्मा हैं, वे मेरी बात स्वीकार कर लेंगे — जो स्वीकार कर लेंगे उसके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे । हे सञ्जय ! मैंने विलाप करते-करते इस प्रकार दुर्योधन से बारम्बार कहा था; किन्तु वह मूढ़ तो काल के वश हो रहा था; इसी से उसने मेरी बात नहीं सुनी । अत-एव मुझे स्पष्ट जान पड़ रहा है कि इस घोर संग्राम

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः ।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥ ३९ ॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥ ४० ॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१ ॥
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः ।
क एताञातु युध्येत लोकेऽस्मिन्वै जिजीविषु. ॥ ४२ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्प्रसहेद्वा परान्मम ।
अन्यो दुर्योधनात्कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥ ४३ ॥
दुःशासनचतुर्थानां नाऽन्यं पश्यामि पञ्चमम् ।
येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥
सन्नद्धश्चाऽर्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः ।
तेषामथ विलापानां नाऽयं दुर्योधनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै ।
तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शनात् ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
सेनां दृष्ट्वाऽभिभूतां मे शैनेयेनाऽर्जुनेन च ॥ ४७ ॥
शून्यान्दृष्ट्वा रथोपस्थान्मन्ये शोचन्ति पुत्रका. ।
हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८ ॥

में हमारे पक्ष का कोई भी जीवित नहीं बच सकता ॥३६।३८॥ जिस पक्ष में भीमसेन, अर्जुन, यादव श्रेष्ठ वीर सात्यकि, दुर्द्धर्ष धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, पाञ्चालकुमार उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, अश्मक, केकय, सोमक के पुत्र क्षत्रधर्मा, चेदिराज, चेकितान, काश्य के पुत्र अभिभू, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, राजा विराट, महारथी द्रुपद, पुरुषसिंह नकुल और सहदेव आदि योद्धा हैं और सम्मति देनेवाले सहायक साक्षात् कृष्णचन्द्र हैं, उस पक्ष के विरुद्ध —युद्ध में जाने की इच्छा रखने वाला—कौन पुरुष खड़ा हो सकता है ? दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करनेवाले रणनिपुण पाण्डवपक्ष के वीरों के पराक्रम और प्रहार को अतिरिक्त दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि के और कौन सह सकता है ? मुझे तो इस समय इन चार पुरुषों के अतिरिक्त पाँचवाँ ऐसा कोई अपने दल में नहीं देख पड़ता, जो कुपित पाण्डवों के बाणप्रहार को सह सके, या उनका सामना ही कर सके॥३९।४२॥ हे सञ्जय ! सच तो यह है कि साक्षात् कृष्णचन्द्र जिस पक्ष के सारथी और कहना माननेवाले सहायक हैं और सुसज्जित कवचधारी वीर अर्जुन योद्धा हैं, वह पक्ष कभी युद्ध में हार नहीं सकता। तुम कहते हो कि पुरुषसिंह भीष्म और द्रोण दोनों मारे जा चुके हैं। इस समय न जाने दुर्योधन मेरे पहले के विलाप और शिक्षा को स्मरण करके पश्चात्ताप कर रहा होगा॥४३।४६॥ भविष्यदर्शी नीतिज्ञ विदुर

अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः ।
आचक्ष्व मम तत्सर्वं कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४९ ॥
यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् ।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥
न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अपकृत्य महत्तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥ ५१ ॥
किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत् ।
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवङ्गतेष्वपि ॥ ५२ ॥
सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम सञ्जय ।
यद्वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्याऽपनयैर्भृशम् ॥ ५३ ॥
लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः ।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः ।
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ५४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

ने पहले ही इस युद्ध के कुफल का अनुमान करके जो वचन कहे थे उन्हें इस समय सत्य होते देखकर न जाने मेरे पुत्र सोचते और पश्चात्ताप करते होंगे। मुझे जान पड़ता है कि इस समय सात्यकि और अर्जुन के बाणों से अपनी सेना को पीड़ित, परास्त और रथों के आसनों को वीरों से शून्य देखकर मेरे पुत्र शोकाकुल हो रहे होंगे। जैसे ग्रीष्म ऋतु में वायु की सहायता से प्रचण्ड महा दावानल सूखी घास के ढेर को भस्म करता है वैसे ही वीर अर्जुन अवश्य अपने अस्त्रों से मेरी सेना को भस्म कर रहे होंगे॥४८।४९॥ हे सञ्जय! जब सायङ्काल को अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का वध करके, अर्जुन का अपराध करके, मेरे पक्ष के लोग अपने शिविर में लौट आये थे तब तुम लोगों के मन की क्या अवस्था थी? तुम वर्णन करने में निपुण हो, इसलिए सब वृत्तान्त ठीक-ठीक कहो। हे तात! यह निश्चित बात है कि मेरे पुत्र और योद्धा लोग अद्भुतकर्मा अर्जुन का अपकार करके उनके पराक्रम और प्रहार को किसी प्रकार नहीं सह सकते। अभिमन्यु के मारे जाने से अर्जुन के कुपित होने पर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि ने क्या कहा और अपना क्या कर्तव्य विचारा? हे तात! लोभी, दुर्मति, क्रोध से विकृत-मस्तिष्क, राज्य की आकांक्षा करनेवाले, मूढ, मन्द, मत्सर पूर्ण दुर्योधन के अन्याय से युद्ध में जो कुछ परिणाम निकला, सो मुझसे कहो। दुर्योधन आदि ने उस समय अच्छी नीति को ग्रहण किया या दुर्नीति को ग्रहण किया था॥५०।५४॥

द्रोणपर्व का पचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८५ ॥

अथ षडशीतितमोऽध्याय ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच—हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥
गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृगयं तव ।
विलापो निष्फलो राजन्मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याऽद्भुतो विधिः ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत्पुरातनम् ॥ ३ ॥
यदि त्वं हि पुरा द्यूतात्कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
निवर्त्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥
युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि ।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥
दुर्योधनं चाऽविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि ।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥
न ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः ।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चाऽन्येऽपि नराधिपाः ॥ ७ ॥
स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे ।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥
त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् ।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चाऽन्वगा मतम् ॥ ९ ॥
तत्ते विलपितं सर्वं मया राजन्निशामितम् ।
अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥

---

छियासीवाँ अध्याय ॥ ८६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! मैंने युद्ध की सब घटनाएँ प्रत्यक्ष देखी हैं। आप सावधान होकर सुनिए, मैं सब वृत्तान्त कहता हूँ। वास्तव में आपका ही इसमें सारा दोष है। हे भरतश्रेष्ठ ! जल की बाढ़ निकल जाने पर पुल बाँधने की चेष्टा के समान आपका यह विलाप इस समय निष्फल है। इसलिए अब आप शोक न कीजिए। हे राजेन्द्र ! काल का अद्भुत विधान किसी प्रकार टल नहीं सकता। इस होनी को दैव ने पहले ही निश्चित कर दिया था। इसलिए अब आप व्यर्थ शोक न कीजिए॥१।३॥हे कुरुकुल-श्रेष्ठ ! पहले ही यदि आप युधिष्ठिर को और अपने पुत्रों को द्यूतक्रीड़ा न करने देते तो कभी यह सङ्कट न उपस्थित होता; आपको यह दुःखदायक दृश्य न देखना पड़ता। फिर, युद्ध होने के पहले ही यदि आप कुपित कौरवों और पाण्डवों को समझा बुझाकर शान्त कर देते तो यह आपत्ति कदापि न आती। यदि आप पहले ही कहा न माननेवाले दुर्योधन को पकड़कर कारागार में डाल देते और कौरवों को विनाश के मुख में जाने से बचा लेते तो यह अनर्थ न होता। सब पाण्डव, पाञ्चाल, यादव और अन्य राजा लोग जानते हैं कि यह महा अनर्थ आपकी विषम बुद्धि के दोष से ही हुआ है॥४।७॥यदि आप पिता के योग्य कार्य करके दुर्योधन को [ समझाकर या दण्ड देकर ] सुमार्ग पर लगाते और धर्म के अनुसार कार्य करते अर्थात् पाण्डवों को ही उनके भाग्य का राज्य दे देते तो आपको कभी इस सङ्कट का सामना न करना पड़ता। आप बहुत ही चतुर कहलाते हैं; किन्तु आप सनातन धर्म का त्याग करके दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के मत पर चले। हे राजेन्द्र ! मैं आपका यह सब विलाप सुन चुका। आप बड़े राज्यलोभी हैं, आपका यह विलाप विष मिले हुए मधु के समान है॥८।१०॥आप ऐसा समझते हैं कि इस अनर्थ में आपके पुत्र का ही

नाऽमन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा ।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥
अजानात्स यदा तु त्वां राजधर्माद्धरश्च्युतम् ।
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥
परुपाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे ।
तस्याऽनुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥
पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदाऽनघ ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥
पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा ।
ततश्चाऽप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥
तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम् ।
यत्पित्र्याद्भ्रंशिता राज्यात्त्वयेहाऽऽमिपगृद्धिना ॥ १६ ॥
यत्पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान्गर्हयसे नृप ।
बहुधा व्याहरन्दोषान्न तदद्योपपद्यते ॥ १७ ॥
न हि रक्षन्ति राजानो युद्ध्यन्तो जीवितं रणे ।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥ १८ ॥
यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ ।
रक्षेरन्को नु तां युद्ध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥

सारा दोप है, आपका नहीं ह सो मैने सुन लिया। श्रीकृष्ण पहले राजा युधिष्ठिर, भाष्म या द्रोण को उतना नहीं मानते थे जितना कि आपको। किन्तु जब से उनको यह प्रतीत हो गया कि आप ऊपर से तो धर्म की बातें कहते हैं किन्तु हृदय से राज्य के लोभी और अधर्मी पुत्र के पक्षपाती हैं तब से श्रीकृष्ण की दृष्टि से आप गिर गये हैं। हे महाराज! भरी सभा में आपके पुत्र आदि ने पाण्डवों को उचित अनुचित वचन कहे और आप उनकी अपेक्षा ही करते रहे, उसी का यह परिणाम आपको मिल रहा है॥११। १३॥हे भरतश्रेष्ठ! आपने यदि पिता पितमह के राज्य को इस प्रकार छीन लेने की चेष्टा न की होती, तो वीर पाण्डव सम्पूर्ण पृथ्वी जीतकर आपको अर्पण कर दते। कौरवों के राज्य और यश को पहले शत्रुओं ने छीन लिया था। पाण्डु न ही शत्रुओं को जीतकर उस यश और राज्य को प्राप्त किया था। धर्मात्मा पाण्डवों ने उस यश और राज्य को और भी अधिक बढ़ाया था। किन्तु अपने राज्य के लोभ में पड़कर पाण्डवों को उनके पैतृक राज्य से भ्रष्ट क्या किया, पाण्डु और पाण्डवों के उस कार्य को निष्फल कर डाला॥१४॥१६॥चाहे जो हो, इस समय युद्ध-काल में जो आप अपने पुत्रों की निन्दा करते हैं और अनेक प्रकार से उनके दोषों का वर्णन कर रहे हैं, सो यह सब व्यर्थ ही है। राजा लोग युद्ध ठानकर फिर रण मे जीवन की ममता नहीं रखते। इस समय आपके पक्ष के पराक्रमी वीर क्षत्रियश्रेष्ठ जीवन का मोह छोड़कर, पाण्डवों की सेना में प्रवेश करके, युद्ध कर रहे हैं। श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन जैसे वीरश्रेष्ठ

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥ २० ॥
को हि तान्विषहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः ।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥
यावत्तु शक्यते कर्त्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः ।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत्कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥
यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् ।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सञ्जयवाक्ये षडशीतितमोऽध्याय. ॥ ८६ ॥

अद्वितीय वीर जिस सेना के सरक्षक हैं, उससे अतिरिक्त वीर कौरवों के और कौन लोहा लेसकता है?॥१७।१९॥जिस दल के योद्धा अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन हैं तथा जिस पक्ष के मन्त्री श्रीकृष्णचन्द्र हैं, उस पक्ष के पराक्रम को वीरश्रेष्ठ कौरवों और उनके साथी क्षत्रियो के अतिरिक्त और कौन मनुष्य सह सकता है? हे महाराज!प्रहार और आक्रमण के अवसर को जाननेवाले और क्षत्रिय धर्म में निरत शूर मनुष्य जितना कर सकते हैं उतना वीर कौरव कर रहे हैं। पुरुषसिंह पाण्डवों के साथ कौरवों का जैसा घोर संग्राम हुआ है उसका वर्णन मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिए॥२०।२३॥

द्रोणपर्व का छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच—तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद्व्यूहितुं ततः ॥ १ ॥
शूराणां गर्जतां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम् ॥ २ ॥
विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च ।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन्क्वेदानीं स धनञ्जयः ॥ ३ ॥
विकोशान्सुत्सरूनन्ये कृतधारान्समाहितान् ।
पीतानाकाशसङ्काशानसीन्केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४ ॥

सत्तासीवाँ अध्याय ॥ ८७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! रात्रि व्यतीत होने पर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सेनाओं को लेकर शकटव्यूह की रचना करने लगे। उस समय वहाँ गरजते हुए, क्रोधी, असहनशील, शूर और परस्पर वध करने के लिए उद्यत-योद्धाओं की विचित्र बोलियाँ सुन पड़ने लगीं। कोई धनुष चढ़ाकर, कोई धनुष की डोरी साफ़ करते और श्वास लेते हुए चिल्लाने लगे कि इस समय अर्जुन कहाँ हैं। कुछ लोग म्यान से निकली हुई, धारदार, जल के मारे आकाश की भाँति चमकीली, सुन्दर मूठवाली तलवारों के साथ फेंकने लगे॥१।३॥सहस्रों शिक्षित वीर लोग,संग्राम के लिए उद्यत होकर, चारों ओर तलवारों और धनुषों के पैंतरे

चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया ।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५ ॥
सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः ।
समुत्क्षिप्य गदाश्चाऽन्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥
अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः ।
चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥
नानाप्रहरणैश्चाऽन्ये विचित्रस्रगलंकृताः ।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥
क्वाऽर्जुनः क्व स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः ।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा ॥ ९ ॥
ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन्वाजिनः स्वयम् ।
इतस्ततस्तान्रचयन्द्रोणश्चरति वेगितः ॥ १० ॥
तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु ।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः ।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥ १२ ॥
शतं चाऽश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट् ।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १३ ॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः ।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत ॥ १४ ॥

दिखाते दिखाई पड़ने लगे। कुछ वीर चन्दन लगी हुई, घण्टा-भूषित और सुवर्ण हीरे आदि से अलङ्कृत गदाएँ उठाकर अर्जुन को पूछने लगे। कुछ बाहुबल-सम्पन्न योद्धा, उठे हुए इन्द्रध्वज-सदृश, परिघ उठाकर आकाश को अवकाश-हीन बनाने लगे॥४।७॥ विचित्र मालाएँ पहने हुए अन्य योद्धा लोग संग्राम के लिए प्रस्तुत होकर, अनेक प्रकार के शस्त्र हाथ में लेकर, अपने-अपने स्थान पर खड़े हो रणभूमि में पुकारने लगे कि अर्जुन कहाँ है? अभिमानी भीमसेन कहाँ है? गोविन्द कृष्ण कहाँ है? और उनके सब सुहृद पाञ्चाल आदि कहाँ हैं? उस समय अपना दिव्य शङ्ख बजाकर स्वयं रथ के घोड़ों को शीघ्रता से चलाते हुए आचार्य द्रोण इधर-उधर व्यूह में सेना स्थापित करते हुए वेग से जाते दिखाई पड़ रहे थे॥८।१०॥ युद्ध-प्रिय सब सेना जब उचित स्थान पर तैनात हो चुकी तब द्रोणाचार्य ने कहा—हे जयद्रथ! तुम, सोमदत्त के पुत्र, महारथी कर्ण अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य, ये लोग एक लाख घोड़े, साठ सहस्र रथ, चौदह सहस्र मदमत्त गजराज और इक्कीस सहस्र कवचधारी पैदल सेना लेकर मुझसे छः कोस के अन्तर पर ठहरो। वहाँ पर इस प्रकार चतुराङ्गिणी सेना और छः महारथियों के मध्य में तुम रहोगे; तब इन्द्र सहित देवता भी तुम पर आक्रमण न कर सकेंगे, पाण्डवों की तो कोई बात ही नहीं है। अब तुम निर्भय होकर अपने

तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः ।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ १५ ॥
एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः ।
सम्प्रायात्सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥ १६ ॥
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः ।
चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैकसप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥
मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युद्ध्यमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥
ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥
दीर्घो द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धे पञ्चविस्तृतः ।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥
नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्व राजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥
पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥

स्थान पर जाओ॥११।१५॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! आचार्य के इस कथन से धैर्य धर करके सिन्धुपति जयद्रथ, उन महारथियों के साथ, निर्दिष्ट स्थान को गये। उनके साथ गान्धार देश के योद्धा, उनके शरीर-रक्षक होकर, चले। वे लोग कवच पहने, सावधान, घोड़ों पर सवार और हाथों में प्रास ( एक शस्त्र ) लिए हुए थे। हे राजेन्द्र! जयद्रथ रथ के सुशिक्षित घोड़े कलँगी और सुवर्ण के आभूषणों से सजे हुए थे। जयद्रथ के साथ भली भाँति अलङ्कृत, सिन्धु देश के तीन सहस्र और अन्य सात सहस्र घोड़े थे, जिन पर शस्त्रास्त्र योद्धा सवार थे॥१६।१८॥हे राजेन्द्र! आपके पुत्र दुर्मर्षण, डेढ़ सहस्र मस्त हाथियों की सेना लेकर, सब सैनिकों के आगे युद्ध करने के लिए खड़े हुए। उनके उन हाथियों का आकार भयानक और कर्म बड़े ही रौद्र थे। उन पर युद्ध-निपुण योद्धा सवार थे। आपके पुत्र दुःशासन और विकर्ण दोनों ही, जयद्रथ की रक्षा के निमित्त, आगे की सेना में स्थित हुए। महारथी द्रोणाचार्य ने स्वयं महावर्गी असंख्य वीर राजाओं को तथा रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सेना को उचित स्थान पर तैनात करके एक दुर्गम व्यूह बनाया। उस व्यूह का अग्र भाग छकड़े के आकार का चौड़ा था और पिछला भाग चक्र अथवा कमल के आकार का था। वह व्यूह आगे चौबीस कोस लम्बा और पीछे दस कोस चौड़ा था॥१९।२३॥महाराज!

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥
अनन्तरं च काम्बोजो जलसन्धश्च मारिष ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६ ॥
ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥
तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥
शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याऽभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २९ ॥
श्वेतवर्माऽम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन्द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवाऽन्तकः ॥ ३० ॥
पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥
स शैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद्व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३३ ॥
बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।
अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्याय ॥ ८७ ॥

द्रोणाचार्य ने पीछे के पद्मव्यूह के भीतर एक और विचित्र व्यूह बनाया । वह सूचीमुख व्यूह था । वह व्यूह बहुत ही गुप्त और दुर्भेद्य था । सूचीमुख के द्वार पर महाधनुर्द्धर कृतवर्मा उसकी रक्षा के लिए नियुक्त थे । उसके पश्चात् क्रमश काम्बोजराज, जलसन्ध और उनके पश्चात् महाराज दुर्योधन और कर्ण थे । युद्ध से कदापि न हटनेवाले एक लाख वीर योद्धा शकटव्यूह के अग्र भाग की रक्षा करने लगे॥२४।२७॥असंख्य सेना साथ में लिये हुए राजा दुर्योधन उन योद्धाओं के पीछे थे । राजा जयद्रथ सबके पीछे गूढ़ सूची व्यूह के पार्श्वभाग में थे । द्रोणाचार्य स्वयं शकटव्यूह के अग्रभाग में रहकर उसकी रक्षा करने लगे । श्वेत कवच, वस्त्र, पगड़ी आदि पहने, चौड़ी छातीवाले, महाबाहु द्रोणाचार्य क्रुद्ध काल की भाँति अपने रथ पर बैठे हुए बारम्बार धनुष की डोरी बजा रहे थे । वही उस सेना के रक्षक और सञ्चालक थे॥२८।३०॥वेदी तथा मृगछाला के चिह्नों से युक्त ध्वजा और लाल रङ्ग के घोड़ों से शोभित द्रोणाचार्य का रथ देखकर सब कौरवों को अपार हर्ष हुआ । क्षोभ को प्राप्त समुद्र के समान, द्रोणाचार्य के बनाये, उस व्यूह को देखकर सिद्धों और चारणों को बड़ा ही विस्मय हुआ । सब प्राणी अपने अन्तःकरण में कहने

लगे कि यह सैनिकों का विशाल व्यूह पर्वत-समुद्र वन-सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को भी नष्ट कर सकता है। बहुत रथ, रथी, हाथी, घोड़े और पैदल सेना से परिपूर्ण, महा कोलाहल से भयङ्कर, अद्भुत, आप ही अपनी उपमा और शत्रुओं के हृदय को दहला देनेवाला वह शकटव्यूह देखकर राजा दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई॥२१।२४॥

— ० —

द्रोणपर्व का सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८७ ॥

अथ अष्टाशीतितमोऽध्याय. ॥ ८८ ॥

सञ्जय उवाच—ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥
अनीकानां च संह्लादे वादित्राणां च निःस्वने ।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।
रौद्रे मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥
बलानां वायसानां च पुरस्तात्सव्यसाचिनः ।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥
मृगाश्च घोरसन्नादाः शिवाश्चाऽशिवदर्शनाः ।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥
सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः ।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥
विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करकर्षिणः ।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥
नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥

अट्ठासीवाँ अध्याय ॥ ८८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! आपके पक्ष की सब सेना जब व्यूह में उचित स्थान पर स्थापित हो चुकी; चारों ओर भेरी मृदङ्ग ढङ्के आदि बजने लगे; सेना का कोलाहल और बाजों का शब्द आकाश-मण्डल तक गूँज उठा, लोमहर्षण शङ्ख नाद रणभूमि में व्याप्त हो गया; और हाथों में शस्त्र लेकर कौरव-गण युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए, तब उस रौद्रमुहूर्त में सबके सन्मुख अर्जुन आये॥१।३॥उनकी सेना के आगे-आगे झुण्ड के झुण्ड सहस्रों कौए परिभ्रमण कर रहे थे; मांसाहारी रात्रि घनियाले पशु-पक्षी क्रीड़ा सी कर रहे थे। अशुभ रूपवाली गिदड़ियाँ हमारी सेना के चलते समय मार्ग में, उसके दक्षिण भाग में, घोर शब्द करने लगीं और मृगों के झुण्ड भी निकट शब्द करके अशुभ की सूचना देने लगे। उस भयानक जनसंहार के उपस्थित होने पर वज्रध्वनि के साथ आकाश से जलती हुई सहस्रों उल्काएँ गिरने लगीं। सम्पूर्ण पृथ्वी बारम्बार काँपने लगी॥४।६॥अर्जुन जिस समय संग्रामभूमि में आये उस समय कङ्कड़ियाँ उड़ाती हुई रूखी आँधी चलने लगी। इधर व्यूह-रचना में निपुण नकुल के पुत्र शतानीक और धृष्टद्युम्न दोनों

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥
अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥
अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाऽश्मनि ॥ १२ ॥
तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकांक्षिणः ।
युध्यामि संहतानेतान्यशो मानं च वर्धयन् ॥ १३ ॥
एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन्महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥
ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवाऽसह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥
शूलपाणिरिवाऽक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
युगान्ताग्निरिवाऽर्चिष्मान्प्रधक्ष्यन्वै पुनः प्रजाः ॥ १६ ॥
क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन्महाव्रतम् ॥ १७ ॥
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥ १८ ॥

---

शूरवीर पाण्डवों की सेना के व्यूह की रचना करने लगे॥७।८॥हे राजेन्द्र ! उधर आपके पुत्र दुर्मर्षण ने भी एक सहस्र रथ, सौ हाथी, तीन सहस्र घोड़े और दस सहस्र पैदल साथ लेकर सब सेना से तीन सहस्र गज आगे खड़े होकर कहा— हे वीरो ! तटभूमि जैसे समुद्र के वेग को रोकती है वैसे ही आज मैं युद्ध में दुर्द्धर्ष वीर अर्जुन को आगे नहीं बढ़ने दूँगा । आज सब लोग अर्जुन को उसी प्रकार मुझसे टकरा कर रुकते देखेंगे जिस प्रकार चट्टान में पत्थर अटक जाता है । हे संग्राम की आकांक्षा रखनेवाले वीरो ! तुम सब लोग खड़े खड़े कौतुक देखना । मैं अकेला ही अब इन सब एकत्र होकर आनेवाले पाण्डवपक्ष के वीरों से युद्ध करूँगा और अपने यश और मान को बढ़ाऊँगा ॥९।१३॥हे महाराज ! महारथी वीरों के साथ इस प्रकार कहते हुए महाधनुर्द्धर वीर दुर्मर्षण अपने स्थान पर डटकर खड़े हुए । उधर वज्रधारी इन्द्र के तुल्य, दण्डपाणि यमराज के समान असह्य, काल से प्रेरित हुए-हुए मृत्यु के समान अनिवार्य, शङ्कर के समान अक्षोभ्य, पाशधारी वरुण के समान वीर अर्जुन प्रलयकाल के ज्वालामालायुक्त अग्नि के समान क्रोध और तेज से प्रज्वलित देख पड़ने लगे । ऐसा जान पड़ता था कि मानों वे सब जगत् को भस्म कर डालेंगे । क्रोध, अमर्ष और बल से प्रचण्ड, युद्धविजयी, निवातकवच दानवों का नाश करनेवाले अर्जुन उस समय अपनी

रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
विधुन्वन्गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥
सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः ।
व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥
अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।
प्राध्मापयत्पाञ्चजन्यं शङ्खप्रवरमोजसा ॥ २१ ॥
तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते ।
आसन्संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥
यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥
प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद्बलम् ॥ २४ ॥
सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
विसंज्ञाश्चाऽभवन्केचित्केचिद्राजन्वितत्रसुः ॥ २५ ॥
ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
अकरोद्व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
पुनरेवाऽभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७ ॥

सत्य प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए उद्यत देख पड़े। नारायण के अवतार श्रीकृष्ण के साथ नर के अवतार अर्जुन अपने रथ पर, उदय हुए सूर्य के समान, शोभायमान हो रहे थे। वे कवच, मणिमय कुण्डल, सुवर्णमय किरीट-मुकुट, श्वेत माला और वस्त्र पहने हुए थे। उनके अङ्गों में अङ्गद आदि आभूषण जगमगा रहे थे। गाण्डीव धनुष को कम्पायमान करते हुए वीर अर्जुन ने सेना के अग्र भाग में आकर इतनी दूरी पर अपना रथ खड़ा कराया, जहाँ से शत्रुसेना के मध्यभाग में बाण मारा जा सकता था॥१४।२०॥ अब महाप्रतापी अर्जुन ने जोर से अपना शङ्ख बजाया। साथ ही महात्मा वासुदेव ने भी अपना श्रेष्ठ पाञ्चजन्य शङ्ख बड़े जोर से बजाया। उन दोनों वीरों के शङ्ख-नाद को सुनते ही आपकी सेना में हलचल मच गई। सैनिकों के रोंगटे खड़े हो गये, लोग काँप उठे और अचेत से हो गये। बिजली की कड़क सुनकर लोग जैसे भयभीत हो जाते हैं वैसे ही कौरव सेना के लोग उन शङ्खों का महानाद सुनकर भयभीत हो गये। हाथी-घोड़े आदि वाहन व्याकुलता और भय के मारे मल मूत्र त्याग करने लगे। हे महाराज! इस प्रकार वाहनों सहित आपकी सब सेना व्याकुल हो उठी॥२०।२४॥ उन शङ्खों का दारुण शब्द सुनकर कुछ लोग विह्वल हो उठे, कुछ भय के मारे अचेत हो गये और कुछ भाग खड़े हुए। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय अर्जुन के रथ की ध्वजा पर स्थित वानर भी, ध्वजा पर स्थित अन्य भयानक प्राणियों के साथ, मुख फैलाकर घोर महानाद करता हुआ आपके सैनिकों को भयभीत कराने लगा। अब आपकी सेना में सैनिकों का

नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः ।
सिंहनादैः समुत्क्रुष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८ ॥
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत्पाकशासनिः ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

उत्साह और हर्ष बढ़ाने के लिए शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, नगाड़े आदि बाजे बजाये जाने लगे। अनेक प्रकार के बाजों के शब्द, खम ठोंकने के शब्द, गर्जन और सिंहनाद, चिल्लाने और पुकारने के शब्द और महारथी वीरों के रथ सञ्चालन के शब्द से रणभूमि परिपूर्ण हो उठी। हे राजेन्द्र! कायरों के हृदय में भय का सञ्चार करनेवाले उस तुमुल शब्द से अत्यन्त हर्षित होकर अर्जुन श्रीकृष्ण से यों कहनेलगे॥२५।२९॥

द्रोणपर्व का अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८८ ॥

अथ एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अर्जुन उवाच – चोदयाऽश्वान्हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।
एतद्भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥
ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत्पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ४ ॥
ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन्बाणजालैस्तत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥ ५ ॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥
उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः सन्दष्टोष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७ ॥

नवासीवाँ अध्याय ॥ ८९ ॥

अर्जुन ने कहा- हे श्रीकृष्ण! जिस स्थान पर यह दुर्मर्षण खड़ा हुआ है उसी स्थान पर मेरा रथ ले चलो। मैं इस गज-सेना को छिन्न-भिन्न करता हुआ शत्रुओं की सेना के भीतर प्रवेश होऊंगा॥१॥ सञ्जय कहते हैं - हे राजेन्द्र! अर्जुन के यों कहने पर कृष्णचन्द्र ने रथ को दुर्मर्षण के समीप ले जाने के लिए घोड़ों को हाँक दिया। इसके पश्चात् अर्जुन वीरों की सेना में अत्यन्त भयानक युद्ध करने लगे। उस संग्राम में असंख्य रथी, पैदल, हाथी और घोड़े मारे गये। पर्वत पर मेघ जैसे जलधारा बरसाते हैं वैसे ही अर्जुन भी शत्रु-सेना के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे॥२।४॥ जयद्रथ के रथी और

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥
तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद्वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥
ततः कवन्धं किञ्चित्तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किञ्चित्खड्गं विनिकृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥
पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥ १२ ॥
हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥ १३ ॥
अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
अन्योऽन्यमपि चाऽऽजघ्नुरात्मानमपि चाऽपरे ।
पार्थभूतममन्यन्त जगत्कालेन मोहिताः ॥ १५ ॥
निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराः कीर्त्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥ १६ ॥

---

महारथी भी वासुदेव और अर्जुन के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा सी करने लगे। तब अर्जुन ने क्रोध करके अपने को रोकनेवाले शत्रु-पक्ष के रथी योद्धाओं के सिरों को बाण मारकर धड़ों से अलग करना आरम्भ कर दिया। होंठ चबा रहे, लाल-लाल नेत्र निकाले, कुण्डलों और शिरस्त्राणों से शोभित शूरों के कटे हुए सिर युद्धभूमि में बिछ गये। चारों ओर बिखरे हुए योद्धाओं के सिर दलित कमलों के वन के समान शोभायमान हुए। [रक्त से भीगे हुए सुनहरे कवच बिजली से शोभित मेघों के समान जान पड़ते थे।] पके हुए ताड़ के फल गिरने से जैसा घोर शब्द होता है वैसा ही घोर शब्द वीरों के सिर कट-कटकर गिरने से सुनाई पड़ रहा था॥८-१०॥वीरों के कबन्ध उठ खड़े हुए और कोई धनुष हाथ में लिए और कोई म्यान से तलवार निकाले प्रहार के लिए उद्यत देख पड़ने लगे। जय की आकांक्षा से युद्ध करनेवाले वीरगण अर्जुन को परास्त करने के उद्योग में इतने तन्मय थे कि उन पुरुषश्रेष्ठों के सिर कट-कटकर गिर पड़ते थे और उन्हें उनकी सूचना भी न होती थी। घोड़ों के सिर, हाथियों की सूँड़ें, वीर पुरुषों के सिर और हाथ कट कटकर पृथ्वी पर इतने गिरे कि उनसे रणभूमि बिछ गई॥११-१३॥हे महाराज! उस समय आपके सैनिकों को सारी रणभूमि अर्जुनमयी सी दिखाई पड़ने लगी। वे "यह अर्जुन है", "कहाँ अर्जुन है!", "यहाँ अर्जुन है" इस प्रकार के अनेक वचन कहते हुए परस्पर ही एक दूसरे को, अर्जुन जानकर, मारने लगे। किसी-किसी ने व्याकुल होकर आप ही अपने को शस्त्र मार लिया। इस प्रकार काल से मोहित कौरवपक्ष के योद्धा सर्वत्र अर्जुन को ही देखने लगे। रक्त से भीगे हुए, अनेक वीरगण समरशय्या में पड़े हुए थे। वे

सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः । 
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥ १७ ॥ 
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे । 
महाभुजगसङ्काशा बाहवः परिघोपमाः ॥ १८ ॥ 
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संवेष्टन्ति च सर्वशः । 
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥ १९ ॥ 
यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसञ्चरते नरः । 
तस्य तस्याऽन्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥ २० ॥ 
नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा । 
न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददृशेऽन्तरमण्वपि ॥ २१ ॥ 
यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् । 
लाघवात्पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥ 
हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च । 
अभिनत्फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥ २३ ॥ 
आवर्त्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः । 
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किञ्चिन्न निहन्ति सः ॥ २४ ॥ 
यथोदयन्वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः । 
तथाऽर्जुनो गजानीकमवधीत्कङ्कपत्रिभिः ॥ २५ ॥ 
हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत । 
अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥ २६ ॥

दारुण वेदना से अत्यन्त पीड़ित होकर अपने-अपने बान्धवों को पुकारने और कराहने लगे॥१४।१६॥ भिन्दिपाल, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, परशु, निर्व्यूह, खड्ग, धनुष, तोमर, बाण और गदा आदि शस्त्रों से शोभित, कवचयुक्त और अङ्गद आदि आभूषणों से अलङ्कृत वीरों के हाथ अर्जुन के बाणों से कट-कटकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। वे महानाग और बेलन के समान हाथ उठते, गिरते और तड़पते हुए दिखाई पड़ रहे थे ॥१७।१९॥ जो-जो वीर पुरुष अर्जुन के सम्मुख जाकर उनसे भिड़ना था, उस-उसके शरीर में अर्जुन के काल-सदृश बाण प्रविष्ट हो जाते थे। रथ-मार्ग में नृत्य सा करनेवाले शीघ्रगामी और स्फूर्तिशाली अर्जुन इस प्रकार धनुष घुमा रहे थे कि उन पर प्रहार करने का तनिक भी अवकाश नहीं देख पड़ता था। अर्जुन अपने हाथों की स्फूर्ति दिखाते हुए इतने शीघ्र बाण निकालते, धनुष पर चढ़ाते, निशाना ताकते और बाण छोड़ते थे कि सब देखनेवालों के आश्चर्य की कमी नहीं थी॥२०।२२॥ वीर-वर अर्जुन अपने बाणों से एक साथ ही हाथी, महावत और योद्धा को, घोड़े और सवार को तथा रथी और सारथी को मार गिराते थे। पराक्रमी अर्जुन उस समय आते हुए, जाते हुए, युद्ध कर रहे और सम्मुख खड़े हुए, किसी भी शत्रु को नहीं छोड़ते थे; सभी को मार-मारकर गिरा रहे थे। उदय हो रहे सूर्यदेव जैसे अपनी किरणों से घोर अँधेरे को नष्ट

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
तथा धनञ्जयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७ ॥
तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परन्तप ।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ २८ ॥
मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत ।
प्रकाल्यमानं तत्सैन्यं नाऽशकत्प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥
प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चाऽर्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥
पार्ष्ण्यंगुष्ठांकुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
शरैः सम्मोहिताश्चाऽन्ये तमेवाऽभिमुखा ययुः॥ ३२ ॥
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

करते हैं वैसे ही प्रतापी वीर अर्जुन ने कङ्कपत्रशोभित तीक्ष्ण बाणों से शत्रुपक्ष के हाथियों के दल को मारकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अर्जुन के बाणों से छिन्न-भिन्न हाथियों के झुण्ड के झुण्ड आपकी सेना के मध्य पड़े हुए थे। उनसे वह रणभूमि प्रलयकाल में पर्वतों से परिपूर्ण भूमि सी दिखाई पड़ने लगी॥२३। २६॥हे राजेन्द्र! उस समय क्रोध से विह्वल महावीर अर्जुन शत्रुओं के लिए दोपहर के सूर्य के समान अत्यन्त ही दुर्निरीक्ष्य हो उठे। कौरव-सेना के योद्धा लोग उनके बाणों से अत्यन्त ही पीड़ित और शङ्कित होकर, व्याकुल होकर, रणभूमि को छोड़कर भागने लगे। आँधी जैसे मेघमण्डल को छिन्न-भिन्न कर देती है वैसे ही महावीर अर्जुन भी कौरव-सेना को मारकर भगाने लगे। उनके बाणों की मार से भगाई जा रही आपके पुत्र की सेना अर्जुन की ओर देख भी नहीं सकती थी॥२७।२९॥रथी और घुड़सवार योद्धा लोग अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर कोड़े, धनुष-कोटि, हुङ्कार, कशा और पार्ष्णि के प्रहार आदि से, डाँटकर, पुचकारकर अपने घोड़ों को भगाते हुए भागने लगे। जो हाथियों पर सवार थे वे पार्ष्णि, पाँव के अँगूठे और अङ्कुश के प्रहार से हाथियों को चलाते हुए प्रबल वेग से भागने लगे। बहुत से लोग अर्जुन के बाणों की मार से ऐसे व्याकुल हो उठे कि वे मोहित होकर अर्जुन की ही ओर जाने लगे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार आपके पक्ष के वीर लोग उत्साहहीन होकर व्याकुल हो उठे॥३०।३३॥

द्रोणपर्व का नवासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८९ ॥

अथ नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिन्प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना ।
के तु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥ १ ॥
आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच– तथाऽर्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥
पाकशासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ।
न तत्र कश्चित्संग्रामे शशाकाऽर्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥
ततस्तव सुतो राजन्दृष्ट्वा सैन्यं तथा गतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायाऽर्जुनमभ्ययगात् ॥ ५ ॥
स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥
नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥
ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥
भूर्दिशश्चाऽन्तरिक्षं च शब्देनाऽसीत्समावृतम् ।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥
तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णमंकुशैरभिचोदितान् ।
व्यालम्बहस्तान्संरब्धान्सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १० ॥
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः ।
गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥

नब्बेवाँ अध्याय ॥ ९० ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा – हे सञ्जय ! महावीर अर्जुन जब इस प्रकार हमारी सेना का संहार करने लगे तब कौन-कौन वीर उनके सम्मुख युद्ध करने को आये ? अथवा सब वीर हारकर, निष्फलमनोरथ होकर, शकट व्यूह के भीतर ही प्रवेश हो गये और दीवार के समान अटल द्रोणाचार्य की आड़ लेकर सबने अपने प्राण बचाये ?॥१।२॥सञ्जय ने कहा —हे राजेन्द्र ! महावीर अर्जुन इस प्रकार आपके वीरों को हराकर अपना पराक्रम प्रकट करने लगे । आपकी सेना के अनेक वीर मारे गये, सब सैनिक निरुत्साह होकर भागने पर ही उतारू हो गये । उन्हें अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे । उस समय कोई भी अर्जुन की ओर नेत्र उठाकर देख नहीं सकता था॥३।४॥तब आपके पुत्र महावीर दुःशासन अपने सैनिकों की ऐसी दुर्दशा देखकर, क्रोध से विह्वल हो, युद्ध के लिए अर्जुन की ओर वेग से चले । सुवर्ण का कवच और सुवर्ण का ही शिरस्त्राण धारण किये हुए पराक्रमी महावीर दुःशासन ने बहुत सी गजसेना के द्वारा अर्जुन को घेर लिया । ऐसा जान पड़ता था कि वे अपनी गज-सेना से पृथ्वीमण्डल को ग्रस लेंगे॥५।७॥हाथियों के गलों में पड़े हुए घण्टों के शब्द, शङ्खनाद, प्रत्यञ्चा के शब्द, वीरों के सिंहनाद और हाथियों के शब्द से पृथ्वीमण्डल, आकाशमण्डल और सब दिशाएँ गूँज उठीं । हे महाराज ! कुछ समय तक युवराज दुःशासन बहुत ही भयङ्कर देख पड़े । अंकुश के प्रहार से प्रेरित होकर सूँड़ उठाये हुए क्रुद्ध

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम् ।
किरीटी तद्गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा ॥ १२ ॥
काष्ठातीत इवाऽऽदित्यः प्रतपन्स युगक्षये ।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥
खुरशब्देन चाऽश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्कृष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥ १४ ॥
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५ ॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥ १६ ॥
ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७ ॥
आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाऽद्रयः ॥ १८ ॥
अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १९ ॥
गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव सङ्घातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २१ ॥

---

हाथियों को, पक्षयुक्त पर्वतों के समान, चारों ओर से आते देखकर वीर अर्जुन ने बड़े जोर से सिंहनाद किया। फिर वे बाणों की वर्षा करके शत्रुपक्ष की गजसेना का संहार करने लगे॥८।११॥वायु-सञ्चालित तरङ्गपूर्ण उमड़े हुए समुद्र के समान उस गज-सेना के मध्य, महामगर के समान, अर्जुन ने प्रवेश किया। प्रलयकाल में आकाश में तप रहे सूर्य-नारायण के समान शत्रुदमन अर्जुन उस समय सब दिशाओं में बाण-वर्षा करते दिखाई पड़ने लगे। उस समय घोड़ों की टापों के शब्द, रथों के पहियों के शब्द, लोगों के चिल्लाने के शब्द, धनुष की डोरियों के शब्द, अनेक प्रकार के बाजों के शब्द, पाञ्चजन्य और देवदत्त नामक शङ्खों के शब्द और गाण्डीव धनुष के शब्द से मनुष्य और हाथी अचेत से हो गये; उनका वेग धीमा पड़ गया॥१२।१६॥सर्प के डसने के समान जिनका स्पर्श है ऐसे बाण मारकर अर्जुन उन हाथियों को छिन्न-भिन्न करने लगे और वे सब हाथी चिल्ला-चिल्लाकर परकटे पर्वतों की भाँति नष्ट होने लगे। वीर अर्जुन के असंख्य बाण एक साथ आकर उनके शरीरों में प्रवेश होते थे। अन्य अनेक हाथी दाँतों की जड़, मस्तक, मूँड़, कपोल आदि स्थानों में अर्जुन के असंख्य बाण लगने पर क्रौञ्च पक्षियों की भाँति बार-म्बार चिल्लाने लगे। हाथियों पर बैठे हुए योद्धाओं के सिरों को भी वीर अर्जुन अपने अत्यन्त ही तीक्ष्ण

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥
केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
सारोहा न्यपतन्भूमौ द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥ २४ ॥
मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥
न सन्दधन्न चाऽऽकर्षन्न विमुञ्चन्न चोद्वहन् ।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन्पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥
अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ २८ ॥
सचापाः सांगुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥
सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥

भल्ल बाणों से काट काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे । हाथियों पर सवार वीरों के कुण्डल मण्डित सिर जब कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे तब ऐसा जान पड़ा मानों अर्जुन कमल के फूलों से रणचण्डी की पूजा कर रहे हैं॥१७।२१॥हाथी जब व्याकुल होकर पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगे तब नाना प्रकार के शस्त्रों की चोट खाये हुए, कवच-हीन, घायल और रक्त से स्नान किये हुए अनेकों सैनिक लोग शक्ति-हीन होने के कारण हाथियों के हौदों पर से नीचे लटकने लगे । अर्जुन के केवल एक ही बाण से दो-दो तीन-तीन शत्रु घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे, अर्जुन के नाराच बाण हाथियों के शरीरों में प्रवेश हो जाते थे । वे हाथी मुख से रक्त-वमन करते हुए अपने सवार के सहित पृथ्वी पर गिर पड़ते थे, जिन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था कि वृक्षयुक्त पर्वत के शिखर फट-फटकर गिर रहे हैं॥२२।२४॥महावीर अर्जुन अपने सन्नत-पर्व-शोभित भल्ल बाणोंके द्वारा रथी योद्धाओंके धनुषकी डोरी, धनुष, ध्वजा, उनके रथ का युग और ईषा आदि को काट रहे थे । नहीं जान पड़ता था कि अर्जुन कब तरकस से बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं, कब उसे खींचते और कब छोड़ते हैं । केवल यही देख पड़ता था कि वे धनुष को मण्डलाकार घुमाते हुए रणभूमि में चारों ओर नृत्य सा कर रहे हैं । अर्जुन के नाराच बाण बहुत ही गहरे प्रवेश हो जाने के कारण मुख से रक्त उगलते हुए सहस्रों हाथियों का क्षण भर में पृथ्वी पर ढेर हो गया॥२५।२७॥हे राजेन्द्र ! उस समय समर-क्षेत्र में असंख्य कबन्ध उठ खड़े हुए । वे कबन्ध वहाँ

चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१ ॥
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥
एवं दुःशासनवलं वध्यमानं किरीटिना ।
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥
ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकांक्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

चारों ओर भयङ्कर युद्ध करते हुए दिखाई पड़ने लगे। धनुष, अङ्गुलित्राण, खड्ग आदि शस्त्रों और अङ्गद आदि सुवर्णमय आभूषणों से युक्त हाथ चारों ओर कटे हुए पड़े थे॥२८।२९॥समरभूमि में सर्वत्र सुन्दर सामग्री से युक्त छिन्न-भिन्न आसन, ईषादण्ड, रथ वन्धन, टूटे हुए पहिये, जुए, टुकड़े-टुकड़े हो गये रथ, महाध्वजा, असंख्य माला, आभूषण, वस्त्र, मारे गये हाथी-घोड़े और धनुष-वाण-ढाल-तलवार आदि धारण किये मृत वीर क्षत्रिय पड़े हुए थे; इससे वह रणभूमि वहुत ही भयङ्कर दिखाई पड़ रही थी। हे महाराज ! इस प्रकार अर्जुन के बाणों से नष्ट हो रही दुःशासन की सेना अपने नायक सहित व्यथित होकर भाग खड़ी हुई। दुःशासन भी अर्जुन के वाणों से पीड़ित और भयविह्वल होकर, अपनी सेना के सहित शकटव्यूह के भीतर प्रवेश हो गये और रक्षा के लिए महात्मा द्रोणाचार्य की शरण में पहुँचे॥३१।३४॥

द्रोणपर्व का नब्बेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९० ॥

अथ एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

सञ्जय उवाच—दुःशासनवलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन्वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥
स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्याऽनुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥
शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन्स्वस्ति चैव वदस्व मे ।
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥
भवान्पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

इक्यानबेवाँ अध्याय ॥ ९१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! महावीर अर्जुन इस प्रकार दुःशासन की सेना का संहार करके जयद्रथ पर आक्रमण करने के लिए आचार्य की सेना के सम्मुख वेग से चले। द्रोणाचार्य व्यूह के द्वार पर खड़े हुए थे। उनके समीप पहुँचकर अर्जुन ने, कृष्णचन्द्र की अनुमति के अनुसार, हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन् ! आप मेरी भलाई की इच्छा करें और अपने मुख से 'स्वस्ति' कहकर मुझे आशीर्वाद दें। मैं आपके प्रसाद से ही इस दुर्भेद्य व्यूह के भीतर प्रवेश होना चाहता हूँ॥१।३॥हे भगवन् ! आप मेरे पिता के समान हैं,

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयाऽनघ ।
तथाऽहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तदाऽऽचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥
एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिम् ॥ ८ ॥
ततोऽर्जुनः शरव्रातान्द्रोणस्याऽऽवार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यद्रवद्बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥
विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥
तस्येषूनिषुभिश्छित्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥
इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाऽऽशु वीर्यवान् ।
विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥
अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्धनुः ॥ १४ ॥

धर्मराज के समान हैं, [ पुरोहित धौम्य ] और महात्मा श्रीकृष्ण के समान हैं। हे तात ! आपके लिए जैसे अश्वत्थामा हैं वैसे ही मैं भी हूँ। आप जैसे उनकी रक्षा करते हैं वैसे ही मेरी भी रक्षा कीजिए। मैं आपकी कृपा से युद्धभूमि में सिन्धुराज जयद्रथ को ही मारना चाहता हूँ। हे प्रभो ! मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिए ॥४।६॥सञ्जय कहते हैं कि महावीर द्रोणाचार्य ने अर्जुन के ये वचन सुन कर मुसकराकर कहा—हे अर्जुन! तुम मुझे पहले जीते बिना जयद्रथ को नहीं मार सकते। अब हँसते हँसते द्रोणाचार्य ने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को और उनके रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथी को ढक दिया॥७।८॥तब अर्जुन ने अपने बाणों से आचार्य के

बाणों को व्यर्थ करके अपने भयङ्कर बाणों से उन्हें पीड़ित किया। इसके पश्चात् गुरु के चरणों में, सम्मान के लिए, क्षत्रियधर्म के अनुसार उन्होंने नव बाण मारे। ॥९।१०॥द्रोणाचार्य भी अपने बाणों से अर्जुन के बाण काटकर प्रज्वलित अग्नि और विष के सदृश भयानक बाणों से श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को घायल करने लगे। उस समय अर्जुन ने अपने बाणों से गुरु का धनुष काट डालना चाहा। वे यह विचार कर ही रहे थे कि कभी न व्याकुल होनेवाले द्रोणाचार्य ने इसी मध्य में अपने बाणों से अर्जुन के धनुष की डोरी काट डाली और फिर उनके घोड़ों और सारथी को घायल करके उनकी ध्वजा में भी कई बाण मारे।

विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
मुमोच षट्शतान्बाणान्गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १५ ॥
पुनः सप्तशतानन्यान्सहस्रं चाऽनिवर्तिनः ।
चिक्षेपाऽयुतशश्चाऽन्यांस्तेऽघ्नन्द्रोणस्य तां चमूम् १६ ॥
तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥
विसूताश्वध्वजाः पेतुः सञ्छिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥
चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥ १९ ॥
पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २० ॥
रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाऽद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥
तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं कुरुप्रवीरान्युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः प्राच्छादयन्मेघ इवाऽर्करश्मीन् २२ ॥
अथाऽत्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥ २३ ॥

अर्जुन के ऊपर द्रोणाचार्य बाण बरसा ही रहे थे कि अर्जुन ने अपने धनुष पर दूसरी डोरी चढ़ा दी। सब अस्त्रों के जाननेवालों में श्रेष्ठ अर्जुन ने आचार्य को अपनी स्फूर्ति दिखाने के लिए, और उनसे बढ़कर कार्य करने के लिए, एक साथ एक ही बाण की तरह छः सौ बाण लेकर छोड़े॥ ११।१५॥ फिर न लौटनेवाले अन्य सात सौ बाण, फिर एक सहस्र बाण और फिर दस सहस्र बाण छोड़े। वे बाण द्रोणाचार्य की सेना का संहार करने लगे। अर्जुन के बाणों से घायल और प्राणहीन होकर असंख्य मनुष्य, हाथी और घोड़े रणभूमि में गिरने लगे। अर्जुन के बाणप्रहार से रथी योद्धा एकाएक अस्त्र, ध्वजा, सारथी और घोड़े आदि से रहित होकर, अत्यन्त पीड़ित होकर, मर-मरकर रथों पर से गिरने लगे॥ १६।१८॥ उनके बाण लगने से बड़े-बड़े हाथी, वज्राघात से फटे हुए पर्वतशिखर की भाँति, आँधी से छिन्न भिन्न मेघमण्डल की तरह और अग्नि से जले हुए भवन की तरह एकाएक पृथ्वी पर गिरने लगे। हिमालय के ऊपर से जलधारा के वेग से पीड़ित हँसों के झुण्ड की भाँति सहस्रों घोड़े अर्जुन के बाणों से मरकर गिरने लगे। प्रलयकाल के सूर्य की किरणों के समान अर्जुन के अस्त्र और बाणों से मरे हुए असंख्य योद्धा, हाथी और घोड़े जलराशि के समान गिरने लगे। तब बाणरूप किरणों के द्वारा युद्धभूमि में कौरवपक्ष की सेना को भस्म करते हुए सूर्यसदृश अर्जुन को मेघतुल्य द्रोणाचार्य ने बाणवर्षा-रूप जलधारा से ढक लिया। मेघ जैसे सूर्य की किरणों को छिपा ले, वैसे ही द्रोणाचार्य ने अपने बाणों के समूह से अर्जुन के रथ को छिपा दिया॥ १९।२२॥ अब द्रोणाचार्य ने शत्रुओं के प्राण को हरनेवाला एक नाराच बाण अर्जुन की छाती ताककर बड़े वेग से चलाया। भूकम्प के

सविह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥ २४ ॥
द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चाऽस्य त्रिभिः शरैः ॥ २५ ॥
विशेषयिष्यञ्शिष्यं च द्रोणो राजन्पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥
प्रसक्तान्पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवाऽस्य धनुश्चाऽदृश्यताऽद्भुतम् ॥ २७ ॥
तेऽभ्ययुः समरे राजन्वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २८ ॥
तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २९ ॥
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ ३० ॥
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।
पार्थश्चाप्यब्रवीत्कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद्विसृजञ्शरान् ॥ ३२ ॥
ततोऽब्रवीत्स्वयं द्रोणः केदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्त्तसे ॥ ३३ ॥

समय पर्वत जैसे काँप उठते हैं वैसे ही उस बाण के प्रहार से अर्जुन व्याकुल हो गये। उन्होंने धैर्य धारण करके अपने को सँभाला और फिर द्रोणाचार्य को अनेक तीक्ष्ण बाणों से घायल किया। तब महाबली द्रोणाचार्य ने पाँच बाणों से श्रीकृष्ण जी को और तिहत्तर बाणों से अर्जुन को घायल करके तीन बाणों से उनके रथ की ध्वजा काट डाली॥२३।२५॥ हाथ की स्फूर्त्ति दिखाते हुए द्रोणाचार्य ने क्षण भर में अपने असंख्य तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को छिपा दिया। [सञ्जय कह रहे हैं कि हे राजेन्द्र!] उस समय हम लोगों ने देखा कि द्रोणाचार्य के बाण चारों ओर निरन्तर गिर रहे हैं और उनका अद्भुत धनुष मण्डलाकार घूम रहा है। द्रोणाचार्य के चलाये हुए कङ्कपत्रशोभित वे बाण श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऊपर बड़े वेग से जा रहे थे। [हे महाराज! उस समय हमने यह अद्भुत बात देखी कि नवयुवक होने पर भी वीर अर्जुन वृद्ध द्रोणाचार्य को किसी प्रकार परास्त नहीं कर सके, पराक्रम के द्वारा उन्हें हटाकर व्यूह के भीतर नहीं जा सके।] द्रोणाचार्य के अतुल पराक्रम को देख-कर श्रीकृष्ण ने कार्य की सिद्धि के निमित्त अर्जुन से कहा—हे पार्थ! हे पार्थ! हे महाबाहो! आचार्य से ही युद्ध में अटककर हमें अपना बहुत सा समय न नष्ट कर देना चाहिए। आओ हम इन्हें छोड़कर आगे चलें। अर्जुन ने उनसे कहा—जैसी आपकी इच्छा

अर्जुन उवाच—गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच—एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥
तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥ ३६ ॥
ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥ ३७ ॥
तेषां दशसहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३८ ॥
मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३९ ॥
कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥
पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥
गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥

हो सोकर्रे॥२९।३१॥अब आचार्यको दाहनीओर छोड़कर अर्जुन बाण-वर्षा करते हुए आगे बढ़ गये। उनको अन्यत्र जाते देखकर द्रोणाचार्य ने कहा—॥३२।३३॥ हे अर्जुन ! इस समय तुम मुझसे युद्ध करना छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? तुम तो संग्राम में शत्रु को जीते बिना कभी हटते नहीं। इस समय यह क्या बात है ? अर्जुन ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप मेरे गुरुदेव हैं, शत्रु नहीं हैं। मैं आपका पुत्रतुल्य शिष्य हूँ। विशेषकर इस लोक में ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं जो युद्ध में पराक्रम के द्वारा आपको परास्त कर सके॥३४॥ सञ्जय कहते हैं—जयद्रथ-वध के लिए उत्सुक अर्जुन यों कहते हुए स्फूर्ति के साथ आगे बढ़े और आपकी सेना को नष्ट करने लगे। पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा दोनों वीर भी, अर्जुन के रथ के पहियों की रक्षा करते हुए, उनके पीछे पीछे आपकी सेना के व्यूह में प्रवेश हुए। हे महाराज ! पुत्रशोक से संतप्त, क्रुद्ध, मृत्यु के समान भयङ्कर, विचित्र युद्ध में निपुण, प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करते हुए, यूथपति गजराज के तुल्य पराक्रमी महाधनुर्धर अर्जुन जब इस प्रकार वेग से कौरव सेना के भीतर प्रवेश होकर उसका संहार करने लगे, तब कौरवपक्ष के वीर जय, यादवश्रेष्ठ कृतवर्मा, काम्बोज और श्रुतायु ने उनका सामना किया॥३५।३७॥उस समय इन वीरों के अनुगामी दस सहस्र श्रेष्ठ रथी अर्जुन को

**जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।**
**न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४४ ॥**

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्याय ॥ ९१ ॥

रोकने चले। उनके साथ ही अभीषाह शूरसेन, शिबि, वसाति, मावेल्लक, ललित्थ, कैकेय, मद्रक आदि देशों के वीर योद्धा नारायणी सेना, गोपालगण और पहले कर्ण ने जिन्हें परास्त किया था वे, शूरश्रेष्ठ काम्बोज देश के वीर उत्साह के साथ प्रसन्नता पूर्वक द्रोणाचार्य को आगे करके अर्जुन को रोकने लगे॥३८।४२॥

उस समय परस्पर युद्ध करने के लिए उद्यत कौरव पक्ष के उक्त योद्धा और अर्जुन घोर संग्राम करने लगे। रोग को जैसे औषध आदि उपचार रोकते हैं वैसे ही जयद्रथ को मारने के लिए आते हुए वीर अर्जुन को वे सब योद्धा मिलकर रोकने लगे॥४३।४४॥

— ० —

द्रोणपर्व का इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९१ ॥

अथ द्विनवतितमोऽध्याय ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच — **सन्निरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।**
**द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥**
**किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान्स्वरश्मीनिव भास्करः ।**
**तापयामास तत्सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥**
**अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः ।**
**छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विनाकृताः ॥ ३ ॥**
**विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्त्तानि समन्ततः ।**
**इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥**
**तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः ।**
**अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥**
**सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसङ्गरः ।**
**अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥**

बानबेवाँ अध्याय ॥ ९२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार जब कौरव पक्ष के वीरों ने पराक्रमी अर्जुन को घेर लिया और द्रोणाचार्य भी उनका पीछा करते हुए शीघ्रता के साथ आगे बढ़े, तब अर्जुन उसी प्रकार सूर्य किरण तुल्य तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को अत्यन्त सन्तप्त करने लगे जिस प्रकार व्याधियाँ देह को पीड़ा पहुँचाती हैं। अर्जुन के दारुण बाणप्रहार से कौरवपक्ष के घोड़े घायल होने लगे, रथ छिन्न भिन्न होने लगे, सवारों सहित बड़े बड़े हाथी पृथ्वी पर गिरने लगे, वीरों के सिर पर के छत्र कट-कटकर गिरने लगे और रथों के पहियों के टुकड़े टुकड़े होने लगे। अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर सब सैनिक इधर-उधर प्राण ले-लेकर भागने लगे। हे नरनाथ ! महावीर अर्जुन जब घनघोर संग्राम करने लगे तब उनके बाणों के अतिरिक्त युद्ध भूमि में और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था॥१।४॥ उस समय वे अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने की अभिलाषा से सीधे जानेवाले तीक्ष्ण बाणों के द्वारा कौरव सेना को कँपाते हुए प्रतापी द्रोणाचार्य की ओर चले

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥ ७ ॥
तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥
तस्याऽऽशु क्षिप्तान्भल्लान्हि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥
तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याऽऽचार्यकं युधि ।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद्यदर्जुनः ॥ १० ॥
क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥
अर्जुनः शरवर्षं तद्ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान्निशातयन् ॥ १२ ॥
द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाऽऽशुगैः ॥ १३ ॥
पार्थस्तु प्रहसन्धीमानाचार्यं सशरौघिणम् ।
विसृजन्तं शितान्बाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥
अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥
वर्जयन्निशितान्बाणान्द्रोणचापविनिःसृतान् ।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥ १६ ॥

॥५।६॥महावीर द्रोण ने अपने शिष्य अर्जुन के ऊपर मर्मभेदी और सीधे निशाने पर जानेवाले पचीस बाण छोड़े। अस्त्रविद्या के जाननेवालों में मुख्य वीर अर्जुन ने बाणों के द्वारा आचार्य के बाणों का वेग रोक दिया। फिर वे शीघ्रता से आगे बढ़े। उन्होंने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हुए सन्नतपर्व-युक्त भल्ल बाणों से द्रोणाचार्य के भल्ल बाणों को काट डाला॥७।९॥हे राजेन्द्र! उस समय हमने आचार्य की ऐसी अद्भुत शिक्षा और कुशलता देखी कि युवा अर्जुन यत्न करके भी उनके शरीर में एक बाण तक नहीं छुआ सके।महामेघ जैसे असंख्य जलधाराएँ बरसाता है वैसे ही द्रोणरूप मेघ अर्जुनरूप पर्वत पर बाणों की वर्षा करते ही दिखाई पड़ता था। पराक्रमी अर्जुन इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने बाणों से द्रोण के बाणों की वर्षा को रोक दिया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन को पचीस और श्रीकृष्ण को, छाती तथा भुजाओं में, सत्तर बाण मारे ॥१०।१३॥अर्जुन ने भी हँसते-हँसते बाणवर्षा करनेवाले आचार्य के प्रहारों को निष्फल कर दिया। प्रलयकाल के अग्नि के समान प्रज्वलित होकर दुर्धर्ष हो रहे द्रोणाचार्य के बाणों की चोट बचाकर अर्जुन भोज की सेना को नष्ट करने लगे। द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाण अमोघ थे, इसी कारण अर्जुन उन्हें बचा गये। मैनाक पर्वत के समान अटल द्रोणाचार्य से बचते हुए वे कृतवर्मा और काम्बोज-

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
अभ्ययाद्वर्जयन्द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥
ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥
तमर्जुनः शतेनाऽऽजौ राजन्विव्याध पत्रिणाम् ।
पुनश्चाऽन्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥
भोजस्तु प्रहसन्पार्थं वासुदेवं च माधवम् ।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २० ॥
तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसन्निभैः ॥ २१ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥
पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥
दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥
ततः कृष्णोऽब्रवीत्पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम् ।
कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥
ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वाऽर्जुनः शरैः ।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥ २६ ॥

नरेश सुदक्षिण के सम्मुख पहुँचे । व इन दोनों के मध्य में हो गये ॥१४।१७॥तब कृतवर्मा ने निर्भय भाव से कङ्कपत्रयुक्त दस बाण अर्जुन को मारे । अर्जुन ने कृतवर्मा को पहले पैना एक बाण मारकर फिर तीन बाण मारे । अब मुसकराते हुए कृतवर्मा ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को पचीस पचीस बाण मारे। अर्जुन ने उसी समय कृतवर्मा का धनुष काट डाला और क्रोधित सर्प के समान, अग्निशिखा के आकारवाले, इक्कीस बाण मारे॥१८।२१॥महारथी कृतवर्मा ने तुरन्त ही दूसरा धनुष लेकर, अर्जुन की छाती ताककर, पाँच बाण पहले और पाँच बाण उसके पश्चात् मारे। महावीर अर्जुन ने भी कृतवर्मा की छाती में नव बाण मारे । श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कृतवर्मा के साथ बहुत समय तक युद्ध करते देखकर सोचा कि हम लोगों को अब अधिक देर न करनी चाहिए।तब वे अर्जुन से बोले-हे पार्थ!कृतवर्मा के साथ दया का व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं। सम्बन्ध का विचार छोड़कर शीघ्र इनको मारो॥२२।२५॥महाबाहु अर्जुन ने श्रीकृष्ण का कहा मानकर स्फूर्ति से बाण मारकर कृतवर्मा को मूर्च्छित कर दिया । अब वे काम्बोज-सेना के भीतर प्रवेश हुए। [कृतवर्मा तुरन्त ही सावधान हो गये और] अर्जुन को काम्बोज सेना के भीतर गये देखकर उन्होंने अर्जुन के चक्ररक्षक पाञ्चालदेशीय युधामन्यु और उत्तमौजा को आगे नहीं जाने दिया । उन्होंने युधामन्यु को

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
विधुन्वन्सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥ २७ ॥
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥ २८ ॥
तावविध्यत्ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥ २९ ॥
तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥
सञ्चिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥ ३१ ॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ।
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥ ३२ ॥
तेनाऽन्तरेण बीभत्सुर्विवेशाऽमित्रवाहिनीम् ।
न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥
धार्त्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ ।
अनीकान्यर्दयन्युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
नाऽवधीत्कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः ।
तं दृष्ट्वा तु तथाऽऽयान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥ ३५ ॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद्धनुः ।
स पार्थं त्रिभिरानर्च्छत्सप्तत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् ।
ततोऽऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥

तीन और उत्तमौजा को चार तीक्ष्ण बाण मारे॥२६।२९॥तब उन दोनों वीरों ने कृतवर्मा को दस-दस बाण मारे तथा वैसे ही तीन तीन बाण और मारकर कृतवर्मा के रथ की ध्वजा और धनुष काट डाला। यह देखकर कृतवर्मा बहुत ही कुपित हुए और उन्होंने तुरन्त ही दूसरा धनुष लेकर उन दोनों वीरों के धनुष काट डाले और उनपर असंख्य बाणों की वर्षा की। वे दोनों वीर भी अन्य धनुष लेकर, उन पर डोरी चढ़ाकर, कृतवर्मा को तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे॥३०।३२॥इसी मध्य में महावीर अर्जुन शत्रु-सेना के भीतर प्रवेश हो गये। युधामन्यु और उत्तमौजा ने कौरव-सेना के भीतर प्रवेश होने की बहुत बहुत चेष्टाएँ कीं, पर कृतवर्मा के बाणों की चोट से वे कृतकार्य नहीं हो सके। अर्जुन कौरव-सेना में प्रवेश करके शीघ्रता के साथ उसे मारने लगे। कृतवर्मा को सम्मुख पाकर भी उन्होंने उसे जीवन से रहित नहीं किया॥३३।३५॥ राजा श्रुतायुध ने जब अर्जुन को कौरव सेना के भीतर प्रवेश होते देखा तब वे क्रुद्ध होकर धनुष कँपाते हुए

आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।
स तं न ममृषे राजन्पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ३८ ॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् ।
तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्छितः ॥ ४० ॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।
ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥ ४१ ॥
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ।
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः ॥ ४२ ॥
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः ।
हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥
अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
वरुणस्याऽऽत्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।
तस्य माताऽब्रवीद्राजन्वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।
वरुणस्त्वब्रवीत्प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनाऽवध्यो भविष्यति ।
नाऽस्ति चाप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथञ्चन ॥ ४७ ॥

उसी क्षण उनके सम्मुख पहुँचे। उन्होंने अर्जुन को तीन और श्रीकृष्ण को सत्तर बाण मारकर एक क्षुरप्र बाण से अर्जुन की ध्वजा काट डाली। यह देखकर अर्जुन बहुत ही कुपित हुए और गजराज के ऊपर अंकुश-प्रहार की तरह श्रुतायुध के ऊपर उन्होंने झुकी हुई पोरवाले नब्बे बाण चलाये। अर्जुन का पराक्रम देखकर कुपित श्रुतायुध ने अर्जुन को सतहत्तर नाराच बाण मारे॥३५। ३९॥ अर्जुन ने क्रोध से विह्वल होकर श्रुतायुध का धनुष काट डाला और तरकसों के टुकड़े टुकड़े कर दिये। फिर सात बाण श्रुतायुध की छाती में मारे। अर्जुन का पराक्रम देखकर महावीर श्रुतायुध क्रोध के मारे अत्यन्त अधीर हो उठे। उन्होंने उसी समय दूसरा धनुष लेकर नव बाण अर्जुन के हाथों में और छाती में मारे। इसी समय में महाबली शत्रुदमन अर्जुन ने एक साथ सहस्रों बाणों की वर्षा करते करते शत्रु के सारथी और रथ के घोड़ों को मार गिराया। अब अर्जुन ने श्रुतायुध को सतहत्तर बाण और मारे। सारथी और घोड़े न रहने पर राजा श्रुतायुध बहुत ही कुपित हुए। वे रथ से उतरकर, गदा हाथ में लेकर अर्जुन के रथ के सम्मुख दौड़े॥३९।४४॥हे राजेन्द्र! श्रुतायुध लोकपाल वरुण के पुत्र थे। शीतल जलवाली महानदी पर्णाशा उनकी माता थीं। पर्णाशा ने वरुण से यह वर माँगा था कि मेरा पुत्र किसी शत्रु से न मारा जा सके। वरुण ने प्रसन्नतापूर्वक कहा — हे

सर्वेणाऽवश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ।
दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥
अस्त्रस्याऽस्य प्रभावाद्वै व्येतु ते मानसो ज्वरः ।
इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद्गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः ।
उवाच चैनं भगवान्पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥
अयुद्ध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति ।
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥ ५१ ॥
न चाऽकरोत्स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः ।
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥
प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांऽसेन वीर्यवान् ।
नाऽकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवाऽनिलः ॥ ५३ ॥
प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।
जघान चाऽऽस्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥
हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत ।
गदां निवर्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥ ५५ ॥
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।
स्वेनाऽस्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ५६ ॥
अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाऽथ तस्मात्तमवधीद्गदा ॥ ५७ ॥

---

श्रेष्ठ नदी! मैं यह दिव्य अस्त्र देता हूँ। इसके प्रभाव से तुम्हारा पुत्र समर में अवध्य होगा। हे भद्रे! मनुष्य कदापि अवध्य या अमर नहीं हो सकता। पृथ्वी पर जन्म लेनेवाले को अवश्य ही काल के गाल में जाना पड़ता है। अस्तु, मैं तुमको यह वर देता हूँ कि तुम्हारा पुत्र रणभूमि में अजेय होगा। तुम अपने मन से चिन्ता दूर करो॥४४।४८॥यह कहकर वरुण ने मन्त्र के साथ एक दिव्य गदा श्रुतायुध को दी। उसी गदा के प्रभाव से श्रुतायुध पृथ्वी पर दुर्जय हो उठे। जिस समय वरुण ने श्रुतायुध को गदा दी थी उसी समय यह भी कह दिया था कि देखो, जो कोई युद्ध न करता हो उस पर इस गदा का वार न करना। यदि वार करोगे तो यह गदा उलटकर तुम्हारे ही ऊपर गिरेगी॥४९।५१॥समय पड़ते ही काल-मोहित होकर श्रुतायुध ने वरुण के वचनों की श्रद्धा नहीं की —वे उस वीर-घातिनी गदा को कृष्णचन्द्र के ऊपर चला बैठे। पराक्रमी भगवान् कृष्ण ने उस गदा का प्रहार अपने सुदृढ़ कन्धे पर रोका। विन्ध्या-चल पर्वत जैसे प्रचण्ड आँधी से नहीं काँपता वैसे ही उस गदा के प्रहार से श्रीकृष्ण भी विचलित नहीं हुए। वह गदा दुष्प्रयोग-दूषित 'कृत्या' के समान बड़े वेग से पलट पड़ी; उसने महावीर श्रुतायुध को आकर चूर-चूर कर दिया। इस प्रकार वीर श्रुतायुध को मारकर वह गदा पृथ्वी में गिर पड़ी॥५२।५५॥गदा

यथोक्तं वरुणेनाऽऽजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाऽप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥
पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः ।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५९ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ६० ॥
ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥
तस्य पार्थः शरान्सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन्धरणीतलम् ॥ ६२ ॥
सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे ।
अर्जुनं प्रति विव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥
वासुदेवं त्रिभिर्विध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥ ६४ ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विध्वा सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ६५ ॥
सर्वपारसवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
स घण्टां प्राहिणोद्घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥
सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् ।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥

को निष्फल होकर लौटते और श्रुतायुध को मरते देख कर कौरव सेना में हाहाकार मच गया। हे राजेन्द्र! महावीर श्रुतायुध ने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्ण के ऊपर वह गदा चलाई थी इसी कारण से, वरुण के कथनानुसार, उस गदा ने लौटकर उन्हीं के प्राण ले लिये। श्रुतायुध सब योद्धाओं के सम्मुख ही आँधी से टूटे हुए कई शाखाओंवाले पुराने बड़े पेड़ की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े॥५८।५९॥शत्रुदमन श्रुतायुध की मृत्यु देखकर सब सैनिक और प्रधान योद्धा भी भाग खड़े हुए। अब काम्बोज देश के राजा के पुत्र शूरवीर सुदक्षिण, शीघ्र चलनेवाले घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर, शत्रुओं का नाश करनेवाले अर्जुन की ओर दौड़े। अर्जुन ने उनको सात बाण मारे। वे बाण वीर सुदक्षिण के शरीर को भेदकर पृथ्वी में प्रवेश हो गये॥६०।६२॥ गाण्डीव धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण बाणों की गहरी चोट खाकर सुदक्षिण ने कङ्कपत्रयुक्त दस बाण अर्जुन को मारे। इसके पश्चात् ही फिर श्रीकृष्ण को तीन और अर्जुन को पाँच बाण मारे। अर्जुन ने उनका धनुष काट डाला, ध्वजा काट गिराई और अत्यन्त तीक्ष्ण दो भल्ल बाण सुदक्षिण को मारे। वे भी अर्जुन को तीन बाण मारकर सिंहनाद करने लगे॥६३।६५॥शूर सुदक्षिण ने क्रुद्ध होकर लोहे की बनी हुई, कई घण्टों से शोभित भयङ्कर शक्ति अर्जुन के ऊपर चलाई। उल्का के समान जलती हुई उस शक्ति से चिनगारियाँ

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ६८ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥
रथं चाऽन्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसङ्कल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ।
स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥
पपाताऽभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ।
गिरेः शिखरजः श्रीमान्सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ७२ ॥
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये ।
शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥
महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।
धारयन्नग्निसङ्काशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।
ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ।
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

निकल रही थीं । वह शक्ति आकर अर्जुन की छाती में लगी और घाव करके पृथ्वी पर गिर पड़ी । शक्ति की गहरी चोट खाकर अर्जुन मूर्च्छित हो गये, किन्तु वे तुरन्त ही सँभल गये और क्रोध के मारे होंठ चबाने लगे । उन्होंने कङ्कपत्रयुक्त चौदह नाराच बाण मारे जिनसे सुदक्षिण घायल हुए, उनका सारथी मरा, रथ के घोड़े नष्ट हुए तथा ध्वजा और धनुष कट गया । इसके पश्चात् बहुत से बाण मारकर उन्होंने सुदक्षिण के रथ के टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥६६।७०॥विचार और विक्रम जिनका निष्फल हो गया है, उन सुदक्षिण के हृदय में अर्जुन ने तीक्ष्ण धारवाला एक बाण बड़े जोर से मारा । उस बाण के लगने से सुदक्षिण का हृदय फट गया, दृढ़ कवच कटकर गिर पड़ा, प्राण निकल गये, सब अङ्ग ढीले पड़ गये, मुकुट और अङ्गद आदि गिर पड़े और वे यन्त्रयुक्त इन्द्रध्वज की भाँति मुख के बल रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े । बड़ी बड़ी शाखाओंवाला कर्णिकार का सुदृढ़ वृक्ष जैसे गर्मियों में आँधी से टूटकर पर्वत के शिखर पर से नीचे गिर पड़े, वैसे ही वीर सुदक्षिण गिर पड़े॥७०।७२॥काम्बोज देश के बने बहुमूल्य बिछौनों पर लेटने योग्य और बहुमूल्य आभूषण पहने हुए राजा सुदक्षिण मरकर रणशय्या पर शिखरयुक्त पर्वत के समान जान पड़ने लगे । सुन्दर रूप और आरक्त नेत्रोंवाले काम्बोजराज के पुत्र सुदक्षिण अर्जुन के कर्णी बाण से मरकर पृथ्वी पर गिर

पड़े। सिर पर अग्नि के समान दमकती हुई सुवर्ण की माला पहने, पृथ्वी पर पड़े हुए, मृत महाबाहु सुदक्षिण बहुत ही शोभायमान हुए। हे राजेन्द्र ! तब श्रुतायुध और काम्बोज-राजकुमार सुदक्षिण की मृत्यु देखकर आपके पुत्र की सेना भाग खड़ी हुई॥७३।७६॥

—०—

द्रोणपर्व का बानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९२ ॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

सञ्जय उवाच—हते सुदक्षिणे राजन्वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाऽभ्यद्रवन्पार्थं कुपिताःसैनिकास्तव ॥ १ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥ २ ॥
तेषां षष्टिशतानन्यान्प्रामथ्नात्पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात्क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥
ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान्युधि ॥ ४ ॥
तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चाऽपि धनञ्जयः ॥ ५ ॥
शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवाऽऽसीद् ध्वांक्षगृध्रवलैर्युधि ॥ ६ ॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च धनञ्जयमयुध्यताम् ॥ ७ ॥
बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥

तिरानवेवाँ अध्याय ॥ ९३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! महावीर श्रुतायुध और सुदक्षिण को मारे गये देखकर कौरवपक्ष के सब सैनिक क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने क्रोधपूर्वक अर्जुन का सामना किया। अभिषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति देशों के वीरों के अनेक दल अर्जुन पर स्फूर्ति से असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे। तब महावीर अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उनमें के साठ सौ पुरुषों को मथ डाला। जैसे मृग बाघ से भयभीत होकर भागते हैं वैसे ही वे अर्जुन के बाणों की चोट से विह्वल होकर भागने लगे॥१।३॥ वे फिर धैर्यधारण-पूर्वक पलट पड़े; उन्होंने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया। रण में शत्रुओं को मारकर जय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले अर्जुन, गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों के द्वारा, शीघ्रता के साथ अपनी ओर आक्रमण करने को आते हुए उन लोगों के सिर और हाथ काट-काटकर गिराने लगे। उनके इतने सिर कटकर गिरे कि रणभूमि में निरन्तर सिर ही सिर दिखाई पड़ने लगे। सहस्रों कौओं और गिद्धों के दल उड़ने से ऐसा जान पड़ने लगा कि रणभूमि पर मेघ छाये हुए हैं॥४।६॥ इस प्रकार जब वीर अर्जुन उन लोगों का संहार करने लगे तब महावीर श्रुतायु और अच्युतायु दोनों भाई अर्जुन से युद्ध करने आये। वे बली, स्पर्धाशील, वीर,

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥
तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटाकं जलदौ यथा ॥ १० ॥
श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन्केशवं रणे ॥ १२ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥
क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनञ्जयम् ॥ १५ ॥
कृष्णश्च भृशसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत्सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥ १६ ॥
ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १८ ॥

कुलीन, महाबाहु और श्रेष्ठ योद्धा थे। दोनों वीर दाहिनी और बाईं ओर से अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। महान् यश प्राप्त करने की अभिलाषा से आपके पुत्र के लिए अर्जुन को मारने के लिए उद्योगी वे दोनों धनुर्द्धर स्फूर्ति के साथ अर्जुन पर प्रहार करने लगे। जैसे किसी बड़े सरोवर को दो मेघ जलधाराओं से भर दें, वैसे ही उन्होंने तीक्ष्ण सहस्रों बाणों से अर्जुन को ढक दिया॥७।१०॥इसी अवसर में कुपित होकर श्रुतायु ने अर्जुन को धारदार बहुत ही तीक्ष्ण तोमर मारा। बलवान् शत्रु ने बड़े वेग से प्रहार किया। उस प्रहार से अर्जुन को गहरी चोट आई। वे थोड़ी देर के लिए अचेत से हो गये। यह देखकर श्रीकृष्ण-चन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई। इसी अवसर में मौका पाकर महारथी अच्युतायु ने भी अर्जुन को तीक्ष्ण शूल मारा। जैसे कोई कटे हुए पर नमक छिड़के वैसे ही अच्युतायु ने एक प्रहार पर दूसरा प्रहार किया। बहुत गहरी चोट लगने से अर्जुन को बड़ा कष्ट हुआ। वे कुछ समय तक ध्वजा दण्ड के सहारे बैठे रहे॥११। १४॥हे महाराज! उस समय आपके सब सैनिक अर्जुन को मृत्यु को प्राप्त हुआ जानकर जोर से सिंह-नाद करने लगे। उनको अचेत देखकर कृष्णचन्द्र को बड़ा खेद हुआ। वे मधुर वचनों से अर्जुन को ढाढ़स बँधाने लगे। अवसर पाकर वे दोनों श्रेष्ठ रथी अर्जुन और वासुदेव के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे।

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥
सञ्छन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाऽभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवाऽनलौ ॥ २० ॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन्सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥
ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥
प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन्वै महारथान् ॥ २३ ॥
तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥
श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाऽच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत्समुद्रस्येव शोषणम् ॥ २५ ॥
तयोः पदानुगान्हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद्भारतीं सेनां निघ्नन्पार्थो वरान्वरान् ॥ २६ ॥
श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाऽच्युतायुषम् ।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥
पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान्बाणान्पितृव्यसनकर्शितौ ॥ २८ ॥

उस समय यह अद्भुत दृश्य देखने में आया कि उन-
के बाणों से अर्जुन का रथ पहिये-कूबर-घोड़े-ध्वजा-
पताका सहित अदृश्य हो गया॥१५।१८॥हे महाराज !
किञ्चित् देर के पश्चात् धीरे-धीरे अर्जुन सावधान हुए।
वे मानों यमराज के घर से लौटकर आये। श्रीकृष्ण
सहित अपने रथ को बाणों में छिप गया देखकर
अर्जुन को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने देखा कि
दोनों शत्रु उनके सम्मुख अग्नि के समान प्रज्वलित
हो रहे हैं। तब महारथी अर्जुन इन्द्रास्त्र का प्रयोग
करके बाण बरसाने लगे। उस समय अस्त्र के प्रभाव
से अर्जुन के धनुष से सहस्रों बाण प्रकट होने लगे।
गाण्डीव धनुष से छूटे हुए वे बाण आकाश में विच-
रने लगे। उन बाणों ने श्रुतायु अच्युतायु के बाणों
को व्यर्थ कर दिया॥१९।२२॥अर्जुन अपने बाणों के
वेग से शत्रुओं के बाणों को विफल करके जहाँ-जहाँ
महारथी योद्धा थे,वहाँ-वहाँ उनसे युद्ध करते हुए विचरने
लगे। अर्जुन के असंख्य बाणों से उन दोनों के हाथ और
सिर कट गये; वे आँधी से उखड़े हुए पेड़ों की तरह
पृथ्वी पर गिर पड़े। समुद्र को सोख लेने के समान
श्रुतायु और अच्युतायु की मृत्यु देखकर लोगों को
बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुन ने उन दोनों शत्रुओं के
साथी पाँच सौ रथी योद्धाओं को भी मार डाला।
इसके पश्चात् शत्रुपक्ष के श्रेष्ठ वीरों को मारते हुए
अर्जुन कौरवसेना के भीतर प्रवेश हो पड़े॥२३।२६॥

तावर्जुनो मुहूर्त्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
प्रैपयत्परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥
लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥
अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥ ३१ ॥
दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥
तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥
तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाऽङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥
बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥
शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
अदृश्यन्ताऽद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥
निहताः शेरते स्माऽन्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥
नानावेषधरा राजन्नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणाऽनुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

श्रुतायु और अच्युतायु की मृत्यु देखकर उनके पुत्र नियतायु और दीर्घायु, पितृशोक से व्यथित और कुपित होकर, विविध बाण बरसाते हुए अर्जुन के सम्मुख आये। कुपित अर्जुन ने क्षण भर में तीक्ष्ण बाण मारकर उन दोनों को भी मार डाला। कमलवन को जैसे कोई गजराज रौंदे वैसे ही शत्रु सेना को मथते हुए वीर अर्जुन को कौरवपक्ष के वीर आगे बढ़ने से नहीं रोक सके॥२७।३०॥उस समय सहस्रों सुशिक्षित कुपित गजारोही अङ्ग देश के योद्धाओं ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया। दुर्योधन की आज्ञा से प्राच्य, दाक्षिणात्य, कलिङ्ग आदि देशों के राजा लोग पर्वताकार हाथियों के द्वारा अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों से उनके भूषणयुक्त बाहु और सिर काटने लगे॥३१।३३॥उन वीरों के कटे हुए अङ्गद-युक्त हाथों और सिरों से परिपूर्ण रणभूमि सर्पों से घिरी हुई सुवर्णशिला के समान जान पड़ने लगी। बाणों से कटे हुए हाथ और सिर गिरते समय पेड़ों पर से गिरते हुए पक्षियों के समान दिखाई पड़ रहे थे। बाण लगने से हाथियों के शरीरों से रक्त बहने लगा और वे उन पर्वतों के समान जान पड़ने लगे जिनसे वर्षाकाल में गेरू के झरने बह रहे हों॥३४।३६॥हाथियों पर बैठे हुए, विकृताकार, विविध विचित्र वेषधारी शस्त्रयुक्त म्लेच्छगण अर्जुन के विचित्र तीक्ष्ण बाणों

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥
चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चाऽपरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥ ४० ॥
सान्तरायुधिनश्चैव द्विपांस्तीक्ष्णविषोपमाः ।
विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥
यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाल्हिकैः ।
काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥
द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
गोयोनिप्रभवाम्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥
दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः ।
ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्रात्याः शतसहस्रशः ॥ ४४ ॥
अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः ।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥ ४५ ॥
तेषामपि ससर्जाऽऽशु शरवृष्टिं धनञ्जयः ।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवाऽऽयतिः ॥ ४६ ॥
अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः ।
मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ॥ ४७ ॥

से मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। वे सिर से पाँव तक रक्त से नहाये हुए थे। जिनकी पीठ पर सवार और महावत बैठे हुए थे तथा समीप चरण रक्षक खड़े हुए थे, ऐसे सहस्रों हाथी अर्जुन के बाणों की चोट खाकर मुख से रक्त उगलने लगे। बहुत से हाथियों के अङ्ग फट-फट गये। कुछ चिल्लाने, कुछ गिरने और कुछ इधर-उधर भागने-फिरने लगे। बहुत से हाथी व्याकुल होकर अपने ही पक्ष के सैनिकों को कुचलने लगे। विषैले नागों के समान और विविध अस्त्र शस्त्रों से सम्पन्न सहस्रों हाथियों की ऐसी दशा अर्जुन के बाणों ने कर डाली॥३९।४०॥ वे आसुरी मायाओं को जानने-वाले, घोररूप, घोर नेत्रोंवाले, कौए के से काले रङ्ग के, दुराचारी, लम्पट, कलहप्रिय यवन, पारद, शक, बाह्लीक, मत्त हाथी के पराक्रमवाले द्राविड़, नन्दिनी गऊ की योनि से उत्पन्न कालतुल्य अमोघ प्रहार करने वाले म्लेच्छ, दार्वातिसार, दरद और सहस्रों पुण्ड्र-देशीय व्रात्य ( पतित ) क्षत्रिय मिलकर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। उन म्लेच्छों की संख्या बताना सम्भव नहीं। अनेक प्रकार के युद्धों में निपुण वे म्लेच्छ, अर्जुन के ऊपर, तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। तब उनका संहार करने के निमित्त अर्जुन ने शीघ्रता के साथ बाण-वर्षा करना आरम्भ कर दिया। अर्जुन के धनुष से टीड़ीदल के समान बाण निकलने लगे॥४१।४६॥ उन्होंने अस्त्र के प्रभाव से इतने बाण बरसाये कि रणभूमि में उनसे मेघों की सी छाया दिखाई पड़ने लगी॥ पूर्ण सिर मुड़ाए, आधा सिर मुड़ाए, जटाधारी, अपवित्र, दाढ़ी मूँछ से भयानक मुखमण्डल-वाले उन म्लेच्छों को अर्जुन ने अपने अस्त्र के प्रभाव से देखते ही देखते नष्ट कर दिया। पहाड़ों और पर्वतों की कन्दराओं में रहनेवाले म्लेच्छगण अर्जुन

म्लेच्छानशातयत्सर्वान्समेतानस्त्रतेजसा ।
शरैश्च शतशो विद्धास्ते सङ्घा गिरिचारिणः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४८ ॥
गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः ।
बकाः कङ्का वृका भूमावपिबन्रुधिरं मुदा ।
पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ॥ ४९ ॥
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ५० ॥
छिन्नांगुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसन्निभाम् ।
प्राकरोद्गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।
यथा स्थलं च निम्नं च न स्याद्वर्षति वासवे ॥ ५२ ॥
तथाऽऽसीत्पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता ।
षट्सहस्रान्हयान्वीरान्पुनर्दशशतान्वरान् ॥ ५३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः ॥ ५४ ॥
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।
स वाजिरथमातङ्गान्निघ्नन्व्यचरदर्जुनः ॥ ५५ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन्नलवनं यथा ।
भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६ ॥

के असंख्य बाणों से पीड़ित, नष्ट और भयविह्वल होकर इधर-उधर भागने लगे। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से घायल होकर और मरकर पृथ्वी पर गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और उनके सवारों के रक्त को बगले, कङ्क, वृक आदि पशु-पक्षी प्रसन्नतापूर्वक पीने लगे॥४७।४९॥ अर्जुन ने उस समय रणभूमि में रक्त के प्रवाह और तरङ्ग से युक्त भयङ्कर नदी बहा दी, जो कि प्रलय-समय की काल-तुल्य नदी जान पड़ती थी। वह नदी पैदल, घोड़े, रथ, हाथी आदि की सीढ़ियों से युक्त थी; असंख्य राजपुत्रों, हाथियों, घोड़ों, रथियों और पैदलों के शरीरों से निकले हुए रक्त से उत्पन्न हुई थी। बाण-वर्षा ही उसमें डोंगी-नाव आदि के समान थी। केश ही उसमें सेवार और घास के स्थान देख पड़ते थे। कटी हुई उँगलियाँ उसमें छोटी मछलियों के समान जान पड़ती थीं। बड़े-बड़े हाथियों के शरीर उसकी तटभूमि प्रतीत होते थे। जब मूसलाधार जल बरसता है तब जैसे ऊँची-नीची सब भूमि एकरूप हो जाती है वैसे ही वह रणभूमि कौरव-सेना के रक्त से एकरूप दिखाई पड़ने लगी॥४९।५३॥ अर्जुन ने उस समय युद्धभूमि में छः सहस्र घोड़ों और एक सहस्र वीर क्षत्रियों को मार डाला। सुसज्जित हाथी अर्जुन के बाणों से छिन्न भिन्न होकर, वज्र के प्रहार से फटे हुए पर्वतों के समान, पृथ्वी पर गिरने लगे। मस्त गजराज जैसे नरकट के वन को रौंदता हुआ इधर-उधर विचरता

निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
सेनारण्यं तत्र तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥
शरार्चिरदहत्क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः ।
शून्यान्कुर्वन्रथोपस्थान्मानवैः संस्तरन्महीम् ॥ ५८ ॥
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनञ्जयः ।
वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥
प्राविशद्भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनञ्जयः ।
तं श्रुतायुस्तथाऽऽम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥
तस्याऽर्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥
धनुश्चाऽस्याऽपरैश्छित्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ।
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।
ततः सम्प्रहरन्वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ।
गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ।
ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।
अथाऽपरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥

है वैसे ही अर्जुन भी असंख्य हाथी, घोड़े, रथी आदि का संहार करते हुए रणभूमि में विचरने लगे। प्रचण्ड अग्नि जैसे वायु की सहायता से असंख्य वृक्ष, लता, गुल्म, सूखी लकड़ी और घास फूस से परिपूर्ण जङ्गल को जलाती है वैसे ही महावीर अर्जुन, श्रीकृष्ण की सहायता से ज्वाला-तुल्य तीक्ष्ण बाणों के द्वारा असंख्य कौरव-सेना को मृत्यु के मुख में भेजने लगे। उन्होंने सब रथों को योद्धाओं से रहित और पृथ्वी को मनुष्य आदि के मृत शरीरों से परिपूर्ण कर दिया। महावीर अर्जुन हाथ में गाण्डीव धनुष लिए हुए समरभूमि में स्फूर्ति से परिभ्रमण कर रहे थे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों वे नृत्य से कर रहे हैं॥५२।५८॥इस प्रकार वज्रतुल्य बाणों की मार से युद्धभूमि को रक्त में मग्न करके कुपित अर्जुन आगे बढ़ कर कौरव-सेना के भीतर प्रवेश हुए। अम्बष्ठाधिपति श्रुतायु ने शत्रु-सेना में आते हुए अर्जुन को अपने पराक्रम से रोका॥५८। ६०॥उस समय महाबली अर्जुन ने कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से श्रुतायु के घोड़ों को मार गिराया और साथ ही धनुष भी काट डाला। अर्जुन के इस कार्य से अम्बष्ठराज श्रुतायु के क्रोध की सीमा न रही। वे एक भारी गदा लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुन के समीप पहुँचे। उन्होंने अर्जुन के रथ की गति रोककर श्री-कृष्ण पर गदा चलाई॥६१।६४॥श्रीकृष्ण को गदा लगते देखकर अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे। मेघ

अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्याऽन्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।
तस्याऽर्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥ ६८ ॥
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चाऽन्येन पत्रिणा ।
स पपात हतो राजन्वसुधामनुनादयन् ॥ ६९ ॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः ।
रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः ।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवाऽऽवृतः ॥ ७० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

जैसे उदय हो रहे सूर्य को छिपा लेते हैं, वैसे ही अर्जुन ने सुवर्णपुङ्खयुक्त बाणों की वर्षा से गदापाणि श्रुतायु को छिपा दिया और अन्य बाणों से उस गदा के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। अर्जुन ने यह बड़ा विस्मय-जनक काम किया॥६४।६७॥महावीर अम्बष्ठराज ने अपनी गदा के टुकड़े हुए देखकर तुरन्त ही दूसरी गदा हाथ में ली। वे अत्यन्त ही कुपित होकर उस गदा से बारम्बार अर्जुन और श्रीकृष्ण को पीड़ित करने लगे। तब रणनिपुण अर्जुन ने दो क्षुरप्र बाणों से श्रुतायु के गदायुक्त इन्द्रध्वज सदृश दोनों हाथ काट गिराये और वैसे ही अन्य एक बाण से उनका सिर भी काट डाला। महावीर अम्बष्ठराज इस प्रकार अर्जुन के बाण से मरकर पृथ्वी को शब्दपूर्ण करते हुए, यन्त्र से छूटकर गिरे हुए इन्द्रध्वज के समान, गिर पड़े। उस समय शत्रुनाशन वीर अर्जुन असंख्य रथ, हाथी, घोड़े आदि के मध्य में घिरे होने के कारण घनघटाओं से घिरे हुए सूर्य के समान दिखाई पड़ने लगे॥६७।७०॥

द्रोणपर्व का तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९३ ॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच—ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन्सुदक्षिणे ।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

चौरानवेवाँ अध्याय ॥ ९४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजा जनमेजय! जयद्रथ को मारने की आकांक्षा से महावीर अर्जुन इस प्रकार दुर्भेद्य द्रोणाचार्य की सेना और भोजराज की सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए व्यूह के भीतर प्रवेश हो गये। काम्बोज-राजकुमार सुदक्षिण और पराक्रमी श्रुतायु मारे गये। यह देखकर आपके सब सैनिक प्राण ले-लेकर चारों ओर भागने लगे। रथ पर सवार आपके पुत्र दुर्योधन यह देख शीघ्र ही आचार्य के

त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।
गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥ ४ ॥
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् ।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥
यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥
असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥
अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परन्तप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद्ब्रह्मविदां वर ।
नाऽतिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन्धनञ्जयः ॥ ९ ॥
योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्याऽऽतुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥
जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन्कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥
यथाशक्ति च ते ब्रह्मन्वर्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नाऽवबुध्यसे ॥ १२ ॥
अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
पाण्डवान्सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १३ ॥

समीप जाकर कहने लगे—॥१।४॥हे ब्रह्मन्! वीर अर्जुन इस सेना को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए निकल गये। इस दारुण जनसंहार के अवसर पर आपको अर्जुन के मारने का उपाय करना चाहिए। हे भगवन्! आप अपनी बुद्धि से आगे का कर्तव्य सोचिए। ऐसा कीजिए कि पुरुषसिंह जयद्रथ को आज अर्जुन किसी प्रकार न मार सकें। आप ही हम लोगों के एकमात्र आश्रय स्थल हैं॥४।६॥देखिए, यह अर्जुन रूप अग्नि क्रोध-रूप वायु की प्रेरणा से प्रचण्ड होकर हमारी सेनारूप सूखी घास के ढेर को वैसे ही भस्म कर रहा है, जैसे दावानल सूखे वन को जलाता है। सेना को चीरते हुए अर्जुन निकल गये, इस कारण जयद्रथ की रक्षा करनेवाले वीर लोग बड़े संकट में पड़े हैं; क्योंकि उन्हें निश्चय था कि अर्जुन जीते जी द्रोणाचार्य को लाँघ-कर आगे नहीं बढ़ सकते॥७।९॥हे ब्रह्मन्! मो आप देखते रहे और आपके आगे से अर्जुन निकल गये। हे महात्मन्! मैं समझ रहा हूँ कि आज यह मेरी सब सेना किसी प्रकार जीती नहीं रह सकती। हे महाभाग! मैं जानता हूँ कि आप पाण्डवों के हित-चिन्तक हैं। इसी कारण मैं इस समय व्याकुल हो रहा हूँ कि मेरा कार्य कैसे सिद्ध होगा। हे ब्रह्मन्! मैं आपकी सेवा करता आया हूँ और यथाशक्ति आपको प्रसन्न करता रहा हूँ; किन्तु आपको मेरा ध्यान ही नहीं है॥१०।१२॥हे अमितविक्रमी! हम सब लोग सदा

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥
नाऽदास्यश्चेद्वरं मह्यं भवान्पाण्डवनिग्रहे ।
नाऽवारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥
मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना ।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्दत्तश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥
यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येताऽपि हि मानवः ।
नाऽर्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताऽऽजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥
स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः ।
मम चाऽऽर्त्तप्रलापानां मा क्रुद्धः पाहि सैन्धवम् ॥ १८ ॥
द्रोण उवाच— नाऽभ्यसूयामि ते वाक्यमश्वत्थाम्नाऽसि मे समः ।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥
सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चाऽस्य हयोत्तमाः ।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥ २० ॥
किं न पश्यसि बाणौघान्क्रोशमात्रे किरीटिनः ।
पश्चाद्रथस्य पतितान्क्षिप्ताञ्शीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१ ॥
न चाऽहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसाऽन्वितः ।
सेनामुखे च पार्थानामेतद्बलमुपस्थितम् ॥ २२ ॥

आपके भक्त रहे हैं, फिर भी आप हमारा कुछ भी खयाल नहीं करते, हमारे हित और अनुरोध पर ध्यान ही नहीं देते ! इसके विपरीत मैं यह भी देखता हूँ कि हमारे अप्रिय और अनिष्ट में तत्पर पाण्डवों पर ही आपका अधिक स्नेह है और आप सब प्रकार उन्हीं का हित सोचते और करते हैं । हे भगवन् ! आप हमारे ही आश्रय में रहकर, हमारी दी हुई वृत्ति से निर्वाह करके, हमारी ही जड़ काट रहे हैं । मैं न जानता था कि आप उस छुरे के समान हैं जिसमें ऊपर से शहद लगा हुआ हो । यदि पहले ही आप अर्जुन को रोकने की प्रतिज्ञा न करते, तो मैं अपने घर जाने के लिए उद्यत सिन्धुराज जयद्रथ को कभी न रोक रखता॥१३।१५॥मैंने मूर्खतावश आपके द्वारा जयद्रथ की रक्षा की आशा की, जयद्रथ को सान्त्वना दी और इस प्रकार उन्हें मृत्यु के मुख में डाल दिया। यह निश्चित है कि यमराज की दाढ़ों के मध्य में जाकर चाहे कोई मनुष्य छुटकारा पा भी जाय, किन्तु युद्ध में अर्जुन के हाथ में पड़ जाने पर जयद्रथ के प्राण नहीं बच सकते । हे गुरुवर ! कृपा करके अब आप ऐसा कीजिए कि जिससे जयद्रथ अर्जुन के हाथों से जीते बच जायँ । मैं इस समय आर्त और मूढ़ सा हो रहा हूँ । मेरे इस प्रलाप पर आप ध्यान न दीजिए । यदि मेरे मुख से कुछ कटु वचन निकल गये हों तो उनके लिए आप अनुचित न मानिएगा ॥१६।१८॥राजा दुर्योधन के ऐसे वचन सुनकर आचार्य ने कहा – हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारी बातों का बुरा नहीं मानता, क्योंकि तुमको अपने पुत्र अश्वत्थामा के समान समझता हूँ । मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, सुनो ।

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३ ॥
धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्त्तते प्रमुखे नृपः ।
तस्माद्व्यूहमुखं हित्वा नाऽहं योत्स्यामि फाल्गुनम् २४ ॥
तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान् ।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५ ॥
राजा शूरः कृती दक्षो नेतुं परपुरञ्जयः ।
वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २६ ॥
दुर्योधन उवाच – कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥
अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरन्दरः ।
नाऽर्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥ २८ ॥
येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः ।
अस्त्रप्रतापेन जिता श्रुतायुश्च निवर्हितः ॥ २९ ॥
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चऽयुतशो हताः ॥ ३० ॥
तं कथ पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम् ।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥

स्फूर्तिशाली घोड़ों और श्रीकृष्ण जैसे सारथी को पाकर अर्जुन बात की बात में आगे बढ़ चले जाते हैं। तुमने नहीं देखा कि अर्जुन जब मेरे आगे से जा रहे थे तब उनके घोड़े इतनी शीघ्रता से दौड़ रहे थे कि मैंने जो बाण छोड़े थे वे अर्जुन के रथ से कोस भर पीछे रह गये थे॥१९।२१॥हे राजन्द्र ! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, इस कारण मुझमें वह स्फूर्ति नहीं है और मैं शीघ्रता से चलने में असमर्थ हूँ। विशेष कर इस समय पाण्डवपक्ष की सेना और अन्य योद्धा हमारी सेना के सम्मुख प्रवेश द्वार पर पहुँच गये हैं। फिर मैं सब क्षत्रियों के मध्य में यह प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि सब योद्धाओं के सम्मुख ही युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लूँगा। इस समय अर्जुन रहित युधिष्ठिर भी मेरे सम्मुख ही है। इन कारणों से मैं यह व्यूहमुख छोड़ कर इस समय अर्जुन के पीछे न जाऊँगा॥२२।२४॥ देखो, तुम इस पृथ्वी के राजा हो, तुम्हारे बहुत से सहायक हैं और तुम्हारा शत्रु इस समय तुम्हारे ही दल में अकेला है। तुम जाओ, और जन्म-कर्म पद में अपने तुल्य अकेले शत्रु से युद्ध करो, भयभीत होओ नहीं। हे दुर्योधन ! तुम राजा, शूर, सुशिक्षित, निपुण और वीर हो। (तुमने स्वयं पाण्डवों से विरोध किया है।) इसलिए तुम स्वयं वहाँ जाओ जहाँ अर्जुन हैं॥२५।२६॥दुर्योधन ने कहा हे आचार्य ! जब सब शस्त्रधारी योद्धाओं में अग्रगण्य आपको भी लाँघ कर अर्जुन आगे बढ़ गये तब भला मैं किस प्रकार उन्हें रोक सकूँगा ? युद्ध में वज्रपाणि इन्द्र को चाहे कोई जीत भी ले, किन्तु शत्रुदमन अर्जुन को जीतना सर्वथा असम्भव है॥२७।२८॥जिन महावीर ने अस्त्र विद्या के बल से भोजराज कृतवर्मा और देवतुल्य आपको जीत लिया और सुदक्षिण, श्रुतायुध, श्रुतायु,

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाऽद्य संयुगे ।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद्रक्ष मद्यशः ॥ ३२ ॥

द्रोण उवाच—सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः ।
अहं तु तत्करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥
अद्भुतं चाऽद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः ।
विपक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥
एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् ।
यथा न बाणा नाऽस्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५ ॥
यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।
योधयन्ति त्रयो लोका सनरा नास्ति ते भयम् ॥ ३६ ॥
न कृष्णो न च कौन्तेयो च चाऽन्यः शस्त्रभृद्रणे ।
शरानर्पयितुं कश्चित्कवचे तव शक्ष्यति ॥ ३७ ॥
स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वाऽसौ विसहिष्यति ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः स्पृष्ट्वाऽम्भो वर्म भास्वरम् ।
आबबन्धाऽद्भुततमं जपन्मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९ ॥
रणे तस्मिन्सुमहति विजयस्य सुतस्य ते ।
विसिस्मापयिषुर्लोकान्विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४० ॥

अच्युतायु, अम्बष्ठराज तथा लाखों म्लेच्छों को देखते ही देखते मार गिराया, उन जगत् को जला रहे अग्नि के समान प्रचण्ड पाण्डव के साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा ? अथवा यदि आप मुझे अर्जुन से भिड़ने में समर्थ समझते हैं तो मैं उद्यत हूँ। मैं तो आपके अधीन हूँ। आप कृपा करके मेरी लाज बचाइए॥२९।३२॥ द्रोणाचार्य ने कहा—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तुम्हारा कहना सत्य है। अर्जुन अत्यन्त दुर्द्धर्ष और दुर्जय हैं;किन्तु मैं ऐसा उपाय किये देता हूँ कि तुम उनका सामना कर सकोगे, उनके प्रहारों को सह सकोगे । आज सब धनुर्द्धर योद्धा यह अद्भुत दृश्य देखेंगे कि श्रीकृष्ण के सम्मुख ही अर्जुन तुम्हें लाँघकर आगे न जा सकेंगे। हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हें इस प्रकार से यह अद्भुत सुनहरा कवच पहनाय देता हूँ कि कोई भी बाण या अस्त्र तुम्हारे शरीर में न लग सकेगा॥३३।३५॥ यदि देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, राक्षस और मनुष्य आदि त्रिलोकी के जीव मिलकर भी तुमसे युद्ध करेंगे तो भी तुम्हें कुछ भय नहीं है। श्रीकृष्ण, अर्जुन अथवा अन्य कोई शस्त्रधारी योद्धा, तुम्हारे इस कवच को तोड़ नहीं सकता । अब तुम शीघ्र ही यह कवच पहन करके इस समय कुपित अर्जुन के सम्मुख जाओ और निर्भय होकर उनसे युद्ध करो । अर्जुन कभी तुम्हें रण से नहीं हटा सकेंगे॥३६।३८॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने अब अपनी अद्भुत विद्या के प्रभाव से उस भयावह समरभूमि में स्थित वीरों को विस्मित करने और दुर्योधन को विजयी बनाने के लिए शीघ्र जल का स्पर्श करके, यथाविधि मन्त्र पढ़कर, दुर्योधन को एक अत्यन्त विचित्र तेजोमय कवच पहनाकर कहा—॥३९।४०॥हे राजेन्द्र ! ब्रह्म, ब्रह्मा और सब ब्राह्मण तुम्हारा

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः ।
द्रोण उवाच सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१ ॥
ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ ४२ ॥
स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च ।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३ ॥
स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४ ॥
असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाऽङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५ ॥
धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥ ४६ ॥
विवस्वान्भगवान्स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ।
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥
अधस्ताद्धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप ।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥
गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥
हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद्भीता महासुरात् ॥ ५० ॥
देवा ऊचुः –प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम ।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥

---

कल्याण करें। सब श्रेष्ठ सरीसृप, एकचरण, बहुचरण और चरण-हीन जीवों से तुम नित्य महायुद्ध में कल्याण प्राप्त करो॥४१।४३॥स्वाहा, स्वधा,शची, लक्ष्मी, अरुन्धती, असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वशिष्ठ, कश्यप, लोकपाल, धाता,विधाता,सब दिशाएँ, दिक्पाल, कार्त्तिकेय, भगवान् भास्कर, चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश, ग्रहगण, आदि तथा देवी, देवता, ऋषि, राजर्षि आदि सदा तुम्हारा कल्याण करें। जो पाताल में स्थित रहकर सदा धरा को धारण किये हुए हैं, वे नागराज अनन्त सदा तुम्हारा कल्याण करें॥४३। ४८॥हे महाराज! पहले इन्द्र आदि देवता वृत्रासुर से युद्ध में हार गये थे, उनके अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये थे। तब वे सब बलवीर्य-विहीन और भयातुर होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उन्होंने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—हे लोकनाथ! वृत्रासुर के द्वारा पीड़ित हमारी गति आप ही हैं। इस महान् भय से आप हमारी रक्षा कीजिए ॥४०।५१॥भगवान् ब्रह्माने अपने निकट-स्थित विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं को व्याकुल देखकर कहा—

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान्सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥
रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः द्विजातयः ।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३ ॥
त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्याऽनुज्ञां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥
स तस्यैव प्रसादाद्वो हन्यादेव रिपुर्बली ।
नाऽगत्वा शङ्करस्थानं भगवान्दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥
दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
यत्राऽऽस्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ५६ ॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ।
ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥ ५७ ॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सोऽब्रवीत्स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥ ५८ ॥
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ॥ ५९ ॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ।
मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥

हे देवताओ ! तुम लोगों सहित इन्द्र और ब्राह्मणों की रक्षा करना अवश्य मेरा कर्तव्य है; किन्तु मैं इस समय वृत्रासुर का नाश करने में असमर्थ हूँ। त्वष्टा के अत्यन्त दुर्द्धर्ष दुर्जय तेज से वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई है। पूर्व समय में त्वष्टा ने दस लाख वर्ष तक तप करके, महादेव को प्रसन्न करके, उनकी आज्ञा के अनुसार ही वृत्रासुर को उत्पन्न किया है। शङ्कर की कृपा से देव-शत्रु बली वृत्रासुर तुम सबको नष्ट कर सकता है। शङ्कर के समीप गये बिना वृत्रासुर के वध का कोई उपाय नहीं हो सकता। मन्दराचल पर तपोयोनि, दक्षयज्ञ-विनाशन, पिनाकधारी, भग देवता के नेत्रों को निकालनेवाले, सब प्राणियों के ईश्वर रहते हैं। वहीं उनसे भेंट होगी। तुम लोग वहीं जाओ। हे राजेन्द्र! तब सब देवता, इन्द्र और ब्रह्मा के साथ, मन्दर पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि कोटि सूर्य के समान तेजोराशि महादेव विराजमान हैं। देवताओं को देखकर शङ्कर ने स्वागत-पूर्वक कहा—हे देवगण! आओ। बताओ, मैं तुम्हारी किस इच्छा को पूर्ण करूँ? मेरा दर्शन निष्फल नहीं होता, इसलिए तुम्हें अवश्य ही मुझसे अपना अभीष्ट वर प्राप्त होगा। यह सुनकर देवताओं ने कहा—हे देव देव! वृत्रासुर ने सब देवताओं का तेज हर लिया है। आप हम सबकी रक्षा का कोई उपाय कीजिए। हे देव! हम लोगों के शरीर देखिए, उस दानव के दारुण प्रहारों से जर्जर हो रहे हैं। हे महेश्वर! हम आपकी शरण में आये हैं। आप हमारी

शर्व उवाच विदितं वो यथा देवाः कृत्येऽयं सुमहाबला ।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः ॥ ६१ ॥
अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम् ।
ममेदं गात्रज शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ॥ ६२ ॥
वधानाऽनेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर ।
वधायाऽसुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥ ६३ ॥
द्रोण उवाच –इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्वर्म तन्मन्त्रमेव च ।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद्यत्र चमूं प्रति ॥ ६४ ॥
नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे ।
न सन्धिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु ॥ ६५ ॥
ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम् ।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाऽङ्गिरसे ददौ ॥ ६६ ॥
अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पते ।
बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७ ॥
अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते ।
तवाऽद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८ ॥
सञ्जय उवाच –एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम् ।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९ ॥

रक्षा कीजिए॥५२।६०॥यह सुनकर महादेवजी कहा– हे देवगण ! तुम लोग भली भाँति जानते ही हो कि त्वष्टा ने अभिचार के अनुष्ठान से हो अपने तेज के द्वारा इस महाबली भयङ्कर असुर को उत्पन्न किया है। अजितेन्द्रिय साधारण प्राणी उसको नहीं जीत सकते, किन्तु मुझे देवताओं की सहायता अवश्य ही करनी है। हे इन्द्र ! लो, यह मेरे शरीर का तेजोमय कवच ग्रहण करो। असुर श्रेष्ठ सुर वैरी वृत्रासुर को मारने के लिए तुम मेरे बतलाये हुए मानस मन्त्र का पाठ करते हुए यह कवच अपने शरीर में बाँधो। द्रोणाचार्य कहते हैं वरदानी महादेव ने इतना कहकर इन्द्र को, यह कवच और कवच के बाँधने का मन्त्र देकर, अजेय कर दिया। इस कवच के द्वारा रक्षित होकर इन्द्र वृत्रासुर की सेना से युद्ध करने चले। वृत्रासुर और उसकी सेना ने महारण में अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र इन्द्र के ऊपर चलाये, किन्तु किसी प्रकार उस कवच के बन्धन की सन्धि नहीं काटी जा सकी। उस कवच से रक्षित रहने के कारण इन्द्र निर्भय होकर देवशत्रु वृत्र से युद्ध करते रहे और उन्होंने अवसर पाकर उसे मार भी डाला॥६१।६६॥वह मन्त्रमय बन्धन से युक्त कवच इन्द्र ने अङ्गिरा को दिया था। अङ्गिरा ने अपने पुत्र मन्त्रज्ञ बृहस्पति को वह कवच और मन्त्र दिया था। बृहस्पति ने अपने बुद्धिमान् शिष्य अग्निवेश्य को वह कवच दिया। उन्हीं महात्मा अग्निवेश्य ने वह कवच मुझे दिया था। इस समय तुम्हारे शरीर की रक्षा के निमित्त मैं वही श्रेष्ठ कवच मन्त्र के द्वारा तुम्हें पहनाता हूँ॥६६।६८॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! दुर्योधन से यों कहकर आचार्य ने फिर धीरे से कहा– हे राजेन्द्र ! मैं ब्रह्मा जी के बतलाये हुए मन्त्र से।

ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत ।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ७० ॥
यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये ।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥
बध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥
स सन्नद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना ।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्त्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् ।
अश्वानां नियुतेनैव तथाऽन्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति ।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥
ततः शब्दो महानासीत्सैन्यानां तव भारत ।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पढ़कर ब्रह्मसूत्र के द्वारा यह दिव्य कवच तुम्हारे शरीर में बाँधता हूँ। पूर्वसमय में युद्ध आरम्भ होने पर हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने जैसे विष्णु को और फिर तारकामय-संग्राम में इन्द्र को दिव्य कवच बाँधा था, वैसे ही मैं इस समय यह दिव्य कवच तुम्हें पहनाता हूँ। हे राजेन्द्र! महात्मा द्रोणाचार्य ने यह कहकर विधि से मन्त्रपाठ-पूर्वक दुर्योधन के शरीर में कवच बाँधकर उन्हें उस भयानक संग्राम के लिए भेज दिया॥६९।७२॥इस प्रकार आचार्य के कवच बाँध देने पर महाबाहु दुर्योधन त्रिगर्त देश के सहस्र रथ, महाबली सहस्र हाथी, दस लाख घोड़े और अन्य अनेक महारथी साथ लेकर महाराज बलि के समान बड़े आडम्बर से अर्जुन के रथ की ओर चले। उनके साथ अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। अगाध समुद्र के समान दुर्योधन के चलने पर आपकी सेना में बड़ा कोलाहल उठ खड़ा हुआ॥७३।७६॥

द्रोणपर्व का चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच—प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे ।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १ ॥
जवेनाऽभ्यद्रवन् द्रोणं महता निःस्वनेन च ।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्त्तत ॥ २ ॥

पचानवेवाँ अध्याय ॥ ९५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजा जनमेजय! श्रीकृष्ण सहित अर्जुन जब रणभूमि के मध्य शत्रु-सेना के भीतर प्रवेश हो गये और उनके पीछे पुरुषश्रेष्ठ दुर्योधन वेग से गये तब घोर सिंहनाद और कोलाहल करते

तद्युद्धमभवत्तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥
राजन्कदाचिन्नाऽस्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम् ।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥
वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
पार्षतप्रमुखान्पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥
महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये ।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥ ७ ॥
समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम् ।
जान्हवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥
नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः ।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥
भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान् ।
अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥
समुद्रमिव घर्मान्ते विशन्घोरो महानिलः ।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तम ॥ ११ ॥
तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् ।
विभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥ १२ ॥

हुए सोमकों सहित पाण्डवगण द्रोणाचार्य पर आक्रमण
करने को दौड़े । उस समय दारुण युद्ध होने लगा ।
व्यूह के द्वारदेश पर कौरवों और पाण्डवों का अद्भुत
लोमहर्षण युद्ध होने लगा॥१।३॥हे राजेन्द्र ! उस समय
जैसा घोर युद्ध हुआ वैसा युद्ध हमने कभी देखा और
सुना नहीं । उस समय ठीक मध्याह्न काल था । अमन्य
सेना साथ लिए हुए पाण्डवगण धृष्टद्युम्न को आगे
करके द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा करने लगे । हम
लोग भी सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को आगे
करके धृष्टद्युम्न सहित पाण्डवों पर बाणों की वर्षा करने
लगे॥४।६॥शिशिर ऋतु में वायु प्रेरित महामेघों के
समान उमड़ी हुई दोनों ओर की प्रधान सेनाएँ बहुत
ही शोभा को प्राप्त हुई । दोनों ओर सुन्दर बड़े-बड़े
रथों पर योद्धा लोग विराजमान थे । वे दोनों सेनाएँ
परस्पर भिड़कर वर्षाऋतु में बढ़ी हुई महानदी गङ्गा
और यमुना के समान बड़े वेग से आगे बढ़ने लगीं ।
पाण्डवों की सेना प्रचण्ड दावानल के समान आगे बढ़
रही थी और वह हाथी-घोड़े-रथ आदि से परिपूर्ण
संग्रामरूप महामेघ बाणवर्षारूप जलधारा से उसे बुझा
रहा था । अनेक अस्त्र-शस्त्र ही उस मेघ के आगे चलने-
वाली तेज वायु थे । गदारूप बिजलियाँ चमक-चमक-
कर उसे महारौद्र बना रही थीं । द्रोणाचार्यरूप पवन
उसका सञ्चालन कर रहा था॥७।१०॥ग्रीष्म ऋतु के
अन्त में घोर तूफान की वायु जैसे समुद्र में प्रवेश

वारयामास तान्द्रोणो जलौघमचलो यथा ।
पाण्डवान्समरे क्रुद्धान्पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥
अथाऽपरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः ।
महावला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥ १४ ॥
ततो रणे नरव्याघ्र पार्षतः पाण्डवैः सह ।
सञ्जघानाऽसकृद् द्रोणं विभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥
यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते ।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥
स निस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः ।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नवलाहकः ॥ १७ ॥
शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत्सर्वतो दिशम् ।
निघ्नन्रथवराश्वौघान्प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥
यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम् ।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥
तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥
भोजमेकेऽभ्यवर्त्तन्त जलसन्धं तथाऽपरे ।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवाऽपरे ययुः ॥ २१ ॥

करके उसे क्षोभित करती है, वैसे ही महावीर घोर-रूप द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना में प्रवेश होकर हलचल मचाने लगे। जैसे प्रबल जलराशि महासेतु को तोड़ने के लिए बारम्बार लहरों की थपेड़ें मारे, वैसे ही पाण्डवपक्ष के योद्धा भी व्यूह को तोड़ने के लिए सब ओर से सब प्रकार से द्रोणाचार्य के ऊपर ही आक्रमण करने लगे। किन्तु जैसे महापर्वत जल-राशि को रोकता है वैसे ही द्रोणाचार्य भी युद्धभूमि मे कुपित पाण्डव,पाञ्चाल और कैकेय-सेना को रोकनेलगे। अन्य महाबली राजा लोग भी चारों ओर से पाञ्चाल-सेना को घेरने और आक्रमण करने लगे॥११।१४॥ उस समय नरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न शत्रुसेना का व्यूह तोड़ने की अभिलाषा से, पाण्डवों की सहायता से, महा-वीर आचार्य पर प्रहार करने लगे। जैसे द्रोणाचार्य जी धृष्टद्युम्न के ऊपर बाणों की वर्षा करते थे वैसे ही धृष्टद्युम्न भी आचार्य द्रोण के ऊपर बाण बरसा रहे थे। हे महाराज! धृष्टद्युम्न उस समय युद्धभूमि में महामेघ के समान जान पड़ते थे। वे शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर रहे थे। उनका खड्ग मेघघटा के आगे चलने-वाली वायु के समान, धनुष की डोरी बिजली के समान और धनुष का शब्द गर्जन के समान जान पड़ता था। उन महावीर ने चारों ओर शिलाखण्ड-सदृश बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। उनके बाणों से असंख्य रथी और हाथी-घोड़े मरने लगे॥१५।१८॥ धृष्टद्युम्नरूप मेघ ने अपने पराक्रम के प्रवाह में बहुत सी शत्रुसेना को बहा दिया॥१५।१८॥द्रोणाचार्य जिस-जिस ओर जाकर पाण्डवों के रथियों पर बाणवर्षा

सङ्घट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२ ॥
धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥
कालः स्म ग्रसते योधान्धृष्टद्युम्नेन मोहितान् ।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः ॥ २४ ॥
कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥
अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥
त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान्व्यधमच्छरैः ॥ २७ ॥
मृद्नतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥
रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥ २९ ॥
पाण्डवानां तु सैन्येषु नाऽस्ति कश्चित्स भारत ।
दधार यो रणे बाणान्द्रोणचापच्युतान्प्रभो ॥ ३० ॥

करते थे, उसी-उसी ओर धृष्टद्युम्न भी पहुँचते और
उन्हें उधर से हटने के लिए विवश करते थे। हे
भारत! द्रोणाचार्य यद्यपि इस प्रकार अपनी सेना को
एकत्र रखने का महायत्न कर रहे थे तथापि वीर धृष्ट-
द्युम्न ने बाणवर्षा के द्वारा उनकी सेना के तीन भाग
कर दिये। कौरव-सेना का एक अंश भोजश्रेष्ठ कृतवर्मा
का अनुगामी हुआ, एक अंश वीर जलसन्ध की शरण
में गया और एक अंश [ धृष्टद्युम्न के प्रहारों को न
सह सकने के कारण ] द्रोणाचार्य की शरण में आ
गया। श्रेष्ठ महारथी द्रोणाचार्य जब-जब अपनी सेना
को एकत्र करते थे तब-तब वीर श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न उसे
छिन्न-भिन्न कर देते थे॥१९।२२॥वन में रक्षकहीन
पशुओं का झुण्ड जैसे क्रूर मांसाहारी जीवों का शिकार
बनता है, वैसे ही पाण्डव-सृञ्जयगण के हाथों से कौरव-
पक्ष के योद्धा मरने लगे। उस समय सभी लोगों को यह
जान पड़ने लगा कि इस भयानक संग्राम में साक्षात्
काल ही धृष्टद्युम्न के रूप से सबको मोहित और नष्ट
कर रहा है। दुष्ट राजा के देश को दुर्भिक्ष, रोग,
डाकू-चोर आदि जैसे उजाड़ देते हैं वैसे ही पाण्डवगण
बाण-वर्षा करके आपकी सेना को मारने और भगाने
लगे। शस्त्रों और कवचों के ऊपर सूर्य की किरणें
पड़ने से जो चमक उत्पन्न होती थी, उससे नेत्रों
में चकाचौंध उत्पन्न हो जाती थी। धूल भी इतनी
उड़ी कि किसी ओर कुछ भी भली भाँति नहीं दीखता
था॥२३।२६॥जब कौरव-सेना तीन भागों में बँट
गई और पाण्डव लोग उसका संहार करने लगे तब
अत्यन्त कुपित होकर द्रोणाचार्य भी तीक्ष्ण बाणों से
पाञ्चालसेना का संहार करने लगे। पाञ्चालसेना को
रौंदते और बाणों से नष्ट करते समय द्रोणाचार्य का
रूप बहुत ही भयङ्कर देख पड़ने लगा। वे प्रचण्ड

तत्पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
चभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥
तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।
अभवत्सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाऽग्निना ॥ ३२ ॥
बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।
त्यक्त्वा प्राणान्परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥ ३३ ॥
तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
नाऽऽसीत्कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत्संयुगं भयात् ३४ ॥
भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवाऽनुयायिनः ॥ ३६ ॥
वाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥
शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः ।
काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥
अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥

प्रज्वलित कालाग्नि के समान जान पड़ने लगे । महारथी द्रोणाचार्य एक एक बाण से रथ, हाथी, घोड़े और पैदल आदि को छिन्न भिन्न कर रहे थे॥२७। २९॥उस समय पाण्डवों की सेना में ऐसा कोई योद्धा नहीं देख पड़ता था, जो द्रोण के धनुष से छूटे हुए बाणों के वेग को सह सकता हो। पाण्डवों की सेना एक साथ ही सूर्य की किरणों और आचार्य के बाणों से पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगी । इसी प्रकार कौरवों की सेना भी धृष्टद्युम्न के बाणों से पीड़ित होकर भागने लगी । सूखा वन जैसे अग्नि लगने से जल उठता है वैसे ही कौरवों की सेना धृष्टद्युम्न के बाणों से भस्म होने लगी। इस प्रकार से द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के बाणों से पीड़ित होकर भी दोनों पक्ष के वीर योद्धा, स्वर्ग प्राप्त करने की अभिलाषा से प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगे॥३०।३३॥ उस समय दोनों पक्ष की सेनामें ऐसा कोई वीर योद्धा न था जो प्राणों के भय से संग्राम छोड़कर भाग खड़ा हुआ हो । हे राजेन्द्र ! उस समय आपके पुत्र विविंशति, चित्रसेन और महारथी विकर्ण, ये तीनों भीमसेन को घेरकर उनसे युद्ध करने लगे। उन तीनों की सहायता करने के लिए अवन्तिदेशीय विन्द, अनुविन्द और पराक्रमी क्षेमधूर्ति, ये तीन वीर आगे बढ़े । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न महारथी तेजस्वी बाह्लीकराज ने अपनी सेना और मन्त्रियों के साथ द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को रोका। शिवि के पुत्र राजा गोवासन, श्रेष्ठ सहस्र योद्धाओं के साथ, काशिराज अभिभू के पराक्रमी पुत्र से युद्ध करने लगे॥३४।३८॥प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर से मद्रराज शल्य युद्ध करने लगे। असहनशील क्रोधी शूर दुःशासन अपनी सेना को यथास्थल स्थापित करके श्रेष्ठ रथी सात्यकि से युद्ध

दुःशासनस्त्वत्रस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः ।
सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥
स्वकेनाऽहमनीकेन सन्नद्धः कवचावृतः ।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥
शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ ॥ ४३ ॥
शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
वाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥
घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् ।
अलायुधोऽद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥
सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत्सर्वसैन्यस्य भारत ।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥
तस्याऽऽस्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन्सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥
पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्सौमदत्तिपुरोगमाः ।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥

करने के निमित्त आगे बढ़े। मैं स्वयं कवच पहनकर, सुसज्जित होकर, अपनी सेना और चार सौ महाधनुर्धर योद्धाओं को साथ लेकर चेकितान से युद्ध करने लगा॥३९।४१॥धनुष, शक्ति, खड्ग, प्रास आदि शस्त्र हाथ में लिये सात सौ गान्धारदेश के योद्धाओं को साथ लिये सेना सहित गान्धारराज शकुनि नकुल और सहदेव से युद्ध करने लगे। अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द नाम के दोनों भाई, प्राणों की ममता छोड़कर मित्र के लिए शस्त्र उठाकर, मत्स्यराज विराट से युद्ध करने लगे। अपराजित वीर शिखण्डी पराक्रमपूर्वक आगे बढ़ रहे थे, उन्हें रोकने के लिए महाराज वाह्लीक आगे बढ़े और उनसे घोर युद्ध करने लगे॥४२। ४४॥अवन्ति देश के राजा, क्रूर प्रभद्रकगण और सौवीर देश की सेना साथ लेकर, धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। महावीर अलायुध, आगे बढ़नेवाले क्रुद्ध क्रूरकर्मा राक्षस घटोत्कच के सम्मुख आये और उससे युद्ध करने लगे। महारथी कुन्तिभोज ने बड़ी सेना साथ लेकर क्रोधी अलम्बुष को रोका॥४५।४८॥हे महा-

नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सकुल्युद्धे पञ्चनवतितमोऽध्याय ॥ ९५ ॥

राज ! जयद्रथ उस समय कृपाचार्य आदि महाधनुर्द्धरों के द्वारा सुरक्षित होकर सब सेना के पीछे थे । जयद्रथ के रथ के दाहने पहिये की रक्षा अश्वत्थामा और बायें पहिये की रक्षा वीर कर्ण कर रहे थे । सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा आदि वीरगण जयद्रथ के पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे । हे महाराज ! समरनिपुण नीतिज्ञ महाधनुर्द्धर कृपाचार्य, वृषसेन, शल और शल्य आदि वीरगण इस प्रकार जयद्रथ की रक्षा का उपाय करके घोर युद्ध करने लगे॥४०।५१॥

— ० —

द्रोणपर्व का पञ्चानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९५ ॥

अथ षण्णवतितमोऽध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच – राजन्संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम ।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥
भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं विभित्सवः ॥ २ ॥
रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः ।
अयोधयद्रणे पार्थान्प्रार्थयानो महद्यशः ॥ ३ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥
विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥
तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥
वाल्हीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥

छियानबेवाँ अध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय ने कहा– हे राजेन्द्र ! कौरव और पाण्डवों का घोरतर युद्ध जिस प्रकार हुआ था, उसका वर्णन मैं विस्तारपूर्वक करता हूँ, सुनिए।महावीर पाण्डवगण व्यूह के मुख में द्रोणाचार्य पर आक्रमण करके उनके सेनाव्यूह को छिन्न भिन्न करने के लिए भयानक सग्राम करने लगे । आचार्य द्रोण भी महान् यश प्राप्त करने की अभिलाषा से, अपने व्यूह की रक्षा करते हुए, सैनिकों के साथ पाण्डवों से घोर युद्ध करने लगे॥१।३॥हे राजेन्द्र ! इसी समय आपके पुत्र के हितचिन्तक विन्द और अनुविन्द ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर विराट को दस बाण मारे । महाराज विराट भी पराक्रमपूर्वक अनुचरों सहित पराक्रमी उन दोनों भाइयों से घोर सग्राम करने लगे । जैसे वन में एक सिंह दो मत्त गजों से युद्ध करे वैसे ही उन दोनों भाइयों से राजा विराट का घोर युद्ध होने लगा, जिसमें जल की भाँति रक्त बह चला॥४।६॥महापराक्रमी राज-

वाल्हीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ८ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥
ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
अभवत्संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १० ॥
शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् ।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥
वाल्हीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महारथान् ।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन्रणे ॥ १२ ॥
अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद्देहवतां वर ॥ १३ ॥
वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्छां जगामाऽऽशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ १५ ॥
समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥
तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १७ ॥

कुमार शिखण्डी मर्मभेदी तीक्ष्ण बाण छोड़कर महाराज बाह्लीक को पीड़ित करने लगे। उन्होंने भी क्रोधित होकर सुवर्णपुङ्खयुक्त शिलाओं पर सान धरे हुए, झुकी गाँठ वाले नौ बाण शिखण्डी को मारे। उनका वह युद्ध डरपोक पुरुषों के लिए भयानक और वीरों के लिए हर्षवर्धक हुआ। उनके बाणों से सब दिशाएं और आकाशमण्डल व्याप्त हो गया। बाणों से ऐसा अंधेरा छा गया कि कुछ भी नहीं दीखता था॥७।१०॥ गजराज जैसे प्रतिद्वन्द्वी गजराज से युद्ध करता है वैसे ही महाराज शैब्य गोवासन अपने प्रतिपक्षी काश्य के महारथी पुत्र से युद्ध करने लगे। अन्तःकरण जैसे पाँचों इन्द्रियों को वश में लाने का यत्न करता है वैसे ही कुपित महाराज बाह्लीक द्रौपदी के पाँचों पुत्रों से युद्ध करने लगे। हे नरश्रेष्ठ! इन्द्रियाँ जैसे देह को चैन नहीं लेने देतीं वैसे ही वे पाँचों वीर तीक्ष्ण बाण बरसाकर महाराज बाह्लीक के साथ घोर संग्राम करने लगे॥११।१३॥ हे राजेन्द्र! आपके पराक्रमी पुत्र दुःशासन ने यदुश्रेष्ठ सात्यकि को बहुत ही तीक्ष्ण नौ बाण मारे। अत्यन्त बली दुःशासन के प्रबल प्रहार से सत्यपराक्रमी सात्यकि कुछ विह्वल और मूर्च्छित से हो गये। कुछ सँभलने पर वीर सात्यकि ने आपके पुत्र महारथी दुःशासन को स्फूर्ति के साथ कङ्कपत्रयुक्त दस बाण मारे। इस प्रकार एक दूसरे के प्रहार से घायल होने पर दोनों वीर फूले हुए ढाक

अलम्बुपस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः॥ १८ ॥
कुन्तिभोजं ततो रक्षो विध्वा बहुभिरायसैः ।
अनदद्भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे-तव ॥ १९ ॥
ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥
शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चाऽर्दयतां भृशम् ॥ २१ ॥
तुमुलः स महान्राजन्प्रावर्त्तत जनक्षयः ।
त्वया सञ्जनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥ २२ ॥
रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
य इमां पृथिवीं राजन्दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥
शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
न स्म जानाति कर्त्तव्यं युद्धे किञ्चित्पराक्रमम् ॥ २४ ॥
विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥
स वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
संप्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥
घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
अभ्ययाद्रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥

के पेड़ से शोभायमान हुए। राक्षस अलम्बुप ने महापराक्रमी कुन्तिभोज के बाणों से पीड़ित और कुपित होकर उन्हें अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित किया॥१४।१७॥फूले हुए ढाक के पेड़ के समान शोभायमान वह राक्षस सेना के अग्रभाग में भयानक शब्द करने लगा। पहले जम्भासुर और इन्द्र से जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही संग्राम अलम्बुप और कुन्तिभोज का हुआ। सब सैनिक वह घोर युद्ध देखने लगे॥१८।२०॥माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव अत्यन्त कुपित होकर पहले से ही वैर बढ़ानेवाले बली शकुनि के ऊपर बाण बरसाने लगे। हे महाराज ! इस प्रकार युद्धभूमि में घोर जनसंहार होने लगा। पाण्डवों के क्रोध की अग्नि आपकी दुर्नीति के प्रभाव से ही उत्पन्न हुई थी। कर्ण के ही कारण वह बढ़ी और आपके पुत्रों ने अपने व्यवहार से उसे अब तक बना रक्खा था। वह अग्नि अब इस समग्र पृथ्वीमण्डल को भस्म करने के लिए उद्यत है।। [ अस्तु, जो होना था, सो हो ही गया। अब युद्ध का वृत्तान्त सुनिए ]॥२१।२३॥ नकुल और सहदेव के बाणों की मार से महावीर शकुनि रण-विमुख हो गये। वे पराक्रम प्रकट करने में असमर्थ और किङ्कर्तव्य विमूढ़ हो गये। महारथी नकुल और सहदेव शकुनि को युद्ध से विमुख देखकर बड़े वेग से, पर्वत पर जलधारा के समान, उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उन दोनों वीरों के विकट बाणों से वि-

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे ।
विध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
यथापूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
अयोधयन्भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

हल होकर वीर शकुनि वेग से घोड़े हँकवाकर द्रोणाचार्य की सेना के भीतर प्रवेश हो गये॥२४।२६॥महावीर घटोत्कच बड़े वेग से आते हुए अलायुध राक्षस की ओर दौड़ा। पहले राम और रावण ने जैसा भयानक संग्राम किया था वैसा ही घोर युद्ध वे दोनों राक्षस करने लगे॥२७।२८॥राजा युधिष्ठिर ने मद्रराज शल्य को पहले पचास बाण और फिर तीक्ष्ण सात बाण मारे। शम्बरासुर और इन्द्र के तुल्य शल्य और राजा युधिष्ठिर का अद्भुत संग्राम होने लगा। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र विविंशति,चित्रसेन और विकर्ण भी बहुत सी सेना साथ लेकर घोरतर संग्राम करने लगे॥२९।३१॥

—०—

द्रोणपर्व का छियानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९६ ॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

सञ्जय उवाच—तथा तस्मिन्प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधा भूतान्पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥
जलसन्धं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्त्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥
किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांऽशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३ ॥
ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥

सत्तानवेवाँ अध्याय ॥ ९७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! अब इस प्रकार महाघोर संग्राम के जोर पकड़ने पर पाण्डवगण तीन भागों में बँटी हुई उस कौरव-सेना पर प्राणपण से आक्रमण करने के निमित्त आगे बढ़ने लगे। महावीर भीमसेन ने महाबाहु राजा जलसन्ध पर, असंख्य सेना सहित महाराज युधिष्ठिर ने प्रतापी कृतवर्मा पर और सूर्यसदृश तेजस्वी वीर धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। ये लोग एक दूसरे के दल पर असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे॥१।३॥संग्रामतत्पर, परम कुपित, धनुर्द्धर कौरव और पाण्डव लोग एक दूसरे से भिड़कर तुमुल युद्ध करने लगे। हे राजेन्द्र! उस समय असंख्य प्राणियों का संहार होने लगा। दोनों ओर के योद्धा लोग निर्भय होकर, प्राणों की ममता त्यागकर, मरने-मारने लगे। बलवीर्यशाली द्रोणा-

संक्षये तु तथा भूते वर्त्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥ ५ ॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
यदक्षिपत्पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥
विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥
तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥
असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ १२ ॥
गृध्राः कङ्का वकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
वहुशः पिशिताशाश्च तत्राऽदृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥
भक्षयन्तश्च मांसानि पिवन्तश्चाऽपि शोणितम् ।
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥
आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसङ्घानां शिरांसि च ततस्ततः ॥ १५ ॥

---

चार्य भी पराक्रमी पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्न से युद्ध करते हुए बाण बरसाने लगे। उनका पराक्रम और स्फूर्ति देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥४।६॥द्रोणाचार्य और पराक्रमी धृष्टद्युम्न, दोनों पक्ष के, असंख्य सैनिकों के मस्तक काट-काटकर चारों ओर गिराने लगे। ऐसा जान पड़ने लगा कि मानों चारों ओर रणभूमि में खिले हुए कमलों का वन लगा हुआ है। उस समय रणस्थल में चारों ओर ढेर के ढेर वीरों के वस्त्र, आभूषण, शस्त्र, ध्वजा, कवच और हथियार आदि गिरे हुए थे। वीरों के रक्त में भीगे हुए सुवर्ण के कवच बिजली से शोभित मेघों के समान जान पड़ने लगे ॥७।१०॥ उस समय अन्यान्य वीर योद्धा भी ताड़ प्रमाण बड़े बड़े धनुष चढ़ाकर विकट बाणों की मार से हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को मार-मारकर गिराने लगे। असंख्य वीरों के सिर, हाथ, ढाल, तलवार, धनुष और कवच आदि छिन्न भिन्न होकर इधर उधर बिखरने लगे। हे राजेन्द्र ! उस समय रणभूमि में वीरों के कबन्ध उठ खड़े हुए॥११।१२॥गिद्ध, कङ्क, बगले,

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥
असिमार्गान्बहुविधान्विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥
गदाभिः परिघैश्चाऽन्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥
रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥
क्षीबा इवाऽन्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
उच्चुक्रुशुरथाऽन्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥
वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥
ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥
पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः ।
हयाः शुशुभिरे राजन्मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्माऽऽददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २४ ॥
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥

गीध, कौए और गीदड़ आदि मांसाहारी जीव मृत और घायल हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का मांस और मज्जा खाने, रक्त पीने, उनके केश नोचने तथा शरीर और मस्तक खींचने लगे॥१३-१५॥ उस समय रणनिपुण, अस्त्रविद्या में सुशिक्षित, समर की दीक्षा लिये हुए योद्धा लोग विजय की आकांक्षा से अत्यन्त घोर युद्ध करने लगे। सैनिक पुरुष निर्भय होकर तलवारों के पैंतरे दिखाते हुए क्रोधपूर्वक ऋष्टि, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर, गदा, पट्टिश और परिघ आदि अस्त्र-शस्त्रों से तथा मल्लयुद्ध के द्वारा एक दूसरे को मारने और घायल करने लगे॥१६-१८॥ रथी लोग रथियों के साथ, घुड़सवार घुड़सवारों के साथ, हाथियों के सवार हाथियों के सवारों के साथ और पैदल सिपाही पैदलों के साथ भिड़ गये। मदमत्त हाथी चिग्घाड़ते हुए एक दूसरे पर चोट करने लगे॥१९-२०॥ महाराज! महात्मा धृष्टद्युम्न ने उस मर्यादाशून्य युद्ध के अवसर पर अपना रथ द्रोणाचार्य के रथ से भिड़ा दिया। [illegible] रङ्ग के और कबूतर के रङ्ग के दोनों वीरों के बहुमूल्य घोड़े एक स्थान मिलकर बिजली सहित मेघखण्डों के समान शोभा पा रहे थे॥२१-२३॥ उस समय शत्रुसूदन महावीर धृष्टद्युम्न आचार्य को [illegible] समीप पाकर दुष्कर कर्म करने के लिए उद्यत हुए। वे धनुष त्यागकर, ढाल-तलवार लेकर, अपने ईषादण्ड से होकर आचार्य के रथ पर पहुँच

अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसन्नहनेषु च ।
जघानाऽर्धेषु चाऽश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ २६ ॥
खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शाऽन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥
यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवाऽऽसीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २८ ॥
ततः शरशतेनाऽस्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥
हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान्बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३० ॥
अथाऽस्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥
तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥
सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥
सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३४ ॥

गये। वे कभी घोड़ों के ऊपर, कभी घोड़ों के पीछे और कभी रथ के 'युग' पर दिखाई पड़ने लगे॥२४। २६॥तलवार हाथमें लिये महासाहसी धृष्टद्युम्न, आचार्य के लाल घोड़ों पर, इस प्रकार भ्रमण करते हुए युद्ध करने लगे; किन्तु रणनिपुण आचार्य को तनिक भी ऐसा अवकाश नहीं मिला, जिसमें वे धृष्टद्युम्न पर वार करते। धृष्टद्युम्न का यह अद्भुत साहस और दुष्कर कर्म देखकर सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। मांस की अभिलाषा रखनेवाला बाज जैसे शिकार के ऊपर झपटता है वैसे ही महावीर धृष्टद्युम्न आचार्य को मार डालने का अवसर देखते हुए उनके और अपने रथ पर विचरने लगे॥२७।२८॥क्षण भर के पश्चात् आचार्य ने कुपित होकर सौ बाणों से धृष्टद्युम्न की ढाल और दस बाणों से तलवार काट डाली। इस- के पश्चात् ही चौंसठ बाणों से उनके घोड़ों को मार डाला, दो भल्ल बाणों से रथ की ध्वजा काट डाली, छत्र काट गिराया और पृष्ठरक्षक सहित सारथी का सिर काट डाला। फिर आचार्य ने कान तक धनुष की डोरी खींचकर एक वज्रसदृश, प्राण हर लेनेवाला, भयानक बाण धृष्टद्युम्न के ऊपर छोड़ा॥२९।३१॥ यह देखकर महावीर सात्यकि ने उसी समय स्फूर्ति के साथ चौदह बाणों से आचार्य के उस दारुण बाण को काट डाला और इस प्रकार, सिंह के मुख में पहुँचे हुए मृग के समान, धृष्टद्युम्न को आचार्य के प्रहार से बचा लिया॥३२।३३॥उस भयानक समर में सात्यकि को धृष्टद्युम्न की रक्षा करते देखकर परा- क्रमी द्रोणाचार्य ने शीघ्रता के साथ उनको छब्बीस तीक्ष्ण बाण मारे। फिर वे सृञ्जयगण का संहार करने

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृञ्जयान् ।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः पड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥
ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः ।
सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

लगे। यह देखकर महावीर सात्यकि को भी बड़ा क्रोध चढ़ आया। उन्होंने आचार्य के वक्ष स्थल में छब्बीस बाण मारे। तब विजय की इच्छा रखनेवाले पाञ्चाल-देश के योद्धा लोग, सात्यकि को आचार्य के सम्मुख देखकर, धृष्टद्युम्न को स्फूर्ति के साथ रणभूमि से हटा ले गये॥३५।३६॥

द्रोणपर्व का सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९७ ॥

अथ अष्टनवतितमोऽध्याय ॥ ९८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—बाणे तस्मिन्निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते ।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥ १ ॥
अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद्युधि ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः ।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन् ।
नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥
उत्पतद्भिरिवाऽऽकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम् ।
रुक्मपुङ्खाञ्शरानस्यन्युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥
शरपातमहावर्षं रथघोषवलाहकम् ।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय ॥ ९८ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! महारथी सात्यकि ने जब आचार्य के छोड़े हुए बाण काटकर धृष्टद्युम्न की रक्षा की तब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने, सात्यकि के ऊपर कुपित होकर, कैसा सामना किया ॥१।२॥ सञ्जय कहने लगे—हे राजेन्द्र ! उस समय महारथी आचार्य कुपित होकर, धनुष लेकर, सुवर्णपुङ्ख-शोभित बाण और नाराच बाण बरसाने लगे । वे महानाग के समान लम्बे-लम्बे श्वास लेते हुए बड़े वेग के साथ सात्यकि की ओर झपटे । उनमें क्रोधरूपी विष भरा हुआ था, धनुषरूपी फैलाया हुआ मुख था, पैने बाण ही दाँत थे और नाराच बाण दाढ़ें थीं । द्रोणाचार्य के लाल घोड़े ऐसे वेग से जाने लगे कि जान पड़ता था मानो वे आकाश में से उड़े जा रहे हैं, या पर्वत के ऊपर चढ़ते जा रहे हैं ॥३।४॥ उस

दृष्ट्वाऽभिपतन्तं तं शूरः परपुरञ्जयः ।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥
एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
आश्रयं धार्त्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥
ततो रजतसङ्काशा माधवस्य हयोत्तमाः ।
द्रोणस्याऽभिमुखाः शीघ्रमगच्छन्वातरंहसः ॥ ११ ॥
ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परन्तपौ ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२ ॥
इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥
मेघाविवाऽऽतपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥ १४ ॥
इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवाऽन्येषां शूराणामभवत्तदा ॥ १५ ॥
अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥
नाऽन्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।
इषूणां सन्निपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥ १७ ॥

---

समय महावीर सात्यकि ने द्रोणरूप मेघ को देखा जो बाणरूपी वर्षा कर रहा था और रथ की ध्वनिरूप गर्जना कर रहा था। धनुष का खींचना ही मूसलाधार वर्षा थी जिसमें नाराच बाण बिजली की भाँति चमक रहे थे। इस मेघ में शक्ति और खड्ग ही वज्र थे। यह मेघ क्रोध के वेग से उत्पन्न और घोड़े रूप आँधी के जोर से चल रहा था। तब सात्यकि ने हँसकर अपने सारथी से कहा - हे सूत ! तुम शीघ्र ही इन स्वकर्म-च्युत, दुर्योधन के लिए आश्रयभूत, राजपुत्रों के गुरु, वीराभिमानी ब्राह्मण द्रोण के समीप वेग से ले चलो॥८।१०॥सारथी ने उसी समय सात्यकि की आज्ञा के अनुसार, मन और वायु के समान वेग से चलनेवाले, घोड़ों को आचार्य के सम्मुख पहुँचा दिया। हे महाराज ! अब शत्रुदलन आचार्य द्रोण और शिनि के वंश में उत्पन्न सात्यकि दोनों ही अत्यन्त घोर युद्ध में प्रवृत्त होकर परस्पर जलधारा के समान असंख्य बाण बरसाने लगे। उन दोनों वीरों के बाण आकाशमण्डल भर में और सब दिशाओं में व्याप्त हो गये॥११।१४॥ उन्होंने सूर्य के प्रकाश को छिपा दिया और पवन की गति भी रोक दी। इस प्रकार दोनों की बाणवर्षा से समरभूमि आच्छन्न होने पर अन्यान्य वीरगण, कुछ न दीख पड़ने के कारण, युद्ध न कर सके। शीघ्र ही अस्त्र चलाने में निपुण द्रोणाचार्य और सात्यकि ने इतने बाण बरसाये कि तिल भर भी शून्य स्थान नहीं

शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।
नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमावभौ ॥ १८ ॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।
तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाऽऽहन्यतामिव ।
उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाऽश्वास्तौ च सारथी ॥ २० ॥
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।
निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत्सुदारुणः ।
उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।
स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ॥ २३ ॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।
गर्जितोत्क्रुष्टसन्नादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥
उपारमन्महाराज व्याजहार न कश्चन ।
तूष्णींभूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥ २५ ॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।
रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥ २६ ॥
अवैक्षन्ताऽचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।
हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथाऽनीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।
मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८ ॥

देख पड़ता था । उन दोनों वीरों के बाणों के निरन्तर गिरने का शब्द इन्द्र के छोड़े वज्रों के गिरने की भयानक कड़क के समान सुनाई पड़ने लगा॥१७-१८॥ नाराच बाणों से फटे और बिंधे हुए बाण विषैले नाग के डँसे हुए सर्पों के समान दिखाई पड़ते थे । उन युद्धनिपुण वीरों की प्रत्यञ्चा और हथेली का शब्द ऐसा जान पड़ता था जैसे पर्वत के शिखरों पर निरन्तर वज्र गिर रहा हो । दोनों वीरों के रथ, घोड़े और सारथी सुवर्णपुङ्खयुक्त बाणों से आच्छन्न होने के कारण विचित्र प्रतीत होने लगे॥१९-२१॥ स्वच्छ और सीधे नाराच बाण केंचुल छोड़े हुए नाग के समान चारों ओर गिर रहे थे । दोनों के छत्र कट गये और ध्वजाएँ कटकर गिर पड़ीं । दोनों ही वीर विजय की अभिलाषा से युद्ध कर रहे थे । दोनों के शरीरों से रक्त बह रहा था, जिससे वे मद चूते गजराजों के समान देख पड़ते थे । प्राणनाशक बाणों से दोनों एक दूसरे को घायल कर रहे थे॥२२-२४॥ उस समय युद्धभूमि में गर्जन, सिंहनाद, चिल्लाहट और शङ्ख दुन्दुभि आदि

ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।
वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्द्धसु ॥ ३० ॥
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥ ३१ ॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ।
अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥ ३२ ॥
तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विद्याधरमहोरगाः ।
गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥ ३४ ॥
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।
ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।
निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥ ३७ ॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदाऽस्य च सात्यकिः ।
ततस्त्वरन्पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥

के शब्द बन्द हो गये; कोई चूँ तक नहीं करता था। सैनिक लोग युद्ध करना छोड़कर कौतूहल के साथ उन दोनों का अद्भुत संग्राम देखने लगे॥२४।२७॥ उन दोनों वीरों के आसपास खड़े हुए रथी, हाथियों के सवार, घुड़सवार और पैदल योद्धा एकटक उस युद्ध को देखने लगे। हाथियों, घोड़ों और रथों की सेनाएँ व्यूहरचनापूर्वक यथास्थान खड़ी थीं। मोती-मूँगे आदि से चित्र-विचित्र, सुवर्ण-मणिभूषित ध्वजाएँ, विचित्र आभूषण, रङ्गीन कम्बल, सूक्ष्म कम्बल, सुनहरे कवच, स्वच्छ तीक्ष्ण शस्त्र, घोड़ों के सिर की कलँगी, हाथियों के मस्तकों पर पड़ी हुई सुवर्ण और चाँदी की मालाएँ, कुम्भ मालाएँ, दन्तवेष्टन आदि की शोभा से वे सेनाएँ ऐसी जान पड़ती थीं कि जैसे वर्षाकाल आने पर बगलों की कतार, जुगनू, इन्द्रधनुष और बिजली से युक्त भारी घन-घटाएँ उमड़ी हुई हों॥२८।३१॥ हे महाराज! हमारे और युधिष्ठिर के सभी सैनिक महात्मा द्रोणाचार्य और सात्यकि का दारुण युद्ध देखने लगे। विमानों पर बैठे हुए ब्रह्मा चन्द्रमा इन्द्र आदि देवता, सिद्ध, चारण, विद्याधर, नाग आदि के झुण्ड के झुण्ड आकाशमार्ग से वह युद्ध देख रहे थे। उन दोनों वीरों के आगे बढ़ने, पीछे हटने और विचित्र अस्त्रों के द्वारा दिव्य अस्त्रों को निष्फल करने का कौशल और स्फूर्ति देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥३२।३५॥ अस्त्रप्रयोग में हाथों की स्फूर्ति दिखाते हुए महा-

सज्यं सज्यं धनुश्चाऽस्य चिच्छेद निशितैः शरैः।
एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥
न चाऽन्तरं तयोर्दृष्टं सन्धाने छेदनेऽपि च ।
ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्माऽतिमानुषम् ॥ ४० ॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।
एतदस्त्रबलं रामे कार्त्तवीर्ये धनञ्जये ॥ ४१ ॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
तं चाऽस्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥
लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
तुतोषाऽस्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥
न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।
देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ।
तस्याऽस्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥ ४६ ॥
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
तस्याऽतिमानुषं कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरसमं रणे ॥ ४७ ॥

लगे। द्रोण और सात्यकि एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। इसी मध्य में सात्यकि ने सुदृढ़ बाणों से द्रोणाचार्य के बाण निष्फल करके धनुष काट डाला। तदनन्तर द्रोण ने क्षण भर में दूसरा धनुष लेकर उस पर डोरी चढ़ाई किन्तु सात्यकि ने स्फूर्ति के साथ वह धनुष भी काट डाला। फिर द्रोणाचार्य ने और अन्य धनुष लेकर उस पर डोरी चढ़ाई। सात्यकि ने स्फूर्ति दिखाते हुए वह धनुष भी काट डाला। इस प्रकार जब जब आचार्य धनुष लेते थे तब-तब उसे सात्यकि काट डालते थे। हे महाराज! दृढ़धनुर्धारी सात्यकि ने द्रोणाचार्य के एक सौ धनुष काट डाले। इस कार्य में सात्यकि ने इतनी स्फूर्ति दिखाई कि यह किसी को विदित न हो सका कि उन्होंने कब आचार्य ने धनुष पर बाण चढ़ाया और कब द्रोणाचार्य का धनुष उन्होंने काट डाला ॥३९।४०॥ सात्यकि के उस अपूर्व कार्य को देख कर द्रोणाचार्य जी सोचने लगे कि परशुराम, कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन, अर्जुन और भीष्मपितामह की भाँति अस्त्रबल सात्यकि में देख पड़ रहा है। इन्द्र के तुल्य सात्यकि का पराक्रम, अस्त्रबल और स्फूर्ति देखकर द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य मन ही मन में उनकी प्रशंसा करने लगे। अस्त्रज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य सात्यकि के इस कर्म से सन्तुष्ट हुए॥४०।४२॥ इन्द्र आदि देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण सभी द्रोणाचार्य के अस्त्रबल और स्फूर्ति को तो जानते ही थे, परन्तु सात्यकि के अस्त्रबल और हस्तलाघव को नहीं जानते थे। इस समय उनके असाधारण कर्म को देखकर उन्हें भी सन्तोष और आश्चर्य हुआ॥४३।४५॥ इसके पश्चात् अस्त्रविद्याविशारद शत्रुमर्दन द्रोण ने और धनुष लेकर दिव्य अस्त्रों के द्वारा युद्ध करने लगे। सात्यकि भी बहुत से भयानक अस्त्रों के द्वारा उनके

युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ।
यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवाऽस्यति सात्यकिः ॥ ४८ ॥
तमाचार्योऽथ सम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ।
ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।
तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५० ॥
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।
हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥
न विचेरुस्तदाऽऽकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ।
अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥ ५२ ॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्त्तदथ भास्करः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।
धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४ ॥
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ।
दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।
ततो युद्धमभूद्राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥

अस्त्रों को निष्फल करके उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। यह देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। रणकौशल के ज्ञाता कौरवदल के वीरगण, सात्यकि के अलौकिक युद्धकौशल और अस्त्रबल को देखकर, उनकी प्रशंसा करने लगे। द्रोणाचार्य ने जो जो अस्त्र छोड़े, उनको और उन्हें व्यर्थ करनेवाले अस्त्रों का प्रयोग महावीर सात्यकि ने भी किया॥४५।४८॥ शत्रुतापन आचार्य धैर्य के साथ उनसे युद्ध करने लगे; किन्तु सात्यकि के अस्त्रकौशल से वे व्याकुल से हो-गये। तब धनुर्वेद के पारगामी आचार्य ने कुपित हो कर, सात्यकि को मारने के निमित्त, महाघोर शत्रुनाशन दिव्य आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। यह देखकर सात्यकि ने असाधारण वरुणास्त्र का प्रयोग किया। दोनों वीरों को दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते देखकर चारों ओर हाहाकार होने लगा॥४९।५१॥ उस समय आकाश से आकाशचारी जीव भी हट गये। दोनों वीरों ने बाणों को जिस समय दिव्य अस्त्रों से अभि-मन्त्रित किया उस समय सूर्य मध्य आकाश से पश्चिम की ओर हट चुके थे, दोपहरी ढल चुकी थी। दोनों अस्त्र एक दूसरे के प्रभाव से व्यर्थ हो गये। उस समय राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव सात्यकि की सहायता और रक्षा करने लगे। धृष्ट-द्युम्न आदि योद्धा, विराट, केकय, मत्स्य और शाल्व देश की सेनाएं द्रोणाचार्य के ऊपर वेग से आक्रमण करने लगीं। इधर आचार्य को शत्रुओं से घिरे देखकर दुःशासन को आगे किये हुए सहस्रों राजकुमार आचार्य की रक्षा के निमित्त उनके समीप आये॥५२।५५॥ हे राजेन्द्र! उस समय उन योद्धाओं के साथ आपके दल का घोर संग्राम होने लगा। धूल और बाणों का अंधेरा छा गया। कुछ न दिखाई

रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।
सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ५७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

पड़ने के कारण सब लोग व्याकुल हो उठे। इस प्रकार धूल के मारे सब सेना के विह्वल होने पर मर्यादारहित संग्राम होने लगा॥५६।५७॥

— ० —

द्रोणपर्व का अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९८ ॥

अथ एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सञ्जय उवाच विवर्त्तमाने त्वादित्ये तत्राऽस्तशिखरं प्रति ।
रजसाऽऽकीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥
तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्त्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥
तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥
रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥
यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥
रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् ।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥
ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसन्निभाः ।
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥

निन्यानबेवाँ अध्याय ॥ ९९ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे राजेन्द्र ! सूर्यदेव अस्ताचल की ओर चले। किरणों की तेजी घट चली और धूल का अंधेरा अधिकाधिक बढ़ने लगा। कौरव सेना के योद्धा कभी सम्मुख डटकर युद्ध करते थे, कभी भागने और कभी लौटकर फिर सामना करते थे। इस प्रकार विजय प्राप्त करने का यत्न करते-करते धीरे-धीरे वह दिन व्यतीत हो चला। इस प्रकार जय की आकांक्षा से सब सैनिक भिड़कर युद्ध करने लगे। जयद्रथ के समीप जाने के निमित्त अर्जुन और श्रीकृष्ण बराबर आगे ही बढ़ते जा रहे थे ॥१-३॥ अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणों के द्वारा रथ के जाने भर की राह करते जाते थे और श्रीकृष्ण उसी राह से रथ लिए जा रहे थे। अर्जुन का रथ जहाँ-जहाँ जाता था वहाँ-वहाँ आपके पक्ष की सेना इधर-उधर होती चली जाती थी। उस समय पराक्रमी केशव उत्तम, मध्यम और अधम, विविध मण्डलों को दिखाते हुए, अपनी रथ हाँकने की कला का परिचय दे रहे थे॥४-६॥ अर्जुन के नाम से अङ्कित, काल और अग्नि के तुल्य, तांत से बंधे हुए, सुन्दर गाँठों से शोभित, मोटे,

वैणवाश्चाऽऽयसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥
रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् ।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥ ९ ॥
तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधु वाजिभिः ।
तदाऽगच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥ १० ॥
न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते ।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥ ११ ॥
नाऽन्यस्य समरे राजन्गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥
प्रविश्य तु रणे राजन्केशवः परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥
ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥ १४ ॥
क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥
हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥

दूर तक जानेवाले, बाँस और लोहे के बने अत्यन्त उग्र बाण विविध शत्रुओं के प्राण हरने और मांसाहारी पक्षियों के साथ उनका रक्त पीने लगे। कृष्णचन्द्र इस वेग से रथ हाँक रहे थे कि रथ पर बैठे हुए अर्जुन कोस भर आगे जिन बाणों को छोड़ते थे, वे बाण कोस भर आगे रथ निकल जाने पर शत्रुओं के प्राण हरते थे॥७।९॥ गरुड़ और वायु के समान वेगगामी सुशिक्षित घोड़ों को हाँककर कृष्णचन्द्र इस कौशल और शीघ्रता से रथ को लिये जा रहे थे कि सब लोगों को देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। जितने वेग से अर्जुन का रथ जा रहा था उतने वेग से कभी पहले इन्द्र, रुद्र और कुबेर का भी रथ नहीं चला॥१०।११॥ तात्पर्य यह है कि मन और मनोरथ के समान शीघ्र जानेवाला अर्जुन का रथ जिस प्रकार जा रहा था उस प्रकार कभी किसी का रथ नहीं गया। हे राजेन्द्र! शत्रुदलदलन केशव इस प्रकार रणभूमि में प्रवेश करके स्फूर्ति के साथ घोड़ों को शत्रुसेना के मध्य चलाने लगे। अर्जुन के घोड़े शत्रुसेना के रथों के मध्य में भूख-प्यास और थकन के मारे धीरे-धीरे चलने लगे। योद्धाओं के अनेक अस्त्र-शस्त्र लगने से उनके अङ्गों में बहुत से घाव हो चुके थे। उस व्यथा और थकन के मारे वे घोड़े भी [illegible] चाल से विचित्र मण्डलाकार गतियों से चलने लगे। वे घोड़े मृत पर्वताकार घोड़ों, हाथियों, मनुष्यों और टूटे फूटे रथों के ऊपर से रथ को खींचते चले जा रहे

तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम् ।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥
तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥
ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम् ।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥ २० ॥
तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः ।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥
अथाऽन्ये धनुषी राजन्प्रगृह्य समरे तदा ।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥
तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः ।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनञ्जयः ॥ २३ ॥
तथाऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
जघानाऽश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥ २४ ॥
ज्येष्ठस्य च शिरः कायात्क्षुरप्रेण न्यकृन्तत ।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥
विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान् ।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥
अभ्यवर्त्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ।
गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥

---

॥१३।१६॥ हे राजेन्द्र ! तब अवन्तिदेश के विन्द और अनुविन्द ने अर्जुन के घोड़ों को थका हुआ देखकर अपनी सेना के साथ उनका सामना किया । उन्होंने अर्जुन को चौसठ, श्रीकृष्ण को सत्तर और घोड़ों को सौ बाणों से पीड़ित किया । तब महावीर अर्जुन ने अत्यन्त ही कुपित होकर उनको नौ नौ बाण मारे ॥१७।१९॥ महायशस्वी विन्द और अनुविन्द ने अर्जुन के बाणों से अत्यन्त क्रुद्ध होकर घोर सिंहनाद किया और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण को बाणों से ढक दिया । महावीर अर्जुन ने दो भल्ल बाणों से फुर्ती के साथ उनके विचित्र धनुष और सुवर्णमयी ध्वजायें भी काट डालीं । महायशस्वी विन्द और अनुविन्द तुरन्त ही और अन्य धनुष लेकर क्रोधपूर्वक अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे ॥२०।२२॥ यह देखकर अर्जुन ने क्रोध करके फिर दो बाणों से उनके धनुष काट डाले । फिर उनके सारथी, पृष्ठरक्षक, सहायक पैदल सिपाही और घोड़े भी मार डाले और एक तीखे क्षुरप्र बाण से विन्द का सिर काट गिराया । अर्जुन के बाण से प्राणरहित होकर विन्द, आंधी से टूटे वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥२३।२५॥ बड़े भाई की मृत्यु देखकर महापराक्रमी अनुविन्द अत्यन्त क्रोध करके, वह बिना घोड़ों का रथ छोड़कर, गदा हाथ में लिये अर्जुन की ओर दौड़े । गदाधारी अनुविन्द ने श्रीकृष्ण के मस्तक में बड़े वेग से गदा मारी । अनुविन्द के गदा-

अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् ।
स्पृष्ट्वा नाऽकम्पयत्क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥
तस्याऽर्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः ।
निचकर्त स सञ्छिन्नः पपाताऽद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥
ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन्पदानुगाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान् ॥ ३० ॥
तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥
तयोः सेनामतिक्राम्य कृच्छ्रादिव धनञ्जयः ।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥
तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाऽभवन्पुनः ।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम् ।
सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥
तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन्पुरुषर्षभः ।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः ।
किमिहाऽनन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥
ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून्विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥

प्रहार से श्रीकृष्ण तनिक भी विचलित न हुए। वे मैनाक पर्वत की भाँति अचल-अटल खड़े ही रहे॥२६।२८॥ तब अर्जुन ने कुपित होकर छः बाणों से अनुविन्द के दोनों हाथ, दोनों पाँव, गर्दन और मस्तक काट डाला। इससे वे पर्वत की भाँति भरभराकर गिर पड़े। इस प्रकार महाबली विन्द और अनुविन्द के मारे जाने पर उनके सैकड़ों साथी योद्धा क्रोधपूर्वक बाण बरसाते हुए अर्जुन की ओर दौड़ पड़े। अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण बाणों से उन्हें भी मार डाला॥२९।३१॥ उस समय विन्द और अनुविन्द की सेना को कठिनाई से मार-कर, उनके मध्य से निकलकर, वे गर्मियों में वन को जलानेवाले दावानल और मेघमुक्त सूर्यदेव के समान शोभायमान हुए। उन्हें देखकर कौरवदल के लोग पहले भयभीत हुए; परन्तु फिर जयद्रथ को दूर पर स्थित और अर्जुन को थका हुआ देखकर प्रसन्न हो उठे। सबने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया। वे सिंहनाद करके अर्जुन पर घोर आक्रमण करने लगे ॥३२।३४॥ उन्हें क्रोध के मारे बाण बरसाते आते देख मुसकराते हुए अर्जुन ने धीरे से कहा—हे वासुदेव! बाणों के प्रहार से मेरे घोड़े जर्जर हो रहे हैं, थक भी गये हैं और जयद्रथ भी अभी दूर है। आप सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं और हमारे नेता हैं। बताइए, इस समय क्या करना उचित है?॥३५।३७॥ पाण्डव लोग आपकी ही चतुराई से शत्रुओं को जीत सकेंगे।

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं निबोध मे ।
हयान्विमुच्य हि सुखं विशल्यान्कुरु माधव ॥ ३८ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाऽप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥
अर्जुन उवाच—अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥
सञ्जय उवाच—सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनञ्जयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिव ऽचलः ॥ ४१ ॥
तमभ्यधावन्क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकांक्षिणः ।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥
शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥
तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत ।
यत्क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥ ४६ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥

मेरी सम्मति तो यह है कि आप यहीं घोड़ों को रथ से खोलकर उनके अंगों के सब शल्य दूर कीजिए और वे कुछ सुस्ता भी लें। अर्जुन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ! तुम्हारा कहना मुझे भी उचित ही है। अब अर्जुन ने कहा—हे मित्र! आप यहीं पर ठहरकर अपना कार्य कर लीजिए। मैं पहले ही सब शत्रुओं को रोके रहूँगा॥३७।४०॥ अब महावीर अर्जुन निःशङ्क भाव से अपनी अस्त्रविद्या दिखाने लगे। वे रथ से उतरकर, गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर, पर्वत के समान अटल भाव से खड़े हो गये। उस समय विजय की अभिलाषा रखनेवाले क्षत्रियगण अर्जुन को पृथ्वी पर खड़े हुए देखकर, आक्रमण के योग्य यही अवसर जानकर, धनुष चढ़ाकर विचित्र अस्त्र-शस्त्र छोड़ते हुए, सिंह के सम्मुख हाथियों के झुण्ड के समान अर्जुन की ओर झपट पड़े। असंख्य रथों के मध्य में अर्जुन घिर गये। क्षत्रियों के बाणजाल के मध्य में अर्जुन मेघों में छिपे हुए सूर्य के समान जान पड़ने लगे। उस समय युद्धभूमि में शत्रुनाशन अर्जुन अपना अद्भुत बाहुबल दिखाने लगे॥४१।४४॥ उन्होंने अपने अस्त्र के प्रभाव से शत्रुपक्ष के सब अस्त्रों को निष्फल कर दिया। अर्जुन के बाणों से विद्ध होकर शत्रुपक्ष के सब योद्धा आगे बढ़ने में असमर्थ हो गये। बाणों के परस्पर रगड़ खाने से आकाश में अग्नि भी जल उठी। असंख्य बीभत्सु विजय की अभिलाषा

तत्राऽन्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते ।
सङ्घर्षेण महार्चिष्मान्पावकः समजायत ॥ ४८ ॥
तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चाऽरिकर्षणैः ॥ ४९ ॥
संरब्धैश्चाऽरिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्यैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥
शरोर्मिणं ध्वजावर्त्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च ।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे ।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच— सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥ ५५ ॥
स पार्थः पार्थिवान्सर्वान्भूमिस्थोऽपि रथस्थितान् ।
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥
ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

---

से क्रोधपूर्वक बहुत से रुधिरचर्चित मस्त हाथियों और घोड़ों को साथ लेकर अकेले अर्जुन को हराने और मारने का पूर्ण उद्योग करने लगे॥४९।५०॥उनके रथों की कतार देखने से जान पड़ता था कि मानों अपार महासागर भरा पड़ा है। उस समुद्र में बाण तरङ्गों के समान, ध्वजाएँ भँवर के समान, हाथी मगरों के समान, पैदल मछलियों के समान, पगड़ियाँ कछुओं के समान तथा छत्र और पताकाएँ फेने के समान देख पड़ती थीं। महावीर अर्जुन तटभूमि के समान उस अक्षोभ्य और हाथीरूप चट्टानों से घिरे रथ-सागर को बाणों से रोके हुए थे॥५१।५३॥धृतराष्ट्र ने पूछा—अर्जुन जब रथ से उतर पड़े और श्रीकृष्ण ने घोड़ों को सँभाला तब, यह अवसर पाकर, अर्जुन को क्यों न मार डाला?॥५४॥सञ्जय ने कहा—पृथ्वी पर खड़े रहने पर भी अकेले अर्जुन ने रथों पर सवार राजाओं को बात की बात में इस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार वेद-विरुद्ध वाक्य मनुष्य की प्रवृत्ति को रोक देता है या लोभ सब गुणों को रोक देता है॥५५।५६॥उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ! तुम्हारे घोड़े प्यास के मारे व्याकुल हो रहे हैं। इस समय इन्हें जल पिलाने की आवश्यकता है। यहाँ पर घोड़ों को जल पिलाने के निमित्त कुआँ आदि कोई जलाशय भी नहीं है। इन्हें स्नान कराने की उतनी आवश्यकता नहीं॥५७।५८॥अर्जुन ने निश्चित

उद्पानमिहाऽश्वानां नाऽलमस्ति रणेऽर्जुन ।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥
इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
अभिहत्याऽर्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥
कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१ ॥
शरवंशशरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
शरवेश्माऽकरोत्पार्थस्त्वष्टेवाऽद्भुतकर्मकृत् ॥ ६२ ॥
ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाऽब्रवीत् ।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन्महात्मना ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः॥९९॥

---

भाग मे " यह जलाशय है " कहकर उसी समय अस्त्र के द्वारा पृथ्वी तल को फोड़ दिया । अस्त्र के प्रभाव से ही वहाँ पर एक ऐसा विस्तृत सरोवर बन गया जिसके तट पर हंस, कारण्डव, चकवे आदि पक्षी बैठे थे, जल स्वच्छ था और उसके भीतर मछली-कछुए आदि अनेक जीव-जन्तु कलोलें कर रहे थे । उस ऋषि-सेवित, निर्मल जलयुक्त, प्रफुल्लित कमल दलशोभित, तत्काल निर्मित सरोवर को देखने के लिए देवर्षि नारद आ गये॥५८।६१॥ विश्वकर्मा के समान विचित्र कार्य करनेवाले अर्जुन ने वहाँ पर बाणों का ही एक विचित्र घर बना दिया, जिसके बाँस ( ठाठ ), खम्भे, छप्पर आदि सब बाणों के ही थें । महात्मा कृष्णचन्द्र अर्जुन का यह अद्भुत कार्य देखकर हँसते हुए उन्हें बारम्बार साधुवाद देने लगे॥६२।६३॥

द्रोणपर्व का निनानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९९ ॥

अथ शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच—सलिले जनिते तस्मिन्कौन्तेयेन महात्मना ।
निस्तारिते द्विपत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥
वासुदेवो रथात्तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः ।
मोचयामास तुरगान्वितुन्नान्कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् ।
सिद्धचारणसङ्घानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥

---

सौवाँ अध्याय ॥ १०० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इस प्रकार वीर अर्जुन के प्रभाव से रणस्थल में जल निकल आया, बाणों का घर बन गया और शत्रुदल भी जहाँ के तहाँ रुक गये । तब महात्मा केशव ने रथ से उतरकर कङ्क-पत्र शोभित बाणों से घायल घोड़ों को रथ से खोल दिया । उस समय सिद्ध-चारणगण और सब सैनिक

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नाऽसम्भ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥
व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
न चाऽव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥
शतानि शरजालानि गदाप्रासांश्च वीर्यवान् ।
आगतानग्रसत्पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥
अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्ताञ्शरोत्तमान् ॥ ८ ॥
तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन्महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥
किमद्भुततमं लोके भविताऽप्यथ वा ह्यभूत् ।
यदश्वान्पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥
भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥
अथ स्मयन्हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥ १२ ॥
उपावर्त्तयदव्यग्रस्तानश्वान्पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥

पुरुष अर्जुन के उस अभूतपूर्व कार्य को देखकर बारम्बार उनकी प्रशंसा करने लगे॥१।३॥कौरवपक्ष के योद्धा लोग किसी प्रकार अर्जुन को परास्त नहीं कर पाते थे, यह देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। महारथी योद्धा और राजा लोग निरन्तर अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे, परन्तु वीर अर्जुन उनके प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुए॥४।६॥उन असंख्य हाथियों, घोड़ों और रथों के आक्रमण से महावीर अर्जुन व्याकुल हुए नहीं; वे सबको परास्त करके, सबसे बढ़कर, अद्भुत कौशल के साथ संग्राम करने लगे। जैसे महासागर सब नदियों के वेग को सहज ही रोक लेता है, वैसे ही वीर अर्जुन भी वीरों के चलाये हुए असंख्य बाण, गदा, प्रास आदि शस्त्रों के वार को झेलते रहे॥७।८॥ कौरवगण उस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण के अद्भुत पराक्रम की बहुत प्रशंसा करने लगे कि अर्जुन और श्रीकृष्ण ने जो युद्ध के मैदान में शत्रुदल के मध्य रथ के घोड़े खोल दिये, और उन्हें जल पिलाकर विश्राम करा दिया, यह उनके लिए कुछ बड़ी बात नहीं थी। दोनों वीरों ने अपना उग्र और अद्भुत तेज दिखाकर हम लोगों को बहुत ही भयाकुल कर दिया है॥९।११॥ हे महाराज! उस समय अश्वविद्या में निपुण कृष्णचन्द्र ने सारी शत्रुसेना के सम्मुख ही उस अर्जुन-रचित बाणों के घर में घोड़ों को ले जाकर उनकी थकान मिटाई, अपने हाथों से उनके शरीर के शल्य निकाले और

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान् ।
सर्वं व्यपानुदत्कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥
शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान्हयान् ।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥
स ताँल्लब्धोदकान्स्नाताञ्जग्धान्नान्विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥
स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥
रथं रथवरस्याऽऽजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥
विनिःश्वसन्तस्ते राजन्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन्पृथक् ॥ १९ ॥
तत्सैन्यं सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाऽऽक्रन्दन्नैतदस्तीति चाऽब्रुवन् ॥ २० ॥
सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशिनौ ।
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥
क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परन्तपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २२ ॥
तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदाऽन्ये सैनिकाऽब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥

---

मालिश की, नहलाया, टहलाया और दाना-पानी खिलाया-पिलाया॥१२-१५॥ जब घोड़े नहाकर और खा-पीकर विश्राम कर चुके तब श्रीकृष्ण ने उन्हें फिर उसी बहुमूल्य रथ में जोत दिया। अर्जुन सहित श्रीकृष्ण उस रथ पर बैठकर शीघ्रता के साथ आगे बढ़े। कौरवपक्ष के वीरों ने जब देखा कि महावीर अर्जुन के घोड़े जल पीकर, थकान मिटाकर, फिर रथ को ले चले तब वे बहुत ही व्याकुल हो गये। जिनके दाँत तोड़ दिये गये हों उस सर्प के समान लम्बी साँसें लेते हुए कौरवपक्ष के योद्धा लोग अलग-अलग कहने लगे—हाय! श्रीकृष्ण और अर्जुन हमारे सामने से निकल गये और हम उनका कुछ नहीं कर सके! हमें धिक्कार है॥१६-१९॥ एक ही रथ पर चढ़े हुए, कवचधारी, शत्रुनाशन अर्जुन और श्रीकृष्ण क्रीड़ा सी करते हुए अनायास, शत्रुसेना का नाश करते चले जा रहे हैं। जैसे कोई बालक खिलौनों से खेले वैसे ही अनायास अपना पराक्रम दिखाकर और हमारे बल को तुच्छ करके वे चले जा रहे हैं हम सब चिल्ला रहे हैं। हम सब राजाओं ने यत्न किया था, पर उन्हें रोक नहीं सके॥२०-२२॥ हे कुरुकुल-तिलक! श्रीकृष्ण और अर्जुन को निकल गया देखकर अन्यान्य सैनिक चिल्लाकर कहने लगे—हे कौरवो! वह देखो, कृष्ण-अर्जुन सब योद्धाओं के सम्मुख ही रथ हाँककर जयद्रथ के समीप जा रहे हैं। इसलिए तुम लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारने का शीघ्र यत्न करो। हे महाराज!

रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥
तत्र केचिन्मिथो राजन्समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥
सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥
विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।
इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥
सिन्धुराजस्य यत्कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत्करोतु वृथादृष्टिर्धार्त्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २८ ॥
ततः शीघ्रतरं प्रायात्पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
विवर्त्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥
तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ॥ ३० ॥
विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान्सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥
गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२ ॥
कौन्तेयेनाऽग्रतः सृष्टा न्यपतन्पृष्ठतः शराः ।
तूर्णात्तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन्वातरंहसः ॥ ३३ ॥

उस समय कोई कोई राजा यह अद्भुत दृश्य देखकर कहने लगे—हाय! दुर्योधन के दोष से ही आज महाराज धृतराष्ट्र, उनका वंश, सारी सेना और सब क्षत्रिय नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं तथा इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी उजड़ी जा रही है, किन्तु राजा दुर्योधन यह नहीं समझते॥२३।२७॥ किसी किसी ने कहा—सिन्धुराज जयद्रथ अब किसी प्रकार नहीं बच सकते। अदूरदर्शी दुर्योधन को उनके निमित्त जो कुछ अन्तिम कर्तव्य हो सो कर लेना चाहिए॥२७।२८॥ इसी समय महावीर अर्जुन बिना थके घोड़ों से युक्त रथ पर सवार होकर बड़े वेग से जयद्रथ की ओर जाने लगे। उन शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और क्रुद्ध काल के समान महावीर अर्जुन को कौरवपक्ष के वीरगण किसी प्रकार न रोक सके॥२९।३०॥ शत्रुदमन अर्जुन जयद्रथ के समीप पहुँचने के लिए, मृगों पर टूटकर उनका संहार करनेवाले सिंह की भाँति, कौरव-सेना को भगाने लगे। सैन्यसागर में प्रवेश होकर वासुदेव स्फूर्ति के साथ घोड़ों को हाँकने और पाञ्च-जन्य शङ्ख की ध्वनि करने लगे। अर्जुन के रथ के घोड़े उस समय इतनी शीघ्रता से चले जा रहे थे कि अर्जुन जिन बाणों को छोड़ते थे वे निशाने पर पीछे पहुँचते थे और रथ आगे बहुत दूर निकल जाता था॥३१।३३॥ उसी समय फिर अनेक राजाओं और महारथियों ने, जयद्रथ वध के लिए उद्युक्त, अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया। इस प्रकार सब सैनिकों

महाभारत भाषा–टीका का दशम अङ्क समाप्त हुआ।